॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते किष्किन्धाकाण्डप्रारंभः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥ ॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डस्य भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

दोहा—लालवरण लाली लसै, लाल ललाट विशाल । शत्रुदलन जनभयहरण, वंदों अंजनिलाल ॥ १ ॥
भक्तन मनरूपी शरण, वसत बनतहो हंस । त्यों मम मन निजवश करहु, भानुवंशअवतंस ॥ २ ॥
अति शोकित चित रैन दिन, बनै न एकौ काम । धरणीधर धरकर उबर, लहौं नेक विश्राम ॥ ३ ॥
भरत शत्रुसूदन नमो, प्रथम सिद्धिदातार । दूजे मेरी विनयसों, करहु शत्रुसंहार ॥ ४ ॥
आदिशक्ति प्रलयंकरी, अभय करनि श्रीसीय । दै धीरज मम दुख हरहु रामअंक रमणीय ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले; हे पार्वति ! इसके पीछे लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी हौले हौले पम्पा सरोवरके किनारेपर आये । उस महासरोवरको देख उन्हें परम विस्मय हुआ ॥ १ ॥ इस सरोवरका विस्तार चौरस एक कोशहै, तिसमें अपरम्पार निर्मल जल भरा होनेसे जगह २ कमल, कह्लार,

श्रीमहादेवउवाच ॥ ततःसलक्ष्मणोरामःशनैःपंपासरस्तटम् ॥ आगत्यसरसांश्रेष्ठंदृष्ट्वाविस्मयमाययौ ॥ १ ॥ क्रोशमात्रंसुविस्तीर्णमगाधामलशंवरम् ॥ उत्फुल्लांबुजकह्लारकुमुदोत्पलमंडितम् ॥ २ ॥ हंसकारंडवाकीर्णंचक्रवाकादिशोभितम् ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौंचनादोपनादितम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पलताकीर्णनानाफलसमावृतम् ॥ सतांमनःस्वच्छजलंपद्मकिंजल्कवासितम् ॥ ४ ॥ तत्रोपस्पृश्यसलिलंपीत्वाश्रमहरंविभुः ॥ सानुजःसरसस्तीरेशीतलेनपथाययौ ॥ ५ ॥

बबूले और उत्पल इत्यादि अनेकप्रकार सूर्य चंद्रमासे खिलनेवाले कमल शोभायमान होरहे हैं ॥ २ ॥ इस सरोवरमें हंस कारण्डव पक्षियोंके यूथ विहार कर रहेहैं, चक्रवाकादि पक्षियोंने उसपर रमणीय लता रक्खी हैं । तथा जलकुक्कुट, कोयल, व क्रौंचके शब्दोंसे यह सरोवर गर्जरहा है ॥ ३ ॥ उसके चारों किनारे अनेक भांतिकी फूलीहुई बेलोंसे, और विविधभांतिके वृक्षोंसे—जोकि फूलोंके बोझसे झुकरहे हैं; व्याप्तहैं; वैसेही सत्पुरुषोंके मनके समान स्वच्छ कमल फूलोंके केसरकी सुगन्धिसे सुवासित जल उसमें भराहुवा है ॥ ४ ॥ श्रमके मिटानेवाले उस सरोवरके शीतल जल

को लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीने पिया, फिर उस सरोवरके तीरके ऊपर शीतल और सुगंधित मार्गमें श्रीरामचंद्रजी चलने लगे ॥ ५ ॥ जिते न्द्रिय, जटा वल्कल धारी, सुविक्रम राम और लक्ष्मणजी हाथमें धनुषबाण धारण किये विविध वृक्षराजि और पर्वतोंकी शोभा देखते ऋष्यमूक पर्वत के बाजूपर गमन करने लगे ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी चार वानरोंके साथ उस पर्वतके शिखरपर वसतेथे; राम लक्ष्मणको आताहुआ देख भयभीत हो पर्वत के अति ऊँचे शिखरपर चढ़गये ॥ ७ ॥ और भययुक्त हो हनुमानजीसे कहा,—"हे मित्र ! यह दोनों वीर लोगोंमें श्रेष्ठ कौन हैं ? हे भाई ! ब्राह्मणका स्वरूप धारणकर ब्रह्मचारी बन उनसे जायकर पूछो; तुम्हारा कल्याण होवे ॥ ८ ॥ वे दोनों वालिके भेजेहुए मेरा वध करनेको आये हैं या नहीं ?

ऋष्यमूकगिरेःपार्श्वेगच्छंतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुर्बाणकरौदांतौजटावल्कलमंडितौ ॥ पश्यंतौविविधान्वृक्षान्गिरेःशोभांसुविक्रमौ ॥ ६ ॥ सुग्रीवस्तुगिरेर्मूर्ध्निचतुर्भिःसहवानरैः ॥ स्थित्वाददर्शतौयांतावारुरोहगिरेःशिरः ॥ ७ ॥ भयादाहहनूमंतंकौतौवीरवरौसखे ॥ गच्छ जानीहिभद्रंतेवटुर्भूत्वाद्विजाकृतिः ॥ ८ ॥ वालिनाप्रेषितौकिंवामांहंतुंसमुपागतौ ॥ ताभ्यांसंभाषणंकृत्वाजानीहिहृदयंतयोः ॥ ९ ॥ यदितौदुष्टहृदयौसंज्ञांकुरुकराग्रतः ॥ विनयावनतोभूत्वाएवंजानीहिनिश्चयम् ॥ १० ॥ तथेतिवटुरूपेणहनुमान्समुपागतः ॥ विनयावनतो भूत्वारामंनत्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कौयुवांपुरुषव्याघ्रौयुवानौवीरसंमतौ ॥ द्योतयंतौदिशःसर्वाःप्रभयाभास्कराविव ॥ १२ ॥ युवांत्रैलोक्यकर्तारावितिभातिमनोमम ॥ युवांप्रधानपुरुषौजगद्धेतूजगन्मयौ ॥ १३ ॥

इनके साथ बातचीत करके इनकी मनकी बात जान आओ ॥ ९ ॥ और तुम्हे ऐसा दीखे कि, उनके मनमें कुछ पाप होवे; तो हाथसे मेरे भागजानेका संकेत (इशारा) करना; नम्रतासे विनयके साथ उनके मनका भाव जाननेमें लीनहो, संकेत करनेमें भलीभाँति ध्यान रखना ।" ॥ १० ॥ सुग्रीव के वचन सुन बटुकका रूप धारणकर हनुमान्‌जी विनयसे नम्र हो रामचंद्रजीको नमस्कारकर इसप्रकार वचन बोले ॥ ११ ॥ "हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! वीरों के मानने योग्य आप दोनों युवाजन कौनहै ? हम देखतेहैं कि, दो सूर्यके समान आप लोग अपने २ शरीरकी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशमान कर रहेहो ॥ १२ ॥ मेरे मनको तो ऐसा मालूम होता है कि, त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाले, सृष्टिके कारण व सर्वान्तर्यामी श्रेष्ठपुरुष (नरनारा

यण) हो ॥ १३ ॥ माया करके मनुष्यका अवतार ले पृथ्वीके भारको उतारनेके कारण तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये लीला करके विचरण करतेहो ॥ १४ ॥ तुम दोनों परमपुरुष क्षत्रियके रूपसे अवतार लेकर फिरते हो, तुम परमेश्वर होनेसे अब लीला करके जगतका पालन, नाश व उत्पत्ति (राक्षसोंका नाश व इतर जनोंका पालन और सृष्टि) करनेके लिये उद्योगी हुएहो ॥ १५ ॥ इस वास्ते स्वतंत्र प्रेरक, सबके हृदयमें वास करनेवाले समर्थ नरनारायणरूपी तुम इस लोकमें रिफतेहो, ऐसा मेरी बुद्धिमें आता है" ॥ १६ ॥ यह वाक्यामृत सुनकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, " हे लक्ष्मण ! इस ब्रह्मचारिरूपधारीको देखो । इस ब्रह्मचारीने समस्त शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरणशास्त्र अनेकवार सुनाहै, इसमें कोई संशय

माययामानुषाकारौचरंताविवलीलया ॥ भूभारहरणार्थायभक्तानांपालनायच ॥ १४ ॥ अवतीर्णाविहपरौचरंतौक्षत्रियाकृती ॥ जगत्स्थितिलयौसर्गंलीलयाकर्तुमुद्यतौ ॥ १५ ॥ स्वतंत्रौप्रेरकौसर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ॥ नरनारायणौलोकेचरंतावितिमेमातिः ॥ १६ ॥ श्रीरामोलक्ष्मणंप्राहपश्यैनंबटुरूपिणम् ॥ शब्दशास्त्रमशेषेणश्रुतंनूनमनेकधा ॥ १७ ॥ अनेनभाषितंकृत्स्नंनकिंचिदपशब्दितम् ॥ ततःप्राहहनूमंतंराघवोज्ञानविग्रहः ॥ १८ ॥ अहंदाशरथीरामस्त्वयंमेलक्ष्मणोऽनुजः ॥ सीतयाभार्ययासार्धंपितुर्वचनगौरवात् ॥ १९ ॥ आगतस्तत्रविपिनेस्थितोऽहंदंडकेद्विज ॥ तत्रभार्याहृतासीतारक्षसाकेनचिन्मम ॥ २० ॥ तामन्वेष्टुमिहायातौत्वंकोवाकस्यवावद ॥ बटुरुवाच ॥ सुग्रीवोनामराजायोवानराणांमहामातिः ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंगिरिमूर्धनितिष्ठति ॥ २१ ॥ भ्राताकनीयान्सुग्रीवोवालिनः पापचेतसः ॥ तेननिष्कासितोभार्याहृतातस्येहवालिना ॥ २२ ॥

नहीं ॥ १७ ॥ क्योंकि इस ब्रह्मचारीने बहुत संभाषण किया, परंतु इसने एकभी अशुद्ध शब्द नहीं कहा । " इसके उपरांत ज्ञानमूर्ति श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान्जीसे कहा ॥ १८ ॥ " हे बटो ! मैं दशरथका पुत्र रामहूं, यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है ! पिताजीका आज्ञारूप बड़ा भारी कार्य करनेके लिये सीतानामक अपनी पत्नीको साथमें ले मैं वनको आया और वहां दण्डकारण्यमें रहा ॥ १९ ॥ तहांसे कोई राक्षस मेरी स्त्री सीताको हरणकर लेगयाहै; उसको खोजनेके लिये हम यहांपर आये हैं; तुम कौनहो; किसके पुत्रहो, सो कहो ? " ॥ २० ॥ बटु बोला; " सुग्रीव नामक महाबुद्धिमान् वानरराज अपने चार मंत्रियोंके साथ पर्वतके शिखरपर रहते हैं ॥ २१ ॥ सुग्रीव वालिका छोटा भाई है । वालिका अंतःकरण दुष्ट व

पापी है; उसने इसको यहांपर निकाल दिया और इसकी स्त्री आप हरण करके लेली ॥ २२ ॥ इस कारण वह वालीके भयसे इस ऋष्यमूक नामक पर्वतपर आकर रहे हैं; उनका मैं मंत्री हूं; हे बुद्धिमान् ! मैं वायुका पुत्रहूं ॥ २३ ॥ अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ मैं हनुमान् नामसे विख्यात हूं। हे रघुवर ! उस सुग्रीवके साथ आपको मित्रता करनी उचित है—क्योंकि तुम दोनोंही आजकल बराबर दुःखीहो (दोनोंकी नारियें शत्रुने हर ली हैं) ॥ २४ ॥ जिसने तुम्हारी भार्या हरली है, उसको वध करनेके काममें सुग्रीव आपकी सहायता करेगा; जो आपको रुचे तो चलिये अभी हम वहांपर चलें " ॥ २५ ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले; "हे कपीश्वर ! मैंभी सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके अर्थ आयाहूं; तैसेही सुग्रीवका जो

तद्भयादृष्यमूकाख्यंगिरिमाश्रित्यसंस्थितः ॥ अहंसुग्रीवसचिवोवायुपुत्रोमहामते ॥ २३ ॥ हनुमान्नामविख्यातोह्यंजनीगर्भसंभवः ॥ तेनसख्यंत्वयायुक्तंसुग्रीवेणरघूत्तम ॥ २४ ॥ भार्यापहारिणंहंतुंसहायस्तेभविष्यति ॥ इदानीमेवगच्छामआगच्छयदिरोचते ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहमप्यागतस्तेनसख्यंकर्तुंकपीश्वर ॥ सख्युस्तस्यापियत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ हनूमान्स्वस्वरूपेण स्थितोराममथाब्रवीत् ॥ आरोहतांममस्कंधौगच्छामःपर्वतोपरि ॥ २७ ॥ यत्रतिष्ठतिसुग्रीवोमंत्रिभिर्वालिनोभयात् ॥ तथेतितस्यारुरोहस्कंधंरामोऽथलक्ष्मणः ॥ २८ ॥ उत्पपातगिरेर्मूर्ध्निक्षणादेवमहाकपिः ॥ वृक्षच्छायांसमाश्रित्यस्थितौतौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥ हनूमानपिसुग्रीवमुपगम्यकृतांजलिः ॥ व्येतुतेभयमायातौराजञ्छ्रीरामलक्ष्मणौ ॥ ३० ॥

कार्य है उसको मैं करदूंगा; इसमें कोई संशय नहीं " ॥ २६ ॥ यह सुन हनुमान्जी अपना स्वरूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले " आप दोनोंजने हमारे कंधोंपर चढ़ लीजिये; मैं अभी पर्वतपर चलताहूं ॥ २७ ॥ वहांपर सुग्रीव वालिके भयके मारे मंत्रियोंके साथ बैठे हैं । " श्रीरामचंद्रजी " बहुत अच्छा " कह हनुमान्जीके कंधेपर सवार हुए और लक्ष्मणजीभी चढ़े ॥ २८ ॥ तब तुरत महाकपि हनुमान्जी एक क्षणभरमें कूदकर ऊंचे पर्वतपर चले आये; और राम लक्ष्मणको वृक्षकी छायामें बैठायकर ॥ २९ ॥ हनुमान्जी सुग्रीवके पास जाय, हाथ जोड़कर बोले, " हे राजन् ! तुम्हारा भय जाता रहा, क्योंकि यहांपर श्रीराम और लक्ष्मणजी आये हैं ॥ ३० ॥

शीघ्रतासे उठो मैं आपके साथ श्रीरामचंद्रजीकी मित्रता होनेका योग लगा आयाहूं; अग्निको साक्षी ठहराय शीघ्रतासे उनके साथ मित्रता करो।" ॥ ३१ ॥ यह सुनकर सुग्रीवको अतिशय आनंद हुआ और रामजीके पास आय अपने हाथसे वृक्षकी शाखाको तोड़कर उन्हें आसन दिया ॥ ३२ ॥ हनुमान्‌जीने डाली तोड़कर लक्ष्मणजीके लिये बैठनेको दी और लक्ष्मणजीने सुग्रीवजीको आसन दिया। सर्व जन अत्यन्त आनंद युक्त होकर वहाँपर बैठे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त श्रीलक्ष्मणजीने पहलेसे लेकर श्रीरामचंद्रजीका सर्व वृत्तान्त, वनवास करनेको आना, सीताजीका हरा जाना इत्यादि सुग्रीवको सुना दिया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार लक्ष्मणजीके वचन सुनकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीसे कहा, "हे राजाधिराज!

शीघ्रमुत्तिष्ठरामेणसख्यंतेयोजितंमया ॥ अग्निंसाक्षिणमारोप्यतेनसख्यंद्रुतंकुरु ॥ ॥ ३१ ॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवःसमागम्यरघूत्तमम् ॥ वृक्षशाखांस्वयंछित्त्वाविष्टरायददौमुदा ॥३२॥ हनूमाँल्लक्ष्मणायादात्सुग्रीवायचलक्ष्मणः ॥ हर्षेणमहताविष्टाःसर्वएवावतस्थिरे ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वंरामवृत्तांतमादितः ॥ वनवासाभिगमनंसीताहरणमेवच ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणोक्तंवचःश्रुत्वासुग्रीवोराममब्रवीत् ॥ अहं करिष्येराजेंद्रसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ ३५ ॥ साहाय्यमपितेरामकरिष्येशत्रुघातिनः ॥ शृणुराममयादृष्टंकिंचित्तेकथयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ एकदामंत्रिभिःसार्धंस्थितोऽहंगिरिमूर्धनि ॥ विहायसानीयमानांकेनचित्प्रमदोत्तमाम् ॥३७॥ क्रोशंतीरामरामेतिदृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि ॥ आमुच्याभरणान्याशुस्वोत्तरीयेणभामिनी ॥ ३८ ॥ निरीक्ष्याधःपरित्यज्यक्रोशंतीतेनरक्षसा ॥ नीताहंभूषणान्याशुगुहायामाक्षिपं प्रभो ॥ ३९ ॥ इदानीमपिपश्यत्वंजानीहितववानवा ॥ इत्युक्त्वाऽऽनीयरामायदर्शयामासवानरः ॥ ४० ॥

मैं सीताकी खोज करूंगा ॥ ३५ ॥ हे राम! शत्रुवध करनेके कार्यमें मैं तुम्हारी सहायता करूंगा; हेश्रीरामचंद्र! मैंने जो कुछ देखा है वह कहताहूं आप सुनिये ॥ ३६ ॥ एकवार मंत्रियोंकेसाथ पर्वतके शिखर पर बैठे हुए हमने देखा कि, आकाशमार्गसे कोई राक्षस एक उत्तमस्त्रीको लिये जाता है ॥ ३७ ॥वह स्त्री बराबर राम २ पुकार रहीथी; हमको पर्वतपर देख देख अपने अंगके गहने उतार अपने अंगके वस्त्रमें बाँध ॥ ३८ ॥ फिर हमारी ओरको देख नीचे फेंक दिये; तबतक वह स्त्री रो रहीथी, फिर वह राक्षस उसको लेगया। हे प्रभो! मैंने वह गहने शीघ्र लेकर गुफामें रख छोड़े हैं ॥ ३९ ॥ उनको देखकर पहँचानियेगा कि, वह आपके हैं या नहीं।" ऐसे कहकर सुग्रीवजीने वह गहने श्रीरामचंद्र

जीको दिखाये ॥ ४० ॥ श्रीरामचंद्रजीने उनको खोलकर देखा,—तो उनको पहिचान लिया; श्रीरामचंद्रजीने वह समस्त भूषण अपनी छातीसे लगा लिये और वारंवार ' हा सीते ! हा सीते !' कहकर अज्ञान प्राणीके समान रोने लगे ॥ ४१ ॥ तब उनके छोटे भ्राता लक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीको शांत करनेके लिये कहा, " हे राम ! अब शीघ्रही जानकीजीसे आपकी भेंट होगी; वानरराजकी सहायतासे :आप युद्धमें रावणका वध करेंगे उस सुन्दरीको ले आवेंगे'. ॥ ४२ ॥ सुग्रीवजीनेभी यह कहा; " हे राम ! मैं तुमसे प्रतिज्ञा करके, कहताहूं कि, युद्धमें रावणको मारकर आपको जानकी लादूंगा " ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त हनुमान्‌जीने इन दोनोंके बीचमें अग्नि जलादी और दोनोंसे मित्रता करनेको कहा, तो पापरहित

विमुच्यरामस्तद्दृष्ट्वाहासीतेतिमुहुर्मुहुः ॥ हृदिनिक्षिप्यतत्सर्वंरुरोदप्राकृतोयथा ॥ ४१ ॥ आश्वास्यराघवंभ्रातालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ अचिरेणैवतेरामप्राप्यतेजानकीशुभा ॥ वानरेंद्रसहायेनहत्वारावणमाहवे ॥ ४२ ॥ सुग्रीवोऽप्याहहेरामप्रतिज्ञांकरवाणिते ॥ समरेरावणं हत्वातवदास्यामिजानकीम् ॥ ४३ ॥ ततोहनूमान्प्रज्वाल्यतयोरग्निंसमीपतः ॥ तावुभौरामसुग्रीवावग्नौसाक्षिणितिष्ठति ॥ ४४ ॥ बाहू प्रसार्यचालिंग्यपरस्परमकल्मषौ ॥ समीपेरघुनाथस्यसुग्रीवःसमुपाविशत् ॥ ४५ ॥ स्वोदंतंकथयामासप्रणयाद्रघुनायके ॥ सखेशृणुम मोदंतंवालिनायत्कृतंपुरा ॥ ४६ ॥ मयपुत्रोऽथमायावीनाम्नापरमदुर्मदः ॥ किष्किंधांसमुपागत्यवालिनंसमुपाह्वयत् ॥ ४७ ॥ सिंहनादे नमहतावालीतुतदमर्षणः ॥ निर्ययौक्रोधताम्राक्षोजघानदृढमुष्टिना ॥ ४८ ॥ दुद्रावतेनसंविग्नोजगामस्वगुहांप्रति ॥ अनुदुद्रावतंवालीमा याविनमहंतथा ॥ ततःप्रविष्टमालोक्यगुहांमायाविनंरुषा ॥ ४९ ॥

सुग्रीव और रामचंद्रजी इन दोनोंने अग्निको साक्षी ठहराय ॥ ४४ ॥ कपट रहितहो बाहँ फैलाय परस्पर भेंट की और " मित्र " कहा । सुग्रीव, रामचंद्रजीके समीप बैठे ॥ ४५ ॥ इसके उपरान्द सुग्रीव प्रेमभावसे श्रीरामचंद्रजीको अपना समस्त वृत्तान्त सुनानेलगे; सुग्रीवजी बोले,— " मित्र ! हमारा वृत्तान्त सुनो; जो जो वालीने किया है, वह २ मैं सब तुमको सुनाताहूं ॥ ४६ ॥ मय असुरका पुत्र अत्यन्त मतवाला मायावी नामक एक दैत्य था, वह एक समय किष्किन्धा नगरीमें आय वालिको पुकारनेलगा ॥ ४७ ॥ वह दैत्य आतेही बड़ा भारी सिंहनाद करनेलगा वाली उसके गर्जनेको न सहकर क्रोधसे लाल लाल नेत्रकर निकला और बाहर आकर उस दैत्यको बड़े जोरसे एक घूँसा मारा ॥ ४८ ॥ वह मायावी राक्षस

वालीके घूँसेसे पीडितहो अपने गृहकी ओर भागने लगा। वाली आर मैं दोनों जने उस मायावी राक्षसके पीछे लगे; फिर वह अपनी गुहा में घुस गया, उसको गुहामें घुसताहुआ देखकर ॥ ४९ ॥ वालीने मुझसे कहा;–"तू बाहर खड़ा रह, मैं गुफामें जाताहूं" यह कहकर वाली गुफा में प्रवेश कर गया, एक महीना वहाँपर वालीको बीतगया पर वह बाहर नहीं आया ॥ ५० ॥ महीनाभर बीतनेके पीछे उस गुफाके मुखसे बहुतसा रुधिर बाहर निकला उसको देखतेही वाली मरगया ऐसा समझकर मुझे बड़ा दुःख हुआ; मेरे सब अंग तप्त होगये ॥ ५१ ॥ इसकारण मैं गुफाके द्वारको एक बडी भारी शिलासे बंदकर आया; और सब लोगोंसे कहने लगा कि "वाली मरगया उसको गुफाके बीच राक्षसने मार डाला" ॥ ५२ ॥ यह सुनकर सबको दुःख हुआ; फिर मेरी इच्छा न रहनेपरभी समस्त वानरोंके प्रधान मंडलने मेरा राज्याभिषेक

वालीमामाहतिष्ठत्वंवहिर्गच्छाम्यहंगुहाम् ॥ इत्युक्त्वाविश्यसगुहांमासमेकंननिर्ययौ ॥ ५० ॥ मासादूर्ध्वंगुहाद्वारान्निर्गतंरुधिरंवहु ॥
तद्दृष्ट्वापरितप्तांगोमृतोवालीतिदुःखितः ॥ ५१ ॥ गुहाद्वारिशिलामेकांनिधायगृहमागतः ॥ ततोऽब्रुवंमृतोवालीगुहायांरक्षसाहतः ॥ ५२ ॥
तच्छ्रुत्वादुःखिताःसर्वेमामनिच्छंतमप्युत ॥ राज्येऽभिषेचनंचक्रुःसर्वेवानरमंत्रिणः ॥ ५३ ॥ शिष्टंतदामयाराज्यंकिंचित्कालमरिंदम ॥
ततःसमागतोवालीमामाहपरुषंरुषा ॥ ५४ ॥ वहुधाभर्त्सयित्वामांनिजघानचमुष्टिभिः ॥ ततोनिर्गत्यनगराद्धावंपरयाभिया ॥ ५५ ॥
लोकान्सर्वान्परिक्रम्यऋष्यमूकंसमाश्रितः ॥ ऋषेःशापभयात्सोऽपिनायातीमंगिरिंप्रभो ॥५६॥ तदादिमम भार्यांसस्वयंभुंक्तेविमूढधीः॥
अतोदुःखेनसंतप्तोहृतदारोहृताश्रयः ॥ ५७ ॥

करा दिया ॥ ५३ ॥ हे शत्रुओंके नाश करनेवाले राम ! तब कुछ समय तक मैंने राज्यका पालन किया । फिर कितनेक दिनोंके पीछे वाली आया उसने क्रोधित होकर मेरे ऊपर कडुवे वचनोंकी वर्षा कर दी ॥ ५४ ॥ और अनेक प्रकारसे धिक्कार देकर फिर घूँसोंसे खूब मारा नगरसे बाहर निकाल दियाथा मैं अत्यन्त भयसे घूम घामकर॥५५॥सब लोकोंमें फिरा, परन्तु निर्भय स्थान नहीं पाया; इस भयके मनमें आतेही कि, जहाँ रहूंगा तहां वाली आसकता है पीछेसे मैं इस ऋष्यमूक पर्वतपर आकर रहाहूं;हे प्रभो रामचंद्र ! ऋषिके शापभयसे वह (वाली) इस पर्वतपर नहीं आता॥५६॥ तबसे वह मेरी स्त्रीको अपने आप भोग करता है उसकी बुद्धि पूरी २ भ्रष्ट होगई इन कारणों करके मैं नित्य दुःखसे संतापित हो रहाहूं, मुझे

कुछ नहीं सूझता; क्या करूं ? दुष्टने मेरी स्त्री लेली व आश्रयभी छीन लिया ॥ ५७ ॥ हे राम ! ऐसे कष्टसे मैं यहांपर रहताहूं; आज तुम्हारे चरणोंका समागम पानेसे मैं परमसुखी हुआ।" कमलनयन श्रीरामचंद्रजीको मित्रका दुःख बहुत बुरा लगा; उनके सब अङ्ग तप्त होगये ॥ ५८ ॥ उन्होंने तत्कालही सुग्रीवके आगे प्रतिज्ञा करी कि, मैं तुम्हारी स्त्रीके हरनेवाले शत्रुका शीघ्र नाशकरूंगा ॥ ५९ ॥ तब सुग्रीवने कहा; हे राजाधिराजरामचंद्र ! वाली साधारण बलवान् नहीं वाली सब बलवानोंसे अधिक बलवान् है; अधिक क्या कहूं देवतालोगोंकोभी इसका जीतना कठिन है, फिर आप इसको कैसे मारैंगे ॥ ६० ॥ हे बलवानोंमें श्रेष्ठ ! सुनिये; मैं आपसे उसके बलका वृत्तान्त थोड़ासा कहताहूं दुन्दुभी नामवाला एक

वसाम्यद्यभवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् ॥ मित्रदुःखेनसंतप्तोरामोराजीवलोचनः ॥ ५८ ॥ हनिष्यामितवद्वेष्यंशीघ्रंभार्यापहारिणम् ॥ इतिप्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्यपुरस्तदा ॥ ५९ ॥ सुग्रीवोऽप्याहराजेंद्रवालीबलवतांबली ॥ कथंहनिष्यतिभवान्देवैरपिदुरासदम् ॥ ६० ॥ शृणुतेकथयिष्यामितद्बलंबलिनांवर ॥ कदाचिद्दुंदुभिर्नाममहाकायोमहाबलः ॥ ६१ ॥ किष्किंधामगमद्रात्रमहामहिषरूपधृक् ॥ युद्धायवालिनंरात्रौसमाह्वयतभीषणः ॥ ६२ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमानोऽसौवालीपरमकोपनः ॥ महिषंशृंगयोर्धृत्वापातयामासभूतले ॥ ६३ ॥ पादेनैकेनतत्कायमाक्रम्यास्याशिरोमहत् ॥ हस्ताभ्यांभ्रामयंश्छित्वातोलयित्वाऽक्षिपद्भुवि ॥ ६४ ॥ पपाततच्छिरोराममातंगाश्रमसन्निधौ ॥ योजनात्पतितंतस्मान्मुनेराश्रममंडले ॥ ६५ ॥

महाशक्तिमान् दैत्य होगया है उसका शरीर बड़ा प्रचंडथा; एकसमय वह ॥ ६१ ॥ बडेभारी भैंसेका रूप धारण करनेवाला भयंकर दैत्य किष्किंधा नगरीमें आया और वालिको युद्धके लिये पुकारने लगा। हे राम ! यह रातकी वेलाथी ॥ ६२ ॥ परमकोपी वाली उसकी हाँक सुन अधीर हो गया; और बाहरजाय उस भैंसेके सींग पकड़ पृथ्वीपर पटकदिया ॥ ६३ ॥ एकपाँव उसके शरीरपर धर; हाथसे उसके प्रचण्ड मस्तकको मरोरकर तोड़डाला और बोझका अनुमान करनेके लिये उसको तोलकर पृथ्वीपर फेंकदिया ॥ ६४ ॥ वह शिर मतंगऋषिके आश्रममें जाय पड़ा हे राम ! यद्यपि वालिने उसको सहजसेही फेंकाथा तोभी वह (मस्तक) पृथ्वीपरसे एक योजन उछलकर मतंगऋषिके आश्रममें जाय गिरा ॥ ६५ ॥

ऊंचा उठनेके कारण उस मस्तकसे बहुत रक्त बरसा उस रक्तको देखकर मतंगमुनिको अत्यन्त क्रोध हुआ; व उन्होंने वालीको शापदिया कि, " आजसे लेकर जो तू इस पर्वतपर आवे ॥ ६६ ॥ तो तेरा मस्तक टूट जाय और तू मरजाय ! यह शाप अन्यथा होनेवाला नहीं " यह शाप पानेके कारण वह (वाली) इस ऋष्यमूक पर्वतपर कभी नहीं आता ॥ ६७ ॥ यह जानकर मैंभी यहांपर भयहीन होकर रहताहूं । हे राम ! देखिये उस दुन्दुभिका यह पर्वतके समान शिर पड़ाहुआ है ॥ ६८ ॥ जों इस शिरके फेंकदेनेकी आपमें सामर्थ्य होवे, तो आप वालिका वध कर सकेंगे । " ऐसे कहकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीको वालिका फेंका पर्वतके समान शिर दिखा दिया ॥ ६९ ॥ रामने उसको देख मंद मुसकाय पाँवके अंगूठे

रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्दृष्ट्वातांक्रोधमूर्छितः ॥ मातंगोवालिनंप्राहयद्या गंतासिमेगिरिम् ॥६६॥ इतः परंभग्नशिरामरिष्यसिनसंशयः ॥ एवं शप्तस्तदारभ्यऋष्यमूकंनयात्यसौ ॥ ६७ ॥ एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्र वसामिभयवर्जितः ॥ रामपश्याशिरस्तस्यदुंदुभेःपर्वतोपमम् ॥६८॥ तत्क्षेपणेयदाशक्तःशक्तस्त्वंवालिनोवधे ॥ इत्युक्त्वादर्शयामासशिरस्तद्गिरिसन्निभम् ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वारामः स्मितंकृत्वापादांगुष्ठेनचाक्षिपत् ॥ दशयोजनपर्यंतंतदद्भुतमिवाभवत् ॥७०॥ साधुसाध्वितिसंप्राहसुग्रीवोमंत्रिभिः सह ॥ पुनरप्याहसुग्रीवोरामंभक्तपरायणम्॥७१॥ एतेतालामहासाराःसप्तपश्यरघूत्तम ॥ एकैकंचालयित्वासौनिष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ॥ ७२ ॥ यदित्वमेकबाणेनविद्ध्वाछिद्रंकरोषिचेत् ॥ हतस्त्वयातदावालीविश्वासोमेप्रजायते ॥ तथेतिधनुरादायसायकंतत्रसंदधे ॥ ७३ ॥ विभेदचतदारामःसप्ततालान्महाबलः ॥ तालान्सप्तविनिर्भिद्यगिरिंभूमिंचसायकः ॥ ७४ ॥

से सहजही दशयोजन (४० कोश) की दूरीपर फेंकदिया । यह एकबड़ा अद्भुत चरित्र हुआ" ॥ ७० ॥ इस आश्चर्यके चारित्रको देखकर मंत्रियों के साथ सुग्रीवजी " बहुत अच्छा " कहनेलगे । इसके उपरांत फिर सुग्रीवजी भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७१ ॥ " हे रघुवीर ! देखिये; यह बड़ेभारी कठोर सात ताल वृक्ष हैं, उनको एक २ कर हिलाकर वाली पतझाड़ करदेताहै (अर्थात् हिलाकर इनके सब पत्ते गिरादेता है) ॥ ७२ ॥ जो आप एकबाणसे इनको भेदकर छिद्रकरदेंगे तो मुझको आपके हाथसे वालीके मरनेका विश्वास होजायगा । " श्रीरामचंद्रजीने " अच्छा " कहकर धनुष लिया और उसपर बाण चढ़ाया ॥ ७३ ॥ और तत्काल उन महासामर्थ्यवान् रामचंद्रजीने उन सात तालोंको ताककर बाण

छोड़ा; वह बाण सातताड़ोंको भेद पर्वत और भूमिपर लगकर ॥ ७४ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीके तरकशमें पहलेके समान आयगया। तब सुग्रीवको बहुत विस्मय प्राप्तहुआ; वह अत्यन्त आनंदयुक्त होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७५ ॥ "हे देव! आप त्रिलोकीनाथ साक्षात् परमेश्वर हैं; इसमें कोई संशय नहीं मैंने पहले जन्ममें अप्रमाण पुण्य कियाहै; इसकारण आज मुझसे आपका समागम हुआ ॥ ७६ ॥ हे राम! बड़े २ साधु संसार से छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवा करते हैं; आप केवल मोक्षके सचिवहैं (जैसे राजाकी भेंट सचिव (मंत्री) के द्वारा होतीहै वैसेही मोक्षकी प्राप्ति आपके आसरेसे होतीहै) ऐसे महासमर्थ पुण्यपुरुष (तुम्हारे) के दर्शन होनेपर मैं उनसे (तुमसे) क्षुद्र संसारका सुख कैसे माँगूं? ॥ ७७ ॥ स्त्री, पुत्र, द्रव्य राज्य, यह सब आपने मायासे उत्पन्न कियाहै; इसकारण हे देवाधिदेव! मैं आपसे और कुछ नहीं माँगता, केवल नित्य मुझपर कृपा

पुनरागत्यरामस्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः ॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवोराममाहातिविस्मितः ॥ ७५ ॥ देवत्वंजगतांनाथःपरमात्मानसंशयः ॥ मत्पूर्वकृतपुण्यौघैःसंगतोऽद्यमयासह ॥७६॥ त्वांभजंतिमहात्मानः संसारविनिवृत्तये ॥ त्वांप्राप्यमोक्षसचिवंप्रार्थयेऽहंकथंभवम् ॥७७॥ दाराःपुत्राधनंराज्यंसर्वंत्वन्माययाकृतम् ॥ अतोऽहंदेवदेवेशनाकांक्षेऽन्यत्प्रसीदमे ॥ ७८ ॥ आनंदानुभवंत्वाद्यप्राप्तोऽहंभाग्यगौरवात् ॥ मृदर्थंयतमानेननिधानमिवसत्पते ॥ ७९ ॥ अनाद्यविद्यासंसिद्धंबंधनंछिन्नमद्यनः ॥ यज्ञदानतपःकर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥ ८० ॥ नजीर्यतेपुनर्दार्ढ्यंभजतेसंसृतिःप्रभो ॥ त्वत्पाददर्शनात्सद्योनाशमेतिनसंशयः ॥ ८१ ॥ क्षणार्धमपियच्चित्तंत्वयितिष्ठत्यचंचलम् ॥ तस्याज्ञानमनर्थानांमूलंनश्यतितत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

दृष्टि रखिये ॥ ७८ ॥ हे साधुओंका पालन करनेवाले! आनंदस्वरूपका अनुभव करानेवाला तुम्हारा यह रूपहै, कोई मनुष्य मट्टीके लिये भूमि खोदताहो और उसको द्रव्य मिलजाय; वैसेही बड़े भाग्यसे आज मुझे आपके दर्शन मिलेहैं ॥ ७९ ॥ अनादि अविद्या करके उत्पन्न हुआ हमारा विषयवासनारूप संसारी बंधन आज टूटगया! हे प्रभो! यज्ञ, दान, तपस्या, इष्टापूर्तादि कितनेही कर्म किये तोभी यह संसारबंधन क्षीण नहीं होता ॥८०॥ वरन् बार २ अधिक दृढहोता जाताहै; आपके चरणोंका दर्शन होनेसेही इसका नाश होजाताहै; इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ ८१ ॥ अज्ञान सब अनर्थोंका मूलहै। जिस मनुष्यका अंतःकरण एक आधे क्षणकोभी आपमें स्थिर होताहै; उसका अज्ञान तत्काल नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ८२ ॥

इस कारण हेराम!मेरा मन निरंतर आपहीके शरीरमें लगै, यह कहीं और दूसरी जगह न जाय ॥८३॥ जिसकी बाणी "राम,राम" इसमधुरनामका एक क्षण भरभी जप करतीहै; वह ब्रह्महत्या या मद्य पीनेवाला (महापातकी) भी हो, तोभी वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ८४ ॥ हे राम ! मुझे शत्रुजीतनेकी इच्छा नहीं है; वैसेही स्त्रीसुख इत्यादिकोभी नहीं चाहता, संसारबंधन को छुड़ानेवाली केवल आपकी भक्ति नित्य मुझको चाहिये, बस यही मेरे मनकी इच्छाहै ॥ ८५ ॥ हे रघुवीर ! मैंभी आपका अंशरूपीहूं, तुम्हारी मायाने मेरे मार्गमें यह संसारकी फाँसी ला डाली है; इसकारण आप मुझे अपने चरणोंमें भक्ति देकर इस संसाररूपी भयंकर मार्गसे पार कीजिये ॥ ८६ ॥ पहले जबतक मेरा अन्तःकरण मायासे ढक रहाथा

तत्तिष्ठतुमनोरामत्वयिनान्यत्रमेसदा ॥ ८३ ॥ रामरामेतियद्वाणी मधुरंगायतिक्षणम् ॥ सब्रह्महासुरापोवामुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ८४ ॥ नकांक्षेऽरिजयंरामनचदारसुखादिकम् ॥ भक्तिमेवसदाकाँक्षेत्वयिबंधविमोचनीम् ॥ ८५ ॥ त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहंरघूत्तम ॥ स्वपादभक्तिमादिश्यत्राहिमांभवसंकटात् ॥८६॥ पूर्वंमित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः ॥ आसन्मेद्यभवत्पाददर्शनादेवराघव ॥८७॥ सर्वंब्रह्मैवमेभातिकमित्रंकचमेरिपुः ॥ यावत्त्वन्माययाबद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥ ८८ ॥ सायावदस्तिनानात्वंतावद्भवतिनान्यथा ॥ यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतंभयम् ॥ ८९ ॥ अतोऽविद्यामुपास्तेयःसोंऽधेतमसिमज्जति ॥ मायामूलमिदंसर्वंपुत्रदारादिबंधनम् ॥ अतोत्सारयमायांत्वंदासींतवरघूत्तम ॥ ९० ॥

तब तक मुझे यह अपना मित्र है, यह शत्रु है यह उदासीन है, ऐसा जान पड़ताथा; परन्तु हे राम ! अब तुम्हारे चरणोंका दर्शन होनेसे ॥ ८७ ॥ मुझको सर्वही ब्रह्ममय दृष्टि आने लगा । कौन मेरा मित्र है? कौन मेरा शत्रु, है? जबतक प्राणी आपकी मायासे बँधा रहता है तब तक उसपर सत्त्वादि भिन्न भिन्न गुणोंका भेद चलता है ॥ ८८ ॥ जबतक यह भेद है, तब तक शत्रु मित्र, उदासीनका भेद रहता है, वह (गुणोंका भेद) जैसे हो गया, ऐसेही भेदबुद्धि गई; अज्ञानके मूलसे उत्पन्न हुई यह भेदबुद्धि जब तक है तबतक मृत्युका भय है ॥ ८९ ॥ इस कारणसे जो मनुष्य अविद्याकी सेवा करता है वह पुरुष अँधियारे नरकमें डूबता है । इस कारण हे राम ! स्त्री पुत्रादि सर्व बंधनकी मूल यह माया है । इससे हे रघुकुलमें

उत्तम राम ! अपनी दासीरूप मायासे मुझे बाहर निकालो ॥ ९० ॥ मेरे मनकी लय तुम्हारे चरणकमलोंमें लगे, वाणी सदा तुम्हारे नामकी संगतिवाली कथामें रहे, भक्तोंकी सेवा करनेमें अत्यन्त तत्पर रहे। मेरा अंग सदा तुम्हारे अंगके साथ संग पावे ॥ ९१ ॥ मेरे नेत्र आपकी मूर्तिं; आपके भक्त और गुरुका निरंतर दर्शन करें। मेरा कान निरंतर आपके अवतारचरित्रको सुने मेरे पाँव निरन्तर आपके मंदिरोंकी ओर गमन करें ॥ ९२ ॥ हे गरुड़ध्वज ! मेरा अंग तुम्हारे चरणोंकी धूरिसें मिले हुए तीर्थोंकी अपने मस्तकपर धारण करें; मस्तक तुम्हारे चरणोंमें नित्य प्रणाम करे, आपके चरणोंका माहात्म्य कैसे वर्णन किया जाय ? शंकर ब्रह्मादि बड़े २ देवता उन चरणों की सेवा करते हैं ॥ ९३ ॥

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासुवाणी ॥ त्वद्भक्तसेवानिरतौकरौमेत्वदंगसंगंलभतांमदंगम् ॥ ९१ ॥ त्वन्मूर्तिभक्तान्स्वगुरुंचचक्षुःपश्यत्वजस्रंसशृणोतुकर्णः ॥ त्वज्जन्मकर्माणिचपादयुग्मंव्रजत्वजस्रंतवमंदिराणि ॥ ९२ ॥ अंगानितेपादरजोविमिश्रतीर्थानिबिभ्रत्वहिशत्रुकेतो ॥ शिरस्त्वदीयंभवपद्मजाद्यैर्जुष्टंपदंरामनमत्वजस्रम् ॥ ९३ ॥ इतिश्री मदध्यात्मरामायणेकिष्किंधाकांडे उमामहेश्वरसंवादेसुग्रीवसंगमवर्णनंनामप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ इत्थंस्वात्मपरिष्वंगनिर्धूताशेषकल्मषम् ॥ रामः सुग्रीवमालोक्यसास्मितंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ मायांमोहकरींतस्मिन्वितन्वन्कार्यसिद्धये॥ सखेत्वदुक्तंयत्तन्मांसत्यमेवनसंशयः ॥ २ ॥ किंतुलोकावदिष्यंतिमामेवंरघुनंदनः ॥ कृतवान्किंकपींद्रायसत्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥ इति लोकापवादोमेभविष्यतिनसंशयः ॥ तस्मादाहूयभद्रंतेगत्वायुद्धायवालिनम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ वालिका मारा जाना ॥ श्रीमहादेवजी कहवे हैं;– हे पार्वति ! इस प्रकार अपने मिलनेसे जिसके सर्वपाप धोगए हैं, ऐसे सुग्रीवको देखकर रामजी उसके विषयमें मोह करनेवाली मायाका विस्तार करके कार्यकी सिद्धिके अर्थ हँसकर यह वचन बोले; श्रीरामचंद्रजी बोले कि " हे सखे ! तुमने जो मुझसे कहा वह निःसन्देह सत्य है ॥ १ ॥ २ ॥ परन्तु लोग मुझसे कहने लगेंगे कि, "रामचंद्रजीने अग्निको साक्षी ठहराय वानरराज सुग्रीवसे मित्रता की फिर उसका क्या फल हुआ ? उन्होंने सुग्रीवका कौनसा कार्य किया ?" ॥ ३ ॥ ऐसा लोकापवाद मेरे उत्पन्न होगा; इसमें कोई संदेह नहीं; इस

कारण तू वालिको युद्ध करनेके लिये बुला; तेरा कल्याण होवे ॥ ४ ॥ मैं एकही बाणसे उसका वध करके तुमको राज्याभिषिक्त करूंगा।" सुग्रीव "अच्छा" ऐसा क्यों नहीं होगा, कहकर किष्किन्धाके उपवनमें शीघ्रगया ॥ ५ ॥ व बड़ी भारी सिंहके समान नादकर वालिको पुकारने लगा भइयाका बोल कानमें पड़तेही वालिने क्रोधित होकर लाल २ नेत्र किया ॥ ६ ॥ तत्काळही वह घरसे बाहर निकलकर वहाँ आया, जहाँपर वानर सुग्रीवथे; वालिको सन्मुख आता हुआ देख सुग्रीवने उसकी छातीपर प्रहार किये ॥ ७ ॥ तब वालिकोभी इतना क्रोधं आया कि इस क्रोध के आवेशमें वह अपनी देहकोभी भूलगया; और उसने सुग्रीवपर दोनों मठियोंसे प्रहार किया । सुग्रीवनेभी वही क्रम रक्खा, इस प्रकार दोनों क्रोधित होकर परस्पर ॥ ८ ॥ युद्ध करने लगे । दोनोंका रूप इतना एकसा था कि रामचंद्रजी 'कौन सुग्रीव है और कौन वाली है' यह नहीं

वाणेनैकेनतंहत्वाराज्येत्वामभिषेचये ॥ तथेतिगत्वासुग्रीवःकिष्किंधोपवनंद्रुतम् ॥ ५ ॥ कृत्वाशब्दंमहानादंतमाह्वयतवालिनम् ॥
तच्छ्रुत्वाभ्रातृनिनदंरोषताम्रविलोचनः ॥ ६ ॥ निर्जगामगृहाच्छीघ्रंसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ तमापतंतंसुग्रीवःशीघ्रंवक्षस्यताडयत् ॥ ७ ॥
सुग्रीवमपिमुष्टिभ्यांजघानक्रोधमूर्च्छितः ॥ वालीतमपिसुग्रीवएवंक्रुद्धौपरस्परम् ॥ ८ ॥ अयुध्येतामेकरूपौदृष्ट्वारामोऽतिविस्मितः ॥
नमुमोचतदाबाणंसुग्रीववधशंकया ॥ ९ ॥ ततोदुद्रावसुग्रीवोवमन्रक्तंभयाकुलः ॥ वालीस्वभवनंयातःसुग्रीवोराममब्रवीत् ॥ १० ॥
किंमांघातयसेरामशत्रुणाभ्रातृरूपिणा ॥ यदिमद्धनने वांछात्वमेवजहिमांविभो ॥ ११ ॥

पहिंचान सके अचंभा करते रहे । चूकनेसे कदाचित् सुग्रीव माराजाय, इस प्रकारकी शंका करके बाण नहीं छोड़ा (यहाँपर कोई यह शंका करें कि अंतर्यामी राम नारायण किस कारणसे दोनोंको नहीं पहिचानतेथे ? यहाँपर उत्तर यह है, जानतेथे, परंतु मारा इस लिये नहीं कि प्रथम सर्गमें सुग्रीव "कौन शत्रु है, कौन मित्र है ? ऐसा कह चुकाहै इस कारण जबतक अपने मुँहसे शत्रु न कहे तबतक वालिका संहार करना उचित नहीं ॥ ९ ॥ फिर सुग्रीव भयभीत होता और रुधिर उगलता हुआ भाग आया; वाली अपने घर गया । तब सुग्रीवने श्रीराम चन्द्रजीसे कहा ॥ १० ॥ हे राम ! क्या भ्रातारूपी शत्रुसे मेरे मरवा देनेका आपने विचार किया है ? जो मेरा वध करानेकी इच्छा आपको हो

तो हे सामर्थ्यवान् ईश्वर ! आपही मुझको मार डालिये ॥ ११ ॥ हे शरणागतवत्सल ! हे सत्यवादी राम ! "मैं वालीको मारूंगा" इस प्रकार मुझे विश्वास कराय अब किस कारणसे मुझे त्यागन करते हो ॥ १२ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे; उन्होंने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहा; हे सखे ! तुम मत डरो, तुम दोनोंका एकसा रूप देखकर ॥ १३ ॥ मुझे शंका उत्पन्न हुई कि, कदाचित् चूक जानेपर मेरे हाथसे मित्रहीका घात होजाय, यह सोचकर मैंने बाण नहीं छोड़ा; अब भ्रम दूर करनेके अर्थ मैं तुमपर कुछ चिह्न करताहूं ॥ १४ ॥ फिर जाकर वालिको पुकारो वस शत्रुको मराही देखोगे, हे भइया ! मैं राम तेरी सोगन्द करके कहताहूं कि क्षणमात्रमें उस शत्रुका वध करूंगा

एवंमेप्रत्ययंकृत्वासत्यवादिन्रघूत्तम ॥ उपेक्षसेकिमर्थंमांशरणागतवत्सल ॥ १२ ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंरामःसाश्रुविलोचनः ॥ आलिंग्य मास्मभैषीस्त्वंदृष्ट्वावामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥ मित्रघातित्वमाशंक्यमुक्तवान्सायकंनहि ॥ इदानीमेवतेचिह्नंकरिष्येभ्रमशांतये ॥ १४ ॥ गत्वाह्वयपुनःशत्रुंहतंद्रक्ष्यासिवालिनम् ॥ रामोऽहंत्वाशपेभ्रातर्हनिष्यामिरिपुंक्षणात् ॥१५॥ इत्याश्वास्यससुग्रीवंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ सुग्रीवस्यगलेपुष्पमालामासुच्यपुष्पिताम् ॥ १६ ॥ प्रेषयस्वमहाभागसुग्रीवंवालिनंप्रति ॥ लक्ष्मणस्तुतदावद्ध्वागच्छगच्छेतिसादरम् ॥ ॥१७॥प्रेषयामाससुग्रीवंसोऽपिगत्वातथाऽकरोत् ॥पुनरत्यद्भुतंशब्दंकृत्वावालिनमाह्वयत् ॥१८॥ तच्छ्रुत्वाविस्मितोवालीक्रोधेनमहतावृतः ॥ वद्ध्वापरिकरंसम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥१९॥ गच्छंतंवालिनंताराग्रहीत्वानिषिषेधतम् ॥नगंतव्यंत्वयेदानींशंकामेऽतीवजायते॥२०॥

॥१५॥इस प्रकार सुग्रीवको सावधान कर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणसे बोले, "हे लक्ष्मण! सुग्रीवके गलेमें फूले हुए उत्तम फूलोंकी एक माला डाल दो ॥१६॥ और हे महाभाग ! इनको वालिके पास भेज दो ।" लक्ष्मणजीने वैसेही माला बाँधकर सुग्रीवजीसे " जाइये " कहा और बड़े गौरवसे ॥ १७ ॥ सुग्रीवको पठाय दिया । सुग्रीवने वहाँ जाकर श्रीरामचंद्रजीके कहनेके अनुसार किया, फिर विलक्षण गर्जना करके वालिको हांक मारी ॥ १८ ॥ सुग्रीवके शब्दको सुनकर वालिको आश्चर्य हुआ क्रोधभी आगया; उसने तत्काल फेंट बाँधकार युद्धके लिये बाहर निकलनेकी तैयारी की ॥ १९ ॥ जाते हुए वालिको ताराने पकड़ लिया और रोकर बोली;—"प्यारे इस समय तुमको कहींभी नहीं जाना चाहिये क्योंकि मुझे अत्यन्त शंका उत्पन्न हुई है ॥ २० ॥

अभी तो तुमने उसको हराया है; और अभी वह पलट कर आगया इससे उसको कोई बलवान् सहायक मिलगयाहै " ॥ २१ ॥ वालीने तारासे कहा;–हे सुन्दरि ! इस सहायकके विषयमें तू कछ शंका न कर हाथछोड़कर घरमें जा मैं शत्रुके पास जाताहूं ॥ २२ ॥ मैं उसका वधकरके अभी आताहूं; उसको कौन सहायक मिलसक्ताहै ? और जो कदाचित् उसको सहायक मिलभीजावे तो एक क्षणभरमें दोनोंको मारकर मैं ॥ २३ ॥ आताहूं। इस कारण तू खेद न कर। सुन्दरि ! बाहरसे शत्रु युद्ध करनेके लिये हाँक माररहाहै; ऐसे अवसरपर मैं शूर होकर घरमें कैसे बैठरहूं ? मैं उसको मारकर यह आया; ऐसा तू समझले ॥ २४ ॥ तारा बोली, हे राजाधिराज ! मैंने एक और अनोंखी बात सुनीहै; उसको सुन जो आपको उचितलगे सो

इदानीमेवतेभग्नःपुनरायातिसत्वरः ॥ सहायोबलवांस्तस्यकश्चिन्नूनंसमागतः ॥ २१ ॥ वालीतामाहहेसुभ्रुशंकातेव्येतुतद्गता ॥ प्रियेकरंपरित्यज्यगच्छगच्छामितंरिपुम् ॥ २२ ॥ हत्वाशीघ्रंसमायास्येसहायस्तस्यकोभवेत् ॥ सहायीयदिसुग्रीवस्ततोहत्वोभ यंक्षणात् ॥२३॥ आयास्येमाशुचःशूरःकथंतिष्ठेद्गृहेरिपुम् ॥ ज्ञात्वाप्याह्वयमानंहिहत्वायास्यामिसुंदरि ॥२४॥ तारोवाच ॥ मत्तोऽन्यच्छृ णुराजेंद्रश्रुत्वाकुरुयथोचितम् ॥ आहमामंगदःपुत्रोमृगयायांश्रुतंवचः ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्रामोदाशरथिःकिल ॥ लक्ष्मणेन सहभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ॥ २६ ॥ आगतोदंडकारण्यंतत्रसीताहृताकिल ॥ रावणेनसहभ्रात्रामार्गमाणोऽथजानकीम् ॥ २७ ॥ आगतोऋष्यमूकाद्रिंसुग्रीवेणसमागतः ॥ चकारतेनसुग्रीवःसख्यंचानलसाक्षिकम् ॥ २८ ॥ प्रतिज्ञांकृतवान्रामःसुग्रीवायसलक्ष्मणः ॥ वालिनंसमरेहत्वाराजानंत्वांकरोम्यहम् ॥ २९ ॥

करियो, आपका पुत्र अङ्गद मृगयाके लिये गयाथा; उसने वहांपर कुछ सुना और वहीं मुझसे कहा, वह ऐसेहैं कि ॥ २५ ॥ " अयोध्यापति राजा दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताको साथले ॥ २६ ॥ दण्डकारण्यमें आये; वहाँपर सीताको रावणने चुरालि या, तब भ्राताके साथ वह राम सीताको खोजते खोजते ॥ २७ ॥ ऋष्यमूक पर्वतपर जाय सुग्रीवसे भेंट करतेहुए । सुग्रीवने अग्निको साक्षी ठहराय उनके साथ मित्रताकी ॥२८॥ लक्ष्मणके साथ श्रीरामचंद्रजीने प्रतिज्ञा करके कहा कि "वालीको युद्धमें मारकर मैं तुझे राजा बनाऊंगा" ॥ २९ ॥

ऐसा निश्चय करके वे आए हैं; इसमें कोई संशय नहीं । नहीं तो सुग्रीव तुम्हारे पाससे अभी हारकर गयाहै; वह तुरतही लौटकर आवे ॥ ३० ॥ इस कारण आप सर्वथा वैर छोड़कर सुग्रीवको लेआओ; व यौवराज्यपर अभिषेक करके आपभी श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें जाओ ॥ ३१ ॥ "हे वानरनाथ ! मेरे ऊपर, अंगद बालकके ऊपर, राज्यके ऊपर और कुलके ऊपर कुछतो निहारो ।" यह कहकर तारा वालिके पाँव पड़ी उसके मुखपर आँसुओंकी धार चलने लगी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार वालिके चरणोंमें प्रणामकर दोनोंहाथों से वालिके पाँव पकड़ भयसे महाविह्वलहुई तारा रोनेलगी; तब उसको हृदयसे लगाय वाली स्नेहसे यह वचन कहने लगा ॥ ३३ ॥ "हे प्यारी ! तू स्त्रीस्वभावसे भय पावेहै. परन्तु मुझे भय

इतिनिश्चित्यतौयातौनिश्चितंशृणुमद्वचः॥इदानीमेवतेभग्नःकथंपुनरुपागतः ॥३०॥अतस्त्वंसर्वथावैरंत्यक्त्वासुग्रीवमानय ॥ यौवराज्येऽभिषिंचाशुरामंत्वंशरणंव्रज ॥३१॥ पाहिमामंगदंराज्यंकुलंचहरिपुंगव ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखीतारापादयोःप्रणिपत्यतम् ॥ ३२ ॥ हस्ताभ्यांचरणौधृत्वारुरोदभयविह्वला ॥ तामालिंग्यतदावालीसस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ स्त्रीस्वभावाद्बिभेषित्वंप्रियेनास्तिभयंमम ॥ रामोयदिसमायातोलक्ष्मणेनसमंप्रभुः ॥ ३४ ॥ तदारामेणमेस्नेहोभविष्यतिनसंशयः ॥ रामोनारायणःसाक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥ ३५ ॥ भूभारहरणार्थायश्रुतंपूर्वंमयानघे ॥ स्वपक्षःपरपक्षोवानास्तितस्यपरात्मनः ॥३६॥ आनेष्यामिगृहंसाध्विनत्वातच्चरणांबुजम् ॥ भजतोऽनुभजत्येषभक्तिगम्यःसुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ यदिस्वयंसमायातिसुग्रीवोहन्मितंक्षणात् ॥ यदुक्तंयौवराज्यायसुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

नहीं है; जो सामर्थ्यवान् श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणके साथ आयेहैं ॥ ३४ ॥ तो उन रामके साथ मेरा स्नेह होजायगा; इसमें कोई संशय नहीं; सर्वसृष्टिके नियामक साक्षात् नारायणजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये रामरूपसे अवतार लियाहै; ॥ ३५ ॥ ऐसा मैंने पहलेसे सुनरक्खाहै । हे सुंदरि ! तेरा अन्तःकरण निर्मल व कोमलहै उस परमात्माको "यह अपनी ओरका है, व यह शत्रुकी ओरका है" ऐसा भेद बिल्कुल नहीं लगता; क्योंकि, वे समदर्शी हैं ॥ ३६ ॥ हे पतिव्रते ! मैं उनके चरणकमलोंका वंदनकरके उनको घर लिवाए लाताहूं वह देवाधिदेव भक्तिके योगसे वशहोते हैं, वह भजन करनेवालेकी प्रति सेवा करते हैं ॥ ३७ ॥ और जो कभी सुग्रीव विना सहायके आया होगा; तो मैं उसको एक क्षणमें मारडालूंगा । तू सुग्रीव

को राज्याभिषेक करदो ऐसा कहती है ॥ ३८ ॥ परन्तु हे प्यारी ! वह तो शत्रुहोकर मुझे युद्धकरनेके लिये बुलारहाहै फिर मैं इसप्रकार (उसका अभिषेक) कैसे करूं; फिर कैसे मुझमें कमीपन नहीं आवेगा ? हे शुभलक्षणे ! तूही विचारकर, मुझको शूर समझकर जो सब लोक मान देते हैं ॥ ३९ ॥ उससे वाली "हे सुग्रीव ! मैं तुम्हें यौवराज्य देताहूं, युद्धका प्रसंग मतलावे," ऐसे मित्रके समान वचन कैसे कहेजायँ ? हे सुन्दरि ! इसकारण शोक करना छोड़ सावधान होकर घरमें बैठ ॥ ४० ॥ इसप्रकार शोककरती हुई और जिसकी आँखमें आँसू आगयेहैं ऐसी ताराको समझाय बुझाय युद्धके अर्थ तैयार हुआ वाली सुग्रीवका वधकरनेके लिये गया ॥ ४१ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी पहराई हुई फूलोंकी मालासे शोभायमान भयंकर पराक्रमकारी सुग्रीवने वालिको आताहुआ देख पतंगके समान उछलकर ॥ ४२ ॥ वालीके घूंसा मारा वालीनेभी इसप्रकारसे सुग्रीवके ऊपर प्रहार

कथमाहूयमानोऽहंयुद्धायारिपुणाप्रिये ॥ शूरोऽहंसर्वलोकानांसंमतःशुभलक्षणे॥३९॥भीतभीतामिदंवाक्यंकथंवालीवदेत्प्रिये ॥ तस्माच्छोकंपरित्यज्यतिष्ठसुंदरिवेश्मनि ॥ ४० ॥ एवमाश्वास्यतारांतांशोचंतीमश्रुलोचनाम् ॥ गतोवालीसमुद्युक्तःसुग्रीवस्यवधायसः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वावालिनमायांतंसुग्रीवोभीमविक्रमः ॥ उत्पपातगलेबद्धपुष्पमालःपतंगवत् ॥ ४२ ॥ मुष्टिभ्यांताडयामासवालिनंसोऽपितंतथा ॥ अहन्वालीचसुग्रीवंसुग्रीवोवालिनंतथा ॥ ४३ ॥ रामंविलोकयन्नेवसुग्रीवोयुयुधेयुधि ॥ इत्येवंयुद्ध्यमानौतौदृष्ट्वारामःप्रतापवान् ॥४४॥ वाणमादायतूणीरादैंद्रेधनुषिसंदधे ॥ आकृष्यकर्णपर्यंतमदृश्योवृक्षखंडगः ॥ ४५ ॥ निरीक्ष्यवालिनंसम्यग्लक्ष्यंतद्धृदयंहरिः ॥ उत्ससर्जाशनिसमंमहावेगंमहाबलः ॥ ४६ ॥ बिभेदसशरोवक्षोवालिनःकंपयन्महीम् ॥ उत्पपातमहाशब्दंमुंचन्सानिपपातह ॥ ४७ ॥

किया कि इसप्रकार वाली सुग्रीवको मारता; और सुग्रीव वालिपर प्रहारकरता था ॥४३॥ सन्ध्याके समय श्रीरामचंद्रजीकी ओर निहारकर सुग्रीव युद्ध कर रहाथा (निहारनेका कारण यहथा कि शीघ्र वालिको मारो) इस प्रकार आवेशसे युद्ध करताहुआ । उन दोनोंको प्रतापशाली श्रीरामचंद्रजीने देखा ॥ ४४ ॥ तब उन भक्तसंकटनाशन महासामर्थ्यवान् प्रभुने अपने आप वालिकी दृष्टिसे बचेरहकर वृक्षकी आडसे तरकशसे बाण निकाल इन्द्रधनुषपर चढ़ाया ॥ ४५ ॥ कानतक प्रत्यंचा खेंच वालिको ताककर उसके हृदयको निशाना बनाय वज्रके समान महावेगवान् बाण छोड़ा ॥ ४६ ॥ वह बाण वालिके हृदयको विदारण करके पृथ्वीको कंपायमान करता और बड़ाभारी शब्द करता हुआ आकाशमें उड़ा; और

इधर वालीभी पृथ्वीपर गिरा ॥ ४७ ॥ एक मुहूर्त्ततक वालीको चेतना नहीं रही परंतु जब चैतन्य हुआ तो उसने देखा कि; सन्मुख साक्षात् कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजी खड़ेहैं । वे (रामचंद्रजी) दांये हाथमें धनुष लेकर बांयेमें बाण ॥ ४८ ॥ लेरहेथे उनके शरीरपर वल्कल रूप वस्त्र और मस्तकपर जटाका मुकुट था, विशाल छातीमें प्रकाशमान वनमाला शोभायमान होरहीथी ॥ ४९ ॥ उनकी बाहें पुष्ट सुन्दर व लम्बीथीं, अङ्गकी कांति नये दूर्वादलके समान नीलवर्ण थी, जिनके दोनों ओर सुग्रीव और लक्ष्मण सेवा करनेके लिये खडे हैं ॥ ५० ॥ ऐसे श्रीरामचंद्रको देख वाली उनको निन्दाकरनेके लिये हौलेर लड़खडाती वाणीसे कहने लगा,—"हे राम ! मैंने तुम्हारा कौनसा अपराध किया कि

तदामुहूर्तंनिःसंज्ञोभूत्वाचेतनमापसः ॥ ततोवालीददर्शाग्रेरामंराजीवलोचनम् ॥ धनुरालंब्यवामेनहस्तेनान्येनसायकम् ॥४८॥ बिभ्राणंचीरवसनंजटामुकुटधारिणम् ॥ विशालवक्षसंभ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥ ४९ ॥ पीनचार्वायतभुजंनवदूर्वादलच्छविम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांचपार्श्वयोःपरिसेवितम् ॥ ५० ॥ विलोक्यशनकैःप्राहवालीरामंविगर्हयन् ॥ किंमयापकृतंरामतवयेनहतोऽस्म्यहम् ॥ ५१ ॥ राजधर्ममविज्ञायगर्हितंकर्मतेकृतम् ॥ वृक्षखंडेतिरोभूत्वात्यजतामयिसायकम् ॥ ५२ ॥ यशःकिंलप्स्यसेरामचोरवत्कृतसंगरः ॥ यदि क्षत्रियदायादोमनोर्वंशसमुद्भवः ॥ ५३ ॥ युद्धंकृत्वासमक्षंमेप्राप्स्यसेतत्फलंतदा ॥ सुग्रीवेणकृतंकिंतेमयावानकृतंकिमु ॥ ५४ ॥ रावणेनहृताभार्यातवराममहावने ॥ सुग्रीवंशरणंयातस्तदर्थमितिशुश्रुम ॥ ५५ ॥ बतरामनजानीषेमद्बलंलोकविश्रुतम् ॥ रावणं सकुलंबद्ध्वाससीतंलंकयासह ॥ ५६ ॥

जिससे तुमने मुझे मारा ? ॥ ५१ ॥ वृक्षकी आड़में खड़े रहकर मुझपे बाण छोड़ा, यह आपने निन्दनीय कर्म किया । तुमको राजधर्म नहीं आता, ऐसा मुझे मालूम होताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकार चोरके समान युद्धकरके कौनसी कीर्तिको प्राप्तकरोगे; जो तुम यथार्थ क्षात्रियोंके वंशज और मनुके कुलमें उत्पन्न हुए होते ॥ ५३ ॥ मेरे सन्मुख होकर युद्धकरते; तब उसका फल (मरण या कीर्त्ति दोनोंमेंसे एक) तुमको मिलता; सुग्रीवने ऐसा तुम्हारा कौनसा कार्य किया और मैंने कौनसा नहीं किया ? ॥ ५४ ॥ हे राम ! रावणने महावनमें तुम्हारी भार्याको चुरालिया इसकारण तुम सुग्रीवकी शरण गये, ऐसा मैं सुनताहूं ॥ ५५ ॥ हे रामचन्द्र ! परन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बातहै कि, मेरा पराक्रम सारे संसारमें प्रसिद्ध होनेपरभी तुमपर

विदित नहीं हुआ, जो सुन लेते तो सुग्रीवकी शरणमें जाते । बहुत क्या कहूं ? ॥ ५६ ॥ हे राघव ! जो मैं इच्छा करता तो आधे मुहूर्तमें राक्षसकुलके साथ रावणको बाँध सीताजी और लंका नगरीको साथ ले आता । हे रघुनंदन ! इसलोकमें तुम महाधार्मिक प्रसिद्धहो ॥ ५७ ॥ परन्तु व्याधेके समान एक वानरको मारकर कौनसे धर्मका संग्रह करोगे सो कहो । वानरका मांस तो अभक्ष्य है; फिर मुझे मारकर तुम क्या करोगे ?" ॥ ५८ ॥ इसप्रकार वालीने बहुत वार्ता कही; तब श्रीरामचंद्रजी बोले; "मैं धर्मकी रक्षा करनेके लिये हाथमें धनुष धारण करके इस लोकमें फिरताहूं ॥ ५९ ॥ व अधर्म करनेवालोंका वध करके सद्धर्मका पालन करताहूं । कन्या, बहन, छोटे भाईकी स्त्री और पुत्रकी बहू

आनयामिमुहूर्तार्धाद्यदिचेच्छामिराघव॥धर्मिष्ठइतिलोकेऽस्मिन्कथ्यसेरघुनंदन ॥५७॥ वानरंव्याधवद्धत्वाधर्मंकंलप्स्यसेवद ॥ अभक्ष्यं वानरंमांसंहत्वामांकिंकरिष्यसि ॥ ५८ ॥ इत्येवंबहुभाषंतंवालिनंराघवोऽब्रवीत् ॥ धर्मस्यगोप्तालोकेऽस्मिश्चरामिसशरासनः ॥ ५९ ॥ अधर्मकारिणंहत्वासद्धर्मंपालयाम्यहम् ॥ दुहिताभगिनीभ्रातुर्भार्याचैवतथास्नुषा ॥ ६० ॥ समायोरमतेतासामेकामपिविमूढधीः ॥ पातकीसतुविज्ञेयःसवध्योराजभिःसदा ॥ ६१ ॥ त्वंतुभ्रातुःकनिष्ठस्यभार्यायांरमसेबलात् ॥ अतोमयाधर्मविदाहतोऽसिवनगोचर ॥ ६२ ॥ त्वंकपित्वान्नजानीषेमहांतोविचरंतियत् ॥ लोकंपुनानाःसंचारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ॥६३॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तोज्ञात्वारामंरमापतिम् ॥ वालीप्रणम्यरभसाद्रामंवचनमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ रामराममहाभागजानेत्वांपरमेश्वरम् ॥ अजानतामयाकिंचिदुक्तंतत्क्षन्तुमर्हसि ॥ ६५ ॥

॥ ६० ॥ यह चारों बराबर हैं; जो मूढ़बुद्धि पुरुष इन चारोंमेंसे एकके साथ भी रमण करता है; वह पातकी समझा जाता है; राजाको उचित है कि सदा ऐसे अधर्मीको मार डाले ॥ ६१ ॥ इस धर्मको मैं पूर्ण जानताहूं हे वनचर ! तू अपने छोटे भाईकी स्त्रीको बलसे भोगता है; इसकारण मैंने तेरा वध किया ॥ ६२ ॥ तू वानरयोनिमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्पुरुषोंके आचरणका तत्त्व तू नहीं जानता । वे सर्वत्र घूम घामकर लोकोंको पवित्र करते हैं; तिसकारण उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये" ॥ ६३ ॥ यह भाषण सुनकर वालीको अति भय लगा और ऐसा ज्ञान हुआ कि, यह रामचंद्र साक्षात् लक्ष्मीपति ईश्वर हैं; तत्काल वालीने श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके कहा ॥ ६४ ॥ "हे राम ! हे आनंददायक !

हे षड्गुणैश्वर्यसंपन्न,प्रभो ! अब मेरी समझमें भली भाँति आया कि आप परमेश्वर हैं,अज्ञानके कारण अबतक मैंने जो कुछ कहा है उसको आप क्षमाकर दें ॥ ६५ ॥ हे राम ! मैं अपनेको बड़ा धन्य मानताहूं कारणकि आपके चलाये बाणके प्रहारसे और विशेष करके तुम्हारे आगे मैं प्राण छोड़ताहूं तुम्हारे दर्शन बड़े २ योगियोंको मिलने दुर्लभ हैं ॥ ६६ ॥ प्राणी बराबर पुत्रादिकोंकी ममतासे आक्रांत होरहे हैं पर मृत्युकालमें जो उसने तुम्हारा नाम लिया, तो वह परमपदको प्राप्तहोजाता है । ऐसे महास्वरूप साक्षात् प्रभु तुम, आज मरनेके समय मेरे नेत्रोंके सन्मुख खड़े हो; फिर मुझको उत्तम पद मिलनेमें आश्चर्य क्या है ? ॥ ६७ ॥ हे देव ! मैं जानताहूं कि, आप साक्षात् परमेश्वर व जानकीजी मंगलकी देनेवाली लक्ष्मीजी हैं आपने ब्रह्माजी के प्रार्थना करनेपर रावणका वध करनेको अवतार लिया है ॥ ६८ ॥ हे राम! अब मैं तुम्हारे उत्तम पदको जाताहूं आप मुझे आज्ञा दें और मेरे अंगद

साक्षात्त्वच्छरघातेनविशेषेणतवाग्रतः ॥ त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभंतवदर्शनम् ॥ ६६ ॥ यन्नामविवशोगृह्णन्म्रियमाणःपरंपदम् ॥ याति साक्षात्सएवाद्यमुमूर्षोर्मेपुरःस्थितः ॥ ६७ ॥ देवजानामिपुरुषंत्वांश्रियंजानकींशुभाम् ॥ रावणस्यवधार्थायजातंत्वांब्रह्मणार्थितम्॥६८॥ अनुजानीहिमांराम यांतंत्वत्पदमुत्तमम् ॥ ममतुल्यवलेवाले अंगदेत्वंदयांकुरु ॥ ६९ ॥ विशल्यंकुरुमेरामहृदयंपाणिनास्पृशन् ॥ तथेतिबाणमुद्धृत्यरामःपस्पर्शपाणिना ॥ त्यक्त्वातद्वानरंदेहममरेंद्रोऽभवत्क्षणात् ॥ ७० ॥ वालीरघूत्तमशराभिहतोविमृष्टोरामेणशीतलकरेणसुखाकरेण ॥ सद्योविमुच्यकपिदेहमनन्यलभ्यंप्रातःपरंपरमहंसगणैर्दुरापम् ॥७१॥ इति श्रीम०किष्किं०द्वितीयःसर्गः ॥२॥

बालकपर कृपादृष्टि रखियेगा, यह अंगदभी मेरे समान पराक्रमी है ॥ ६९ ॥ हे राम ! मेरे हृदयको अपने हाथसे छूकर उसमेंसे बाण निकाल दीजिये । ” श्रीरामचंद्रजीने ‘ अच्छा ’ कहकर वालीको हाथसे छुआ और बाण निकाला तत्काल वाली वानरका शरीर छोड़कर श्रेष्ठ देवता होगया ॥ ७० ॥ (शंकर बोले हे पार्वति !) वालिको रामचंद्रजीके बाणका प्रहार लगा और प्रभुने उसको अपने पूर्ण सुखमय हाथसे स्पर्श किया; तब तत्काल वह (वाली) वानर शरीरको छोड़ परमश्रेष्ठ पदको प्राप्त हुआ, जो स्थान वालीको प्राप्त हुआ वह सर्व साधारणको नहीं मिलता; अधिक क्या कहें परमहंसोंको प्राप्त होना भी कठिन है ॥ ७१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

ताराका विलापकरना । श्रीमहादेवजी बोले,-कि इसप्रकार परमात्मा रामचंद्रजीने जब रणमें वालीका संहार किया तब भयसे विह्वल होकर समस्त वानर दौड़कर किष्किन्धामें आये॥ १ ॥ तारासे बोले,--“ हे महाभागे ! संग्राममें वाली मारागया । अब अंगदकी रक्षा करो मंत्रियोंको नगरकी रक्षा करनेकी आज्ञा दो ॥ २ ॥ हम चारों दरवाजोंके किवाँड बन्द करके नगरीकी रक्षा करते हैं । हे सुन्दरी ! अब अंगदको वानरोंका राजा बनाओ ” ॥ ३ ॥ वालिके मरनेका समाचार कानमें पड़तेही शोकके मारे ताराको मूर्च्छा आगई; वह वारंवार शिर और छातीको अपने हाथोंसे पीटने लगी ॥ ॥ ४ ॥ तारा बोली “ मुझे अंगदसे, राज्यसे, नगरसे और धनसे क्या प्रयोजन है ? मैं अभी पतिके साथ प्राणत्याग करूंगी ” ॥ ५ ॥ ऐसा

श्रीमहादेवउवाच ॥ निहतेवालिनिरणेरामेणपरमात्मना ॥ दुद्रुवुर्वानराःसर्वेकिष्किंधांभयविह्वलाः ॥ १ ॥ तारामूचुर्महाभागेहतोवाली रणाजिरे ॥ अंगदंपरिरक्षाद्यमंत्रिणःपरिणोदय ॥ २ ॥ चतुर्द्वारकपाटादीन्वद्ध्वारक्षामहेपुरीम् ॥ वानराणांतुराजानमंगदंकुरुभामिनि ॥ ॥ ३ ॥ निहतंवालिनंश्रुत्वाताराशोकविमूर्च्छिता ॥ अताडयत्स्वपाणिभ्यांशिरोवक्षश्चभूरिशः ॥ ४ ॥ किमंगदेनराज्येननगरेणधनेनवा ॥ इदानीमेवनिधनंयास्यामिपतिनासह ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वात्वरितातत्ररुदतीमुक्तमूर्धजा ॥ ययौतारातिशोकार्तायत्रभर्तृकलेवरम् ॥ ॥ ६ ॥ पतितंवालिनंदृष्ट्वारक्तैःपांसुभिरावृतम् ॥ रुदतीनाथनाथेतिपतितातस्यपादयोः ॥ ७ ॥ करुणंविलपंतीसाददर्शरघुनंदनम् ॥ राममांजहिबाणेनयेनवालीहतस्त्वया ॥ ८ ॥ गच्छामिपतिसालोक्यंपतिर्मामभिकांक्षते ॥ स्वर्गेऽपिनसुखंतस्यमांविनारघुनंदन ॥९॥ पत्नीवियोगजंदुःखमनुभूतंत्वयानघ ॥ वालिनेमांप्रयच्छाशुपत्नीदानफलंभवेत् ॥ १० ॥

कहकर वह रोती शीघ्र वहाँपर आई, जहाँपर उसके पतिका शव पड़ाथा । शोकका तीव्रवेग उसपर नहीं सहागया, उसके केश खुल रहेथे ॥ ६ ॥ वाली रक्त और धूरिसे व्याप्त होकर वहाँ पडाथा उसको देखतेही ‘ हा नाथ ! हा नाथ ! ’ कहकर रोतीहुई तारा उसके पाँवपर गिर पडी ॥ ७ ॥ और दीनवाणीसे विलाप करने लगी । इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दृष्टि पड़ जानेसे तारा बोली;—‘हे राम ! जिस बाणसे वालीको मार डाला है; उसही बाणसे मुझे मार डालियेगा ॥ ८ ॥ क्योंकि मैं पतिलोकको जाऊंगी । स्वामी मेरी बाट देखते होंगे । हे रघुनंदन ! मेरे विना उसको स्वर्गमें भी सुख नहीं होगा ॥ ९ ॥ हे पुण्यपुरुष ! इसका अनुभव आपको है कि, स्त्रीका विरह होनेसे कितना दुःख होता है; इससे आप मुझ

को वालीके पास पहुँचा दीजिये (वालीके स्वाधीन करो) ॥ तब तुम्हें स्त्रीदानका फल मिलैगा [तुमको तुम्हारी स्त्री मिल जायगी] ॥ १० ॥ हे सुग्रीव ! वालीके मारनेवाले रामचंद्रने तुमको राज्य देदिया; इस कारण उस शत्रुरहित राजको तुम रुमाके साथ सुखसे भोगो " ॥ ११ ॥ इस प्रकार ताराके शोक करनेपर उदार मनवाले श्रीरामचंद्रजीने तत्त्वज्ञानके उपदेश करके दयापूर्वक ताराको सावधान किया; श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ १२ ॥ " हे भीरु ! शोकका अविषय रूप अर्थात् शोकका स्थान रूप नहीं है तो ऐसे पतिका तू व्यर्थ शोक काहेको करै ? हे कल्याणि ! यह देह तेरा पति है,या जीव तेरा पति है यह विचार करके कह ? ॥१३॥ जो देहको पति मानती हो जो यह जड़ देह, त्वचा, मांस, रुधिर और अस्थिमय

सुग्रीवत्वंसुखंराज्यंदापितंवालिघातिना ॥ रामेणरुमयासार्धंभुंक्ष्वसापत्नवर्जितम् ॥ ११ ॥ इत्येवंविलपंतींतांतारांरामोमहामनाः ॥ सांत्वयामासदययातत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥ १२ ॥ किंभीरुशोचसिव्यर्थंशोकस्याविषयंपतिम् ॥ पतिस्तवायंदेहोवाजीवोवावदतत्त्वतः॥१३॥ पंचात्मकोजडोदेहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् ॥ कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापितेपुरः ॥ १४ ॥ मन्यसेजीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः ॥ नजायतेनम्रियतेनतिष्ठतिनगच्छति ॥ १५ ॥ नस्त्रीपुमान्वाषंढोवाजीवःसर्वगतोऽव्ययः ॥ एकएवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः ॥ नित्योज्ञानमयःशुद्धःसकथंशोकमर्हति ॥ १६ ॥ तारोवाच ॥ देहोऽचित्काष्ठवद्रामजीवोनित्यश्चिदात्मकः ॥ सुखदुःखादिसंवंधःकस्यस्याद्राममेवद ॥ १७ ॥

है । वह पंचमहाभूतका देह काल और गुणसे उत्पन्न हुआ है । वह (देह) अबतक तेरे आगे पडाहै ॥ १४ ॥ और जो तू जीवको अपना पति मानती हो, तोभी शोक करनेका कोई प्रयोजन नहीं । क्योंकि, जीव निर्विकार है, उसकी उत्पत्ति नहीं, मरण नहीं तैसेही वह स्थिर नहीं रहता । या गमन भी नहीं करता ॥ १५ ॥ जीव, न स्त्री, न पुरुष, न नपुंसक है, केवल सर्वव्यापी निर्विकार होनेसे एकही है, उसमें दूसराभाव नहीं, वह आकाशके समान सर्वव्यापक रहकरभी अलिप्त है । उसका स्वरूप तीनकालमेंभी नष्ट न होनेवाला ज्ञानमय व शुद्धहै, फिर वह कैसे शोककरनेके योग्यहै ?" ॥ १६ ॥ यह सुनकर ताराने कहा, " हे राम ! जो देह काष्ठके समान जड और नाशवान् है और आत्मा. केवल अविनाशी और

चैतन्यस्वरूप है । तो हे राम ! फिर सुख दुःखका संबन्ध किसको होता है सो आप मुझसे कहैं ?" ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले—"जबतक देह और इन्द्रियोंके साथ 'मैं' और 'मेरा' अभिमान अर्थात् अहंता लगीहै; इसप्रकार बुद्धिके विषय अहंकारादिके साथ जीवका सम्बन्धहै; तबतक अज्ञानवाले अंतःकरणसे आत्माको संसार होता है ॥ १८ ॥ सदाविषयोंका ध्यान करनेवाले मनुष्यको स्वप्नमें अनेक पदार्थ दीखतेहैं स्वप्नमें दीखनेवाली वस्तु वास्तवमें मिथ्या होतीहैं; तथापि जागनेतक वे पदार्थ झूंठे नहीं मालूम पड़ते; इस दृष्टान्तके अनुसार यह संसार मिथ्यामें आरोपितकिया, और कल्पितहै यह यथार्थ है; तथापि आपही आप (विनाविचारे) निवृत्त होनेवाला नहीं ॥ १९ ॥ वास्तव निरर्थक (अत्यंत मिथ्याभूत) व राग द्वेष इत्यादि विकारोंसे पूरापूरा भराहुआ यह संसार अनात्म (जड़) वस्तुपर आत्मबुद्धि ठहरानेसे, और उस अज्ञानका कार्य

श्रीरामउवाच ॥ अहंकारादिसंबंधोयावद्देहेंद्रियैः सह ॥ संसारस्तावदेवस्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥ १८ ॥ मिथ्यारोपितसंसारोनस्वयं विनिवर्तते ॥ विषयान्ध्यायमानस्यस्वप्नेमिथ्यागमोयथा ॥ १९ ॥ अनाद्यविद्यासंबंधात्तत्कार्याहंकृतेस्तथा ॥ संसारोऽपार्थकोऽपिस्या द्रागद्वेषादिसंकुलः ॥ २० ॥ मनएवहिसंसारोबंधश्चैवमनःशुभे ॥ आत्मामनःसमानत्वमेत्यतद्गतबंधभाक् ॥ २१ ॥ यथाविशुद्धःस्फाटिकोऽलक्तकादिसमीपगः ॥ तत्तद्वर्णयुगाभातिवस्तुतोनास्तिरंजनम् ॥ २२ ॥ बुद्धींद्रियादिसामीप्यादात्मनःसंसृतिर्बलात् ॥ आत्मास्वलिंगंतुमनःपरिगृह्यतदुद्भवान् ॥ २३ ॥ कामाञ्जुषन्गुणैर्बद्धःसंसारेवर्ततेऽवशः ॥ आदौमनोगुणान्सृष्ट्वाततःकर्माण्यनेकधा ॥ २४ ॥

जो अहंकार है, वह उससे उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥ हे कल्याणि ! यह मनही संसारका मूलकारण है मनही सुख दुःखादि भोग तथा बंधनका कारण है । बरन् वह आत्मा मनोगत सुख दुःखादि भोगोंका भोगनेवाला न होताहुआभी मनके साथ समानताको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ जैसे शुद्ध स्फटिकमणि स्वभावसे श्वेतवर्ण होनेपरभी लाखके साथ समीप रहनेसे वैसेही रंगकी मालूम होतीहै; परन्तु उसका रंग वास्तवमें वह नहीं है ॥ २२ ॥ वैसेही बुद्धि व इन्द्रियादियोंके समीप होनेसे आत्मापर बलात्कारसे संसारका आरोप किया जाताहै; आत्मा अपने आपसे अनुमान करनेका साधन जो मनहै उसको स्वीकार करताहै, व ज्ञानी होकर उस मनसे उत्पन्न होनेवाले ॥ २३ ॥ विषयोंका भोग करतारहताहै, इसके पीछे—उसको

मनके राग द्वेषादि गुणोंके द्वारा बँधजानेसे पराधीन होकर संसारमें रहना पड़ताहै । प्रथमतः मन राग द्वेषादि गुण उत्पन्न करके फिर उन गुणोंके योगसे अनेकप्रकारके कर्म निर्माण करताहै ॥ २४ ॥ उसकर्मके शुक्ल (हिंसारहित, जप, ध्यान इत्यादि) लोहित (हिंसासे मिलेहुए यज्ञयागादि) और कृष्ण (पापकर्म) वह तीन भेद हैं, वह कर्मकी गतिभी प्रत्येकको उसकी योग्यताके अनुसार अलग २ (उत्तम, मध्यम, अधम) है, इस प्रकार जीव उस कर्मके आधीन होकर प्रलयकालतक भ्रमण करता रहता है ॥ २५ ॥ उसके अन्तःकरणादिपर "यह मौत है" ऐसा पूर्ण ग्रह होता है, इसकारण प्रलयकालमें जगत् नाश होनेपर, वह वासना और अपने कियेहुए कर्मोंके साथ वर्तमान, उस अंतःकरणादिकी आदिकारण जो अविद्या है उसमें लीनहोकर रहता है ॥ २६ ॥ फिर नई सृष्टिके उत्पन्न होनेके समय; जैसे नाज वर्षा कालके पीछे बीजरूपमें लीन होकर दूसरी

शुक्ललोहितकृष्णानिगतयस्तत्समानतः ॥ एवंकर्मवशाज्जीवोभ्रमत्याभूतसंप्लवम् ॥ २५ ॥ सर्वोपसंहृतौजीवोवासनाभिःस्वकर्मभिः ॥ अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥ २६ ॥ सृष्टिकालेपुनःपूर्ववासनामानसैःसह ॥ जायतेपुनरप्येवंघटीयंत्रमिवावशः ॥ २७ ॥ यदापुण्यविशेषेणलभतेसंगतिंसताम् ॥ मद्भक्तानांसुशान्तानांतदामद्विषयामतिः ॥२८॥ मत्कथाश्रवणेश्रद्धादुर्लभाजायतेततः ॥ ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेनजायते ॥२९॥ तदाचार्यप्रसादेनवाक्यार्थज्ञानतःक्षणात् ॥ देहेंद्रियमनःप्राणाहंकृतिभ्यःपृथक्स्थितम् ॥३०॥

वर्षाऋतुमें फिर उत्पन्न होता है; वैसेही वह जीव प्राचीन वासना और कर्मोंके साथ जन्म लेता है; इसप्रकार वह रहटमें बँधे घटके समान पराधीन होकर जन्म मरणकी परंपरा भोगता रहता है ॥ २७ ॥ फिर आगे किसी प्रसंगसे या किसी विशेष पुण्य कर्मके प्रभावसे, पूर्ण शान्त, व मेरे भजन करनेमे सदा तत्पर सत्पुरुषोंके समागमसे जीवकी मति मेरे विषयमें होती है अर्थात् ईश्वर महान्, शक्तिमान् और सर्वकर्ता है, ऐसी बुद्धि होती है, उस बुद्धिके होतेही मेरी कथाके विषय ऐसी श्रद्धा होती है, जो दूसरोंको दुर्लभ है, तिससे अनायासही मेरे स्वरूपके ज्ञानका साधनभूत वैराग्य होता है [विषय तुच्छ लगने लगता है] उस विज्ञानसे विषयोंका सुख मालूम होने लगता है । इस प्रकार नित्य अनित्य इत्यादिका विवेकवाला वैराग्य होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ वैराग्यके होतेही आचार्य गुरुके प्रसादसे तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यका अर्थज्ञानके श्रवण मनन रूप

उत्साहसे बारंबार पवित्र पवित्र कर्म करताहुआ देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहंकारसे अलग रहकर ॥ ३० ॥ तीन कालमेंभी नष्ट न होनेवाले, आनंदमय व द्वैतरहित है, ऐसा प्रत्यक्ष और अनुभवसिद्ध ज्ञान प्राप्तकर लेता है; इस ज्ञानके होतेही तत्काल मुक्ति पाजाता है, हे तारे ! यह यथार्थ प्रकार मैंने तुझसे कथन किया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मेरे इस कहे हुए ज्ञानका नित्य विचार करता है, उसको संसारके दुःख कभी भी नहीं भोगने पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ हे तारे ! देखो तुम इस मेरे उपदेशका सूक्ष्म विचारकरो; तब तेरी बुद्धि निर्मल होगी; तुझे दुःख समूहका संपर्क नहीं लगैगा और पीछेसे कर्मके बन्धनोंसे मुक्ति मिलजायगी ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! तेरा बड़ा भाग्य है, पहले जन्ममें तैंने मेरी उत्तम प्रकारसे भक्ति की थी;

स्वात्मानुभवतःसत्यमानंदात्मानमद्वयम् ॥ ज्ञात्वासद्योभवेन्मुक्तःसत्यमेवमयोदितम् ॥ ३१ ॥ एवंमयोदितंसम्यगालोचयतियोऽ निशम् ॥ तस्यसंसारदुःखानिनस्पृशंतिकदाचन ॥ ३२ ॥ त्वमप्येतन्मयाप्रोक्तमालोचयाविशुद्धधीः ॥ नस्पृश्यसेदुःखजालैःकर्मबंधा द्विमोक्ष्यसे ॥ ३३ ॥ पूर्वजन्मनितेसुभ्रुकृतामद्भक्तिरुत्तमा ॥ अतस्तवविमोक्षायरूपंमेदर्शितंशुभे ॥ ३४ ॥ ध्यात्वामद्रूपमनिशमालो चयमयोदितम् ॥ प्रवाहपतितंकार्यंकुर्वंत्यपिनलिप्यसे ॥ ३५ ॥ श्रीरामेणोदितंसर्वंश्रुत्वातारातिविस्मिता ॥ देहाभिमानजंशोकंत्यक्त्वा नत्वारघूत्तमम् ॥ ३६ ॥ आत्मानुभवसंतुष्टाजीवन्मुक्ताबभूवह ॥ क्षणसंगममात्रेणरामेणपरमात्मना ॥ ३७ ॥

इसकारण तुझे मोक्ष देनेको मैंने इस विश्वरूपसे दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ तू निरन्तर मेरे स्वरूपका ध्यान और उस उपदेशका चिंतवन करती रहिये, इससे संसारके प्रवाहमें कार्य करनेपरभी इसमें लिप्त नहीं होगी" ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीका समस्त भाषण सुनकर तारा परम विस्मयको प्राप्त हुई; देह पर अभिमान होनेसे—'वाली मेरा पतिहै' ऐसा मालूम होनेपर उसको शोक हुआथा पर अब इसने उसको (शोकको) छोड़ दिया। व श्रीरामचंद्रजीको वन्दन किया ॥ ३६ ॥ (श्रीमहादेवजी बोले, हे पार्वति !) प्रभु रामचंद्रजीके एक क्षणभर समागमका कितना फल है सो देखो,—ताराको अपने स्वरूपका अनुभव होनेसे उत्पन्न होनेवाला आनंद और जीवन्मुक्ति प्राप्त हुई ॥ ३७ ॥

उसके अंतःकरणका मल दूर होगया और वह अनादि अविद्याके बन्धनको छोड़कर मुक्ति प्राप्त करतीहुई । श्रीरामचंद्रजीके मुखसे निकलेहुए यह उपदेश वचन कानमें पड़तेही सुग्रीवकाभी ॥ ३८ ॥ सर्व अज्ञान दूर होकर चित्त तत्काल सावधान होगया, इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी उस वानरराज सुग्रीवसे बोले, "हे सुग्रीव ! अपने भ्राताका मृतक संस्कार जो कुछ शास्त्र व न्यायके अनुसार करना हो वह सब उसके न्यायके अनुसार करो वह सब उसके पुत्रसे करावो; ऐसी मेरी आज्ञा तुमको है" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ सुग्रीवने ऐसी प्रभुकी आज्ञा कहकर मुख्य २ वानरोंको बुलाया और समस्त राजोपचारके सहित वालीके देहको पुष्पकविमानके समान पालकीमें रखकर लेचले ॥ ४१ ॥ नगाड़े बजने

अनादिबंधंनिर्धूयमुक्तासापिविकल्मषा ॥ सुग्रीवोऽपिचतच्छ्रुत्वारामवक्रात्समीरितम् ॥३८॥ जहावज्ञानमखिलंस्वस्थचित्तोऽभवत्तदा ॥
ततःसुग्रीवमाहेदंरामोवानरपुंगवम् ॥ ३९ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्यपुत्रेणयद्युक्तंसांपरायिकम् ॥ कुरुसर्वंयथान्यायंसंस्कारादिममाज्ञया ॥४०॥
तथेतिवालिभिर्मुख्यैर्वानरैःपरिणीयतम् ॥ वालिनंपुष्पकेक्षिप्त्वासर्वराजोपचारकैः ॥ ४१ ॥ भेरीदुंदुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मंत्रिभिःसह ॥
यूथपैर्वानरैःपौरैस्तारयाचांगदेनच ॥ ४२ ॥ गत्वाचकारतत्सर्वंयथाशास्त्रंप्रयत्नतः ॥ स्नात्वाजगामरामस्यसमीपंमंत्रिभिःसह ॥ ४३ ॥
नत्वारामस्यचरणौसुग्रीवःप्राहहृष्टधीः ॥ राज्यंप्रशाधिराजेंद्रवानराणांसमृद्धिमत् ॥ ४४ ॥ दासोऽहंतेपादपद्मंसेवेलक्ष्मणवच्चिरम् ॥
नत्वारामस्यचरणौसुग्रीवःप्राहहृष्टधीः ॥ राज्यंप्रशाधिराजेंद्रवानराणांसमृद्धिमत् ॥ ४४ ॥ दासोऽहंतेपादपद्मंसेवेलक्ष्मणवच्चिरम् ॥
इत्युक्तोराघवःप्राहसुग्रीवंसस्मितंवचः ॥ ४५ ॥ त्वमेवाहंनसंदेहःशीघ्रंगच्छममाज्ञया ॥ पुरराज्याधिपत्येत्वंस्वात्मानमभिषेचय ॥४६॥

लगे; नौबत बजी, सुग्रीवने ब्राह्मण, मंत्री, सेनाके, बडे २ वीर वानर नगरवासी व तारा और अंगदके साथ ॥ ४२ ॥ जाकर वालीकी सर्व उत्तर क्रिया यथाशास्त्र व बड़ी चतुराईसे की । फिर सुग्रीवजी स्नान करके सब मंत्रियोंके साथ श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ४३ ॥ और अत्यन्त आनंदित मनसे चरणोंका वन्दन कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले;—"हे राजाधिराज ! अखिल समृद्धिसे भराहुआ यह वानरोंका राज्य आप पालन करें ॥ ४४ ॥ मैं आपका दास लक्ष्मणजीके साथ सदा आपके चरण कमलकी सेवा करता रहूंगा" यह वचन सुन श्रीरामचंद्रजी हँसे और सुग्रीवसे कहा ॥ ४५ ॥ "हे सुग्रीव ! हमारे तुम्हारे एक होनेमें संदेह नहीं तेरे राज्य भोगनेसे मानो मैंनेही भोगा मुझमें तुझमें भेद नहीं है, इस कारण मैं तुमको

आज्ञा देता हूं अति शीघ्र जायकर किष्किन्धापुरीमें अपने अधिपति (मालिक) होनेका अभिषेक कराओ ॥ ४६ ॥ हे मित्र चौदह वर्षतक मुझे नगरमें प्रवेश करना नहीं है, हमारे भ्राता लक्ष्मण तुम्हारी राजधानीमें आजायँगे ॥ ४७ ॥ तुम आदर पूर्वक अंगदको यौवराज्यमें अभिषेक करो मैं छोटे भ्राताके साथ समीपही पर्वतके शिखरपर ॥ ४८ ॥ एक वर्षतक रहूंगा । अब कुछ दिन तुम सावधानतासे नगरमें रहकर पीछेसे सीताकी सुधि लानेका यत्न करना " ॥ ४९ ॥ सुग्रीवने रामचंद्रजीके चरणोंमें साष्टांग दंडवत् करके कहा,–' हे देव ! जैसी आप आज्ञा करते हैं, वैसा ही किया जायगा ' ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीके अनुमोदन करनेपर लक्ष्मणजीको साथ लेकर सुग्रीव नगरमें आये । वहाँ उन्होंने

नगरंनप्रवेक्ष्यामिचतुर्दशसमाःसखे ॥ आगमिष्यतिमेभ्रातालक्ष्मणःपत्तनंतव ॥ ४७ ॥ अंगदंयौराज्येत्वमभिषेचयसादरम् ॥ अहंसमीपेशिखरेपर्वतस्यसहानुजः ॥ ४८ ॥ वत्स्यामिवर्षंदिवसांस्ततस्त्वंयत्नवान्भव ॥ किंचित्कालंपुरेस्थित्वासीतायाःपरिमार्गणे ॥ ४९ ॥ साष्टांगंप्रणिपत्याहसुग्रीवोरामपादयोः ॥ यदाज्ञापयसेदेवतत्तथैवकरोम्यहम् ॥ ५० ॥ अनुज्ञातस्तुरामेणसुग्रीवस्तुसलक्ष्मणः ॥ गत्वा पुरंतथाचक्रेयथारामेणचोदितः ॥ ५१ ॥ सुग्रीवेणयथान्यायंपूजितोलक्ष्मणस्तदा ॥ आगत्यराघवंशीघ्रंप्रणिपत्योपतस्थिवान् ॥५२॥ ततोरामोजगामाशुलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वंशिखरंभूरिविस्तरम् ॥ ५३ ॥

रामचंद्रजीकी आज्ञा अनुसार दोनों (अपना व अंगद) का अभिषेक कराया ॥ ५१ ॥ और लक्ष्मणजीकी शास्त्रोक्त विधि या न्यायानुसार पूजा की वहाँपर सर्व कार्य करके लक्ष्मणजी रामजीके पास आय वंदनकर सेवा करनेके लिये निकट खड़े रहे ॥ ५२ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित वह प्रवर्षण नामक पर्वतके ऊंचे व अतिविस्तीर्ण शिखरपर गये ॥ ५३ ॥ वहाँपर स्फटिक मणियोंकी प्रकाशमान गुहा उन्होंने देखी ! उस रमणीय स्थलमें वृष्टि, वायु, धूपके निवारण करनेका उपायभी था; निकटही फल फूल थे; उसको देखकर राम लक्ष्मणने वहाँपर रहनेका

विचार किया ॥ ५४ ॥ (महादेवजी बोले,—हे पार्वती !) प्रवर्षण पर्वतपर दिव्यफल, मूल व पुष्पोंके होनेसे स्थान २ में मोतियोंके समान स्वच्छ जलसे भरे हुए छोटे २ सरोवर थे, चित्र विचित्र वर्णके पशु पक्षियोंके इधर उधर भ्रमण करते रहनेसे वह देश शोभायमान ज्ञात होता था; ऐसे पर्वतपर रघुकुल भूषण श्रीरामचन्द्रजी रहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ पर्वतपर रमणीय शोभाका वर्णन व रामचंद्रजीकी पूजाकी विधि ॥ उस पर्वतपर लीलासे मणिमय गुफाओंमें फिरते हुए पकेहुए कन्दमूल और फलके भोजनसे प्रसन्न हुए श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ वर्षाकालतक उस पर्वतपर रहे ॥ १ ॥ उस वनमें वायुके चलाये

तत्रैकंगह्वरंदृष्ट्वास्फाटिकंदीप्तिमच्छुभम् ॥ वर्षवातातपसहंफलमूलसमीपगम् ॥ वासायरोचयामासतत्ररामः सलक्ष्मणः ॥ ५४ ॥ दिव्यमूलफलपुष्पसंयुतेमौक्तिकोपमजलौघपल्वले ॥ चित्रवर्णमृगपक्षिशोभितेपर्वतेरघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥५५॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ तत्रवार्षिकदिनानिराघवोलीलयामणिगुहासुसंचरन् ॥ पक्वमूलफलभोगतोषतोलक्ष्मणेनसहितोऽवसत्सुखम् ॥ १ ॥ वातनुन्नजलपूरितमेघानंतरस्तनितवैद्युतगर्भान् ॥ वीक्ष्यविस्मयमगाद्गजयूथान्यद्वदाहितसुकांचनकक्षान् ॥ २ ॥ नवघासंसमास्वाद्यहृष्टपुष्टमृगद्विजाः ॥ धावंतःपरितोरामंवीक्ष्यविस्फारितेक्षणाः ॥ ३ ॥ नचलंतिसदाध्याननिष्ठाइवमुनीश्वराः ॥ राममानुषरूपेणगिरिकाननभूमिषु ॥ ४ ॥ चरंतंपरमात्मानंज्ञात्वासिद्धगणाभुवि ॥ मृगपक्षिगणाभूत्वाराममेवानुसेविरे ॥ ५ ॥ सौमित्रिरेकदाराममेकांतेध्यानतत्परम् ॥ समाधिविरमेभक्त्याप्रणयाद्विनयान्वितः ॥ ६ ॥

हुए, जलसे पूर्ण नवीन मेघके समान श्याम, तथा हाथीके शब्दके समान जिसमें गर्जना होरही है; पीठके ऊपर पड़ी हुई सोनेकी झूलरूप बिजली जिसमें चमक रहीहै; ऐसे हाथियोंके झुंडको देखकर श्रीरामचंद्रजी अति विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ कोमल तृण भक्षण करके संतुष्ट व पुष्ट हुए पशु और पक्षी चारों ओर फिरते थे । श्रीरामचंद्रजीने देखा कि, मेरा स्वरूप भली भाँति देखनेको नेत्रोंको खोले खड़े रहते ॥ ३ ॥ महामुनि ध्यान मग्न होकर जैसे निश्चल रहते हैं, वैसेही इस समय ये (पशु पक्षी) बिना हिले डुले खडे रहे; पृथ्वीके ऊपर विचरते हुए परमात्माको जानकर सिद्ध गण, मृग और पक्षियोंके गण होकर श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ एक समय एकान्त ध्यानमें तत्पर, श्रीरामचंद्रजी जब समा

धिसे विराम लेते हुए, तब लक्ष्मणजी नम्र होते और प्रेम भक्तिके साथ उनसे ॥ ६ ॥ बोले "हे देव ! जो उपदेश आपने मुझे पहले दिया; उसके योगसे मेरे अंतरमें प्राप्त हुआ अनादि अविद्याका मूलसंशय दूर होगया ॥ ७ ॥ लोकमें योगी पुरुष जिस पूजापद्धतिसे आपकी आराधना करते हैं; वह प्रकार आप मुझसे कहैं ऐसी इस समय मेरी इच्छा जाननेकी है ॥ ८ ॥ नारद मुनि, व्यास, कमलयोनिब्रह्माजी इत्यादि बड़े २ योगीभी बराबर कहते हैं इसी (पूजा करके तुम्हारा आराधन करने) से मुक्ति हो जाती है ॥ ९ ॥ हे राजाधिराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, इत्यादि वर्ण, व ब्रह्मचारी, गृहस्थ इत्यादि आश्रम इन्हें मोक्षके देनेवाले और स्त्री व शूद्रोंको मुक्ति प्राप्त होनेका सुलभ साधन यही है । हे रामचंद्र ! मैं

अब्रवीद्देवतेवाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतोमम ॥ अनाद्यविद्यासंभूतःसंशयोहृदिसंस्थितः ॥ ७ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिक्रियामार्गेणराघव ॥ भवदाराधनंलोकेयथाकुर्वंतियोगिनः ॥ ८ ॥ इदमेवसदाप्राहुर्योगिनोमुक्तिसाधनम् ॥ नारदोऽपितथाव्यासोब्रह्माकमलसंभवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणांचमोक्षदम् ॥ स्त्रीशूद्राणांचराजेंद्रसुलभंमुक्तिसाधनम् ॥ तवभक्तायमेभ्रात्रेब्रूहिलोकोपकारकम् ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ ममपूजाविधानस्यनांतोऽस्तिरघुनंदन ॥ तथाऽपिवक्ष्येसंक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥ ११ ॥ स्वगृह्योक्तप्रकारेणद्विजत्वं प्राप्यमानवः ॥ सकाशात्सद्गुरोर्मंत्रंलब्ध्वामद्भक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥ तेनसंदर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः ॥ हृदयेवाऽनलेवार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ ॥ १३ ॥ शालग्रामशिलायांवापूजयेन्मामतंद्रितः ॥ प्रातःस्नानंप्रकुर्वीतप्रथमंदेहशुद्धये ॥ १४ ॥

तुम्हारा भ्राता आपपर पूर्ण भक्ति करताहूं, अतएव आपभी मेरी जिज्ञासाको तृप्त करैं, इससे लोकोंपरभी अनुग्रह होगा" ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले, "हे रघुनंदन ! (लक्ष्मण !) मेरी पूजाके अनन्त विधान हैं,—वे समस्त किस प्रकारसे कहे जाँय ? तोभी मैं तुम्हें उस शास्त्रोक्तपद्धतिके क्रम २ से संक्षेपसे सुनाताहूं ॥ ११ ॥ जिसके मनमें मेरी भक्ति उत्पन्न हुई है उस मनुष्यको अपनी शाखाके गृह्यसूत्रभेद जिसप्रकार कहाहै उसके अनुसार ब्राह्मणत्वप्राप्त (उपनयन) होनेपर सद्गुरुके पाससे मंत्रका उपदेश लेना चाहिये ॥ १२ ॥ सद्गुरुकी बनाई हुई पूजाकी विधिके अनुसार मनुष्यको सद्भावके साथ मेरीही आराधना करनी चाहिये । पूजाके स्थानमें हृदय, अग्नि, मूर्ति, इत्यादि या सूर्य भगवान् होते हैं ॥ १३ ॥ शालिग्रामकी शिलासेही मेरा

१ वैदिक नित्यकर्म विधायक ऋषिकृत्य ग्रन्थ विशेषका नाम गृह्य है !

पूजनकरै; पहले तो आलस्य छोड़कर शरीरकी शुद्धिके लिये प्रातःकालही स्नानकरै ॥ १४ ॥ तिससमय अपने २ अधिकारके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको, वेदके—और सूत्रादिकोंके तन्त्रमें कहेहुए मंत्र पढ़ने चाहिये, मट्टी लगाना इत्यादि स्नानकी सब विधि करै । सन्ध्या इत्यादि नित्यकर्मोंका तत्त्व समझकर यथाविधिसे अनुष्ठान करे ॥ १५ ॥ पूजाके आरम्भमें उस अच्छी बुद्धिवाले पुरुषको, सर्वकर्मों की सिद्धिके लिये पूजन करताहूं, ऐसा संकल्प करना चाहिये, व अपने गुरुमें ' यह ' रामचन्द्र हैं, ऐसीबुद्धिसे भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये ॥ १६ ॥ पाषाणमय मूर्तिको स्नान करावे । मृत्तिकादिकी मूर्ति होनेपर उनको हाथसेही पोंछदे, क्योंकि उनको स्नान नहीं कराया जासक्ता । प्रसिद्ध शास्त्रमें शुद्धमानेहुए गंध पुष्पादिकोंसे मेरी पूजा करी जानेपर सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ मनुष्य असत्य कहना छोड़देकर व नियमपूर्वक

वेदतंत्रोदितैर्मंत्रैर्मृल्लेपनविधानतः ॥ संध्यादिकर्मयन्नित्यंतत्कुर्याद्विधिनाबुधः ॥१५॥ संकल्पमादौकुर्वीतसिद्ध्यर्थंकर्मणांसुधीः ॥ स्वगुरुंपूजयेद्भक्त्यामद्बुद्ध्यापूजकोमम ॥ १६ ॥ शिलायांस्नपनंकुर्यात्प्रतिमासुप्रमार्जनम् ॥ प्रसिद्धैर्गंधपुष्पाद्यैर्मत्पूजासिद्धिदायिका॥१७॥ अमायिकोऽनुवृत्त्यामांपूजयेन्नियतव्रतः ॥ प्रतिमादिष्वलंकारःप्रियोमेकुलनंदन ॥ १८ ॥ अग्नौयजेतहविषाभास्करेस्थंडिलेयजेत् ॥ भक्तेनोपहृतंप्रीत्यैश्रद्धयाममवार्यपि ॥ १९ ॥ किंपुनर्भक्ष्यभोज्यादिगंधपुष्पाक्षतादिकम् ॥ पूजाद्रव्याणिसर्वाणिसंपाद्यैवंसमारभेत् ॥ ॥ २० ॥ चैलाजिनकुशैःसम्यगासनंपरिकल्पयेत् ॥ तत्रोपविश्यदेवस्यसंमुखेशुद्धमानसः ॥ २१ ॥

व्रत स्वीकार करके गुरुकी बताईहुई विधिके अनुसार मेरी पूजाकरै । हे कुलनंदन ! मूर्तिको गहनेआदि पहरानेसे मैं प्रसन्न होताहूं ॥ १८ ॥ अग्निमें हुत द्रव्य डालकर मेरा पूजनकरै तथा सूर्य या उसका चित्र काढ़ या उसका मंत्र पढ़कर अराधनाके द्वारा मेरा पूजनकरे; इसप्रकारसे मेरा भक्त मुझमें श्रद्धाकेसाथ केवल जल या जो कुछभी अर्पण करताहै, उसको मैं प्रीतिसे ग्रहण करताहूं ॥ १९ ॥ फिर भोज्यादि पदार्थ और गन्ध, पुष्प, अक्षत, इत्यादिके अर्पण करनेपर उसकोभी मैं ग्रहण करूंहूं; इसमें आश्चर्य ही क्याहै ? इसप्रकार पूजाकी सामग्री ठीककरके मेरी पूजाका आरंभ करै ॥ २० ॥ उस पूजाकी विधि कहताहूं, सुनो. वस्त्र, या कुशके बनायेहुए आसनके ऊपर शुद्धमनवाले मेरे भक्तको देवताके सन्मुख बैठकर अंतः

करण निर्मल करना चाहिये ॥ २१ ॥ फिर अन्तर्मातृका और बहिर्मातृकासे न्यास करना; तथा केशवादिका नाम लेना । अर्थात्; केशवाय नमः, नारायणाय नमः, इत्यादि इसप्रकार चौबीस नामोंसे न्यासकरे; फिर तत्त्वन्यास करके ॥ २२ ॥ फिर आलस्यहीन मेरे भक्तको मेरी मूर्ति इत्यादिमें विष्णुपंजरादि स्तोत्रोंसे और मंत्रोंसे न्यास करना चाहिये. इस प्रकारसे जैसे आत्मामें न्यासकरे वैसेही देवताके सावधान होकर न्यास करे ॥ २३ ॥ अपने पास दांए हाथकी ओर जलसे भराहुआ कलश रक्खे; तथा बांई ओर अर्घ्य, पाद्य, आचमन और मधुपर्कके लिये पुष्पादि पूजन की सामग्री रक्खे ॥ २४ ॥ आचमनके लिये चार पात्र रक्खे; फिर सूर्यके समान तेजस्वी अपने हृदयकमलमें जीवसंज्ञक मेरी कलाका ॥ २५ ॥

ततोन्यासंप्रकुर्वीतमातृकावाहिरांतरम् ॥ केशवादिततःकुर्यात्तत्त्वन्यासंततःपरम् ॥ २२ ॥ मन्मूर्तिपंजरन्यासंमंत्रन्यासंततोन्यसेत् ॥ प्रतिमादावपितथाकुर्यान्नित्यमतंद्रितः ॥ २३ ॥ कलशंस्वपुरोवामेक्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे ॥ अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थंमधुपर्कार्थमेवच ॥ २४ ॥ तथैवाचमनार्थंतुन्यसेत्पात्रचतुष्टयम् ॥ हृत्पद्मेभानुविमलेमत्कलांजीवसंज्ञिताम् ॥ २५ ॥ ध्यायेत्स्वदेहमखिलंतयाव्याप्तमरिंदम ॥ तामेवावाहयेन्नित्यंप्रतिमादिषुमत्कलाम् ॥ २६ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैःस्नानवस्त्रविभूषणैः ॥ यावच्छक्योपचारैर्वात्वर्चयेन्मामममाय या ॥ २७ ॥ विभवेसतिकर्पूरकुंकुमागुरुचंदनैः ॥ अर्चयेन्मंत्रवन्नित्यंसुगंधकुसुमैःशुभैः ॥२८॥ दशावरणपूजांवैह्यागमोक्तांप्रकारयेत् ॥ नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥ २९ ॥ श्रद्धयोपहरेन्नित्यंश्रद्धाभुगहमीश्वरः ॥ होमंकुर्यात्प्रयत्नेनविधिनामंत्रकोविदः ॥ ३० ॥

ध्यानकरे, हे शत्रुदमन ! (लक्ष्मण !) उससे (जीवकलासे) अपना सब शरीर व्यापरहा है; ऐसे मनमें समझे और उसमें कलाकोही मूर्ति इत्यादि के स्थानमें आवाहन करे ॥ २६ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, अलंकार इत्यादि जितने उपचार मिलसके उन सबके द्वारा कपटहीन होकर मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ अनुकूलताहोवे तो कपूर, केशर, कृष्णागर, चंदन उत्तमप्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे मंत्र पढकर मेरी आराधना करे ॥ २८ ॥ अगस्त्यसंहिता इत्यादि आगममें कहीहुई पूजाके अनुसार दशावरण पूजा करे । आरती, धूप, दीप और अनेकप्रकारकी नैवेद्योंसे मेरा पूजनकरे । नीराजन नाम पांचवर्त्तीकी आरती कहतेहैं ॥ २९ ॥ यह सब पदार्थ श्रद्धाके साथ निवेदनकरे; क्योंकि मैं ईश्वरभक्तिसे अर्पण कियेहुए

पदार्थोंका सेवन करताहूं । आगमकी विधि जाननेवाले उस पुरुषको पूजा होनेके बाद यथाविधिसे हवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ अगस्त्यमुनिने कुंड बनानेकी जो विधि कहीहै, उसके अनुसार कुण्ड बनाकर उसमें (अग्निमें) गुरुके दियेहुए मूलमंत्रसे या पुरुषसूक्तके मंत्रसे होम करे ॥ ३१ ॥ अथवा अग्निकुण्डहीकी अग्निमें चरुरूपी हविर्द्रव्यसे हवनकरे; उस ज्ञानवान् मनुष्यको "तपायेहुए सुवर्णके समान दीप्तिमान् व दिव्य अलंकारोंसे सुशोभित एक पुरुष [मैं ईश्वर] अग्निके बीचमें खडाहै; ऐसा होमके समय नित्य ध्यान करना चाहिये, इसके उपरान्त हनुमानादि पार्षदोंके लिये बलि देकर होम समाप्त करदे ॥ ३२ ॥ फिर मौनधारण करके मेरा ध्यान व मंत्रका प्रतिवर्ण स्मरणकरके, प्रेमयुक्त अंतःकरणसे मुझे ताम्बूल दे; उस ताम्बूलमें मुखमें सुगंधि आनेके लिये कर्पूरादि वस्तु डाले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मेरे लिये नृत्य, गान, स्तुतिपाठादि करावै, पृथ्वीपर

अगस्त्येनोक्तमार्गेणकुंडेनागमवित्तमः॥ जुहुयान्मूलमंत्रेणपुंसूक्तेनाथवाबुधः ॥ ३१ ॥ अथवौपासनाग्नौवाचरुणाहविषातथा ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यंदिव्याभरणभूषितम् ॥ ३२ ॥ ध्यायेदनलमध्यस्थंहोमकालेसदाबुधः ॥ पार्षदेभ्योबलिंदत्त्वाहोमशेषंसमापयेत् ॥ ३३ ॥ ततोजपंप्रकुर्वीतध्यायन्मांयतवाक्स्मरन् ॥ मुखवासंचतांबूलंदत्त्वाप्रीतिसमन्वितः ॥ ३४ ॥ मदर्थेनृत्यगीतादिस्तुतिपाठादिकारयेत् ॥ प्रणमेद्दंडवद्भूमौहृदयेमांनिधायच ॥ ३५ ॥ शिरस्याधायमद्दत्तंप्रसादंभावनामयम् ॥ पाणिभ्यांमत्पदेमूर्ध्निगृहीत्वाभक्तिसंयुतः ॥३६॥ रक्षमांघोरसंसारादित्युक्त्वाप्रणमेत्सुधीः ॥ उद्वासयेद्यथापूर्वंप्रत्यग्ज्योतिषिसंस्मरन् ॥ ३७॥ एवमुक्तप्रकारेणपूजयेद्विधिवद्यदि ॥ इहामुत्रचसंसिद्धिंप्राप्नोतिमदनुग्रहात् ॥ ३८ ॥

साष्टांग नमस्कार करे, हृदयमें मेरा नित्य चिंतनकरे ॥ ३५ ॥ मैं [राम] प्रसाद देताहूं ऐसी भावना करके उसको मस्तकपर धारणकरे, हाथसे मेरे चरण पकडकर भक्तिपूर्वक शिर नवावे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त उस बुद्धिसम्पन्न पुरुषको 'प्रभो' घोर संसारसे मेरी रक्षाकर ऐसी प्रार्थनाकरके नमस्कार करना चाहिये । फिर सुन्दर बुद्धिवाला पुरुष पहली कहीहुई विधिके अनुसार हृदयमें मेरा स्मरण करे, सारांश यह है कि, पहले जो ध्यान करीहुई जीवकलाका प्रतिमाके विषय आवाहन कराथा उसका विसर्जन करना; अर्थात् उस प्रतिमामें आवाहन कीहुई जीवकला विसर्जन करती समय अपनेमेंही प्रवेश करगई ऐसी भावनाकरे ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जो विधिसे मेरा पूजनकरे तो वह पुरुष मेरे अनुग्रहसे इसलोक और परलोक

में सिद्धिको पाताहै ॥ ३८ ॥ इसप्रकारसे जो निरन्तर मेरा भक्त मेरी पूजाकरे तो निःसंदेह मेरी सारूप्य मुक्तिको प्राप्त करलेगा ॥ ३९ ॥ यह अत्यन्त गुप्त व परम पवित्र पूजाविधि प्रत्यक्ष मैंने तुझको सुनाई । पहलेके बड़े २ योगी इसप्रकारसे अनुष्ठान करते आये हैं; जो मनुष्य नित्य उसको पढे वा सुने उसको निःसंदेह सर्व पूजाका फल मिलताहै । " ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले—हे पार्वति ! महापुरुष शेषावतार लक्ष्मणजीके प्रश्नकरने पर श्रीरामचंद्रजीने उन्हें अपनापूर्ण भक्त देख यह उत्तमोत्तम पूजाकी विधि उनको उपदेश की ॥ ४१ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी मायाका अवलम्बनकरके अज्ञानीके समान दुःखित मालूम पड़नेलगे (परन्तु वास्तवमें उन परमानन्दमय प्रभुको दुःख नहीं है) श्रीरामजी मुखसे हा सीते । हा सीते ।

मद्भक्तोयदिमामेवंपूजांचैवदिनेदिने ॥ करोतिममसारूप्यंप्राप्नोत्येवनसंशयः ॥ ३९ ॥ इदंरहस्यंपरमंचपावनंमयैवसाक्षात्कथितंसनातनम् ॥ पठत्यजस्रंयदिवाशृणोतियःससर्वपूजाफलभाङ्नसंशयः ॥ ४० ॥ एवंपरात्माश्रीरामःक्रियायोगमनुत्तमम् ॥ पृष्टःप्राहस्वभक्तायशेषांशायमहात्मने ॥ ४१ ॥ पुनःप्राकृतवद्रामोमायामालंब्यदुःखितः ॥ हासीतेतिवदन्नैवानिद्रांलेभेकथंचन ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्रकिष्किंधायांसुबुद्धिमान् ॥ हनूमान्प्राहसुग्रीवमेकांतेकपिनायकम् ॥ ४३ ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामितवैवाहितमुत्तमम् ॥ रामेणते कृतःपूर्वमुपकारोह्यनुत्तमः ॥ ४४ ॥ कृतघ्नवत्त्वयानूनंविस्मृतःप्रतिभातिमे ॥ त्वत्कृतेनिहतोवालीवीरस्त्रैलोक्यसंमतः ॥ ४५ ॥ राज्ये प्रतिष्ठितोऽसित्वंतारांप्राप्तोऽसिदुर्लभाम् ॥ सरामःपर्वतस्याग्रेभ्रात्रासहवसन्सुधीः ॥ ४६ ॥

कहकर विलाप करते हुये, उनको किसीभांतिसे नींद न आई ॥ ४२ ॥ इस अनंतरमें इधर किष्किन्धानगरी के बीच महाबुद्धिमान् हनुमान्जी एकान्तमें वानरराज सुग्रीवसे बोले ॥ ४३ ॥ " हे राजन् ! मैं आपके हितकी एक बात कहता हूं; इधर देखिये; पहले श्रीरामचंद्रजीने आपपर अत्युत्तम उपकार किया ॥ ४४ ॥ सो मुझे ज्ञात होताहै कि आपको वह याद नहीं इसकारण आपमें कृतघ्नताका दोष दिखाई देताहै । श्रीरामचंद्रजीने तुम्हारे ही लिये त्रिलोकीमें माननेके लायक शूरवीर वाली को मारडाला ॥ ४५ ॥ व तुमको राज्यपद प्राप्त कराय दिया । वालीके जीतेजी न प्राप्त होनेवाली ताराको पायकर तुमने रामको विसारदियाहै । वे महाज्ञानसंपन्न श्रीरामजी, भइयाके साथ पर्वतके शिखरपर रहकर ॥ ४६ ॥

एकाग्रचित्तसे तुम्हारी बाट देख रहेहैं । क्योंकि, उनका कर्त्तव्य कार्य बहुत बड़ाहै; और तुम इधर वानरजातिके स्वभावानुसार स्त्रीलंपट होकर वैठेहो उनकी तुम्हे खबर नहीं ॥ ४७ ॥ "सीताजीकी सुधि लादूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा करी;—पर अबतक उसके लिये कुछ उद्योग नहीं किया; अर्थात् आपका कृतघ्न होना प्रत्यक्ष दीखताहै । परन्तु विचार कीजिये; वालीके समान एकक्षणमें यमराजका गृह देखोगे" ॥ ४८ ॥ हनुमानूजीके ऐसे वचन सुनकर भयसे विह्वल हुए सुग्रीव हनुमानूजीसे कहने लगे; "हनुमन् ! तुमनें जो कहा वह सत्यहै ॥ ४९ ॥ इस लिये मैं अभी आज्ञा देताहूं; वैसेही आज्ञाके अनुसार तुम अति शीघ्र कार्य करो । जलदी चलनेवाले दशहजार वानर अभी दशों दिशाओंको भेजदो ॥ ५० ॥ वे सब सातों द्वीपोंमें जहां २ वानरहैं तिन सबको लावें, और एक पखवाड़ेके भीतर सब वानर यहां आनकर दिखाईदें ॥ ५१ ॥ और एक पखवाड़ेसे आगे

त्वदागमनमेकाग्रमीक्षतेकार्यगौरवात् ॥ त्वंतुवानरभावेनस्त्रीसक्तोनावबुद्ध्यसे ॥ ४७ ॥ करोमीतिप्रतिज्ञायसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ नकरोषिकृतघ्नस्त्वंहन्यसेवालिवद्द्रुतम् ॥ ४८ ॥ हनूमद्वचनंश्रुत्वासुग्रीवोभयविह्वलः ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसत्यमेवत्वयोदितम् ॥ ४९ ॥ शीघ्रंकुरुमदाज्ञांत्वंवानराणांतरस्विनाम् ॥ सहस्राणिदशेदानींप्रेषयाशुदिशोदश ॥ ५० ॥ सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयंतुते ॥ पक्षमध्येसमायांतुसर्वेवानरपुंगवाः ॥ ५१ ॥ येपक्षमतिवर्ततेतेवध्यामेनसंशयः ॥इत्याज्ञाप्यहनूमंतंसुग्रीवोगृहमाविशत् ॥ ५२ ॥ सुग्रीवाज्ञांपुरस्कृत्यहनूमान्मंत्रिसत्तमः ॥ तत्क्षणेप्रेषयामासहरीन्दशदिशःसुधीः ॥ ५३ ॥ अगणितगुणसत्त्वान्वायुवेगप्रचारान्वनचरगणमुख्यान्पर्वताकाररूपान् ॥ पवनहितकुमारःप्रेषयामासदूतानातिरभसतरात्मादानमानादितृप्तान् ॥ ५४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ ॥

जो बाहर रहेगा वह मेरे हाथसे मारा जायगा; इसमें अन्तर होनेवाला नहीं" ऐसी हनुमानूजीको आज्ञा देकर सुग्रीव गृहकार्यके लिये गये ॥ ५२ ॥ हनुमानूजी उत्तम बुद्धिमान्; व सुग्रीवके मंत्रिमंडलमें प्रमुख थे; उन्होंने वानरोंको सुग्रीवकी आज्ञा सुनाय दशों दिशाओंमें भेजदिया ॥ ५३ ॥ जो अगणित गुण और पराक्रमकारी पवनके समान वेगवाले सर्व वनचरोंमें मुख्य गणवाले और जिनका रूप तथा आकार पर्वतके समानहै, ऐसे दूत वानरोंको अतिवेगयुक्त अंतःकरणवाले अर्थात् श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी जिनको बड़ी भारी शीघ्रता होरही है ऐसे पवनके पुत्र हनुमानूजीने, दान सन्मानादिसे प्रसन्नकरके चारों ओरको भेजा ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीको क्रोधयुक्त देखकर सुग्रीवका समझाना और रामजीके पास आना। महादेवजी बोले, एकदिन प्रदोषकालमें श्रीरामचंद्रजी प्रवर्षण पर्वतके रत्नमय शिखरपर बैठेथे सीताजीके विरहसे उत्पन्नहुआ शोक न सहनकरके वे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ "हे लक्ष्मण ! देखो। हमारी सीता राक्षसने बलसे हरली ! वह भामिनी (स्त्री) जीवित है या मरगई, इसका मुझसे कोई निश्चय नहीं किया जाता ॥ २ ॥ कोईभी वह जीवित है ऐसा समाचार मुझे आकर सुनावे तो वह मानो मेरा अत्यन्त प्रियकार्य करेगा, जो वह साध्वी कहीं भी जीवती होवे तो ॥ ३ ॥ जिसप्रकार देवताओंने समुद्र मथनकर उससे अमृत निकाललिया, वैसेही मैं जो कुछ रोषकें वह करके उसको लेआऊंगा। हे भाई ! हमारी प्रतिज्ञाको सुनो—जिसने

श्रीमहादेवउवाच ॥ रामस्तुपर्वतस्याग्रेमणिसानौनिशामुखे ॥ सीताविरहजंशोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ पश्यलक्ष्मणमेसीताराक्षसेनहृतावलात् ॥ मृताऽमृतावानिश्चंतुनजानेऽद्यापिभामिनीम् ॥ २ ॥ जीवतीतिममब्रूयात्कश्चिद्वाप्रियकृत्समे ॥ यदिजानामितांसाध्वींजीवंतींयत्रकुत्रवा ॥ ३ ॥ हठादेवाहरिष्यामिसुधामिवपयोनिधेः ॥ प्रतिज्ञांशृणुमेभ्रातर्येनमेजनकात्मजा ॥ ४ ॥ नीतातंभस्मसात्कुर्यांसपुत्रवलवाहनम् ॥ हासीतेचंद्रवदनेवसंतीराक्षसालये ॥ ५ ॥ दुःखार्तामामपश्यंतीकथंप्राणान्धारिष्यसि ॥ चंद्रोऽपिभानुवद्भातिममचंद्राननांविना ॥ ६ ॥ चंद्रत्वंजानकींस्पृष्ट्वाकरैर्मांस्पृशशीतलैः ॥ सुग्रीवोऽपिदयाहीनोदुःखितंमांनपश्यति ॥ ७ ॥ राज्यंनिष्कंटकंप्राप्यस्त्रीभिःपरिवृतोरहः ॥ कृतघ्नोदृश्यतेव्यक्तंपानासक्तोऽतिकामुकः ॥ ८ ॥

मेरी जानकीको ॥ ४ ॥ लियाहै उसको पुत्र, सेना और वाहनोंके साथ मैं भस्मकर डालंगा। हे सीते ! हा चंद्रवदने ! राक्षसके घरमें रहनेसे ॥ ५ ॥ तुम दुःखके मारे व्याकुल हुई होगी। वैसेही तेरी दृष्टिसे मैं नहीं दीख पडता, तिससे तुम प्राणोंको कैसे धारण करती होगी ? इस चन्द्रमुखीके विरहमें यह चंद्र देखतेहुए मुझको सूर्यके समान प्रखर जान पडताहै ॥ ६ ॥ हे चंद्र ! प्रथम तू अपनी किरणोंसे जानकीको स्पर्शकर, उनके स्पर्श करनेसे तेरी किरणे शीतल होजायँगी। इसके उपरान्त उन शीतल किरणों को मेरे शरीरपर डाल। मुझे ज्ञात होताहै कि, सुग्रीव भी अब दयारहित होगया; क्योंकि मैं इतने दुःखमें पड़ाहूं, परन्तु वह मुझसे मिलनेकोभी नहीं आया ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव निष्कण्टक राज्यको पाय, खानपानमें आसक्तहो एकान्तमें अति

कामीके समान स्त्रियोंसे घिररहाहै, इसकारण उसका कृतघ्न होना प्रगटही है ॥ ८ ॥ शरदृतुका प्रारंभ हुआ, वह देखकरभी वह मेरी प्यारीकी सुधि लेने नहीं आया । इसकारण वह दुष्ट कृतघ्नी उपकार करनेवाले मुझको भूलगया है ॥ ९ ॥ मैं सीताके हरण करनेवाले राक्षसका वधकरनेवाला हूं; वैसेही नगर और बन्धु बांधवोंके साथ सुग्रीवका घातकर डालूंगा । जैसे वालीने मृत्यु पाई; वैसेही मेरे हाथसे आज सुग्रीवका अंत होगा" ॥ १० ॥ रामचंद्रजीको क्रोधित हुआ देखकर लक्ष्मणजीने कहा हे राम ! सुग्रीवका अंतःकरण दुष्ट है; इसकारण मैं अभी जाताहूं ॥ ११ ॥ उसका वधकरके आपके समीप आताहूं ? मुझे आज्ञा दीजिये, ऐसा कहकर लक्ष्मणजीने धनुष खड्ग और तरकश लेलिया ॥ १२ ॥ व जानेकी तैयारी की यह देखकर

नायातिशरदंपश्यन्नापिमार्गयितुंप्रियाम् ॥ पूर्वोपकारिणंदुष्टःकृतघ्नोविस्मृतोहिमाम् ॥ ९ ॥ हन्मिसुग्रीवमप्येवंसपुरंसहबांधवम् ॥ वालीयथाहतोमेऽद्यसुग्रीवोऽपितथाभवेत्॥१०॥इतिरुष्टंसमालोक्यराघवंलक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥ इदानीमेवगत्वाहंसुग्रीवंदुष्टमानसम्॥११॥ मामाज्ञापयहत्वातमायास्येरामतेंऽतिकम् ॥ इत्युक्त्वाधनुरादायखड्गंतूणीरमेवच ॥ १२ ॥ गंतुमभ्युद्यतंवीक्ष्यरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नहंतव्यस्त्वयावत्ससुग्रीवोमेप्रियःसखा ॥ १३ ॥ किंतुभीषयसुग्रीवंवालिवन्नहनिष्यसे ॥ इत्युक्त्वाशीघ्रमादायसुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥ ॥१४॥ आगत्यपश्चाद्यत्कार्यंतत्करिष्याम्यसंशयम्॥तथेतिलक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितोभीमविक्रमः ॥ १५ ॥ किष्किंधांप्रतिकोपेननिर्दहन्निववानरान् ॥ सर्वज्ञोनित्यलक्ष्मीकोविज्ञानात्मापिराघवः ॥ १६ ॥

रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा; "वत्स ! सुग्रीव मेरा प्यारा है, उसका तुम वध न करो ॥ १३ ॥ परंतु उस सुग्रीवको तुम वालीके समान मारा जायगा, कहकर भययुक्त करो और सुग्रीव क्या कहताहै; वह सुनकर यहाँ आओ ॥ १४ ॥ फिर जो कुछ कर्तव्य होगा, वह निश्चय करूंगा, इसमें कोई संशय नहीं । " महापराक्रमी लक्ष्मण 'अच्छा' कहकर अतिशीघ्र किष्किन्धाको गये ॥ १५ ॥ इस समय उनकी मुद्रा इतनी उग्र दीखतीथी कि उनके देखनेवालेको यह सब वानरोंको जलाकर भस्मकर देंगे, ऐसा मालूम होताथा । रामचंद्रजी भूत भविष्यत् और वर्तमानके जाननेवाले, वास्तविक लक्ष्मी (माया शक्ति) उनके निकट नित्य हैं (जिससे इनका वियोग कभी नहीं होता) निर्विषय ज्ञानहीका उनका स्वरूप है ॥१६॥

परन्तु जिस प्रकार कोई अज्ञान मनुष्यको लौकिक (जिसको समागम व वियोग होताहै, उसको) स्त्रीका वियोग होनेसे दुःख होताहै, वैसेही श्रीरामचंद्रजीने कष्टित होकर सीताजीके लिये शोककिया। वह प्रभु बुद्ध्यादिकोंके साक्षी और मायाके कार्योंसे परे हैं ॥ १७ ॥ उनको राग (प्रीति) लोभ इत्यादि विकार बिलकुल नहीं, फिर इन विकारोंसे उत्पन्न होनेवाला शोक उनको कैसे होसकताहै ! ब्रह्माजीकी प्रार्थना पूर्णकरने और राजा दशरथजीको ॥ १८ ॥ उनकी तपस्याका फल देनेके लिये उन प्रभुने यह मनुष्यवेष धारण कियाथा सर्व जन मायासे मोहित होकर अज्ञानयुक्तहैं ॥ १९ ॥ इनको मोक्ष कैसे मिलेगा, ऐसा विचार करते २ विष्णुजीने एक युक्ति सोची,—वह यह थी, सर्व मनु

सीतामनुशुशोचार्तःप्राकृतःप्राकृतामिव ॥ बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्यमायाकार्यातिवर्तिनः ॥ १७ ॥ रागादिरहितस्यास्यतत्कार्यंकथमुद्भवेत् ॥ ब्रह्मणोक्तमृतंकर्तुंराज्ञोदशरथस्यहि ॥ १८ ॥ तपसःफलदानायजातोमानुषवेषधृक् ॥ माययामोहिताःसर्वेजनाअज्ञानसंयुताः ॥ १९ ॥ कथमेषांभवेन्मोक्षइतिविष्णुर्विचिंतयन् ॥ कथांप्रथयितुंलोकेसर्वलोकमलापहाम् ॥ २० ॥ रामायणाभिधांरामोभूत्वामानुषचेष्टकः ॥ क्रोधंमोहंचकामंचव्यवहारार्थसिद्धये ॥ २१ ॥ तत्तत्कालेचितंगृह्णन्मोहयत्यवशाःप्रजाः ॥ अनुरक्तइवाशेषगुणेषुगुणवर्जितः ॥ २२ ॥ विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिःसाक्ष्यगुणान्वितः ॥ अतःकामादिभिर्नित्यमविलिप्तोयथानभः ॥ २३ ॥ विंदंतिमुनयःकेचिज्जानंतिसनकादयः ॥ तद्भक्तानिर्मलात्मानःसम्यग्जानंतिनित्यदा ॥ २४ ॥

ष्योंके पापका नाश करनेवाली रामायण नामक कथा लोकमें प्रसिद्ध कराई जाय ॥ २० ॥ इसलिये उन्होंने रामरूप धारणकर मनुष्यके समान व्यवहार किया, अलग २ विकारोंके उत्पन्न होनेसे कैसे २ व्यवहार होवेहैं, यह लोकोंको सुनाने और उसकी फलसिद्धिके लिये ॥ २१ ॥ तिस २ कालके योग्य व्यवहार स्वीकार करकै वह (ईश्वर) गुणके आधीन होनेवाली प्रजाको मोहित करताहै; और वस्तुतः गुणरहित होनेसेही सर्वगुणोंमें अनुरक्त हुआसा जाना जाताहै ॥ २२ ॥ वास्तविक वह विज्ञानपूर्णहै, उसकी शक्ति विज्ञानरूपही है, वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म देखताहै, परन्तु गुणयुक्त पदार्थोंसे भिन्न है, इसकारण जिस प्रकार आकाश पवनके लायेहुए मलसे मिला नहीं है, वैसेही वेभी कामादिद्वारा लिप्त नहींहैं ॥ २३ ॥ उसके स्वरूपका ज्ञान श्रुतिवाक्यके द्वारा कितनेक सनत्कुमारकी समान जानते हैं। उनकोही उसकी प्राप्ति हो

तीहै, जिनका अंतःकरण अत्यन्त शुद्ध है, वेही भक्त उसको भली भांति जानते हैं ॥ २४ ॥ भगवान् जन्मरहित होनेपरभी भक्तोंके मनोरथके अनुसार अवतार धारण करतेहैं ॥ इधर लक्ष्मणजी किष्किंधानगरीके समीप जाय पहुँचे ॥ २५ ॥ उन्होंने सर्व वानरोंको भय उत्पन्न करानेकी इच्छासे धनुषके रोदेकी भयंकर टंकार की। वानरगण किष्किंधाकी शहर पनाहपर खड़े थे, वे अज्ञानी लक्ष्मणजीको देखते ही ॥ २६ ॥ बड़े २ पाषाण और वृक्ष लेकर किलकिला शब्द करनेलगे, वानरोंको देख क्रोधयुक्त हो लक्ष्मणजीने लाल नेत्रकिये ॥ २७ ॥ वह महापराक्रमी पुरुष धनुष चढाय (धनुषपर रोदा चडाय) वानरोंको निर्मूल करनेके लिये स्थित हुये। इधर लक्ष्मणजीका आना सुनकर मुख्य

भक्तचित्तानुसारेणजायतेभगवानजः ॥ लक्ष्मणोऽपितदागत्वाकिष्किंधानगरांतिकम् ॥२५॥ ज्याघोषमकरोत्तीव्रंभीषयन्सर्ववानरान् ॥ तंदृष्ट्वाप्राकृतास्तत्रवानरावप्रमूर्धनि ॥२६॥ चक्रुःकिलकिलाशब्दंधृतपाषाणपादपाः ॥तान्दृष्ट्वाक्रोधताम्राक्षोवानराँल्लक्ष्मणस्तदा ॥२७॥ निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तोधनुरानम्यवीर्यवान् ॥ ततःशीघ्रंसमापत्यज्ञात्वालक्ष्मणमागतम् ॥ २८ ॥ निवार्यवानरान्सर्वानंगदोमंत्रिसत्तमः ॥ गत्वालक्ष्मणसामीप्यंप्रणनामसदंडवत् ॥२९॥ ततोऽगदंपरिष्वज्यलक्ष्मणःप्रियवर्धनः ॥ उवाचवत्सगच्छत्वंपितृव्यायनिवेदय ॥३०॥ मामागतंराघवेणचोदितंरौद्रमूर्तिना ॥ तथेतित्वरितंगत्वासुग्रीवायन्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणःक्रोधताम्राक्षःपुरद्वारिबहिःस्थितः ॥ तच्छ्रुत्वातीवसंत्रस्तःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ ३२ ॥ आहूयमंत्रिणांश्रेष्ठंहनूमंतमथाऽब्रवीत् ॥ गच्छत्वमंगदेनाशुलक्ष्मणंविनयान्वितः ॥ ३३ ॥

प्रधान अंगदजी वहाँ शीघ्र चलेआये, उन्होंने वानरोंको निवारणकरके लक्ष्मणजीके निकट जाय उनको दंडवत् प्रणाम किया ॥ २८ ॥ तब प्रियजनकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मणजी अंगदको हृदयमें लगायकर कहने लगे। "हे वत्स! तुम जाओ और अपने चाचासे कहो कि ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ क्रोधकरके श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप बहुत भयंकर होगयाहै; और उनके कहनेसे मैं आयाहूं" अंगदने 'अच्छा' कहा, व सुग्रीवके पास जाय सब वृत्तान्त निवेदन किया कि ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण नगरीके द्वारके बाहर खडेहैं; उनके नेत्र मारेक्रोधके लाल २ होरहेहैं; यह सुनतेही वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ३२ ॥ सुग्रीवने अपने मुख्य मंत्री हनुमान्जीको बुलाकर कहा कि; "तुम अभी अंगदके साथ लक्ष्मणजीके पास

जाय नम्रतापूर्वक ॥ ३३ ॥ भाषण करके क्रोधित हुए उन वीरको समझाओ और फिर हौले २ उनको मंदिरमें ले आओ " । हनुमान्‌जीको भेजनेके पश्चात् वानरराज सुग्रीवने तारासे कहा ॥ ३४ ॥ "हे तारे ! तुम लक्ष्मणके सामने जाओ और कोमल वचन कहकर उन्हे समझाओ बुझाओ; जब वह शांत होजाय, तब उनको अंतःपुरमें लाकर मुझसे मिलाओ यह कार्य तुम्हारे हाथसे विना विघ्नके सिद्ध होजायगा ऐसा मुझे पूरा भरोसा है । " ॥ ३५ ॥ तारा 'बहुत अच्छा' कह बीचके दालानमें जहाँ स्त्रियोंके बागमें आनेकी मर्यादाका स्थान;—वहाँ जा बैठी इधर पवनकुमार हनुमान्‌जी अंगदके साथ लक्ष्मणजीके समीप ॥ ३६ ॥ जाय पहुँचे । व शिर नवाय वंदनकर भक्तिपूर्वक उनसे बोले;-- "हे वीर ! महाभाग्यशाली

सांत्वयन्कोपितंवीरंशनैरानयमंदिरम् ॥ प्रेषयित्वाहनूमंतंतारामाहकपीश्वरः ॥३४॥ त्वंगच्छसांत्वयंतीतंलक्ष्मणंमृदुभाषितैः ॥ शांतमंतःपुरंनीत्वापश्चाद्दर्शयमेऽनघे ॥ ३५ ॥ भवत्वितितितस्तारामध्यकक्षंसमाविशत् ॥ हनूमानंगदेनैवसहितोलक्ष्मणांतिकम् ॥ ३६ ॥ गत्वाननामशिरसाभक्त्यास्वागतमब्रवीत् ॥ एहिवीरमहाभागभवद्गृहमशंकितम् ॥ ३७ ॥ प्रविश्यराजदारादीन्दृष्ट्वासुग्रीवमेवच ॥ यदाज्ञापयसेपश्चात्तत्सर्वंकरवाणिभोः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंभक्त्याकरेगृह्यसमारुतिः ॥ आनयामासनगरमध्याद्राजगृहंप्रति ॥ ३९ ॥ पश्यंस्तत्रमहासौधान्यूथपानांसमंततः ॥ जगामभवनंराज्ञःसुरेंद्रभवनोपमम् ॥४०॥ मध्यकक्षेगतातत्रताराताराधिपानना ॥ सर्वाभरणसंपन्नामदरक्तांतलोचना ॥४१॥ उवाचलक्ष्मणंनत्वास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ याहिदेवरभद्रंतेसाधुस्त्वंभक्तवत्सलः ॥ ४२ ॥

पुरुष ! आइये, आपका आना बहुत अच्छा हुआ । घर आपहीका है; मनमें कुछभी शंका न कीजिये ॥ ३७ ॥ अब चलिये राजपत्नियोंको भेटिये; व सुग्रीवसे मिलिये; हे महाराज ! इसके उपरान्त आप जो कुछ आज्ञा दोगे; वह मैं सब करूंगा" ॥ ३८ ॥ यह कहकर हनुमान्‌जीने भक्तिसहित लक्ष्मणजीका हाथ हाथसे पकड़लिया; और नगरके बिचले मार्गसे राजमंदिरमें ले आये ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणजी नगरीमें जगह २ वानर सेनापतियोंके बड़े २ गृह अवलोकन करतेहुये राजमंदिरको गये, वह राजमंदिर इन्द्रके गृहके समान उपमावाला होकर शोभायमान है ॥४०॥ यहांपर बिचले दालानमें तारा बैठीथी उस चंद्रवदनीके अंगपर सर्व प्रकारके अलंकार थे । जवानीके मदसे जिसके नेत्रोंके प्रान्त कुछेक लाल हैं ॥ ४१ ॥ हास्यकरके बोली, उसका स्वभावही है । उस ताराने हँसकर लक्ष्मणजीसे कहा,--"आओ देवर तुम्हारा कल्याण हो तुमही सज्जन व

भक्तविषयमें परमदयालु हो ॥ ४२ ॥ वानरराज (सुग्रीव) तुम्हारा भक्त व सेवक है; फिर उसपर कोप काहेको करो हो ? उसने बहुत दिन तक दुःख भोगा है; विश्राम या सुख भोगनेका अवसर नहीं मिला; अब आप लोगोंने दुःखकी राशिसे उसकी रक्षा की; आपके अनुग्रहसे सुग्रीवको सुख प्राप्त हुआ, उसने तुम्हारी मित्रता प्राप्त की, अर्थात् वह महाबुद्धिमान् है ऐसा जान पड़ता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ परन्तु वानरजातिके स्वभावानुसार वह विषयभोगमें आसक्त हो श्रीरामचंद्रकी सेवा करनेके लिये नहीं आया। हे समर्थ ! अब शीघ्रही अनेक देशोंके वानर यहां आते हैं ॥ ४५ ॥ हे रघुकुलोत्तम ! सब दिशाओंसे बड़े २ पर्वताकार प्रचण्ड वानरोंको बुलानेके लिये दशहजार वानरदूत भेजेगये

किमर्थंकोपमाकार्षीर्भक्तेभृत्येकपीश्वरे ॥ बहुकालमनाश्वासंदुःखमेवानुभूतवान् ॥ ४३ ॥ इदानींबहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः ॥ भवत्प्रसादात्सुग्रीवःप्राप्तसौख्योमहामतिः ॥४४॥ कामासक्तोरघुपतेःसेवार्थंनागतोहरिः ॥ आगमिष्यंतिहरयोनानादेशगताःप्रभो ॥ ४५ ॥ प्रेषितादशसाहस्राहरयोरघुसत्तम ॥ आनेतुंवानरान्दिग्भ्योमहापर्वतसन्निभान् ॥ ४६ ॥ सुग्रीवःस्वयमागत्यसर्ववानरयूथपैः ॥ वधायिष्यतिदैत्यौघान्रावणंचहनिष्यति ॥४७॥ त्वयैवसहितोऽद्यैवगंतावानरपुंगवः ॥ पश्यांतर्भवनंतत्रपुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वासुग्रीवमभयंदत्त्वानयसहैवते ॥ तारायावचनंश्रुत्वाक्रुशक्रोधोऽथलक्ष्मणः ॥ ४९ ॥ जगामांतःपुरंयत्रसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ रुमामालिंग्यसुग्रीवःपर्यंकेपर्यवस्थितः ॥ ५० ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत् ॥ तंदृष्ट्वालक्ष्मणःक्रुद्धोमदविह्वलितेक्षणम् ॥ ५१ ॥

हैं ॥ ४६ ॥ सुग्रीव अपने आप जाकर वानरसेनापतियोंके हाथसे दैत्योंके समूहका नाश कराय रावणका वध करैगा ॥ ४७ ॥ वह वानरराज तुम्हारे साथ आजही श्रीरामचंद्रजीके पास जायगा। हमारा गृहका अन्तःपुर देखिये। वहाँपर स्त्री पुत्र और सम्बधियोंके साथ सुग्रीव बैठाहै, उसको भेटकर अभय दे अपने साथ लेजाओ" ॥ ४८ ॥ ताराके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीका क्रोध धीरे २ कम होता चला; और वह उस रनिवासमें गये कि जहांपर वानरराज सुग्रीव थे ॥ ४९ ॥ सुग्रीव अपनी स्त्री रुमाको हृदयसे लगाए पलँगपर पड़ेथे। लक्ष्मणजीको देख वह अतिशय भयभीत और गर्वगलित हो वैसेही उठ बैठे ॥ ५० ॥ सुग्रीवजीके नेत्र मदसे विह्वल होरहे थे। वह स्थिति देख क्रोधित हो लक्ष्मणजी सुग्रीव

जीसे बोले—"रे दुष्ट दुराचारी ! तैंने रामको भुलादिया ॥ ५१ ॥ जिसने वालीके समान वीरका वधकिया, वह राम हाथमें बाण लेकर आज तेरी बाट जोहरहे हैं [अथवा जिसने पराक्रमी वालीका वध किया है वह बाण आज तेरी बाट देखरहा है] तू मेरे हाथसे मरण पायकर वालीके मार्गमें जायगा" ॥ ५२ ॥ जब लक्ष्मणजीने इसप्रकार अत्यन्त कठोर वचन कहे, तब वीरहनुमान्‌जीने उनसे कहा "महाराज ! इस प्रकार क्यों कहतेहो ? ॥ ५३ ॥ इस वानरराजकी श्रीरामजीमें तुमसे अधिक भक्ति है; इसकारण यह रामजीका कार्य करनेको निरन्तर जागते हैं । यह रामको भूले नहीं हैं ॥ ५४ ॥ हे वीर । चारों ओरसे यह करोंडों वानर आते हुए देखो । यह मंडली सीताजीकी खोजके लिये शीघ्रही

सुग्रीवंप्राहदुर्वृत्तविस्मृतोऽसिरघूत्तमम् ॥ वालीयेनहतोवीरः[1]सवाणोद्यप्रतीक्षते ॥५२॥ त्वमेववालिनोमार्गंगमिष्यसिमयाहतः ॥ एवमत्यंतपरुषंवदंतंलक्ष्मणंतदा ॥ ५३ ॥ उवाचहनुमान्वीरःकथमेवंप्रभाषसे ॥ त्वत्तोऽधिकतरोरामेभक्तोयंवानराधिपः ॥ ५४ ॥ रामकार्यार्थमनिशंजागर्तिनतुविस्मृतः ॥ आगताःपरितःपश्यवानराःकोटिशःप्रभो ॥५५॥ गमिष्यंत्याचिरेणैवसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ साधयिष्यतिसुग्रीवोरामकार्यमशेषतः ॥ ५६ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणंसंप्रपूजयत् ॥ ५७ ॥ आलिंग्यप्राहरामस्यदासोऽहंतेनरक्षितः ॥ रामःस्वतेजसालोकान्क्षणार्धेनैवजेष्यति ॥५८॥ सहायमात्रमेवाहंवानरैःसहितः प्रभो ॥ सौमित्रिरपिसुग्रीवंप्राहकिंचिन्मयोदितम् ॥५९॥ तत्क्षमस्वमहाभागप्रणयाद्भाषितंमया ॥ गच्छामोऽद्यैवसुग्रीवरामास्तिष्ठतिकानने॥६०॥

जायगी ॥ ५५ ॥ और यह सुग्रीव सीताकी सुधि इत्यादि रामचंद्रजीके सर्व कार्य करेंगे, कोई अवशिष्ट रखनेवाले नहीं" हनुमान्‌जीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी लज्जितहुए ॥ ५६ ॥ फिर सुग्रीवने अर्घ्यपाद्य इत्यादिसे भलीभाँति श्रीलक्ष्मणजीकी पूजा की; पुनः लक्ष्मणजीसे मिलकर सुग्रीव कहनेलगे " हे लक्ष्मण ! मैं रामका दासहूं । उन्होंने मेरी रक्षा कीहै ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी अपने तेजसे आधेक्षणके बीचमें सबलोकोंको जीतसकते हैं [उनको सहायकी आवश्यकता नहीं] हे वीर ! सर्व वानरोंके साथ मैं तो केवल उनका मित्रमात्र सहायहूं" ॥ ५८ ॥ लक्ष्मणजी सुग्रीवसे बोले "हे महाभाग्यशाली पुरुष ! मैंने जो कुछ प्रेमके कोपसे कहा वह क्षमा करना ॥ ५९ ॥ हे सुग्रीव ! रामजी वनमें अकेलेही हैं; इसकारण हम आज

१ सबाणः—बाणेन सहितः रामः । बाणसे युक्त रामजी-या स बाणः-वह बाण ।

ही उनके पास चलें । क्योंकि जानकीके विरहसे उन्हें दुःख होता होगा" ॥ ६० ॥ वानरराज [सुग्रीव] 'अच्छा तो चलिये, कहकर लक्ष्मणजीके साथ रथमें बैठे; और वानरोंको साथ ले श्रीरामचंद्रजीके पास आए ॥ ६१ ॥६२॥ उनकी सवारीका ठाठ कहांतक वर्णन करें. नगाड़े, नौबत अनेक जातियोंके अगणित रीछ, वानर, शुभ्रच्छत्र, और चँवरके योगसे सुग्रीवजी शोभायमान थे । नील अंगद हनुमानादि वानरभी उनके साथ थे. ऐसे ठाटसे वह श्रीरामचंद्रजीके पास जाय पहुँचे ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ सीताकी सुधिके लिये वानरराजका वानरयूथोंको भेजना ॥ श्रीमहादेवजी कहतेहैं, मृगचर्मको धारण किये, श्यामरंगवाले, जटामुकुटसे

एकएवातिदुःखार्तोजानकीविरहात्प्रभुः ॥ तथेतिरथमारुह्यलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ ६१ ॥ वानरैःसहितोराजाराममेवान्वपद्यत ॥६२॥ भेरीमृदंगैर्बहुऋक्षवानरैःश्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्चशोभितः ॥ नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैःसमावृतोराघवमभ्यगाद्धरिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ दृष्ट्वारामंसमासीनंगुहाद्वारिशिलातले ॥ चैलाजिनधरं श्यामंजटामौलिविराजितम् ॥१॥ विशालनयनंशांतंस्मितचारुमुखांबुजम् ॥ सीताविरहसंतप्तंपश्यंतंमृगपक्षिणः ॥ २ ॥ रथाद्दूरात्समुत्पत्यवेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ रामस्यपादयोरग्रेपेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥ रामःसुग्रीवमालिंग्यपृष्ट्वानामयमंतिके ॥ स्थापयित्वायथान्यायंपूजयामासधर्मवित् ॥ ४ ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठंसुग्रीवोभक्तिनम्रधीः ॥ देवपश्यसमायांतींवानराणांमहाचमूम् ॥ ५ ॥ कुलाचलाद्रिसंभूतामेरुमंदरसन्निभाः ॥ नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनःपर्वतोपमाः ॥ ६ ॥

शोभायमान ॥ १ ॥ विशालनेत्र, शान्त, मन्दहास्यसे युक्त, सुन्दरमुखारविंदवाले, सीताजीके विरहसे संतापित, मृग और पक्षियोंको देखते हुए ॥ २ ॥ गुहाके द्वारपर शिलापै रामजीको विराजमान देख, भक्तिसे युक्त सुग्रीव और लक्ष्मण रथमेंसे एकसाथ उतरकर श्रीरामजीके चरणोंपर आय पडे ॥ ३ ॥ श्रीरामजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाया, कुशलप्रश्न करके पास बैठाया; और उनका यथायोग्य सत्कार किया किस प्रसंगपर कैसा व्यवहार करना चाहिये; यह धर्म भलीभांति जानतेथे ॥ ४ ॥ सुग्रीवका अंतःकरण भक्तिके योगसे रामचरणमें नम्र होगया था प्रथम दर्शन पातेही वह रामचंद्रजीसे बोले,—"हे देव ! देखिये, वानरोंकी प्रचण्ड सेना आतीहै ॥ ५ ॥ इनमेंसे अनेकोंकी उत्पत्ति हिमालयादि कुलाचलों

पर हुईहै; और इनमेंसे अनेक मेरु या मन्दर पर्वतके समान आकारवाले हैं । अनेक प्रकारके द्वीप, नदियों, पहाड़ोंपर रहनेवाले पर्वतके समान यह वानरहैं ॥ ६ ॥ जैसी इच्छाहो वैसाही रूप धारण करनेवाले यह असंख्य वानर चलेआते हैं; इन सबने देवअंशसे अवतार लियाहै । यह सबही युद्ध करनेमें निपुण हैं ॥ ७ ॥ हेप्रभो ! इनमेंसे किसीकी शक्ति एक हाथीके समान; किसीकी दशहाथीके समान है, कितनेही दशहजार हाथीके समान सामर्थ्य रखतेहैं और दूसरे कुछ जनोंके बलका कुछ प्रमाणही नहीं कहा जाता ॥ ८ ॥ कितनोंकी अंगकांति काजलके पर्वतके समान कालीहै; कोई सुवर्णके समानहैं, किन्हीका मुखप्रान्त रक्तवर्ण है ऐसेही दूसरोंकी पूंछे लम्बी २ हैं ॥ ९ ॥ कोई शुद्ध स्फटिक मणिके समान दिखलाई देतेहैं; कितनेक राक्षसोंके समान मालूम होतेहैं, सर्व वानरोंके मनमें युद्धकी इच्छाहै और इसीलिये वे गर्जना [बुभुःकार] करतेहुए चारों ओरसे

असंख्याताःसमायांतिहरयःकामरूपिणः ॥ सर्वेदेवांशसंभूताःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ७ ॥ अत्रकेचिद्गजबलाःकेचिद्दशगजोपमाः ॥ गजायुतबलाःकेचिदन्येऽमितबलाःप्रभो ॥८॥ केचिदंजनकूटाभाःकेचित्कनकसन्निभाः ॥ केचिद्रक्तांतवदनादीर्घवालास्तथापरे ॥ ९ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाःकेचिद्राक्षससन्निभाः ॥ गर्जंतःपरितोयांतिवानरायुद्धकांक्षिणः ॥१०॥ त्वदाज्ञाकारिणःसर्वेफलमूलाशनाःप्रभो ॥ ऋक्षाणामधिपोवीरोजांबवान्नामबुद्धिमान् ॥११॥ एषमेमंत्रिणांश्रेष्ठःकोटिभल्लूकवृंदपः ॥ हनूमानेषविख्यातोमहासत्वपराक्रमः ॥१२॥ वायुपुत्रोऽतितेजस्वीमंत्रीबुद्धिमतांवरः ॥ नलोनीलश्चगवयोगवाक्षोगंधमादनः ॥ १३ ॥ शरभोमैंदवश्चैवगजःपनसएवच ॥ वलीमुखो दधिमुखःसुषेणस्तारएवच ॥ १४ ॥

इधर चले आतेहैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! यह सबजने तुम्हारी आज्ञाका मान्यकरनेमें सिद्धहैं; इनको चेतानेकी अपेक्षा नहीं, या निर्वाहके लिये इनको अन्य सामग्रीभी नहीं देनी पड़ती, क्योंकि यह वनके फल मूल भक्षणकरके रहते हैं । यह रीछोंका राजा जाम्बवान् है; शरीरकी सामर्थ्यके अनुसार इसकी बुद्धिका वैभवभी असाधारणहै ॥ ११ ॥ मंत्र [सलाह] देनेके काममें इसके जोड़का दूसरा नहींहैं; इकला यही करोडों रीछोंका स्वामीहै । यह हनुमान् है, इसके दृढ़ निश्चय और पराक्रमभी सर्वमें विख्यात हैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार इस पवनकुमारका तेज अतिशय बिलक्षण दीखता है वैसेही यह मंत्री व उत्तम बुद्धिमान् भी है । नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन ॥ १३ ॥ शरभ, मैन्द, गज, पनस; बलीमुख, सुषेण; तार ॥ १४ ॥

मेरी सेनामें यह सब एक २ शूर वानरसमूहोंके मुख्य अधिपति हैं; तिनमें यह हनुमान्‌का पिता केसरी महाबलवान् है । हे राम ! यह मैंने अपनी सेनाके मुख्य २ नायकोंके नाम तुम्हें सुनाये ॥ १५ ॥ यह समस्त दृढनिश्चयी; महाबुद्धिमान् व इन्द्रके समान बलवान् हैं; इनमेंसे प्रत्येक करोड़ों वानरोंके अनेक यूथोंका स्वामी है ॥ १६ ॥ हे राम ! यह सर्व, देवताओंके अंशसे जन्म लेनेके कारण आपकी आज्ञामें रहनेवाले हैं; यह भाग्यशाली वानर वालीका पुत्र अंगद है; इसका नाम सर्वस्थानोंमें प्रसिद्धहै ॥ १७ ॥ इस वीरकी शक्तिभी वालीके समान है; यह राक्षसोंकी सेनाका नाश करेगा; यह व और दूसरे वानर तुम्हारे कार्यके लिये प्राणदेनेको तैयार हैं ॥ १८ ॥ इनके युद्ध करनेके शस्त्र पर्वतोंके शिखर हैं;

केसरीचमहासत्त्वःपिताहनुमतोबली ॥ एतेमेयूथपारामप्राधान्येनमयोदिताः ॥ १५ ॥ महात्मानोमहावीर्याःशक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ एते प्रत्येकतःकोटिकोटिवानरयूथपाः ॥ १६ ॥तवाज्ञाकारिणःसर्वेसर्वेदेवांशसंभवाः ॥ एषवालिसुतःश्रीमानंगदोनामविश्रुतः ॥ १७ ॥ वालितुल्यबलोवीरोराक्षसानांबलांतकः ॥ एतेचान्येचबहवस्त्वदर्थेत्यक्तजीविताः ॥ १८ ॥ योद्धारःपर्वताग्रैश्चनिपुणाःशत्रुघातने ॥ आज्ञापयरघुश्रेष्ठसर्वेतेवशवर्तिनः ॥ १९ ॥ रामःसुग्रीवमालिंग्यहर्षपूर्णाश्रुलोचनः ॥ प्राहसुग्रीवजानासिसर्वंत्वंकार्यगौरवम् ॥ २० ॥ मार्गणार्थंहिजानक्यानियुंक्ष्वयदिरोचते ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंसुग्रीवःप्रीतमानसः ॥ २१ ॥ प्रेषयामासबलिनोवानरान्वानरर्षभः ॥ दिक्षु सर्वासुविविधान्वानरान्प्रेष्यसत्वरम् ॥ २२ ॥ दक्षिणांदिशमत्यर्थंप्रयत्नेनमहाबलान् ॥ युवराजंजांबवंतंहनूमंतंमहाबलम् ॥ २३ ॥

शत्रुका घात करनेके काममें सबही निपुण हैं । हे रघुवीर ! कुछ आज्ञा दीजिये; हम सब तुम्हारे अधीनमें हैं ॥ १९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको प्रेमसे हृदय लगा लिया; उनके नेत्रोंमें आनंदके आंसू आगये । रामचंद्रजी बोले,—" हे सुग्रीव ! तुम जानतेही हो कि, मुझको कौनसा कार्य कराना है ॥ २० ॥ इसलिये जैसा तुम्हारे मनमें आवे वैसेही इनसे जानकीका समाचार लानेको कहो [जो जिस दिशाको ढूंढने योग्यहो उसको वहींपर भेजो.]" श्रीरामचंद्रजीके वचनसुनकर सुग्रीवके मनको संतोष हुआ ॥ २१ ॥ वानरराज सुग्रीवने महाबलवान् वानरोंके भेजनेका विचार किया. इसप्रकार इधर सब दिशाओंमें अनेक वानर भेजकर ॥ २२ ॥ दक्षिणदिशामें केवल महाबलवान् युवराज

(अंगद) जांबवान्, महासामर्थ्यवाले हनुमान् ॥ २३ ॥ नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविदको अति यत्नके साथ भेजा. क्योंकि सुग्रीवको मालूमथा कि, सारी सेनामें यह अतिशय बलवान् है; जब वे चले तब सुग्रीवने उनसे कहा ॥ २४ ॥ "तुम सब जने बड़े यत्नके साथ उन सुन्दर जानकीजीकी सुधि लाओ और एक मासके बचते हुए आजाओ। मेरी यह आज्ञा नित्य याद रखियो [भूलियो मत] ॥ २५ ॥ हे वानरगण! यदि विना जानकीकी सुधि पाये एक मासके पीछे जो कोई एक दिनभी अधिक लगा देगा वह मेरे हाथसे प्राणान्त दंड पावैगा इसे भली भाँति याद रक्खो" ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन महापराक्रमी वानरोंको भेजकर व श्रीरामचंद्रजीको वंदनाकर सुग्रीवजी उनके समीप बैठ

नलंसुषेणंशरभंमैंदंद्विविदमेवच ॥ प्रेषयामाससुग्रीवोवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ विचिन्वंतुप्रयत्नेनभवंतोजानकींशुभाम् ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वंमच्छासनपुरःसराः ॥ २५ ॥ सीतामदृष्ट्वायदिवोमासादूर्ध्वंदिनंभवेत् ॥ तदाप्राणांतिकंदंडंमत्तःप्राप्स्यथवानराः ॥ २६ ॥इति प्रस्थाप्यसुग्रीवोवानरान्भीमविक्रमान् ॥ रामस्य पार्श्वेश्रीरामंनत्वाचोपविवेशसः ॥ २७ ॥ गच्छंतंमारुतिंदृष्ट्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ अभिज्ञानार्थमेतन्मेह्यंगुलीयकमुत्तमम् ॥२८॥ मन्नामाक्षरसंयुक्तंसीतायैदीयतांरहः ॥ अस्मिन्कार्येप्रमाणंहित्वमेवकपिसत्तम ॥ जानामिसत्त्वंतेसर्वंगच्छपंथाःशुभस्तव ॥ २९ ॥ एवंकपीनांराज्ञातेविसृष्टाःपरिमार्गणे ॥ सीतायाअंगदमुखाबभ्रमुस्तत्रतत्रह ॥३० ॥ भ्रमंतो विंध्यगहनेददृशुःपर्वतोपमम् ॥ राक्षसंभीषणाकारंभक्षयंतंमृगान्गजान् ॥ ३१ ॥

गये ॥ २७ ॥ हनुमान्जीको जानेके लिये तैयार देखकर उनसे श्रीरामचंद्रजीने कहा; हे हनुमान्! पहचानके लिये यह मेरी मुद्रिका (अँगूठी) लेजाओ; और एकान्तमें सीताको देना; इस अँगूठीपर मेरे नामके अक्षर खुद रहे हैं ॥ २८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! मुझको भरोसा है कि—यह कार्य तुम्हारे हाथसे सिद्ध होगा; क्योंकि तुम्हारा बल और बुद्धि वैभव मैं भली भाँति जानताहूं। इस कारण अभी जाओ—जिधर जाओगे उधरका मार्ग तुम्हैं सुखकर व फलदायक होवै" ॥ २९ ॥ इसप्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजे हुए व अंगदादि वानर सीताजीकी खोजके लिये पृथ्वीपर इधर उधर घूमने लगे ॥३०॥ फिरते २ विंध्याचलके पहाड़ी जंगलमें एक प्रचंड राक्षस उनको दिखाई दिया उसका शरीर पर्वतकी

समान भयंकर था । हाथसे पकडकर वह मृग हस्ती इत्यादि पशुओंको भक्षण कररहाथा ॥ ३१ ॥ वानरोंमेंके कितने एक वीरोंको "यही रावण है" ऐसा जान पड़ा; इसलिये उन्होंने बडा किलकिला शब्दकर मारे घूसोंके क्षणभरमें उसको मार डाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त जिससे कि, इसके मारनेके काममें कुछभी श्रम नहीं पड़ा, इससे यह रावण नहीं है । ऐसे कहकर एक बड़े भारी दूसरे वनमें गये; वहाँपर यह वानर वीर प्यासके मारे व्याकुल हुए परन्तु पानी कहीं नहीं मिला ॥ ३३ ॥ वनमें घूमते २ उनके कंठ, अधर और तालुवे सूख गये; फिर तृणवेलोंसे ढकी हुई एक बड़ी भारी गुहा उन्होंने देखी ॥ ३४ ॥ उसके मुखसे क्रौंच व हंस पक्षी बाहर निकले, उनके पंख भीगे हुये देखकर इसमें निःसंदेह

रावणोऽयमितिज्ञात्वाकेचिद्वानरपुंगवाः ॥ जघ्नुःकिलकिलाशब्दंमुंचंतोमुष्टिभिःक्षणात् ॥३२॥ नायंरावणइत्युक्त्वाययुरन्यन्महद्वनम् ॥ तृषार्ताःसलिलंतत्रनाविंदन्हरिपुंगवाः ॥ ३३ ॥ विभ्रमंतोमहारण्येशुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥ ददृशुर्गह्वरंतत्रतृणगुल्मावृतंमहत् ॥ ३४ ॥ आर्द्रपक्षान्क्रौंचहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः ॥ अत्रास्तेसलिलंनूनंप्रविशामोमहागुहाम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाहनुमानग्रेप्रविवेशतमन्वयुः ॥ सर्वेपरस्परंधृत्वाबाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥ ३६ ॥ अंधकारेमहद्दूरंगत्वाऽपश्यन्कपीश्वराः ॥ जलाशयान्मणिनिभतोयान्कल्पद्रुमोपमान् ॥ ॥३७॥ वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ॥ गृहान्सर्वगुणोपेतान्मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥ ३८ ॥ दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैःपरिवर्जितान् ॥ विस्मितास्तत्रभवनेदिव्येकनकविष्टरे ॥ ३९ ॥

पानी है । हम इस प्रचंड गुफामें प्रवेश करैं ॥ ३५ ॥ यह कहकर प्रथम हनुमान्‌जी उस गुफामें घुसे, फिर उनके पीछे २ सब गये सबने परस्पर एक दूसरेकी बाँह पकडली । सबको ऐसी उत्कंठा हुई कि पानी कहां मिलता है ॥ ३६ ॥ वहांपर अँधेरेमें दूर तक चले गये पीछे उन वानरोंके सेनापतियोंने स्फटिकमणिके समान जलवाले स्वच्छ जलसे भरे सरोवरको देखा; उसके निकटही कल्पवृक्षकी समान ॥ ३७ ॥ पके हुए फलोंके बोझसे झुके हुए वृक्ष लग रहेथे; उसके मकरंदपर भौंरे बहुत थे; प्रत्येक वृक्षपर मन, या आधमन शहदकी मुहाल लग रहीथी । तैसेही इस स्थानमें सर्व सामग्रीसे युक्त, व रत्न वस्त्रादिकोंसे भरे हुए गृहथे ॥ ३८ ॥ उन गृहोंमें उत्तमोत्तम भोजनके पदार्थ पूर्ण हो रहेथे; परन्तु

मनुष्योंके वासका चिह्न कहीं दिखाई नहीं देता; तिससे समस्त वानर आश्चर्यसे चकित होगये इतनेहीमें वहांपर एक मंदिरके बीच दिव्य सुवर्णके सिंहासनपर ॥ ३९ ॥ ध्यानमें बैठी हुई एक योगिनी स्त्री इन वानरोंने देखी; उसके शरीरपर पुराने वस्त्रथे, परन्तु कान्तिभी जिधर तिधर छिटक रहीथी; उसके अंतःकरण रोकनेसे उत्पन्न होनेवाली योगसिद्धिको प्राप्त किये हुए वानरोंने देखा ॥ ४० ॥ वानर लोगोंने कुछ भक्तिपूर्वक और कुछ डरकरके उस महाभाग्यवती स्त्रीको नमस्कार किया, देवी उन वानरोंको देखकर बोली; तुम किस कारणसे यहांपर आये ? ॥ ४१ ॥ तुम्हारा स्थान कहां है ? तुम किसके दूतहो ? यहांपर बलात्कारसे प्रवेश करके इस मेरे स्थानको त्रास क्यों देतेहो ? यह प्रश्न

प्रभयादीप्यमानांतुददृशुःस्त्रियमेकलाम् ॥ ध्यायंतींचीरवसनांयोगिनींयोगमास्थिताम् ॥ ४० ॥ प्रणेमुस्तांमहाभाग।भक्त्याभीत्याच वानराः ॥ दृष्ट्वातान्वानरान्देवीप्राहयूयंकिमागताः ॥ ४१ ॥ कुतोवाकस्यदूतावामत्स्थानंकिंप्रधर्षथ ॥ तच्छ्रुत्वाहनुमानाहश्शृणुवक्ष्या मिदेविते ॥ ४२ ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्राजादशरथःप्रभुः ॥ तस्यपुत्रोमहाभागोज्येष्ठोरामइतिश्रुतः ॥ ४३ ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यस भार्यःसानुजोवनम् ॥ गतस्तत्रहृताभार्यातस्यसाध्वीदुरात्मना ॥ ४४ ॥ रावणेनततोरामःसुग्रीवंसानुजोययौ ॥ सुग्रीवोमित्रभावेनराम स्याप्रियवल्लभाम् ॥ ४५ ॥ मृगयध्वामितिप्राहततोवयमुपागताः ॥ ततोवनंविचिन्वंतोजानकींजलकांक्षिणः ॥ ४६ ॥ प्रविष्टागह्वरंघो रंदैवादत्रसमागताः ॥ त्वंवाकिमर्थमत्रा।सिकावात्वंवदनःशुभे ॥ ४७ ॥

सुनकर हनुमान्‌जीने उत्तर दिया कि, देवि ! मैं तुमसे सर्व वृत्तान्त निवेदन करताहूं श्रवण करो ॥ ४२ ॥ अयोध्यानगरीमें सकलैश्वर्यसम्पन्न महा समर्थ एक दशरथनामक राजा होगये हैं; उनके महाभाग्यशाली ज्येष्ठपुत्र [बड़े बेटे] रामनामसे विख्यात हैं ॥ ४३ ॥ वह पिताकी आज्ञा मान स्त्री और छोटे भ्राताके साथ वनमें आये; तहां किसी दुष्टने उनकी पतिव्रता स्त्रीको चुरालिया ॥ ४४ ॥ उसका चुरानेवाला वह दुष्ट रावणहै । इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्राताके साथ सुग्रीवके पास आये । सुग्रीवने "उनके साथ मित्रता होनेसे हमको रामचंद्रजीकी प्यारी भार्याकी ॥ ४५ ॥ सुधि लाओ," ऐसे कहा; तबसे हम वन २ में जानकीजीको खोजने लगे;—प्यास लगनेके कारण जलकी इच्छाकरके ॥ ४६ ॥ कुछेक देवयोगसे

हमने इस भयंकर गुहामें प्रवेश किया; हे कल्याणप्रदे देवि ! तुम कौनहो व यहांपर क्यों रहतीहो, सो हमसे कहो ॥ ४७ ॥ हनुमान्‌जीके वचन सुनकर योगिनीका हृदय संतुष्ट होगया। वानरोंको भूंख प्यासके मारे व्याकुल देखकर उसनें कहा; हे वानरो ! इच्छानुसार फल मूल खायकर अमृतके समान जल पिवो ॥ ४८ ॥ और फिर इधर आओ; तब मैं अपना सर्व वृत्तान्त तुमको सुनाऊंगी; सब वानरोंने 'अच्छा' कहकर उपहार भक्षणकर जल पिया इसके उपरांत वे आनंदित होकर ॥ ४९ ॥ देवीके निकट आय हाथ जोड खड़ेरहे; सब वह उत्तमरूपसंपन्न योगिनी हनुमान्‌जीसे बोली ॥ ५० ॥ "हे पवनकुमार ! हेमानामक विश्वकर्माकी एक परमरूपवती कन्याहै; उस स्त्रीने नृत्य करके श्रीमहादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ५१ ॥ महादेवजीने

योगिनीचतथाद्दृष्ट्वावानरान्प्राहहृष्टधीः ॥ यथेष्टंफलमूलानिजग्ध्वापीत्वामृतंपयः ॥ ४८ ॥ आगच्छततत्तोवक्ष्येममवृत्तांतमादितः ॥तथेतिमुक्त्वापीत्वाचहृष्टास्तेसर्ववानराः ॥४९॥ देव्याःसमीपंगत्वातेबद्धांजलिपुटाःस्थिताः ॥ ततःप्राहहनूमंतंयोगिनीदिव्यदर्शना॥५०॥ हेमानामपुरादिव्यरूपिणीविश्वकर्मणः ॥ पुत्रीमहेशंनृत्येनतोषयामासभामिनी ॥५१ ॥ तुष्टोमहेशःप्रददाविदंदिव्यपुरंमहत् ॥ अत्रस्थितासासुदतीवर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५२ ॥ तस्याअहंसखीविष्णुतत्परामोक्षकांक्षिणी ॥ नाम्नास्वयंप्रभादिव्यगंधर्वतनयापुरा ॥ ५३ ॥ गच्छंतीब्रह्मलोकंसामामाहेदंतपश्चर ॥ अत्रैवनिवसंतीत्वंसर्वप्राणिविवर्जिते ॥ ५४ ॥ त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ॥ भूभारहरणार्थायविचरिष्यतिकानने ॥ ५५ ॥ मार्गंतोवानरास्तस्यभार्यामायांतितेगुहाम् ॥ पूजयित्वाथतान्मत्वारामंस्तुत्वाप्रयत्नतः ॥ ५६ ॥

प्रसन्न होकर उसको विस्तारवाला यह दिव्यनगर दे दिया [पुरस्कारमें दिया] यह सुन्दरी इस स्थानमें अनंत सहस्र वर्षतक रही ॥ ५२ ॥ मैं दिव्यनामक गंधर्वकी कन्या हूं; मेरा नाम स्वयंप्रभाहै। हेमासे मेरी मित्रता है। मुझे मोक्षपानेकी इच्छाहै, इसकारण मैं विष्णुजीकी आराधना करनेमें तत्परहूं ॥ ५३ ॥ हेमाने ब्रह्मलोक जातेहुए मुझसे कहा कि, तू यहांपर रहकर तपकर; यहाँपर किसीप्रकारका प्राणी नहीं रहता; इसलिये यह स्थान तप करनेको बहुत योग्यहै ॥ ५४ ॥ साक्षात् निर्विकार जगन्निवास परमात्मा त्रेतायुगमें दशरथजीके पुत्र होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वनमें भ्रमण करेंगे ॥ ५५ ॥ उनकी स्त्रीको खोजते २ वानर तेरी गुहामें आवेंगे तू बडे यत्नसे [सावधानहो] उनका आदर व पहुनई करके रामजीके

पास जाना, और उनकी स्तुति करना ॥ ५६ ॥ ऐसे करनेसे तू जहां योगीजन जाते हैं उस सनातन विष्णुपदको प्राप्त होजायगी, हे वानरगण ! अब शीघ्र जायकर रामजीका दर्शन करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ ५७ ॥ तुम लोग आंखैं मीचनेसे आपही आप गुफाके बाहर होजाओगे " वानरोंने वैसाही किया [आंखैं बन्दकीं] तो अतिशीघ्र वे उसवनमें प्राप्तहोगये जहां पहले थे ॥ ५८ ॥ वह योगिनीभी गुहाको छोडकर अति शीघ्र श्रीराम जीके समीप आई; वहां उसको सुग्रीवके साहित श्रीराम लक्ष्मणके दर्शन मिले ॥ ५९ ॥ उस श्रेष्ठबुद्धिवाली स्त्रीने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणाकरके अनेक प्रणाम किये; बोलनेको हुई तो भक्तिसे उसका गला भर आया, अंगपर रोमावली खडी होगई। ऐसी स्थितिमें वह लड़खड़ाते हुए शब्दोंकरके

यातासिभवनंविष्णोर्योगिगम्यंसनातनम् ॥ इतोऽहंगंतुमिच्छामिरामंद्रष्टुंत्वरान्विता ॥ ५७ ॥ यूयंपिदद्धमक्षीणि गमिष्यथवहिर्गुहाम् ॥ तथैवचक्रुस्तेवेगाद्गताःपूर्वस्थितंवनम् ॥ ५८ ॥ सापित्यक्त्वागुहांशीघ्रंययौराघवसन्निधिम् ॥ तत्ररामंससुग्रीवंलक्ष्मणंचददर्शह ॥ ५९ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंरामंप्रणम्यवहुशःसुधीः ॥ आहगद्गदयावाचारोमांचिततनूरुहा ॥ ६० ॥ दासीतवाहंराजेंद्रदर्शनार्थमिहागता ॥ वहुवर्षसहस्राणितप्तंमेदुश्चरंतपः ॥ ६१ ॥ गुहायांदर्शनार्थतेफलितंमेऽद्यतत्तपः ॥ अद्यहित्वांनमस्यामिमायायाःपरतःस्थितम् ॥ ६२ ॥ सर्वभूतेषुचालक्ष्यंत्रहिरंतरवस्थितम् ॥ योगमायाजवनिकाच्छन्नोमानुषविग्रहः ॥ ६३ ॥ नलक्ष्यसेऽज्ञानदृशांशैलूषइवरूपधृक् ॥ महाभागवतानांत्वंभक्तियोगविधित्सया ॥ ६४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे बोली ॥ ६० ॥ "हे राजाधिराज ! मैं आपकी दासी आपका दर्शन पानेके लिये यहां आईहूं; हजारों वर्षतक मैंने तुम्हारा दर्शन करनेके लिये तीव्र तप किया। आज उस तपका फल मुझे मिलगया ॥ ६१ ॥ [अहो आज कैसे मंगलका दिनहै] आज मैं तुम्हैं नमस्कार करतीहूं; तुम मायासे परे स्थितहो। सर्व प्राणियोंके बाहर भीतर रहते हो परन्तु किसीको दिखाई नहीं देते ॥ ६२ ॥ जैसे कोई नट स्वांग धारण कर ले, तब उसके यथार्थ रूपको [यह अमुक मनुष्य है] कोई नहीं जानता, वैसेही तुम योगमायारूपी आच्छादन [परदे] से ढकेहुएहो इसलिये मनुष्यशरीर धारण करके वैसेही दिखाई देते हो व अज्ञानी लोगोंको दिखाई नहीं देते ॥ ६३ ॥ जिनके मनोंमें भक्ति करनेकी इच्छा होतीहै; उन सत्पुरुषोंके

भक्तियोग सिद्धकरनेके लिये तुम अवतार लेतेहो। हे षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! मैं अबला अर्थात् तमोगुणीहूं; तिससे मुझे आपके स्वरूपका ज्ञान कैसे होगा ! ॥ ६४ ॥ संसारमें तुम्हारे ब्रह्मतत्त्वको जो जानते हैं; सो जानें । हे रघुकुलमें उत्तम राम । मेरे हृदयमंदिरमें तुम्हाराही रूप सदा विराजमानरहे; मुझे तत्त्वज्ञानी बननेकी इच्छा नहीं ॥ ६५ ॥ हे राम ! आज तुमने अपने चरण युगलका मुझे दर्शन दिया, इसकारणमैं अपनेको कृतकृत्य मानतीहूं; आपके चरणोंका माहात्म्य कहांतक वर्णन करूं जिनके दर्शनसेही मोक्ष मिलती, संसारसमुद्र छिपजाता और श्रेष्ठ मार्ग दिखाई देने लगताहै ॥ ६६ ॥ हे आदिपुरुष ! जिसने समस्त ऐश्वर्यका त्याग कर दियाहै; उस पुरुषके सब कुछ आपहीहो । लौकिक; द्रव्य, पुत्र, स्त्री इत्यादि ऐश्वर्यके गर्वसे फूले हुए लोग तुम्हारी स्तुति योग्य कभी नहीं हैं ॥ ६७ ॥ प्रवृत्तिमार्गरूप संसार तुम करके आपसेही निवृत्त होजाता

अवतीर्णोऽसिभगवन्कथंजानामितामसी ॥ लोकेजानातुयःकश्चित्तवतत्त्वंरघूत्तम ॥ ६५ ॥ ममैतदेवरूपंतेसदाभातुहृदालये ॥ रामते पादयुगलंदर्शितंमोक्षदर्शनम् ॥ ६६ ॥ अदर्शनंभवार्णोनांसन्मार्गपरिदर्शनम् ॥ धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः ॥ अकिंचनधनंत्वा घनाभिधातुंजनोऽर्हति ॥ ६७ ॥ निवृत्तगुणमार्गायनिष्किंचनधनायते ॥ ६८ ॥ नमःस्वात्माभिरामायनिर्गुणायगुणात्मने ॥ कालरूपिणमीशानमादिमध्यांतवर्जितम् ॥ ६९ ॥ समंचरंतंसर्वत्रमन्येत्वांपुरुषंपरम् ॥ देवतेचेष्टितंकश्चिन्नवेदनृविडंवनम् ॥ ७० ॥ नतेऽस्तिकश्चिद्दयितोद्वेष्योवापरएवच ॥ त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वांपश्यंतितथाविधम् ॥ ७१ ॥

है ! सर्वसंग परित्याग करके निर्धनहुए सज्जनोंके एक तुमही धनहो, तुम अपने स्वरूपमें सदा रमण करते रहते हो, अर्थात् गुणरहित हो, परन्तु जिसप्रकार रस्सी अपनेमें भासने वाले सर्पका कारण होतीहै, वैसेही आपभी गुणोंके विवृत्तोपादान कारण होनेसे गुणात्मकहो ॥ ६८ ॥ कालरूप होकर जगत्का संहार तुमहीं करतेहो; तुममें सृष्टि उत्पन्न करने और उसका पालन करनेकी सामर्थ्य है; अर्थात् तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त नहीं है । आप सर्वत्र समदृष्टिसे देखनेवाले सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामीहो; ऐसा मै समझती हूं ॥ ६९ ॥ हे देव ! तुम इन मनुष्योंके स्वरूपका केवल अनुकरण [नकल] करनेवाले [वास्तवमें मनुष्य नहीं] हो, यह वात कोई नहीं जानताहै । तुम्हारा प्यारा शत्रु या उदासीन नहींहै ॥ ७० ॥ तुम्हारी मायासे जिनकी

ज्ञानशक्ति ढकगईहै वे जन तुम्हें वैसाही [शत्रु, मित्र या उदासीन जिसको जैसा मालूमहो] समझतेहैं; वास्तवमें आप जन्मरहित किसीकार्यके न करनेवाले व सर्वेश्वर होनेसे देव पशु पक्ष्यादि तिर्यग्योनि और मनुष्य इत्यादिकोमें ॥ ७१ ॥ जन्म लेते हैं और अनेकभाँतिके चरित्रादि करते हैं; परंतु यह सर्व उन जातियोंका अनुकरणहै; तुम अपने स्वरूपसे न टलनेवाले परब्रह्मरूप होनेसे अवतार लेतेहो; इसका कारण यहहै कि, तुम्हारे मनमें अपने भक्तोंको अपनी [ईश्वरकी] कथा श्रवण करनेसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि प्राप्तकरा दी जाय, ऐसा उद्देशहै, यह कहतेहैं ॥ ७२ ॥ और दूसरे कितने लोग यह कहतेहैं कि कोसलदेशके राजा [दशरथ] को उसके तपका फल देनेके लिये कौसल्याकी प्रार्थनासे तुमने जन्मलिया॥७३॥कोई२ कहते हैं कि, दुष्ट राक्षसोंका बोझ पृथ्वीपर हुआ है; उसको दूर करनेके लिये ब्रह्माजीने प्रार्थना की, इसलिये प्रभुने यह मनुष्यअवतार धारण किया ॥

अजस्याकर्तुरीशस्यदेवातिर्यङ्नरादिषु ॥ जन्मकर्मादिकंयद्यत्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ७२ ॥ त्वामाहुरक्षरंजातंकथाश्रवणसिद्धये ॥ केचित्कोसलराजस्यतपसःफलसिद्धये ॥ ७३ ॥ कौसल्ययाप्राथ्र्यमानं जातमाहुःपरेजनाः ॥ दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितोविभुः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मणानररूपेणजातोऽयमितिकेचन ॥ शृण्वंतिगायंतिचयेकथास्तेरघुनंदन ॥ ७५ ॥ पश्यंतितवपादाब्जंभवार्णवसुतारणम् ॥ त्वन्मायागुणबद्धाहंव्यतिरिक्तंगुणाश्रयम्॥७६॥कथंत्वांदेवजानीयांस्तोतुंवाऽविषयंविभुम् ॥ नमस्यामिरघुश्रेष्ठंबाणासनशरान्वितम् ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासुग्रीवादिभिरन्वितम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतोरघुश्रेष्ठःप्रसन्नःप्रणताघहृत् ॥ उवाच योगिनींभक्तांकिंतेमनसिकांक्षितम् ॥ ७८ ॥

॥ ७४ ॥ हे रघुकुमार ! तुम्हारे चरण, भवसमुद्रसे पार उतारनेके लिये उत्तम नाव है, जो कोई तुम्हारी कथाको सुनते हैं, या गाते हैं उनको तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन मिलताहै ॥ ७५ ॥ हे देव ! तुम गुणोंके आधार होनेसे भी गुणविरहित हो; मैं तुम्हारीमायाके गुणोंसे भलीभाँति बँध गईहूं; फिर भला तुम्हारा ज्ञान मुझे कैसे हो ? ऐसेही हे सर्वेश्वर ! तुम स्तुतिके विषय नहीं हो; फिर भला मुझसे तुम्हारी स्तुति कैसे की जाय ॥ ७६ ॥ हे रघुवीर ! इस कारण मैं; इस समय आगे दिखाई देती हुई तुम्हारी सगुणमूर्तिको नमस्कार करतीहूं । उसने [मूर्तिने] हाथमें धनुष बाण ले रक्खा है; उसके समीपही बन्धु लक्ष्मण व सुग्रीवादि वानर मंडली बैठी है ॥ ७७ ॥ इस प्रकार उस महाभक्त योगिनीने रघुवीरकी स्तुति की

तब शरणागतके पाप दूर करनेवाले वह प्रभु प्रसन्न होकर बोले; तेरे मनमें जो कुछ इच्छा हो, सो कह ॥ ७८ ॥ यह सुन उसने भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीको उत्तर दिया; "हे भक्तवत्सलप्रभो ! मुझे यह वरदो कि, किसी योनिमें भी जन्मलूं परन्तु वहांपरभी मेरी आपमें दृढ़ भक्ति हो ॥ ७९ ॥ तुम्हारे भक्तोंका नित्य समागमहो और प्रवाह क्रोधके विषय मुझे किसी दिन आसक्ति नहो। हे राम ! सदा मेरी जिह्वा आपका 'राम राम' नाम भक्ति सहित कहा करै ॥ ८० ॥ तैसेही मेरे अंतःकरणमें सर्वकाल तुम्हारे श्यामसुन्दर रूपका चिन्तन करना रहे; उस मेरे मनमें आनेवाली मूर्तिके दोनों ओर सीता और लक्ष्मण दोनो होवें; हाथमें धनुष बाण धारण किया हो; कमरमें पीताम्बर पड़ाहो, मस्तकपर मुकुटने उस मूर्तिको

साप्राहराघवंभक्त्याभक्तितेभक्तवत्सल ॥ यत्रकुत्रापिजातायानिश्चलांदेहिमेप्रभो ॥ ७९ ॥ त्वद्भक्तेषुसदासंगोभूयान्मेप्राकृतेषुन ॥ जिह्वामेरामरामेतिभक्त्यावदतुसर्वदा ॥ ८० ॥ मानसंश्यामलंरूपंसीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ धनुर्बाणधरंपीतवासस्संमुकुटोज्वलम् ॥ ८१ ॥ अंगदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैःकौस्तुभकुंडलैः ॥ भांतंस्मरतुमेरामवरंनान्यंवृणेप्रभो ॥ ८२ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भवत्वेवंमहाभागेगच्छत्वंबदरीवनम् ॥ तत्रैवमांस्मरंतीत्वंत्यक्त्वेदंभूतपंचकम् ॥ मामेवपरमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥ ८३ ॥ श्रुत्वारघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पंगत्वातदैवबदरीतरुखण्डजुष्टम् ॥ तीर्थंतदारघुपतिंमनसास्मरंतीत्यक्त्वाकलेवरमवापपरंपदंसा ॥ ८४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किधाकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

शोभा दे रक्खी हो ॥ ८१ ॥ और बाजूबन्द, नूपुर, मोतियोंके हार, कौस्तुभ, कुंडल गहनोंसे वह उज्ज्वल दिखाई दे। हे प्रभो रामचंद्र ! इसके सिवाय दूसरा वर कुछ न चाहिये" ॥ ८२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले "हे स्वयंप्रभे ! तू बड़भागिनी है। 'अच्छा' जैसा तू कहती है वेसाही होवे (तेरे माँगे हुए वर तुझे मिलें) अब तू बदरिकाश्रमको जा और वहां मेरा चिंतवन करती रहियो; मेरा परमेश्वर होना तू जानती है इसलिये शीघ्रही यह पांच भौतिक शरीर छोड़नेसे तू मेरे स्वरूपको प्राप्त होगी" ॥ ८३ ॥ अमृतके समान श्रीरामचंद्रजीके मधुर वचन सुनकर स्वयंप्रभाने शीघ्रतासे बदरिकाश्रमका मार्ग लिया; उस पुण्यवनमें बेरीके बहुतसे वृक्ष हैं; वहांपर पहुँचनेके पीछे वह अंतःकरणसे रामजीका ध्यान करती रही और अंतमें शरीको छोड़ परमपदको प्राप्त कर लेती हुई ॥ ८४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

वानरोंको संपातिका मिलना ॥ महादेवजी बोले,—इधर वानरमंडली एक जगह वृक्षोंकी छायामें बैठकर विचार करने लगी ! किसीको कोई उपाय न सूझा सीता को ढँढ़ते २ मारे श्रमके सब जने दुर्बल होते चले ॥ १ ॥ इतनेमेंही वानरोंमें श्रेष्ठ अंगदजी कितने एक वानरोंसे बोले "अहो ! इस वनमें तथा गुफायें घूमते हुए हमको पूरा एक महीना बीत गया इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २ ॥ सीताजीकी सुधि मिली नहीं; अर्थात राजाज्ञा अमान्य करनेका दोष अपने ऊपर आगया; जो ऐसेही किष्किन्धाको गये तो सुग्रीव हमको मार डालेगा ॥ ३ ॥ तिसमें मुझे तो अपने शत्रुका पुत्र जानकर मारेहीगा; मेरे ऊपर उसकी प्रीति कहाँ ? श्रीरामका आधार है इसलिये अबतक जीवित रहाहूं ॥ ४ ॥ अब सुग्रीवको, मैंने रामजीका कार्य नहीं किया, यह मेरे वध

अथतत्रसमासीनावृक्षखंडेषुवानराः ॥ चिंतयंतोविमुह्यंतःसीतामार्गणकर्शिताः ॥ १ ॥ तत्रोवाचांगदःकांश्चिद्वानरान्वानरर्षभः ॥ भ्रमतां गह्वरेस्माकंमासोनूनंगतोऽभवत् ॥२॥ सीतानाधिगतास्माभिर्नकृतंराजशासनम्॥ यदिगच्छामकिष्किंधांसुग्रीवोऽस्मान्हनिष्यति॥३॥ विशेषतःशत्रुसुतंमांमिषान्निहनिष्यति ॥ मयितस्यकुतःप्रीतिरहंरामेणरक्षितः ॥ ४ ॥ इदानींरामकार्यमेनकृतंतान्मिषंभवेत् ॥ तस्यमद्ध ननेनूनंसुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥ ५ ॥ मातृकल्पांभ्रातृभार्यांपापात्मानुभवत्यसौ ॥ नगच्छेयमतःपार्श्वंतस्यवानरपुंगवाः ॥ ६ ॥ त्यक्ष्या मिजीवितंचात्रयेनकेनापिमृत्युना ॥ इत्यश्रुनयनंकेचिद्दृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ ७ ॥ व्यथिताःसाश्रुनयनायुवराजमथाब्रुवन् ॥ ८ ॥ किमर्थं तवशोकोऽत्रवयंतेप्राणरक्षकाः ॥ भवामोनिवसामोऽत्रगुहायांभयवर्जिताः ॥ ९ ॥

करनेको उसको निमित्त मिल जायगा यह मैं भलीभांति जानताहूं, कि उसका अंतःकरण दुष्ट है ॥ ५ ॥ अहो ! बड़े भाईकी स्त्री, जो प्रत्यक्ष माताके समान होती है; वह दुरात्मा उसकोभी विना भोग किहे नहीं छोड़ता; हे वानरवीरगण ! इस कारण मैं कभी उसके निकट नहीं जाऊँगा ॥ ६ ॥ परन्तु गलेमें फाँसी डालकर; या दूसरे किसी उपायसे मरनेकी युक्ति करके यहीं प्राणोंको त्याग दूंगा " । यह शब्द उच्चारण करते हुए अंगदजीके आँखोंसे आँसू बहने लगे । उनकी यह अवस्था देखकर कितने एक बडे २ वानरोंको ॥ ७ ॥ अत्यन्त खेद हुआ । उनकी आँखोंमेंभी आँसू आगये इसके उपरान्त उन्होंने युवराज अंगदसे कहा ॥ ८ ॥ "हे राजपुत्र ! इसलिये तुम काहेको शोक करते हो ? हम तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करनेको

तैयार हैं इस गुफामें हमें कुछ डर नहीं; हम सब यहीं हैं ॥ ९ ॥ यह नगर इन्द्रपुरीके समान सब सम्पत्तियोंसे भराहुआ है—यहांपर किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं पड़ेगी" इस प्रकार परस्पर धीरे २ कहे हुए उनके वचन हनुमानजीके कानमें गये, हनुमानजी नीतिशास्त्रमें निपुणथे; उन्होंने अंगदजीको हृदयसे लगायकर कहा;—"हे अंगद यह बुरा विचार किसकारणसे तुम्हारे, मनमें आता है ? यह कभी नहीं होता कि सुग्रीव तुम्हें मार डाले; इस कारण इन वानरोंका कहा हुआ अविचारी कार्य (गुफामें रहना) करना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥ ताराके पुत्र तुम सुग्रीवको अति प्यारे हो; इसलिये तुमको दूसरा विचार नहीं करना चाहिये. और जो तुम यह कहो कि, मैंने रामका कार्य नहीं किया है, इसलिये रामसे मुझे भय है । परन्तु श्रीरामकी प्रीति तुम्हारे ऊपर लक्ष्मणजीसे भी अधिक है ॥ १२ ॥ इस कारण तुम्हें रामजीसे भयका होना किंचित

सर्वसौभाग्यसहितंपुरंदेवपुरोपमम् ॥ शनैःपरस्परंवाक्यंवदतांमारुतात्मजः ॥ १० ॥ श्रुत्वांगदंसमालिंग्यप्रोवाचनयकोविदः ॥ विचार्यं तेकिमर्थंतेदुर्विचारोनयुज्यते ॥ ११ ॥ राज्ञोऽत्यंतप्रियस्त्वंहितारापुत्रोतिवल्लभः ॥ रामस्यलक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयिनित्यंप्रवर्धते ॥ १२ ॥ अतोनराघवाद्भीतिस्तवराज्ञोविशेषतः ॥ अहंतवहितेसक्तोवत्सनान्यंविचारय ॥ १३ ॥ गुहावासश्चनिर्भेद्यइत्युक्तंवानरैस्तुयत् ॥ तदे तद्रामबाणानामभेद्यंकिंजगत्त्रये ॥१४॥ येत्वांदुर्बोधयंत्येतेवानरावानरर्षभ ॥ पुत्रदारादिकंत्यक्त्वाकथंस्थास्यंतितेत्वया ॥ १५ ॥ अन्य द्गुह्यतमंवक्ष्येरहस्यंशृणुमेसुत ॥ रामोनमानुषोदेवःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १६ ॥

भी संभव नहीं न राजासे तुमको कुछ डर है । हे बालक ! मैं तुम्हारा भला करनेको सदा तैयारहूं, यह तो तू जानताही है, इस कारण अब कोई दूसरा विचार करना योग्य नहीं ॥ १३ ॥ अरे ! "इस गुफामें रहनेसे किसी समय कोई खटका नहीं" वानर ऐसा कहते हैं; यह बात अयोग्य हैं क्यों कि तुम्हीं देखो कि जिसका छेदन रामजीके बाणसे नहो (ऐसा पदार्थ) या जहांपर रामजीका बाण नहीं पहुँचे ऐसा स्थान त्रिलोकीमें कहीं भी है ? ॥ १४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! जो वानर तुमको बुरे २ आदेश दे रहे हैं, वे स्त्री पुत्रादिकोंको छोडकर किस प्रकार तुम्हारे साथ रहैंगे ! सो विचार करो ! ॥ १५ ॥ हे बालक ! एक गुप्त रहस्य मैं तुमसे कहताहूं मन लगाकर सुनो (किसीसे कहना मत) अरे ! राम कुछ मनुष्य नहीं है वह साक्षात

मूर्ति निर्विकार जगन्निवास परमात्मा हैं ॥ १६ ॥ सीताजी–महासमर्थ व सबको मोहनेवाली माया हैं और लक्ष्मणजी–जिनपर सर्व भुवनका आधार है उन नागराज शेषके अवतार हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने राक्षसोंके समूहका नाश करनेके लिये प्रार्थना की; इसलिये सबोंने माया करके मनुष्यजन्म लिया है । और इनमेंसे एक एक जन एक एक जगत्‌की रक्षा करनेको समर्थ है ॥ १८ ॥ हम सर्व वैकुंठवासी विष्णुजीके पार्षद हैं; परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यरूप धारण किया है, इसलिये ॥ १९ ॥ हम सबकोभी उनकी मायाके योगसे वानरजन्म मिला; हमने पहले तप करकै जगत्पतिकी आराधना की ॥ २० ॥ तब उनके अनुग्रह करनेपर हमको पार्षद पदवी प्राप्त हुई । इसकारणसेही हम उनकी सेवा करते

सीताभगवतीमायाजनसंमोहकारिणी ॥ लक्ष्मणोभुवनाधारःसाक्षाच्छेषःफणीश्वरः ॥१७॥ ब्रह्मणाप्रार्थिताःसर्वेरक्षोगणविनाशने ॥ मायामानुषभावेनजातालोकैकरक्षकाः ॥ १८ ॥ वयंचपार्षदाःसर्वेविष्णोर्वैकुंठवासिनः ॥ मनुष्यभावमापन्नेस्वेच्छयापरमात्मनि ॥ १९ ॥ वयंवानररूपेणजातास्तस्यैवमायया ॥ वयंतुतपसापूर्वमाराध्यजगतांपतिम् ॥ २० ॥ तेनैवानुगृहीताःस्मःपार्षदत्वमुपागताः ॥ इदानीमपितस्यैवसेवांकृत्वैवमायया ॥ २१ ॥ पुनर्वैकुंठमासाद्यसुखंस्थास्यामहेवयम् ॥ इत्यंगदमथाश्वास्यगताविंध्यंमहाचलम् ॥ २२ ॥ विचिन्वंतोऽथशनकैर्जानकींदक्षिणांबुधेः ॥ तीरेमहेंद्राख्यगिरेःपवित्रंपादमाययुः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वासमुद्रंदुष्पारमगाधंभयवर्धनम् ॥ वानराभयसंत्रस्ताःकिंकुर्मइतिवादिनः ॥ २४ ॥ निषेदुरुदधेस्तीरेसर्वेचिंतासमन्विताः ॥ मंत्रयामासुरन्योन्यमंगदाद्यामहाबलाः ॥ २५ ॥

हैं ॥ २१ ॥ व इसके उपरान्त फिर वैकुंठलोकमें जायकर सुखसे रहेंगे । " हनुमान्‌जीने इसप्रकार अंगदजीको समझाया बुझाया; फिर समस्त वानर विंध्य नामक महापर्वतपर गये ॥ २२ ॥ और हौले २ जानकीजीको खोजते हुए दक्षिणमहासागरके तीरपर, महेंद्र नामवाले पर्वतके पास एक छोटेसे पवित्र पर्वतपर जाय पहुँचे ॥ २३ ॥ समुद्र प्राप्त हुआ, समुद्र उनको दिखाई दिया । जिसको पार जाना बड़ा कठिन है, जिसके जल की थाह नहीं लगती ऐसे उस महासागरके उग्र दृश्यको देखकर वानरगण भयभीत हुए और प्रत्येकके मुखसे यह शब्द निकलने लगा कि, अब क्या किया जाय ॥ २४ ॥ अंगदादि वानर यथार्थमें महापराक्रमी थे; परन्तु यहांपर क्या करें ?–सब जने चिन्ताग्रसित होकर समुद्रके किनारेपर

बैठे । तिस समय उन लोगोंमें परस्पर यह सलाह हुई ॥ २५ ॥ ‘ अहो ! उस गुहामें फिरते २ हमको एक मास बीतगया; आजतक रावण नहीं दिखाई दिया न जनककुमारी जानकीजी देख पड़ी ॥ २६ ॥ सुग्रीवके दंडका नियम बड़ा तीव्र है वह हमको निःसंदेह मार डालेगा ! सुग्रीवके हाथों मरनेसे प्रायोपवेशन करनेसे हमारा अधिक कल्याण है ’ ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त सबने यह निश्चय करके वहांपर जिधर तिधर कुश बिछाये और मरनेका निर्धार करके सबही वहाँपर बैठे ॥ २८ ॥ इतनेहीमें एक गृध्र महेंद्र पर्वतकी गुफासे बाहर निकलकर हौले २ वानरोंके समीप आया; उसका शरीर पर्वतके समान प्रचंड था ॥ २९ ॥ सर्व बड़े २ वानरोंको प्रायोपवेशनका संकल्प किये बैठे हुए देखकर

भ्रमतामेवनोमासोगतोऽत्रैवगुहांतरे ॥ नदृष्टोरावणोवाद्यसीतावाजनकात्मजा ॥ २६ ॥ सुग्रीवस्तीक्ष्णदंडोऽस्मान्निहंत्येवनसंशयः ॥ सुग्रीववधतोऽस्माकंश्रेयःप्रायोपवेशनम् ॥ २७ ॥ इतिनिश्चित्यतत्रैवदर्भानास्तीर्यसर्वतः ॥ उपाविवेशुस्तेसर्वेमरणेकृतनिश्चया ॥२८॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रमहेंद्राद्रिगुहांतरात् ॥ निर्गत्यशनकैरागाद्गृध्रःपर्वतसन्निभः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाप्रायोपवेशेनास्थितान्वानरपुंगवान् ॥ उवाचशनकैर्गृध्रःप्राप्तोभक्षोऽद्यमेबहुः ॥ ३० ॥ एकैकशःक्रमात्सर्वान्भक्षयामिदिनेदिने ॥ श्रुत्वातद्गृध्रवचनंवानराभीतमानसाः ॥ ३१ ॥ भक्षयिष्यतिनःसर्वानसौगृध्रोनसंशयः ॥ रामकार्यंचनास्माभिःकृतंकिंचिद्धरीश्वराः ॥ ३२ ॥ सुग्रीवस्यापिचाहितंनकृतंस्वात्मनामपि ॥ वृथानेनवधंप्राप्तागच्छामोयमसादनम् ॥३३॥ अहोजटायुर्धर्मात्मारामस्यार्थेमृतःसुधीः ॥ मोक्षंप्रापदुरावापंयोगिनामप्यरिंदमः ॥३४॥

धीरे २ [पर उनको आपही सुनाई जाय] कहने लगा,—‘ अच्छा हुआ ! आज हमको बहुत भोजन मिला ॥ ३० ॥ प्रतिदिन एक २ करके मैं सबको खाऊंगा ’ गृध्रके मुखसे निकले हुए शब्द कानमें पड़तेही मनमें बन्दर डरगये, व परस्पर कहने लगे ॥ ३१ ॥ यह गृध्र निःसंदेह हमको खाजायगा । वानर वीरगण ! हम लोगोंने रामजीका कुछभी कार्य नहीं किया ॥ ३२ ॥ वैसेही सुग्रीवका अथवा अपनाभी कोई हित नहीं किया । इस गृध्रके हाथसे विनाकारणके मरकर हम यमलोकको जाँयगे ! ॥ ३३ ॥ अहो ! जटायु कितना धार्मिक व सुबुद्धिमान्‌था,

१ ऐसा संकल्प करना कि, मरण होनेतक कुछ न खाया पिया जायगा ।

उसने शत्रु [रावण] का दमन किया । अंतको रामकार्यमें मृत्यु होनेके कारण उसको वह मोक्षपद प्राप्तहुआ जो योगीजनोंके वास्ते दुर्लभ है ! ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वानरोंके कहे हुये 'जटायु' अक्षर बोले वाक्यको सुनकर सम्पाति गीध कहने लगा कि "हेवानरगण ! तुम कौन हो मेरे भ्राता (जटायु) का नाम लेकर तुममें परस्पर बातें हो रहीं हैं, इसलिये मुझे ऐसा मालुम होता है, कि मेरे कानोंमें अमृत वर्ष रहा है तुम बड़े सज्जन जान पड़ते हो । बोलो हे श्रेष्ठवानरो ! मुझसे तुमको भय नहीं होगा" ॥ ३५ ॥ धीरजके यह वचन सुनकर वानर मंडलीके अगुए श्रीमान् अंगदजी उठे व गृध्रके निकट जायकर उससे कहनेलगे "हे गृध्रराज ! दशरथजीके पुत्र सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके साथ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अपनी भार्या सीताके सहित महावनमें फिरते रहे, उनकी भार्या महासाध्वी सीताको दुष्ट रावणने चुरालिया ॥

संपातिस्तुतदावाक्यंश्रुत्वावानरभाषितम् ॥ केवायूयंममभ्रातुःकर्णपीयूषसंनिभम् ॥ ३५ ॥ जटायुरितिनामाद्यव्याहरंतःपरस्परम् ॥ उच्यतांवोभयंमाभून्मत्तःप्लवगसत्तमाः ॥ ३६ ॥ तमुवाचांगदःश्रीमानुत्थितोगृध्रसन्निधौ ॥ रामोदाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ ॥ ३७ ॥ सीतयाभार्ययासार्धंविचचारमहावने ॥ तस्यसीताहृतासाध्वीरावणेनदुरात्मना ॥ ३८ ॥ मृगयांनिर्गतेरामेलक्ष्मणेचहृताव लात् ॥ रामरामेतिक्रोशंतीश्रुत्वागृध्रःप्रतापवान् ॥ ३९ ॥ जटायुर्नामपक्षींद्रोयुद्धंकृत्वासुदारुणम् ॥ रावणेनहतोवीरोराघवार्थमहा बलः ॥ ४० ॥ रामेणदग्धोरामस्यसायुज्यमगमत्क्षणात् ॥ रामःसुग्रीवमासाद्यसख्यंकृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ४१ ॥

॥ ३८ ॥ जब राम, लक्ष्मणजी शिकार खेलनेको आश्रमसे बाहर गये; तो वह अवसर देखकर वह दुष्ट बलपूर्वक जानकीको लेचला, तब वह जानकीजी 'राम ! राम !' ऊँचे स्वरसे कह रहीथी । उस शब्दको सुनकर प्रतापवान् गृध्र ॥ ३९ ॥ पक्षियोंके राजा जटायुने श्रीरामचन्द्रजीके लिये रावणसे घोर युद्ध किया । वास्तवमें जटायु महापराक्रमी और वीर था, परन्तु रावणके हाथसे मृत्युको प्राप्त हुआ, उसकी मृत्यु रामजीके कार्यमें हुई ॥ ४० ॥ सीताजीके वरदानसे थोडी देरतक प्राण धारण करके जटायु रामजीके दर्शनोंकी बाट देखताथा; इतनेमें रामजीने आकर उसका अग्निसंस्कार किया । पीछे उस जटायुने एकक्षणभरमें श्रीरामचन्द्रजीकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त कर लिया । फिर

अग्निको साक्षी करके श्रीरामजीने सुग्रीवसे मित्रता की ॥ ४१ ॥ आर सुग्रीवके कहनेसे अति असह्य बलवाले वालिका संहार श्रीरामचन्द्रजीने किया; महाबलवान् रामजीने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिया ॥ ४२ ॥ इसके आगे महापराक्रमी; सुग्रीवने हमारे समान बडे २ शक्तिमान् वानरोंके समूहको सीताकी सुधिके लिये पठाया ॥ ४३ ॥ और चलते हुए उन्होंने हमसे भलीभाँति कहा; कि महीने भरसे पहले पलटकर आओ; नहीं तो तुम्हारा प्राण लिया जायगा; उनकी आज्ञाके अनुसार हम घूमने लगे। इस वनमें एक गुफा है उसमें हम गये ॥ ४४ ॥ वहींपर महीना बीत गया; अबतक हमको सीताजी और रावणका पता नहीं लगा है। लौट जानेसे प्राण बचनेकी आशा नहीं—इसकारण मरनेको प्रायोपवेशनका

सुग्रीवचोदितोहत्वावालिनंसुदुरासदम् ॥ राज्यंददौवानराणांसुग्रीवायमहाबलः ॥ ४२ ॥ सुग्रीवःप्रेषयामाससीतायाःपरिमार्गणे ॥ अस्मान्वानरवृन्दान्वैमहासत्त्वान्महाबलः ॥ ४३ ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वंनोचेत्प्राणान्हरामिवः ॥ इत्याज्ञयाभ्रमंतोऽस्मिन्वनेगह्वरमध्यगाः ॥ ४४ ॥ गतोमासोनजानीमःसीतांवारावणंचवा ॥ मर्तुंप्रायोपविष्टाःस्मस्तीरेलवणवारिधेः ॥ ४५ ॥ यदिजानासिहेपक्षिन्सीतांकथयनःशुभाम् ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वासंपातिर्हृष्टमानसः ॥ ४६ ॥ उवाचमत्प्रियोभ्राताजटायुःप्लवगेश्वराः ॥ बहुवर्षसहस्रांतेभ्रातृवार्ताश्रुतामया ॥ ४७ ॥ वाक्साहाय्यंकरिष्येऽहंभवतांप्लवगेश्वराः ॥ भ्रातुःसलिलदानायनयध्वंमांजलांतिकम् ॥ ४८ ॥ पश्चात्सर्वंशुभंवक्ष्येभवतांकार्यसिद्धये ॥ तथेतिनिन्युस्तेतीरंसमुद्रस्यविहंगमम् ॥ सोपितत्सलिलेस्नात्वाभ्रातुर्दत्त्वाजलांजलिम् ॥ ४९ ॥

संकल्प करके क्षार (खारी) समुद्रके किनारेपर बैठे हैं ॥ ४५ ॥ हे पक्षिराज ! जो तुम्हें सुन्दरी सीताजीका समाचार ज्ञातहो तो हमे बताओ कि "वह कल्याणरूप रामकी भार्या कहां है" अंगदजीके यह वचन सुनकर संपातिके अंतःकरणमें आनन्द उत्पन्न हुआ ॥ ४६ ॥ संपाति बोला; वानरश्रेष्ठगण ! जटायु मुझे बडा प्यारा था; आज मैंने हजारों वर्षोंके पीछे अपने प्यारे भ्राताका समाचार सुना है ॥ ४७ ॥ हेवानरवीरगण ! मैं वाणीसे तुम्हारी बहुत सहायता करूंगा, मुझे अपने भ्राताको जल देना है, इसकारण मुझे जलके समीप ले चलो (इस बातसे यह सूचित होता है कि मृगादि पक्षियोंकोभी ज्ञानके अनुसार धर्मका अधिकार है) ॥ ४८ ॥ इसके पीछे तुम्हारी कार्यकी सिद्धिके

लिये मैं सब वृत्तान्त भलीभाँति कह सुनाऊंगा; यह सुनकर सब वानर अच्छा कह सम्पातिको समुद्रके किनारे लेगये उस संपातिनेभी स्नान करके अपने भ्राता जटायुको जलाञ्जली दी ॥ ४९ ॥ इसके पीछे वह सब वानर उसको उसके स्थानमें लेआये, वहाँपर बैठकर सम्पातिने वानरोंको अत्यन्त आनंद उपजानेवाली वार्ता कही ॥ ५० ॥ कि हे वानरो ! त्रिकूट पर्वतकी चोटीपर लंकानामक नगरीहै । वहाँपर सीताजी अशोकवनमें राक्षसोंके आश्रयसे भलीभाँति रक्षितहैं ॥ ५१ ॥ तुम पूछोगे कि वह लंका कहां है सो मैं कहताहूं सुनो । वह लंकानगरी समुद्रके बीचमें यहांसे १०० सौ योजन [४०० कोश] दूर है । वहाँपर निःसन्देह मैं सीताजीको देखताहूं ॥ ५२ ॥ कारण कि मैं गीधहूं; इसलिये मेरी दृष्टि दूर पहुँचसकती है, इसमें कुछ संदेह मत करियो, जो कोई सौयोजन फांटवाले समुद्रको लाँघजाय ॥ ५३ ॥ तो वह जानकीजीको देख समाचार लेकर पीछे

पुनःस्वस्थानमासाद्यस्थितोनीतोहरीश्वरैः ॥ संपातिःकथयामासवानरान्परिहर्षयन् ॥ ५० ॥ लंकानामनगर्यास्तेत्रिकूटगिरिमूर्धनि ॥ तत्राशोकवनेसीताराक्षसीभिःसुरक्षिता ॥ ५१ ॥ समुद्रमध्येसालंकाशतयोजनदूरतः ॥ दृश्यतेमेनसंदेहःसीताचपरिदृश्यते ॥ ५२ ॥ गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मेनात्रसंशयितुंक्षमम् ॥ शतयोजनविस्तीर्णसमुद्रंयस्तुलंघयेत् ॥ ५३ ॥ सएवजानकींदृष्ट्वापुनरायास्यतिध्रुवम् ॥ अह मेवदुरात्मानंरावणंहंतुमुत्सहे ॥ ५४ ॥ भ्रातृहंतारमेकाकीकिंतुपक्षविवर्जितः ॥ यतध्वमतियत्नेनलंघितुंसरितांपतिम् ॥ ततोहंतारघु श्रेष्ठोरावणंराक्षसाधिपम् ॥ ५५ ॥ उल्लंघ्यसिंधुंशतयोजनायतंलंकांप्रविश्याथविदेहकन्यकाम् ॥ दृष्ट्वासमाभाष्यचवारिधिंपुनस्ततुंसम र्थःकतमोविचार्यताम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किंधाकांडे सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

आसकैगा, मैं अपने भ्राताके मारनेवाले उस दुष्टअन्तःकरणवाले रावणका संहारकरनेमें शक्तिमान्हूं, परंतु क्या करूं ? एक तो अकेला, दूसरे मेरे पंख नहीं इससे यह सिद्ध होताहै कि अतिबलवान् होनेपरभी मैं पंखहीन हूं, इसलिये उड़नेमें अशक्ति दिखाई ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! इसमहा सागरको अति यत्नसे लाँघनेके लिये पुरुषार्थमें तुम उपाय करो, फिर रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंके राजा रावणको मार डालैंगे ॥ ५५ ॥ इसलिये सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लांघकर; लंकामें जाय; जनककी पुत्रीको देख उनके साथ भाषणकर फिर समुद्रके पार होकर यहाँ आवें; ऐसा तुममेंसे कौन शक्तिमानहै ? इससमय पहले यह विचारकरो ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० उमा० किष्किन्धाकाण्डे भाषाटीकायां सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

सम्पातीने वानरोंके आगे चंद्रमा मुनिका कहाहुआ ज्ञान कहा ॥ श्रीमहादेवजी बोले, यह वचन सुनकर आश्चर्य होकर सब वानर सम्पातीसे पूँछने लगे कि, हे भगवन् ! अपना सब वृत्तान्त पहलेसे कहो ॥ १ ॥ यह सुनकर संपाती अपना पहला कियाहुआ वृत्तान्त कहनेलगा कि, मैं और जटायू जिससमय दोनों जवान थे तिससमय ॥ २ ॥ अपनी २ सामर्थ्यका हम दोनों जनोंको बड़ा गर्व था, एक समय हमारे मनमें आया कि, देखें हममें कितना बल है । इसका प्रमाण यहहै कि, आकाशमें फिरते २ सूर्य मण्डलतक चलेजाँय; ऐसा विचार ठहराय हम ऊंचे उडने लगे । तरुणाईके मदकरके धूपका किसीने विचार नहीं किया ॥ ३ ॥ हम कई हजारयोजन ऊंचे चलेगये, वहाँ सूर्यकी तीव्र गरमीसे जटायुका शरीर तपने लगा; छोटा

अथतेकौतुकाविष्टाःसंपातिंसर्ववानराः ॥ पप्रच्छुर्भगवन्ब्रूहिस्वमुदंतंत्वमादितः ॥ १ ॥ संपातिःकथयामासस्ववृत्तांतंपुराकृतम् ॥ अहंपुराजटायुश्चभ्रातरौरूढयौवनौ ॥ २ ॥ बलेनदर्पितावावांबलजिज्ञासयाखगौ ॥ सूर्यमंडलपर्यंतंगंतुमुत्पतितौमदात् ॥ ३ ॥ बहुयोजनसाहस्रंगतौतत्रप्रतापितः ॥ जटायुस्तंपरित्रातुंपक्षैराच्छाद्यमोहतः ॥ ४ ॥ स्थितोऽहंरश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विंध्यमूर्धनि ॥ पतितोदूरपतनान्मूर्च्छितोऽहंकपीश्वराः ॥ ५ ॥ दिनत्रयात्पुनःप्राणसहितोदग्धपक्षकः ॥ देशंवागिरिकूटान्वानजानेभ्रांतमानसः ॥ ६ ॥ शनैरुन्मील्यनयनेदृष्टवांतत्राश्रमंशुभम् ॥ शनैःशनैराश्रमस्यसमीपंगतवानहम् ॥ ७ ॥ चंद्रमानाममुनिराड्दृष्ट्वामांविस्मितोऽवदत् ॥ संपातेकिमिदंतेऽद्याविरूपंकेनवाकृतम् ॥ ८ ॥

भाई होनेसे जटायुके ऊपर मुझे दया उत्पन्न हुई; इसकारण मैं उसको अपने पंखोंसे ढककर मोहसे ॥ ४ ॥ स्थितहुआ सूर्यकी किरणोंसे मेरे पंख जल गये; फिर मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर गिरपडा । हेवानर वीरगण ! इतने ऊंचेके गिरनेके कारण मुझे मूर्च्छा आगई ॥ ५ ॥ इसके उपरांत मैं तीन दिनमें चैतन्य हुआ; पंख जलजानेसे मुझे भ्रमहुआ कि, मैं कौनदेशमें हूं, यह पर्वतोंके शिखर कौनसे हैं यह कुछभी नहीं जानता था ॥ ६ ॥ अनन्तर धीरे धीरे नेत्र उघाडे, तो वहांपर मुझे एक पुण्यमय आश्रम दिखाई दिया । मन्दगतिसे चलताहुआ मैं उस आश्रमके निकट गया ॥ ७ ॥ वहांपर चंद्रमा नामक एक पूजनीय ऋषि रहतेथे, मेरी स्थिति देखकर उनको बहुत आश्चर्य हुआ, उन्होंने मुझसे कहा, " सम्पाते ! आज यह क्या हुआ? तेरा

शरीर किसने विरूप किया ॥ ८ ॥ मैं तेरी पहली स्थिति जानताहूं कि, तू अत्यन्त बलवान् था । तेरे पंख कैसे जलगये ? तुझे भलालगे तो अपना सर्व वृत्तान्त मुझको सुनादे" ॥ ९ ॥ तब मैंने उन मुनिको अपना सर्व वृत्तांत सुनायकर अत्यंत दुःखी हो कहा; "हे महाराज ! अग्निके संताप करके मैं भीतरसे जले रहाहूं ॥ १० ॥ विनापंखोंके मैं कैसे जीवन धारण कर सकताहूं ?" मुनिनें मेरे यह वचन सुने और मेरे शरीरपर दृष्टि फिराई; जो दया करके उनके नेत्रोंमें आँसू आगये; उन्होंने मुझसे कहा ॥ ११ ॥ "हे वत्स ! प्रथम सुनले कि, मैं क्या कहताहूं, फिर जो इच्छा हो सो करना । अरे देह और उसके मूलकारण कर्मोंका नाश—विना ब्रह्मज्ञानके नहीं होता, दुःख भोगनेवाले और उसमें मोह करानेवाली यह दोनों वस्तुहैं. देख—दुःख

जानामित्वामहंपूर्वमत्यंतंबलवानसि ॥ दग्धौकिमर्थंतेपक्षौकथ्यतांयदिमन्यसे ॥ ९ ॥ ततःस्वचेष्टितंसर्वंकथयित्वातिदुःखितः ॥ अब्रुवं मुनिशार्दूलंदह्येऽहंदाववह्निना ॥ १० ॥ कथंधारयितुंशक्तोविपक्षोजीवितंप्रभो ॥ इत्युक्तोऽथमुनिर्वीक्ष्यमांदयार्द्रविलोचनः ॥ ११ ॥ शृणुवत्सवचोमेऽद्यश्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ॥ देहमूलमिदंदुःखंदेहःकर्मसमुद्भवः ॥ १२ ॥ कर्मप्रवर्ततेदेहेऽहंबुद्ध्यापुरुषस्यहि ॥ अहंकार स्त्वनादिःस्यादविद्यासंभवोजडः ॥ १३॥ चिच्छाययासदायुक्तस्तप्तायःपिंडवत्सदा ॥ तेनदेहस्यतादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥ १४ ॥ देहोऽहमितिबुद्धिःस्यादात्मनोऽहंकृतेर्बलात् ॥ तन्मूलएषसंसारःसुखदुःखादिसाधकः ॥ १५ ॥ आत्मनोनिर्विकारस्यमिथ्यातादा त्म्यतःसदा ॥ देहोऽहंकर्मकर्ताहमितिसंकल्प्यसर्वदा ॥ १६ ॥

उपजानेका कारण यह शरीरहै और शरीर कर्मसे उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ पुरुष देहपर अहं कहिये मैं [अहंता] ममताकी बुद्धि रखता है । इस कारण उसके हाथसे सदाही कर्म बनते रहतेहैं । यह अहंकार अनादि [बहुत प्राचीनका] होनेसे जड़ अविद्या करके उत्पन्नहुआ अर्थात् जडहै ॥ १३ ॥ जैसे लोहेका गोला वास्तवमें अग्नि नहीं, परन्तु वह [गोला] तपकर लाल होनेसे अग्निके समान दीखने लगता व अग्निके दाहादिकार्य करसक्ता है वैसेही यह अहंकार चैतन्यके प्रतिबिम्बसे नित्य युक्त रहताहै, देहकी इसमें (अहंकारसे) तादात्म्य (एकरूपता) होनेसे देह चैतन्ययुक्त होताहै ॥ १४ ॥ तिस अहंकारके प्रभावसे आत्माको ऐसी बुद्धि होतीहै कि, देह मैंहूं । इसकारण उसको सुख व दुःखादिका प्राप्त करानेवाला संसार अथवा जन्म मरण प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार निर्विकार आत्माको अहंकारादिके साथ मिथ्या तादात्म्यपनसे 'मैं देहहूं' अथवा 'उस देहसे पृथक्हूं, कर्मका

करनेवालाहूं' ऐसी पुरुषकी बुद्धि होतीहै, परन्तु किसीको पहले कियेहुए पुण्यके योगसे ऐसी देहाकार बुद्धि नहीं रहे, परन्तु मैं कर्म करवाहूं; ऐसी बुद्धि रहतीहीहै। और मैं देहहूं, कर्मका करनेवालाहूं, ऐसे संकल्पसे परवश हुआ ॥ १६ ॥ जीवन कर्मोंको करताहै। तैसेही वह कर्मके फलरूप सुख दुःखों करके निरंतर अपने आप पुण्य पापात्मकहो, ऊंचे नीचेके लोकोंमें भ्रमण करता रहताहै ॥ १७ ॥ मैंने यज्ञ दानादि बहुतसे पुण्य कार्य कियेहैं, इसकारण निश्चय मैं स्वर्गमें जायकर सुख भोगूंगा ऐसे संकल्प कराकरताहै। तैसेही मैं बड़ा पुण्यवान् हूं, ऐसे अध्याससे वह स्वर्गमें रहकर बहुत समयतक बडे २ सुख भोगताहै, उन पुण्योंके क्षीण होनेपर कर्मकी प्रेरणासे गिरनेकी इच्छा न रखता हुआ जीव नीचे गिरते समय

जीवःकरोतिकर्माणितत्फलैर्बद्ध्यतेऽवशः ॥ ऊर्ध्वाधोभ्रमतेनित्यंपापपुण्यात्मकःस्वयम् ॥१७॥ कृतंमयाधिकंपुण्यंयज्ञदानादिनिश्चितम् ॥ स्वर्गंगत्वासुखंभोक्ष्येइतिसंकल्पवान्भवेत् ॥ १८॥ तथैवाध्यासतस्तत्रचिरंभुक्त्वासुखंमहत् ॥ क्षीणपुण्यःपतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः ॥ १९ ॥ पतित्वामंडलेचेंदोस्ततोनीहारसंयुतः ॥ भूमौपतित्वाव्रीह्यादौतत्रस्थित्वाचिरंपुनः ॥ २० ॥ भूत्वाचतुर्विधंभोज्यंपुरुषैर्भुज्यतेततः ॥ रेतोभूत्वापुनस्तेनऋतौस्त्रीयोनिसिंचितः ॥ २१ ॥ योनिरक्तेनसंयुक्तंजरायुपरिवेष्टितम् ॥ दिनेनैकेनकललंभूत्वारूढत्वमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ तत्पुनःपंचरात्रेणबुद्बुदाकारतामियात् ॥ सप्तरात्रेणतदपिमांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ पक्षमात्रेणसापेशीरुधिरेणपरिप्लुता ॥ तस्याएवांकुरोत्पत्तिःपंचविंशतिरात्रिषु ॥ २४ ॥

॥ १८ ॥ १९ ॥ प्रथम वह चन्द्रमण्डलपर गिरताहै, वहांसे किरणोंके द्वारा हिमकिरणोंके साथ भूमिपर जाता है; फिर वहांसे व्रीहि इत्यादि धान्यादिकोंमें बहुत दिनतक रहता है ॥ २० ॥ उन धान्योंके चार प्रकारके भोज्य पदार्थ होते हैं, तिनमेंसे एकमें वह रहताहै; पुरुष उस पदार्थको भक्षण करतेहैं उस अन्नरसका फिर वीर्य होता है, ऋतुकालमें पुरुष उस वीर्यको स्त्रीकी योनिमें डालते हैं. ॥ २१ ॥ फिर वह योनिके रुधिरसे मिलजाकर एक दिनमें सूक्ष्म झिल्लीसे लिपटा हुआ अधिक दृढ होजाताहै ॥ २२ ॥ फिर पांच रात्रि जानेपर वह बुद्बुदेके समान आकारवाला होता है सात रात्रि बीतनेपर उसका मांसमय पेशी [अंडाकार] बनतीहै ॥ २३ ॥ आगे पंद्रह दिनतक वह पेशी खूनमें भरी रहती है। इसके उपरान्त

पचीस रात्रि होनेपर उसमें अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं ॥ २४ ॥ क्रमसे गर्दन, मस्तक, कंधे, पीठ, रीढ और पेट; इन पांच अलग २ अंगोंके अंकुर पहले मासके अंतमें उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ हाथ, पाँव, कमर, पँसली, घुँटुए, यह क्रमसे दूसरे मासमें उत्पन्न होते हैं; इसमें अन्यथा नहीं होता ॥ २६ ॥ तीन महीनेके अनुक्रमसे अंगकी संधियाँ [जोड़] तैयार होवे हैं; चौथे महीनेमें अनुक्रमसे सर्व अँगुलियाँ उत्पन्न होती हैं; पांचवें महीनेमें नाक, कान और आँखोंके छेद उत्पन्न होते हैं; पांचवेंही मासमें दांत; नख, गुदा और शिश्न [लिंग] उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ छठे मासके प्रारंभमें कानोंके छेद स्पष्ट दिखलाई देते हैं । शिश्न [लिंग] या स्त्री पुरुषोंके जिसके जिसके २ उपस्थेन्द्रिय और नाभि हैं; यह

ग्रीवाशिरश्चस्कंधश्चपृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पंचधांगानिचैकैकंजायंतेमासतःक्रमात् ॥ २५ ॥ पाणीपादौतथापार्श्वःकटिर्जानुस्तथैवच ॥ मासद्वयात्प्रजायंतेक्रमेणैवचनान्यथा ॥ २६ ॥ त्रिभिर्मासैःप्रजायंतेअंगानांसन्धयःक्रमात् ॥ सर्वांगुल्यःप्रजायंतेक्रमान्मासचतुष्टये ॥ ॥२७॥ नासाकर्णौचनेत्रेचजायंतेपंचमासतः ॥ दंतपंक्तिर्नखागुह्यंपंचमेजायतेतथा ॥२८॥ अर्वाक्षण्मासताश्छिद्रंकर्णयोर्भवतिस्फुटम्॥ पायुर्मेढ्रमुपस्थंचनाभिश्चापिभवेन्नृणाम् ॥ २९ ॥ सप्तमेमासिरोमाणिशिरःकेशास्तथैवच ॥ विभक्तावयवत्वंचसर्वंसंपद्यतेऽष्टमे ॥ ३० ॥ जठरेवर्धतेगर्भःस्त्रियाएवंविहंगम ॥ पंचमेमासिचैतन्यंजीवःप्राप्नोतिसर्वशः ॥ ३१ ॥ नाभिसूत्राल्परंध्रेणमातृभुक्तान्नसारतः ॥ वर्धते गर्भगःपिंडोनम्रियेतस्वकर्मतः ॥ ३२ ॥ स्मृत्वासर्वाणिजन्मानिपूर्वकर्माणिसर्वशः ॥ जठरानलतप्तोऽयमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ नानायोनिसहस्रेषुजायमानोऽनुभूतवान् ॥ पुत्रदारादिसंबंधंकोटिशःपशुबांधवान् ॥ ३४ ॥

प्राणीके अंग छठे मासमें उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ सातवें मासमें अंगपर रोमावली और मस्तकपर केश उत्पन्न होते हैं । सर्व अंग अलग २ स्पष्ट समझनेके योग्य आठवें मासमें तैयार होते हैं ॥ ३० ॥ हे पक्षिराज ! इसप्रकार स्त्रीके उदरमें गर्भ बढता रहता है । पांचवें मासमें जीवको चेतना शक्ति प्राप्त होती है । [इसका बोध होता है कि, मैं कहाँहूँ] ॥ ३१ ॥ गर्भमें रहा हुआ वह पिंड माताके खाये हुए अन्नके रससे नाभिके नालमें हुए महीन छिद्रके द्वारा उतरे हुए रसके आहारसे बढ़ता है, परन्तु अपने कर्मके योगसे मरण नहीं पाता ॥ ३२ ॥ वह जीव अपने किये हुए पहले जन्मके सर्व कर्मोंको याद करता है; तथा जठराग्निसे तपाया हुआ जीव इस प्रकार कहता है ॥ ३३ ॥ कि " पहले मैंने हजारों

योनियोंमें अनेक प्रकारके जन्म लेकर स्त्री पुत्रादिका सम्बन्ध और बान्धवोंका तथा करोडोंवार पशुगणोंका अनुभव किया है ॥ ३४ ॥ इसी भाँति कुटुम्बके पालन पोषणकी आसक्तिसे न्याय और अन्याय करिके धन उपार्जन किया; परन्तु मैंने दुर्भाग्यसे किसी दिन स्वप्नमें भी विष्णु भगवानूका चिंतवन नहीं किया ॥ ३५ ॥ इस कारण अब मैं गर्भवासका बडाभारी दुःख भोग रहाहूँ; तैसेही इसक्षणमें नाश होनेवाली देहके विषय अचल व स्तुतिके समान इसको अपना मानकर मारे तृष्णाके भ्रमा करताहूं ॥ ३६ ॥ तैसेही मैं कुकार्य करता रहा अपने हितका [आत्म प्राप्तिका] कोई उपाय नहीं किया; इससेही अपने कर्मोंके अनुसार आजतक मुझे अनेक प्रकारके दुःख भोगने पडे और अब यह दशा प्राप्त हुई है ॥ ३७ ॥ अब इस नरकके समान गर्भवाससे प्रभु मुझे कब निकालोगे ? जिस समय प्रभु इस असह्य दुःखसे मुझे निकालैंगे तबसे आरंभ

कुटुंबभरणासक्त्यान्यायान्यायैर्धनार्जनम् ॥ कृतंनाकरवं विष्णुचिंतांस्वप्नेऽपिदुर्भगः ॥ ३५ ॥ इदानींतत्फलंभुंजेगर्भदुःखंमहत्तरम् ॥ अशाश्वतेशाश्वतवद्देहेतृष्णासमन्वितः ॥ ३६ ॥ अकार्याण्येवकृतवान्नकृतंहितमात्मनः ॥ इत्येवंबहुधादुःखमनुभूयस्वकर्मतः ॥ ३७ ॥ कदानिष्क्रमणंमेस्याद्गर्भान्निरयसंनिभात् ॥ इतऊर्द्ध्वंनित्यमहंविष्णुमेवानुपूजये ॥ ३८ ॥ इत्यादिचिंतयञ्जीवोयोनियंत्रप्रपीडितः ॥ जायमानोऽतिदुःखेननरकात्पातकीयथा ॥ ३९ ॥ पूतिव्रणान्निपतितःकृमिरेषइवापरः ॥ ततोबाल्यादिदुःखानिसर्वैएवंविभुंजते ॥४०॥ त्वयाचैवानुभूतानिसर्वत्रविदितानिच ॥ नवर्णितानिमेगृध्रयौवनादिषुसर्वतः ॥ ४१ ॥ एवंदेहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्निरयादिकम् ॥ गर्भवासादिदुःखानिभवंत्यभिनिवेशतः ॥ ४२ ॥

करके मैं नित्य विष्णुजीका पूजन करूँगा, ॥ ३८ ॥ इत्यादि विचार जीवके मनमें आते जाते हैं; जब वह जीव योनियंत्रमें पीडाको प्राप्त करता हुआ जन्म लेता है; तिस समय पापी जीव नरकसे निकलती समय अति दुःख पावे है ॥ ३९ ॥ या दुर्गन्धिसे भरे हुए फोडेसे [योनिरूप क्षतसे] कोई कीडा निकल पड़ता है, ऐसेही वह जीव योनिमेंसे निकलता है । फिर बाल्यादि अवस्थाओंके दुःख पाता है, इस प्रकारसे जन्म लेनेवाले प्रत्येक प्राणिको क्लेश भोगने पड़ते हैं ॥ ४० ॥ हे गृध्र ! तुमने युवा अवस्थामें जो दुःख पाये हैं; उन दुःखोंको सर्व लोक जानते हैं; इसलिये मैं उनका यहांपर वर्णन नहीं करता ॥ ४१ ॥ 'मैं देहहूं' इस प्रकारका अभ्यास नित्य करनेसे 'मैं कर्त्ताहूं' ऐसा अभिमान होता जाता है और अभिमानूका

परिणाम नरकादि यातना व गर्भवासादि दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ४२ ॥ इस कारण मूल व सूक्ष्म दोनों देहोंसे अलग २ प्रकृतिसे परे आत्माको जानकर देहादिके विषयसे 'यह मैं' और यह मेरा' ऐसी बुद्धि त्याग करके यह सब जगत परमात्ममय है; इसप्रकारसे ज्ञानवान् होना चाहिये ॥ ४३ ॥ आत्माको जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति यह तीनों अवस्था नहीं हैं, इसका स्वरूप सत्य ज्ञानादि, उपनिषदोंके वर्णन करने अनुसार (तीनों कालमें नष्ट न होनेवाला होनेसे ज्ञानमय व आनंदमय) है, उसमें मायासे उत्पन्न होनेवाले दोष नहीं हैं, व ज्ञानस्वरूप और नित्य शान्त है; ऐसा ध्यान करे ॥ ४४ ॥ चैतन्यमय आत्मस्वरूपका ज्ञान होनेपर; व अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले; देहादिकोंमें; अहंता; ममता रूप मोह नष्ट हुआ; फिर

तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानंप्रकृतेःपरम् ॥ ज्ञात्वादेहादिममतांत्यक्त्वात्मज्ञानवान्भवेत् ॥ ४३ ॥ जाग्रदादिविनिर्मुक्तंसत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥ शुद्धंबुद्धंसदाशांतमात्मानमवधारयेत् ॥ ४४ ॥ चिदात्मनिपरिज्ञातेनष्टेमोहेऽज्ञसंभवे ॥ देहःपततुवारब्धकर्मवेगेनतिष्ठतु ॥४५॥ योगिनोनहिदुःखंवासुखंवाऽज्ञानसंभवम् ॥ तस्माद्देहेनसहितोयावत्प्रारब्धसंक्षयः ॥ ४६ ॥ तावत्तिष्ठसुखेनत्वंधृतकंचुकसर्पवत् ॥ अन्यद्वक्ष्यामितेपक्षिञ्छृणुमेपरमंहितम् ॥ ४७ ॥ त्रेतायुगेदाशरथिर्भूत्वानारायणोऽव्ययः ॥ रावणस्यवधार्थायदंडकानागमिष्यति ॥ ॥ ४८ ॥ सीतयाभार्ययासार्धंलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ तत्राश्रमेजनकजांभ्रातृभ्यांरहितेवने ॥ ४९ ॥ रावणश्चोरवन्नीत्वालंकायांस्थापयिष्यति ॥ तस्याःसुग्रीवनिर्देशाद्वानराःपरिमार्गणे ॥ ५० ॥

देह गिरे, प्रारब्ध कर्मके बलसे रहो ॥ ४५ ॥ तिस योगके मिल जानेसे अज्ञान करके उत्पन्न होनेवाले सुख या दुःख नहीं रहते इसकारण जबतक प्रारब्ध कर्मका नाश होवे ॥ ४६ ॥ तबतक केंचली उतारनेवाले सर्पके समान वर्तावकर। जबतक साँप केंचलीको नहीं छोड़ता कि जबतक उसके त्यागनेका समय नहीं आता. हे सम्पाते ! एक दूसरा तेरा परमहित कहताहूँ तू सुन ॥ ४७ ॥ त्रेतायुगमें जगदाधार, निर्विकार, परमात्मा दशरथजीके पुत्र होकर रावणका वध करनेके लिये दंडकारण्यमें आवेंगे ॥ ४८ ॥ उनके साथ उनकी भार्या सीता और लक्ष्मणजीभी आवेंगे। वनके बीच जिस समय दोनों भ्राता आश्रममें न होंगे, उस समय जानकीजीको ॥ ४९ ॥ रावण चोरके समान चुरा ले जायगा और

लंकामें रक्खेगा सुग्रीवकी आज्ञासे वानर उनको ढूँढते २ ॥ ५० ॥ समुद्रके किनारे आवेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं कि, उनसे किसी कारण करके तेरा समागम हो जायगा ॥ ५१ ॥ तिस समय तू उनको यथार्थबतला देना कि जानकी कहां हैं। बस फिर तत्कालही तेरे दोनों नये पंख निकल आवेंगे ॥ ५२ ॥ इसप्रकार उन चंद्रनामक मुनिने मुझको समझाया वे मुनि एक मुनिसमुदायके स्वामी थे। हे वानरो ! अब देखो मेरे यह दोनों अतिकोमल पंख निकलते हैं ॥ ५३ ॥ तुम्हारा भला हो, मैं अभी जाताहूं, यह निश्चय समझो कि, सीताजी तुमको दिखाई देंगी। यह ठीक है कि, समुद्र उतरकर जाना कठिन है, परन्तु पल्लीपार जानेका तुम यत्न करो ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! संसारसमुद्र उतना विस्तार

आगमिष्यंतिजलधेस्तीरंतत्रसमागमः ॥ त्वयातैःकारणवशाद्भविष्यतिनसंशयः ॥ ५१ ॥ तदासीतास्थितिंतेभ्यःकथयस्वयथार्थतः ॥ तदैवतवपक्षौद्वावुत्पत्स्येतेपुनर्नवौ ॥ ५२ ॥ संपातिरुवाच ॥ बोधयामासमांचंद्रनामामुनिकुलेश्वरः ॥ पश्यंतुपक्षौमेजातौनूतनावतिकोमलौ ॥ ५३ ॥ स्वस्तिवोऽस्तुगमिष्यामिसीतांद्रक्ष्यथनिश्चयम् ॥ यत्नंकुरुध्वंदुर्लंघ्यसमुद्रस्यविलंघने ॥ ५४ ॥ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितंसंसारवारांनिधिंतीर्त्वागच्छतिदुर्जनोऽपिपरमंविष्णोःपदंशाश्वतम् ॥ तस्यैवस्थितिकारिणस्त्रिजगतांरामस्यभक्ताःप्रियायूयंकिंनसमुद्रमात्रतरणेशक्ताःकथंवानराः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्या० किष्कि०अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ॥ गतेविहायसागृध्रराजेवानरपुंगवाः ॥ हर्षेणमहताविष्टाःसीतादर्शनलालसाः ॥ १ ॥

वाला है कि, उसका पारही नहीं, परन्तु जिसका केवल नाम लेनेसेही कोई भी मनुष्य उस समुद्रके पारजाकर विष्णुजीके अत्युत्तम सनातन पदको जाता है; तिस त्रिलोकीनाथ रामचंद्रके तुम प्यारे भक्तहो; फिर क्या इस लौकिक समुद्रको तुम नहीं तर जाओगे ? अर्थात् तर जाओगे ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे भाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ पवनकुमार हनुमान्‌जीका विशालरूप धरकर समुद्रके तीर जाना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं;—जब गृध्रराज [संपाति] आकाशमार्गमें उड़गया; तब समस्त वानरोंको जानकीजीकी सुधि लानेकी प्रबल इच्छाथी। संपातिके नये पंख उठे हुए देखकर उनको पूर्ण विश्वास होगया कि, इसने जो जो कुछ कहा है वह सबही ठीक है । अर्थात् हमें सीताजीकी

सुधि मिल जायगी—इस पराकाष्ठाके आनंदसे उनका अंतःकरण भरगया ॥ १ ॥ इतनेमें उनकी दृष्टि समुद्रपर गई तो उसमें बड़ी तरंगें उछल रही हैं। जिसका स्पर्श करना आकाशको पकड़नेके समान कठिन है, "जो नाके आदि जलचर जंतुओंके समूहसे भयंकर है ऐसे उस समुद्रका उग्र रूप वानरोंने देखा ॥ २ ॥ तब वे (वानर) परस्पर बोले;—कि किसप्रकार इसके पार जायाजाय।" तिस मंडलीमेंसे अंगदजीने कहा हे वानर वीरगण ! सुनो ॥ ३ ॥ तुम अत्यन्त बलवान् व शूरहो; प्रत्येकने आजतक अनेक स्थानोंपर पराक्रम दिखाया है; इससमय जो कोई समुद्रके पार जाकर राजाका कार्य करेगा ॥ ४ ॥ वह निःसंदेह सर्व वानरोंका प्राणदाता होगा। इसकारण ऐसा जो कोईभी हो वह महापराक्रमी वानर शीघ्र उठकर मेरे पास आवे ॥ ५ ॥ सर्व वानरोंका, सुग्रीवका, बहुत तो क्या रामजीकाभी प्राण रक्षण करनेकी भलाई भी निःसंदेह उसको

ऊचुःसमुद्रंपश्यंतोनक्रचक्रभयंकरम् ॥ तरंगादिभिरुन्नद्धमाकाशमिवदुर्ग्रहम् ॥ २ ॥ परस्परमवोचन्वैकथमेनंतरामहे ॥ उवाचचांगदस्तत्रशृणुध्वंवानरोत्तमाः ॥ ३ ॥ भवंतोऽत्यंतबलिनःशूराश्चकृतविक्रमाः ॥ कोवाऽत्रवारिधिंतीर्त्वाराजकार्यंकरिष्यति ॥ ४ ॥ एतेषांवानराणांसप्राणदातानसंशयः ॥ अतोत्तिष्ठतुमेशीघ्रंपुरतोयोमहाबलः ॥ ५ ॥ वानराणांचसर्वेषांरामसुग्रीवयोरपि ॥ सएवपालकोभूयान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ६ ॥ इत्युक्तेयुवराजेनतूष्णींवानरसैनिकाः ॥ आसन्नोचुःकिंचिदपिपरस्परविलोकिनः ॥ ७ ॥ अंगदउवाच ॥ ॥ उच्यतांवैबलंसर्वैःप्रत्येकंकार्यसिद्धये ॥ केनवासाध्यतेकार्यंजानीमस्तदनंतरम् ॥ ८ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वाप्रोचुर्वीराबलंपृथक् ॥ योजनानांदशारभ्यदशोत्तरगुणंजगुः ॥ ९ ॥ शतादर्वाग्जांबवांस्तुप्राहमध्येवनौकसाम् ॥ पुरात्रिविक्रमेदेवेपादंभूमानलक्षणम् ॥ १० ॥

मिलेगी ॥ ६ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानरवीर एक एक दूसरेका मुँह चुपचाप देखतेरहे; किसीके मुखसे एक शब्दभी नहीं निकला ॥ ॥ ७ ॥ तब अंगदजीने कहा—"कार्य सिद्धकरनेकेलिये सब अलग २ अपनी शक्तिका बखानकरो। फिर इसके पीछे यह जानाजायगा, कि किसके हाथसे कार्यसिद्ध होगा" ॥ ८ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर उन वीरोंने पृथक् २ अपनी २ शक्ति कही। पहलेही एकने, 'मैं दशयोजन उड़कर जाऊंगा' कहा; फिर एक २ जन दश २ योजन अधिक कहता गया, दूसरेने 'वीस योजन जाय सकाहूं, कहा, तीसरा बोला;—'मैं तीस योजन जाऊंगा।' चौथा बोला, 'चालीस' पांचवेंने, 'पचास' इसप्रकार क्रमबढ़ा ॥ ९ ॥ उस वनचर मण्डलीमेंसे जाम्बवान्ने कहा कि 'मैं नब्बे

जाय सक्ताहूं।' फिर जाम्बवान्,–पहले परमेश्वरने त्रिविक्रम (वामन) अवतार लियाथा; उनका पाँव पृथ्वीके परिमाणके समान लम्बा था ॥ १० ॥ तब मैंने उन वामनजीकी इक्कीस प्रदक्षिणा कीथीं, अब तो मुझे बुढापेने ग्रसलिया; इसलिये मुझमें ऐसी उडान करनेकी सामर्थ्य नहीं ॥ ११ ॥ अंगदजी बोले; 'मैं महासागरके पारजाय सक्ताहूं पर पलटकर आसक्ताहूं कि नहीं इतनाही सन्देहहै' ॥ १२ ॥ जाम्बवान्‌ने अंगदजीसे कहा कि हे अंगद ! तुम शूरहो और इसमेंभी संशय नहीं कि तुम कार्य करलोगे; परंतु तुम हमारे राजा और नियामकहो; (तुम्हारे चलेजानेपर 'अमुककार्य इसप्रकारकरो' ऐसा समझानेवाला कोई नहीं रहेगा) इसकारण तुम्हारे समर्थ होनेपरभी मैं तुम्हें इसकार्यमें नहीं लगा सक्ता ॥ १३ ॥ यह सुनकर अंगदजी बोले, कि "जो ऐसाहै तो हम सबजने पहलेके समान कुश बिछायकर शयन करें। जब वह काम किसीसे नहीं कियागया, फिर कैसे

त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगांप्रदक्षिणविधानतः ॥ इदानींवार्धकग्रस्तोनशक्नोमिविलंघितुम् ॥ ११॥ अंगदोऽप्याहमेगंतुंशक्यंपारंमहोदधेः ॥ पुनर्लंघनसामर्थ्यंनजानाम्यस्तिवानवा ॥ १२॥ तमाहजांववान्वीरस्त्वंराजानोनियामकः ॥ नयुक्तंत्वांनियोक्तुंमेत्वंसमर्थोऽसियद्यपि ॥ १३ ॥ अंगदउवाच ॥ एवंचेत्पूर्ववत्सर्वेस्वप्स्यामोदर्भविष्टरे ॥ केनापिनकृतंकार्यंजीवितुंचनशक्यते ॥ १४॥ तमाहजांबवान्वीरोदर्शयिष्यामिते सुत ॥ येनास्माकंकार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणच ॥ १५॥ इत्युक्त्वाजांववान्प्राहहनूमंतमवस्थितम् ॥ हनूमन्किंरहस्तूष्णींस्थीयतेकार्यगौरवे ॥ १६ ॥ प्राप्तेऽज्ञेनेवसामर्थ्यंदर्शयाद्यमहाबल ॥ त्वंसाक्षाद्वायुतनयोवायुतुल्यपराक्रमः ॥ १७ ॥ रामकार्यार्थमेवत्वंजनितोऽसि महात्मना ॥ जातमात्रेणतेपूर्वंदृष्ट्वोद्यंतंविभावसुम् ॥ १८ ॥

जीवन धारण कियाजाय ?" ॥ १४ ॥ वीर जाम्बवान्‌ने अंगदजीसे कहा–हे बालक ! जिसके हाथसे हमारा कार्य बहुतशीघ्र सिद्ध होगा, ऐसा वानर मैं तुझे दिखाताहूं ॥ १५ ॥ यह कहकर जाम्बवान् वहाँपर बैठेहुए हनुमान् जीसे कहनेलगे कि–हे हनुमन् ! महाबलवान्; पराक्रमी और सामर्थ्यवाले होकर अजानकी तरह मौनहोकर क्यों बैठेहो ? ॥ १६ ॥ हे महाबलवान् वीर ! तुम साक्षात् वायुके समान उनके पुत्रहो, इसकारण तुम साक्षात् पवनकेही समान पराक्रमीहो, हे महाबलवान् वीर ! आज तुम अपनी सामर्थ्य दिखाओ, क्योंकि महात्मा पवनने रामके कार्यके निमित्त तुमको उत्पन्न कियाहै ॥ १७ ॥ तुम्हारा अवतार केवल रामजीकेही लिये हुआ है; मैं तुम्हारी अतुलशक्तिका एक उदाहरण देताहूं, जन्मके समय सूर्य

भगवान् निकलरहेथे ऐसा तुम्हें दिखाई दिया ॥ १८ ॥ तब तुम्हें ऐसा जान पड़ा कि यह पका हुआ फलहै, इसको लेनां चाहिये इसलिये तुम सहजहीसे बाललीला करके उड़ानमार पांच शत योजन ऊँचे उडगये । वहाँ परसे भूमिपर गिरे तोभी तुमको कुछ चोट नहीं पहुँची ॥ १९ ॥ फिर तुम्हारे बलके प्रमाणको कौन बखान करसक्ताहै ? हाथमें लियेहुए कार्यका पूरा करनेका तुम्हारा नियम है । हे वीर ! इसकारणसे उठो और रामजीका कार्य करके हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥ जाम्बवानूके यह वचन सुनकर हनुमानूजीको बड़ा हर्ष हुआ; उन्होंने सिंहनादके समान विलक्षण गर्जना की । उस सिंहनादको सुनकर लोकोंको ऐसा समझपड़ा कि क्या यह ब्रह्माण्डका गोलक फट जायगा ॥ २१ ॥ उन्होंने पर्वताकार

पक्कंफलंजिघृक्षामीत्युत्प्लुतंबालचेष्टया ॥ योजनानांपंचशतंपतितोऽसिततोभुवि ॥१९॥ अतस्त्वद्बलमाहात्म्यंकोवाशक्तोतिवर्णितुम् ॥ उत्तिष्ठकुरुरामस्यकार्यंनःपाहिसुव्रत ॥२०॥ श्रुत्वाजांववतोवाक्यंहनुमानतिहर्षितः ॥ चकारनादंसिंहस्यब्रह्मांडस्फोटयन्निव ॥२१॥ बभूवपर्वताकारस्त्रिविक्रमइवापरः ॥ लंघयित्वाजलनिधिंकृत्वालंकांचभस्मसात् ॥२२॥ रावणंसकुलंहत्वाऽऽनेष्येजनकनंदिनीम् ॥ २३ ॥ यद्वाबद्धागलेरज्ज्वारावणंवामपाणिना ॥ लंकांसपर्वतांधृत्वारामस्याग्रेक्षिपाम्यहम् ॥२४॥ यद्वादृष्ट्वैवयास्यामिजानकींशुभलक्षणाम् ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंजांववानिदमब्रवीत् ॥२५॥ दृष्ट्वैवागच्छभद्रंतेजीवंतींजानकींशुभाम्॥पश्चाद्रामेणसहितोदर्शयिष्यसिपौरुषम् ॥२६॥

प्रचंडरूप धारण किया; उस समय वह दूसरे वामनजीके समान जान पड़ने लगे शक्तिका विश्वास दिखलानेकेलिये इतना कृत्यकर हनुमानूजी वानरोंसे बोले बतलावो, कि मैं कौनसा कार्य करूं; क्या समुद्र उलाँघ जाऊँ; लंकाको भस्म करडालूं ॥ २२ ॥ या सारेकुलके साथ रावणका वध करके जानकीको यहाँपर लेआऊं ॥ २३ ॥ अथवा रावणके गलेमें रस्सीडालकर व बायें हाथसे पर्वतकेसहित लंकानगरीको उखाड़ रामचंद्रजीके आगे लाधरूं ॥ २४ ॥ अथवा इन शुभलक्षणसम्पन्न जानकीजीका दर्शन कर समाचार लेआऊँ ? हनुमानूजीका प्रश्न सुनकर जाम्बवानूने ऐसा उत्तर दिया ॥ २५ ॥ "हे वीर ! कल्याणकारी जानकीजीका जीवनयुक्त दर्शन करआओ; फिर रामजीके साथ जायकर तुम अपना पराक्रम

१ मूलमें "जिघृक्षामि" शब्द "ग्रहीष्यामि" अर्थमें आर्ष है, टीकाकार लोग यह कहते हैं परन्तु हमने उसको आर्ष न मानकर सहजही अर्थ किया है मूलके १९ श्लोकसे अनुवाद मिलाओ।

दिखलाना ॥ २६ ॥ हे हनूमन् ! अब यहाँसे आकाशमार्गमें जातेहुए तुमको मार्ग कल्याणरूप होवे तुम रामजीके कार्यको जातेहो; इसकारण पवन तुम्हारी सहायता करनेको पीछे २ चलें ॥ २७ ॥ " इसप्रकार आशीर्वाद देकर वानरश्रेष्ठोंने हनुमान्‌जीको बिदा किया । फिर हनुमान्‌जी महेन्द्र पर्वतके शिखरपर चढ़कर अद्भुतदर्शन हुए, अर्थात् उनको देखकर लोक विस्मित हुए ॥ २८ ॥ तिसकाल हनुमान्‌जीका शरीर विशाल श्रेष्ठ पर्वतके समान रंग, सुवर्णके समान वदनमंडल, अरुणके समान मनोहर और बड़ी २ दोनों बाहें महासर्पके समान ज्ञात हुईं, इसप्रकार महात्मा

कल्याणंभवताद्भद्रगच्छतस्तेविहायसा ॥ गच्छंतंरामकार्यार्थंवायुस्त्वामनुगच्छतु ॥ २७ ॥ इत्याशीर्भिःसमामंत्र्यविसृष्टःप्लवगाधिपैः ॥ महेंद्राद्रिशिरोगत्वाबभूवाद्भुतदर्शनः ॥ २८ ॥ महानगेंद्रप्रतिमोमहात्मासुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ॥ महाफणींद्राभसुदीर्घवाहुर्वातात्मजोऽदृश्यतसर्वभूतैः ॥२९॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेकिष्किंधाकांडेनवमःसर्गः ॥९॥ ॥ समाप्तोऽयंकिष्किंधाकांडः ॥

हनुमान्‌जी सर्व प्राणियोंको दिखाई देने लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दोहा–विपति हरण तारण तरण, कार्यकरण सुखदान ॥ महावीर रणधीर श्री, रघुपति दूत महान ॥ १ ॥
तिनको ध्याय मनाय नित, द्विजबलदेवप्रसाद ॥ रामायण भाषा करत, उमा शंभु संवाद ॥ २ ॥

॥ इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ॥

इदमध्यात्मरामायणाकिष्किंधाकाण्डं मुम्बय्यां खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत् १९६१, शके १८२६, सन् १९०५.

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेते किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते सुन्दरकाण्डप्रारंभः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥ ॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे सुन्दरकाण्डस्य भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

दोहा—योगयुक्त सुन्दर तनु, बलनिधि बाहु विशाल । सिय खोजन हित दत्तचित, प्रबल अंजनीलाल ॥
सिय सुध हियमें लायकर, चले वारिनिधिपार । अस छबिखान सुजान नित, वंदौं पवनकुमार ॥
मूल श्लोक अनुसारही, सरल अर्थ विस्तार । सो भाषामें करहुँ अब, निज मतिके अनुसार ॥
लखहिं सुजन निर्मल हृदय, पावहिं मन विश्राम । तिनके हित यह श्रम सकल, जे हित कृत निताराम ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि,—हे पार्वति ! आनंदके निधान पवनके पुत्र हनुमान्जी लंका और महेन्द्र पर्वतके बीचमें शतयोजनके विस्तारवाले समुद्रको कि, जिसमें मगर इत्यादि दुष्ट जलचरोंके वासके कारण कोई भी प्राणी उसमें गिरकर फिर जीवित नहीं रहता, ऐसे महासागरको लाँघनेका विचार मनमें करते रहे ॥ १ ॥ उन्होंने प्रभु श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके यह वचन कहे । " हे वानरगण ! तुम सबजने देखो; मैं आकाशमा

श्रीमहादेव उवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णंसमुद्रंमकरालयम् ॥ लिलंघयिषुरानंदसंदोहोमारुतात्मजः ॥१॥ ध्यात्वारामंपरात्मानमिदंवचनमब्रवीत् ॥ पश्यंतुवानराःसर्वेंगच्छंतंमांविहायसा ॥२॥ अमोघंरामनिर्मुक्तंमहावाणमिवाखिलाः ॥ पश्याम्यद्यैवरामस्यपत्नींजनकनंदिनीम् ॥ ३ ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोहंपुनःपश्यामिराघवम् ॥ प्राणप्रयाणसमयेयस्यनामसकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥ नरस्तीर्त्वाभवांभोधिमपारंयातितत्पदम् ॥ किंपुनस्तस्यदूतोऽहंतदंगांगुलिमुद्रिकः ॥ ५ ॥

र्गसे होकर जाताहूं ॥ २ ॥ हे समस्त वीरगण ! जिसप्रकार रामचंद्रजीका छोडा हुआ बाण कभी वृथा नहीं जाता; वैसेही विना कार्य किये हम भी लौट आनेवाले नहीं, आजही रामचंद्रजीकी स्त्री व राजा जनककी कन्या हमें दिखाई देंगी ॥ ३ ॥ इससे मैं कृतार्थ होजाऊंगा; इस प्रकार कार्य होजानेपर मैं रामचंद्रजीके दर्शन करूंगा । अहो ! प्राण निकलनेके समय एकबार जिसके नामका स्मरण करनेसे ॥ ४ ॥ प्राणी इस अपार भवसागरको तरकर उन (श्रीरामचंद्रजी) के पदको प्राप्त होता है; फिर मैं तो उनका प्रत्यक्ष सेवकहूं इसके सिवाय मेरे पास उनके

अवयवरूप अँगलीकी अँगूठी है ॥ ५ ॥ और हृदयमें सदा उनका ध्यान रहता है; फिर मुझसे यह क्षुद्र समुद्र क्यों नहीं तरा जायगा" यह कहकर हनुमान्‌जीने अपनी बाँहें पसारीं और पूँछको लम्बा किया ॥ ६ ॥ गर्दन सीधीकी दृष्टि ऊपरको उठाई और दोनों चरण सकोड लिये उन्होंने दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरके अति शीघ्रतासे उड़ान लगाई । उनकी गति (चाल) पवनके समान (चपल व अव्याहत) हुई ॥ ॥ ७ ॥ आकाशमें देवता लोगों करके देखे जाते हुए हनुमान्‌जी आकाशमार्गमें जाने लगे; पवनकुमार हनुमान्‌जीको पवनके समान वेगसे जाता हुआ देखकर देवताओंके मनमें ॥ ८ ॥ यह आया कि, इस वानरकी बुद्धि और बलकी परीक्षा करें। ऐसा विचारकर देवता लोग परस्पर कहने लगे;—कि, यह जाता हुआ वानर महाबुद्धिमान् व पवनके समान दिखाई देता है ॥ ९ ॥ परन्तु इस बातको जाननेके लिये कि, यह लंका

तमेवहृदयेध्यात्वालंघयाम्यल्पवारिधिम् ॥ इत्युक्त्वाहनुमान्बाहूप्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥ ऋजुग्रीवोर्द्ध्वदृष्टिःसन्नाकुंचितपदद्वयः ॥ दक्षिणाभिमुखस्तूर्णंपुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥ आकाशात्त्वरितंदेवैर्वीक्ष्यमाणोजगामसः ॥ दृष्ट्वाऽनिलसुतंदेवागच्छंतंवायुवेगतः ॥ ८ ॥ परीक्षणार्थंसत्त्वस्यवानरस्येदमब्रुवन् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोवानरोवायुविक्रमः ॥ ९ ॥ लंकांप्रवेष्टुंशक्तोवानवाजानीमहेवलम् ॥ एवंविचार्यनागानांमातरंसुरसाभिधाम् ॥ १० ॥ अब्रवीद्देवतावृन्दःकौतूहलसमन्वितः ॥ गच्छत्वंवानरेंद्रस्यकिंचिद्विघ्नंसमाचर ॥ ११ ॥ ज्ञात्वातस्यबलंबुद्धिंपुनरेहित्वरान्विता ॥ इत्युक्तासाययौशीघ्रंहनुमद्विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥ आवृत्त्यमार्गंपुरतःस्थित्वावानरमब्रवीत् ॥ एहिमेवदनंशीघ्रंप्रविशस्वमहामते ॥ १३ ॥ देवैस्त्वंकल्पितोभक्षःक्षुधासंपीडितात्मनः ॥ तामाहहनुमान्मातरहंरामस्यशासनात् ॥ १४ ॥

में प्रवेश करेगा या नहीं; इसकी शक्तिकी परीक्षाकर देखें; यह बात जाननेके लिये सब देवताओंको उत्सुकता हुई। देवताओंने ऐसा विचार ठहराया और तत्काल नागोंकी माता सुरसासे कहा कि जाओ और इस वानरश्रेष्ठका कुछ विघ्न करो ॥ १० ॥ ११ ॥ इनके शरीरका बल और बुद्धिका वैभव कैसा और कितना है; यह देखकर फिर वहाँसे जल्दी यहाँपर आइयो । जब देवताओंने ऐसा कहा तब वह (सुरसा) हनुमान्‌के विघ्न करनेको शीघ्र चली ॥ १२ ॥ व मार्गमें अडकर हनुमान्‌जीके आगे खडी रही और बोली;—" हे महाबुद्धिमान् ! अति शीघ्र आयकर मेरे मुखमें प्रवेशकरो ॥ १३ ॥ मेरी आत्मा भूँखके मारे बहुत व्याकुल होरही है । और देवताओंने भी तुम्हेंही मेरा भक्ष्य बनाया है " हनुमान्‌जीने उससे

कहा;—हे माते ! मैं श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे ॥ १४ ॥ जानकीजीकी सुधि लानेकें लिये जाताहूं; फिर शीघ्रही लौटकर आऊँगा; रामचंद्रजीकी उनसे वर्तमान कुशल कह फिर तुम्हारे मुखमें ॥ १५ ॥ प्रवेश करूंगा । हे सुरसे ! मुझे मार्गदे (रस्ता छोड़) तुम्हें नमस्कार है "। हनुमानूजीके ऐसा कहनेपर फिर सुरसाने कहा; " मैं बहुत भूँखीहूं ॥ १६ ॥ इसकारण मेरे मुखमें प्रवेश करके (सामर्थ्यहो तो वहाँसे निकलके) आगे जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी खा डालूंगी । " जब सुरसाने ऐसा कह आग्रह किया तो हनुमानूजीने उससे कहा, " बहुत अच्छा शीघ्र अपना मुख पसार ॥ १७ ॥ अब तेरे मुखमें प्रवेश करके फिर मैं शीघ्र निकल जाऊंगा" ऐसे कहकर हनुमानूजी अपने शरीरको एक योजन (४ कोश)

गच्छामिजानकींद्रष्टुंपुनरागम्यसत्वरः ॥ रामायकुशलंतस्याःकथयित्वात्वदाननम् ॥ १५ ॥ निवेक्ष्येदेहिमेमार्गंसुरसायैनमोऽस्तुते ॥ इत्युक्तापुनरेवाहसुरसाक्षुधितास्म्यहम् ॥ १६ ॥ प्रविश्यगच्छेमेवक्रंनोचेत्त्वांभक्षयाम्यहम् ॥ इत्युक्तोहनुमानाहमुखंशीघ्रंविदारय ॥ १७॥ प्रविश्यवदनंतेऽद्यगच्छामित्वरयान्वितः ॥ इत्युक्त्वायोजनायामदेहोभूत्वापुरःस्थितः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वाहनुमतोरूपंसुरसापंचयोजनम् ॥ मुखंचकारहनुमान्द्विगुणंरूपमादधत् ॥ १९॥ ततश्चकारसुरसायोजनानांचविंशतिम् ॥ वक्रंचकारहनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥ २० ॥ ततश्चकारसुरसापंचाशद्योजनायतम् ॥ वक्रंतदाहनूमांस्तुबभूवांगुष्ठसन्निभः ॥ २१ ॥ प्रविश्यवदनंतस्याःपुनरेत्यपुरःस्थितः ॥ प्रविष्टोनिर्गतोऽहंतेवदनंदेवितेनमः ॥ २२ ॥ एवंवदंतंदृष्ट्वासाहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ गच्छसाधयरामस्यकार्यंबुद्धिमतांवर ॥ २३ ॥

का बड़ा करके आगे खड़े रहे ॥ १८ ॥ हनुमानूजीका यह रूप देखकर सुरसाने अपना मुख पाँच योजनका किया । हनुमानूजीने दूनारूप (दश योजन अर्थात (४० कोश) धारण किया ॥ १९ ॥ तब सुरसाने अपना मुख बीस योजन लम्बा किया । हनुमानजीने देहको तीस योजन बढा लिया ॥ २० ॥ फिर सुरसाने अपने मुखको पचास योजनका लम्बा किया । तब हनुमानूजीने अपना आकार अँगुठेके समान छोटा कर लिया ॥ २१ ॥ और चट उसके मुँहमें प्रवेश करके फिर बाहर आये, उसके आगे खड़े होकर बोले,—हे देवि ! मैं तुम्हारे मुखमें प्रवेश करके बाहर आया और तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥ ऐसा वचन सुनकर अपने आगे खड़े हनुमानूजीको देख सुरसा बोली,—धन्य है, तुम बुद्धिमान्

पुरुषोंमें प्रथमहो । जाओ श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करो ॥ २३ ॥ हे वानर ! तुम्हारे बलका प्रमाण जाननेके लिये देवताओंने मुझको तुम्हारे पास भेजाथा, धन्यहो । अब सीताजीकी सुधि लाय उनका दर्शनकर तुम फिर श्रीरामचंद्रजीके पास जाओगे, ऐसा मुझे निश्चय है अब तुम अपने रस्ते जाओ ॥ २४ ॥ यह कहकर सुरसा देवलोकको चली गई । पवनकुमार हनुमानूजी पक्षियोंके राजा गरुडजीके समान (अतिशीघ्र) फिर पवनके मार्गमें गमन करते हुए ॥ २५ ॥ समुद्रमें मैनाक नामका एक पर्वत है, उसमें रत्न व सुवर्णके शिखर हैं, जैसे देवताओंने सुरसासे कहाथा, ऐसेही यहाँ समुद्रने मैनाकसे कहा, कि- " यह महासामर्थ्यवाला वायुका पुत्र हनुमानूजा रहा है ॥ २६ ॥ यह रामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करेंगे, तुम इनके सहायक हो । पूर्व कालमें सगरकी सन्तान करके वढाई जानेपर (छोटाथा सगरकी सन्तानने बड़ा किया) मेरा

देवैःसंप्रेषिताहंतेबलंजिज्ञासुभिःकपे ॥ दृष्ट्वासीतांपुनर्गत्वारामंद्रक्ष्यसिगच्छभोः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वासाययौदेवलोकंवायुसुतःपुनः ॥ जगामवायुमार्गेणगरुत्मानिवपक्षिराट् ॥ २५ ॥ समुद्रोऽप्याहमैनाकंमणिकांचनपर्वतम् ॥ गच्छत्येषमहासत्त्वोहनुमान्मारुतात्मजः ॥ ॥ २६ ॥ रामस्यकार्यसिद्ध्यर्थंतस्यत्वंसचिवोभव ॥ सगरैर्वर्धितोयस्मात्पुराहंसागरोऽभवम् ॥ २७ ॥ तस्यान्वयेबभूवासौरामोदाशरथिःप्रभुः ॥ तस्यकार्यार्थसिद्ध्यर्थंगच्छत्येषमहाकपिः ॥ २८ ॥ त्वमुत्तिष्ठजलात्तूर्णंत्वयिविश्राम्यगच्छतु ॥ सतथेतिप्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥ २९ ॥ नानामणिमयैःशृंगैस्तस्योपरिनराकृतिः ॥ प्राहयांतंहनूमंतंमैनाकोऽहंमहाकपे ॥ ३० ॥ समुद्रेणसमादिष्टस्त्वद्विश्रामायमारुते ॥ आगच्छामृतकल्पानिजग्ध्वापक्वफलानिमे ॥ ३१ ॥

नाम 'सागर' हुआ ॥ २७ ॥ उनके वंशमेंही यह दशरथके पुत्र प्रभु रामचंद्रजी उत्पन्न हुए हैं व उन (रामचंद्रजीके कार्यको सिद्ध) करनेके लिये यह महावानर चला है ॥ २८ ॥ इसलिये तुम शीघ्र जलमेंसे ऊपरको उठो, हनुमान् तुम्हारे शिखरपर विश्राम करके आगेको जाय " वह अतिशय ऊँचा पर्वत ' अच्छा ' कहकर पानीपर प्रगट हुआ ॥ २९ ॥ उसपर अनेक प्रकारके रत्नोंके शिखर थे, पर्वतके ऊपर मनुष्यका रूप धारणकर मैनाक खड़ा रहा । वह मनुष्याकार पर्वत, आकाशमार्गमें जाते हुए हनुमानूजीसे बोला, " हे वानरोंमें श्रेष्ठ ! मैं मैनाकहूं ॥ ३० ॥ हे पवनकुमार ! समुद्रने आज्ञा दी है कि, मैं तुम्हें विश्रामदूं । इस कारण यहाँ आओ और अमृतके समान पके हुए फलोंको भक्षण करो ॥ ३१ ॥

यहाँपर एक क्षणभर विश्राम लेकर फिर प्रसन्नतासे आगे जाइयो"। मैनाकके यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने उससे कहा ॥ ३२ ॥ "मैं रामचंद्रजीके कार्यको जाता हूं; सो विना उस कार्यको किये मेरा भोजन करना अनुचित है और अति शीघ्र जानेके कारण मेरा विश्राम करना किस प्रकारसे संभव हो सकता है?" ॥ ३३ ॥ यह कहकर हनुमान्‌जीने, मैनाकको मान देनेकेलिये उसके शिखरको उँगलीसे छूकर आगेका मार्ग लिया। हनुमान्‌जी थोड़ेहीसे आगे बढ़ेथे कि उनकी छाया एक छायाग्रहने पकड़ली ॥ ३४ ॥ इस छायाग्रहका नाम सिंहिका था यह बड़ी भयंकर राक्षसी थी; यह भयंकर राक्षसी सदा जलमें रहकर आकाशमार्गमें जातेहुए प्राणियोंकी छाया पकड़ उनको खेंच लेती और

विश्राम्यात्रक्षणंपश्चाद्गमिष्यसियथासुखम् ॥ एवमुक्तोऽथतंप्राहहनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥ गच्छतोरामकार्यार्थंभक्षणंमेकथंभवेत् ॥ विश्रामोवाकथंमेस्याद्गंतव्यंत्वरितंमया ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वास्पृष्टशिखरःकराग्रेणययौकपिः ॥ किंचिद्दूरंगतस्यास्यच्छायांछायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ ३४ ॥ सिंहिकानामसाघोराजलमध्येस्थितासदा ॥ आकाशगामिनांछायामाक्रम्याकृष्यभक्षयेत् ॥ ३५ ॥ तयागृहीतोहनुमांश्चिंतयामासवीर्यवान् ॥ केनेदंमेकृतंवेगरोधनंविघ्नकारिणा ॥ ३६ ॥ दृश्यतेनैवकोऽप्यत्रविस्मयोमेप्रजायते ॥ एवंविचिंत्यहनुमानधोदृष्टिंप्रसारयत् ॥ ३७ ॥ तत्रदृष्ट्वामहाकायांसिंहिकांघोररूपिणीम् ॥ पपातसलिलेतूर्णंपद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥ ३८ ॥ पुनरुत्प्लुत्यहनुमान्दक्षिणाभिमुखोययौ ॥ ततोदक्षिणमासाद्यकूलंनानाफलद्रुमम् ॥ ३९ ॥

खा जाती ॥ ३५ ॥ उसने महाप्रतापी हनुमान्‌जीको पकड़ा; तब हनुमान्‌जी विचार करने लगे मेरे वेगको रोकनेवाला यह विघ्न करनेहारा प्राणी यहाँपर कौन है? ॥ ३६ ॥ यहाँपर कोईभी नहीं दीखता! मुझको तो यह बात विलक्षणसी मालूम होती है. ऐसा विचार करके हनुमान्‌जीने नीचेको दृष्टि फिराई तो ॥ ३७ ॥ वहाँपर बड़े शरीरवाली व विकराल स्वरूपकी सिंहिका राक्षसी उनको दिखाई दी। उसको देखकर शीघ्र हनुमान्‌जी जलमें गिरे; और क्रोधमें भरकरै लावके प्रहारसे उसका वध किया ॥ ३८ ॥ हनुमान्‌जी फिर आकाशमें उड़े और दक्षिणकी ओरको मुख करके आगे चले; वे समुद्रके दक्षिण किनारेपर जाय पहुँचे; उस स्थानपर फलोंके भरेहुए अनेक वृक्ष लगेथे ॥ ३९ ॥

चित्र विचित्र पशु पक्षी इधर उधर फिर रहेथे; अनेक प्रकारके फूल और बेलोंसे वह स्थान घिराहुआथा । फिर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर एक नगर हनुमान्‌जीने देखा ॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके बाहिरी कोट भीतरीकोट और उसके मध्यम कोटकी चारों ओर खाई बनी देख हनुमान् जीको चिन्ता उत्पन्न हुई कि; इस लंकामें हम किस प्रकारसे प्रवेश करें ? ॥ ४१ ॥ इसहीं नगरीमें रावण राज्य करता है । हम रात्रिके समय छोटासा रूप बनायकर लंकामें प्रवेश करेंगे । यह विचार ठहराय हनुमान्‌जी रात्रि होनेतक वहींपर रहे और फिर लंकामें जानेके लिये तैयार हुए ॥ ४२ ॥ वह प्रतापी वानर सूक्ष्मरूप धारण करके नगरके द्वारमें प्रवेश करने लगे; वहाँपर साक्षात् लंकापुरीने राक्षसी वेष धारण किये

नानापक्षिमृगाकीर्णंनानापुष्पलतावृतम् ॥ ततोददर्शनगरंत्रिकूटाचलमूर्धनि ॥ ४० ॥ प्राकारैर्बहुभिर्युक्तंपरिखाभिश्चसर्वतः ॥ प्रवेक्ष्यामिकथंलंकामितिचिंतापरोऽभवत्॥४१॥रात्रौवेक्ष्यामिसूक्ष्मोऽहंलंकांरावणपालिताम् ॥ एवंविचिंत्यतत्रैवस्थित्वालंकांजगामसः॥४२॥ धृत्वासूक्ष्मंवपुर्द्वारंप्रविवेशप्रतापवान् ॥ तत्रलंकापुरीसाक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥ ४३ ॥ प्रविशंतंहनूमंतंदृष्ट्वालंकाव्यतर्जयत् ॥ कस्त्वं वानररूपेणमामनादृत्यलंकिनीम् ॥४४॥ प्रविश्यचोरवद्रात्रौकिंभवान्कर्तुमिच्छति ॥ इत्युक्त्वारोषताम्राक्षीपादेनाभिजघानतम् ॥४५॥ हनुमानपितांवामसुष्टिनावज्ञयाहनत् ॥ तदैवपतिताभूमौरक्तमुद्वमतीभृशम् ॥ ४६ ॥ उत्थायप्राहसालंकाहनूमंतंमहाबलम् ॥ हनूमन्गच्छभद्रंतेजितालंकात्वयानघ ॥ ४७ ॥ पुराहंब्रह्मणाप्रोक्ताह्यष्टाविंशतिपर्यये ॥ त्रेतायुगेदाशरथीरामोनारायणोऽव्ययः ॥ ४८ ॥

हुए ॥ ४३ ॥ हनुमान्‌जीको प्रवेश करते देखा और उनका तिरस्कार करती हुई बोली कि– “ तू वानररूपी कौन है ? मैं लंकिनी प्रत्यक्ष यहाँपर बैठी हूं, मेरा अनादर करके तू चोरके समान रात्रिके वेला इसमें प्रवेश करता है, तेरे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? ” । इस समय लंकाके नेत्र मारे क्रोधके लाल लाल होगये. उसने इतना कहकर हनुमान्‌जीके लात मारी ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब हनुमान्‌जीने तिरस्कारपूर्वक उस लंकिनीको दायें हाथका मूका मारा. तत्काल वह घिन्नी खायकर पृथ्वीपर गिरी और वह बहुतसा रुधिर उगलने लगी ॥ ॥ ४६ ॥ कुछ देरमें लंका उठी व प्रतापशाली हनुमान्‌जीसे बोली–“ धन्य हो पुण्यपुरुष हनुमन्त ! जाओ तुम्हारा मंगल हो, तुमने लंकाको जीत लिया” ॥ ४७ ॥ पूर्वकालमें मुझसे ब्रह्मा

जीने कहाथा कि; अट्ठाईसवीं चौकड़ीके त्रेतायुगमें निर्विकार नारायण दशरथजीके पुत्र होंगे ॥ ४८ ॥ और योगमाया राजा जनकजीके घरमें सीता नामसे अवतार लेगी, क्योंकि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मैं (ब्रह्मा) ने पूर्वकालमें एक समय उन ईश्वरकी प्रार्थना कीथी ॥ ४९ ॥ श्रीरामचंद्रजी अपनी स्त्री और भ्राताको साथ लेकर महावनमें जायँगे; सीताजीका अवतार धारण किया है जिन्होंने, ऐसी मायाको रावण चुराकर ले जायगा ॥ ५० ॥ फिर रामचंद्रजीके साथ सुग्रीवकी मित्रता होगी तब सुग्रीव जानकीजीकी सुधि लानेके लिये बन्दरोंको भेजेगा ॥ ५१ ॥ उनमेंका एक वानर रात्रिके समय तेरे (लंकिनीके) समीप आवेगा; जब तू उसको धमकी देगी तब वह तेरे मूका मारेगा ॥ ५२ ॥

जनिष्यतेयोगमायासीताजनकवेश्मनि ॥ भूभारहरणार्थायप्रार्थितोऽयंमयाक्वचित् ॥ ४९ ॥ सभार्यौराघवोभ्रात्रागमिष्यतिमहावनम् ॥ तत्रसीतांमहामायांरावणोऽपहरिष्यति ॥ ५० ॥ पश्चाद्रामेणसाचिव्यंसुग्रीवस्यभविष्यति ॥ सुग्रीवोजानकींद्रष्टुंवानरान्प्रेषयिष्यति ॥ ५१ ॥ तत्रैकोवानरोरात्रावागमिष्यतितेंऽतिकम् ॥ त्वयाचभर्त्सितःसोऽपित्वांहनिष्यतिमुष्टिना ॥ ५२ ॥ तेनाहतात्वंव्यथिताभविष्यसियदानघे ॥ तदैवरावणस्यांतोभविष्यतिनसंशयः ॥ ५३ ॥ तस्मात्त्वयाजितालंकाजितंसर्वंत्वयानघ ॥ रावणांतःपुरवरेक्रीडाकाननमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तन्मध्येऽशोकवनिकादिव्यपादपसंकुला ॥ अस्तितस्यांमहावृक्षःशिंशपानाममध्यगः ॥ ५५ ॥ तत्रास्ते जानकीघोरराक्षसीभिःसुरक्षिता ॥ दृष्ट्वैवगच्छत्वरितंराघवायनिवेदय ॥ ५६ ॥ धन्याहमप्यद्यचिरायराघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचनी ॥ तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभोममप्रसीदतांदाशरथिःसदाहृदि ॥ ५७ ॥

हे पुण्यशीले ! जिस वेला उस प्रहारके लगनेसे तू मूर्च्छित होगी; उस वेला निःसंदेह रावणका नाश होगा" ॥ ५३ ॥ इसलिये हे पुण्यपुरुष हनुमन्त ! मैं कहतीहूं कि; तुमने लंकाकोही नहीं जीता बरन् सबकोही जीतलिया अब सीता कहाँ है, यह मैं तुम्हें बतातीहूं सो सुनो । रावणके सुन्दर अंतःपुरमें सुन्दर क्रीड़ा करनेका एक उत्तम उपवन है ॥ ५४ ॥ उसमें अनेक प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे भरा हुआ अशोकवाटिका नामक एक भाग है; उसके मध्यम भागमें, शिंशिपा (सीसम) नामका प्रचंड वृक्ष है ॥ ५५ ॥ उसके नीचे सीताजी रहतीहैं । उनके ऊपर घोर राक्षसियोंका पहरा रहता है; उनको अपने नेत्रोंसे निहार समाचार ले तत्काल श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन करो ॥ ५६ ॥ हे हनुमंत ! श्रीरामचंद्रजीका स्मरण प्राणीको भव

सागरकी फाँसीसे छुटाता है । उनके भक्तका समागमभी अत्यंत दुर्लभ है मुझे आज बहुत दिनोंमें वह दोनों संयोग (रामचंद्रजीका स्मरण और उनके भक्तका अर्थात् तुम्हारा समागम) प्राप्त हुआ। इसकारण मैं अपनेको अत्यन्त धन्य मानती हूं । वह दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजी मेरे हृदयमें सदा प्रसन्न होकर विराजमान रहैं ॥ ५७ ॥ महादेवजी बोले,—हे पार्वति ! जिस समय पवनके पुत्र हनुमान्‌जीने दक्षिणके महासागरको उलाँघा उस समय पृथ्वीकी पुत्री जानकीजीके व रावणके बाँयें नेत्र औरँ बाँये हाथ बराबर फड़कनेलगे; वैसेही इधर श्रीरामचंद्रजीके दाहिने अंग फड़कते हुए पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बाँयें अंगोंका फड़कना शुभ है और पुरुषोंके बाँयें व स्त्रियोंके दाँयें अंग फड़कने अशुभहैं; ऐसा शास्त्रका सिद्धान्त है; इसकेही अनुसार राम सीताको शुभ शकुन और रावणको अपशकुन होने लगे ॥ ५८ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे भाषाटीकायां

उल्लंघितेऽब्धौपवनात्मजेनधरासुतायाश्चदशाननस्य ॥ पुस्फोरवामाक्षिभुजश्चतीव्रंरामस्यदक्षांगमतींद्रियस्य ॥ ५८ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ ततोजगामहनुमाँल्लंकांपरमशोभनाम् ॥ रात्रौसूक्ष्मतनुर्भूत्वावभ्राम परितःपुरीम् ॥ १ ॥ सीतान्वेषणकार्यार्थीप्रविवेशनृपालयम् ॥ तत्रसर्वप्रदेशेषुविविच्यहनुमान्कपिः ॥ २ ॥ नापश्यज्जानकींस्मृत्वाततो लंकाभिभाषितम् ॥ जगामहनुमाञ्छीघ्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ ३ ॥ सुरपादपसंबाधांरत्नसोपानवापिकाम् ॥ नानापक्षिमृगाकीर्णांस्वर्णप्रासादशोभिताम् ॥ ४ ॥ फलैरानम्रशाखाग्रपादपैःपरिवारिताम् ॥ विचिन्वञ्जानकींतत्रप्रतिवृक्षंमरुत्सुतः ॥ ५ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं,—हे पार्वति ! इसके उपरान्त उस रात्रिमें हनुमान्‌जी सूक्ष्म शरीर बनाय परम शोभायमान लँकापुरीमें चारोंओर घूमने लगे ॥१॥ वह महावानर हनुमान्‌जी सीताजीको देखनेके लिये राजमंदिरमें प्रवेश करतेहुए; वहाँ उन्होंने सर्वस्थान ढुंढे पर ॥२॥ सीताजी कहीं न दिखाई दीं तब हनुमान्‌जीको लंकिनीका कहना याद आया, वह शीघ्र अशोकवनमें गये । वह स्थान बहुत रमणीय था ॥ ३ ॥ जिधर तिधर बराबर दिव्य वृक्ष लगरहेथे; जगह जगह ऐसी पुष्करणियें (तलैयें) जिनमें रत्नोंकी सीढियें बनी हुईहैं—विराजमान हैं, अनेकप्रकारके पशु पक्षी इधरसे उधर, उधरसे इधर फिरतेहुए दिखाई देतेथे । बीचमें बनेहुए सुवर्णके मंदिरोंसे वह स्थान बहुत शोभायमान दिखाई देताहै ॥ ४ ॥ और जिनकी शाखाओंके अगलेभाग फलोंके बोझसे झुक रहेहैं । ऐसे उस उपवनमें हनुमान्‌जी प्रत्येक वृक्षके नीचे जानकीजीको ढूढ़तेहुए चले ॥ ५ ॥

तो वहाँपर एक अति उत्तम देवालय हनुमानूजीने देखा । वह इतना ऊँचाथा कि, देखनेवालेको ऐसा मालूम पड़े कि, यह मंदिर मेघ मंडलको चूम रहाहै । इसमें रत्नके बने हुए सैकडों थम्भ थे । इस देवालयको देखकर हनुमानूजी विस्मित हुए ॥ ६ ॥ उस मंदिरको छोड़कर हनुमानूजी फिर थोड़ेसे आगे गये तो वहाँ शिंशपाका वृक्ष उनको दिखाई दिया । उसपर घने पत्ते लगे थे ॥ ७ ॥ इसकारण उसके नीचे सूर्यकी किरणके दर्शन कभी नहीं होते थे; उस वृक्षपर जिधर तिधर अनेक पक्षीगण किलोलें कर रहेथे; उन सब पक्षियोंके शरीरका रंग सुवर्णके समान था; उस वृक्षकी जडके पास राक्षसियोके बीचमें जानकीजी बैठी हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार हनुमानूजीने देखा । इन वीरको जानपड़ा कि यह स्वर्गसे मूर्त्तिमती हो कोई देवताही उतर आयी है । जिस दिन रामजीसे वियोग हुआथा उसदिन जैसी वेणी (चोटी) उनकी थी; वैसीही अबतकथी । शरीर दुर्बल होगयाथा । अंगपरके वस्त्र मलिन

ददर्शाभ्रंलिहंतत्रचैत्यप्रासादमुत्तमम् ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्नोमणिस्तंभशतान्वितम् ॥ ६ ॥ समतीत्यपुनर्गत्वाकिंचिद्दूरंसमारुतिः ॥ ददर्शशिंशपावृक्षमत्यंतनिविडच्छदम् ॥ ७ ॥ अदृष्टातपमाकीर्णस्वर्णवर्णविहंगमम् ॥ तन्मूलेराक्षसीमध्येस्थितांजनकनंदिनीम् ॥ ८ ॥ ददर्शहनुमान्वीरोदेवतामिवभूतले ॥ एकवेणींकृशांदीनांमलिनांबरधारिणीम् ॥ ९ ॥ भूमौशयानांशोचंतींरामरामेतिभाषिणीम् ॥ त्रातारंनाधिगच्छंतीमुपवासकृशांशुभाम् ॥ १० ॥ शाखांतच्छदमध्यस्थोददर्शकपिकुंजरः ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंदृष्ट्वाजनकनंदिनीम् ॥ ११ ॥ मयैवसाधितंकार्यंरामस्यपरमात्मनः ॥ ततः किलकिलाशब्दोबभूवांतःपुराद्बहिः ॥ १२ ॥ किमेतदितिसंलीनोवृक्षपत्रेषुमारुतिः ॥ आयातंरावणंतत्रस्त्रीजनैःपरिवारितम् ॥ १३ ॥ दशास्यंविंशतिभुजंनीलांजनचयोपमम् ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्नःपत्रखंडेष्वलीयत ॥ १४ ॥

होगयेथे इसकारण वे जानकीजी बहुत दीन दिखाईदीं ॥ ९ ॥ इससमय वह पृथ्वीपर पड़ीहुई मुखसे 'राम ! राम !' कहकर शोककर रही थी, रक्षा करनेवाला कोई नहीं मिलता इसलिये उस सुन्दरीने उपवास करके शरीरको कृश कियाथा ॥ १० ॥ वह वानरश्रेष्ठ हनुमानूजी वृक्षकी शाखाके पत्तोंमें बैठकर सीताजीको देखतेहुए, व अपने आपही आप बोले—"हमने जानकीजीको देखलिया हमारा काम होगया मैं कृतार्थ होगया ! ॥ ११ ॥ प्रभु रामचंद्रजीका कार्य मैंनेही सिद्धकिया" । इतनेहीमें अंतःपुरमेंसे कुछ कलकलाहट बाहर सुनाई आया ॥ १२ ॥ "यह क्या गड़बड़है ?" ऐसे मनमें विचार हनुमानूजी वृक्षके पत्तोंमें छिपरहे, तब इन्होंने देखा कि रावण इधरही आता है और साथमें बहुतसी स्त्रियेंभी हैं ॥ १३ ॥ उसके दशमुख

और बीस हाथथे उसके शरीरका वर्ण काले अंजनके ढेरके समानथा ऐसे रावणको व उसके ऐश्वर्यको देख हनुमान्‌जीको आश्चर्य हुआ व "जब इसकी ओर अपनी देखा देखी हुई तो कदाचित् हमारे कार्यकी सिद्धिमें कुछ विलम्बहो"। इस डरसे हनुमान्‌जी पत्तोंके गुच्छोंमें भलीभाँति छिप गये ॥ १४ ॥ रावणके मनमें इस समय "रामके हाथसे मेरी मृत्यु किसप्रकारसे होगी ? श्रीरामजी सीताके लिये क्यों नहीं आये ? इसका क्या हेतुहै ?" ॥ १५ ॥ इसप्रकार सदा हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका चिंतन करता, ऐसे राक्षसोंके राजा रावणने उस रात्रिके पिछले पहरमें कि जिसमें हनुमान्‌ने लंकामें प्रवेशकिया ॥ १६ ॥ स्वप्न देखा कि--'श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे कोई एक वानर आया है; वह इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा रूप बना लेताहै; वह सूक्ष्मरूप धारण करके वृक्षके अग्रभागपर बैठ सीताजीकी ओर देखताहै ॥ १७ ॥ यह विलक्षण स्वप्न देखकर रावणने मनही

रावणोराघवेणाशुमरणंमेकथंभवेत् ॥ सीतार्थमपिनायातिरामःकिंकारणंभवेत् ॥ १५ ॥ इत्येवंचिंतयन्नित्यंराममेवसदाहृदि ॥ तस्मिन्दिनेऽपररात्रौरावणोराक्षसाधिपः॥ १६॥स्वप्नेरामेणसंदिष्टःकश्चिदागत्यवानरः॥कामरूपधरःसूक्ष्मोवृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥१७॥ इतिदृष्ट्वाऽद्भुतंस्वप्नंस्वात्मन्येवानुचिंत्यसः॥ स्वप्नःकदाचित्सत्यःस्यादेवंतत्रकरोम्यहम् ॥१८॥ जानकींवाक्छरैर्विद्धद्दुःखितांनितरामहम् ॥ करोमिदृष्ट्वारामायनिवेदयतुवानरः ॥ १९ ॥ इत्येवंचिंतयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ॥ नूपुराणांकिंकिणीनांश्रुत्वासिंजितमंगना ॥ २० ॥ सीताभीतालीयमानास्वात्मन्येवसुमध्यमा ॥ अधोमुख्यश्रुनयनास्थितारामार्पितांतरा ॥ २१ ॥ रावणोऽपितदासीतामालोक्याहसुमध्यमे ॥ मांदृष्ट्वाकिंवृथासुभ्रुस्वात्मन्येवविलीयसे ॥ २२ ॥

मन विचार किया कि कभी २ स्वप्नभी सत्य होजाताहै; इसकारण अब ऐसी युक्ति कीजाय कि ॥ १८ ॥ जानकीको वचनबाणोंसे बाँधकर अति दुःखित करूं; वह वानर बैठा होगा तो यह देखकर श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन करेगा ॥ १९ ॥ ऐसा निश्चयकर वह अतिशीघ्र श्रीसीताजीके समीप चला; तब नूपुरका व कमरपट्टियोंके घूँघरुओंका शब्द सीताजीने सुना ॥ २० ॥ तब सुन्दरी जानकीजी वबड़ाई और अपने शरीरको सकोड़कर (इकले होनेपर अस्तव्यस्त बैठतीथीं परन्तु अब सिमटकर) नीचेको मुखकरे बैठीं । उनके नेत्रोंमें आँसू आगये । अंतःकरण सर्वप्रकार श्रीरामचंद्रजीमें लगा रहा ॥ २१ ॥ उस अवसरमें रावण सीताजीको देखकर बोला । हेसुन्दरि ! तेरी कमर और तेरी भौंहोंकी बनावट कितनी रम

णीय दिखाई देतीहै । हे सीते ! मुझको देखकर विना कारण इतना सिमटकर बैठनेका तुम क्यों खटराग करतीहो ? ॥ २२ ॥ रामचंद्र अपने छोटे भ्राताके साथ वनचरोंमें रहताहै, उसको कोई २ कभी २ देखताहै, और कभी २ नहीं देखता ॥ २३ ॥ मैंने उनको देखनेके लिये अनेकवार दूत पठाये और उन दूतोंने अनेक युक्तियोंसे चारोंओर देखा, परन्तु कहींभी न देखपाया ॥ २४ ॥ रामचंद्रके मनमें तुह्मारी इच्छा या प्रीति कभीभी नहीं है, इसकारण मैं कहताहूं कि, ऐसे पुरुषके पास रहकर तुमको क्या करनाहै ? तुम सदाही उनको आलिंगन किया करतीथी, वह सर्वकाल तुह्मारे समीप रहताथा परन्तु ॥ २५ ॥ इस रामचंद्रके हृदयमें तुह्मारे प्रति प्रीतिका कुछभी संचार नहीं हुआ रामचंद्रने तुह्मारे प्रसादसे सब भोगोंको व गुणोंको ॥ २६॥

रामोवनचराणांहिमध्येतिष्ठतिसाऽनुजः॥कदाचिद्दृश्यतेकैश्चित्कदाचिन्नैवदृश्यते॥२३॥मयातुबहुधालोकाःप्रेषितास्तस्यदर्शने ॥ नपश्यंतिप्रयत्नेनवीक्षमाणाःसमन्ततः॥२४॥किंकरिष्यसिरामेणनिःस्पृहेणसदात्वयि॥त्वयासदालिंगितोऽपिसमीपस्थोऽपिसर्वदा॥२५॥हृदयेऽस्यनचस्नेहस्त्वयिरामस्यजायते॥त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्चत्वद्गुणानपिराघवः ॥२६॥ भुंजानोऽपिनजानातिकृतघ्नोनिर्गुणोऽधमः॥त्वमानीतामयासाध्विदुःखशोकसमाकुला ॥२७॥ इदानीमपिनायातिभक्तिहीनःकथंव्रजेत् ॥ निःसत्वोनिर्ममोमानीमूढःपंडितमानवान् ॥२८॥

भोगा परंतु वह [एक वारभी] उसका स्मरण नहीं करता, वह इतना कृतघ्न और अधम है । उसके अंगमें गुणका लेश मात्र नहीं तुझको मैं यहांपर ले आया, तुम समान साध्वी स्त्री दुःख व शोकसे व्याकुल हो ॥ २७ ॥ तोभी वह अबतक यहांपर नहीं आया, हृदयमें प्रेम नहीं फिर वह इधर कैसे आता ? अंगमें शक्ति नहीं ममता नहीं, केवल उनमें गर्व भरा हुआ है वास्तविक मूर्ख होनेसे अपनेको पंडित समझता

---

१ रावण महाब्रह्मज्ञानीथा, उसके वचन कुछेक निन्दासे भरे दीखते हैं । परन्तु गूढ़भावसे उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी पूर्ण स्तुतिहै उस स्तुतिका यह अर्थ हैं—वनमें रहनेवाले तपस्वियोंके मध्यमें रामचंद्र रहतेहैं; वनवासी निर्लिप्त योगीलोग परमात्माको विष्णुरूपसे वा अनन्तरूपसे ध्यान करते हैं ॥ २३ ॥ मैंने उनको जाननेके लिये आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मन इन सब इन्द्रियोंको वारंवार लगाया था; परन्तु यह इन्द्रियाँ विशेष चेष्टा करकेभी उनको नहीं जानसकीं ॥ २४ ॥ वे निर्गुण और सदा परितृप्त हैं; उनको किसी बातकी इच्छा नहीं है, न तुम्हारी इच्छाहै । तुम सीता आदिमायाहो; राम परमेश्वर हैं; माया परमेश्वरके आश्रयसे रहतीहै; और परमेश्वर उसके समीपरहताहै ॥ २५ ॥ वह उसके गुणोंपर या उसके उत्पन्न किये हुए भोगोंपर आसक्त नहीं होता ॥ २६ ॥ न भोग करता; परन्तु वह “ जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ” इस श्रुतिके कहे अनुसार ‘ मैं भोगताहूं ’—

है ॥ २८ ॥ हे सीते ! तू बड़ी मानिनी स्त्री है; जो तुझपर लक्ष्य नहीं देता; उस मनुष्योंमें नीचका तुझको क्या करना है ? मैं दैत्योंका राजा तुझपर अत्यन्त अनुरागीहूं, तू मुझे अंगीकारकर ॥ २९ ॥ मेरे वशमें आनेसे देव, गंधर्व नाग, यक्ष, किन्नर इनजातियोंकी सब स्त्रियाँ तेरी आज्ञामें रहेंगी ॥ ३० ॥ " रावणके यह वचन सुनकर सीताजीको अत्यन्त क्रोध आया, उन्होंने शिर नीचाकरलिया; प्रतिव्रताको परपुरुषसे प्रत्यक्ष भाषण करना योग्य नहीं है; और जो कोई अपरिहार्य प्रसंग आही जाय तो कुछ अचेतन वस्तु बीचमें धर ले; इस नियमके अनुसार

नराधमंत्वद्विमुखंकिंकरिष्यसिभामिनि ॥ त्वय्यतीवसमासक्तंमांभजस्वासुरोत्तमम् ॥ २९ ॥ देवगंधर्वनागानांयक्षकिन्नरयोषिताम् ॥ भविष्यसिनियोक्रीत्वंयदिमांप्रतिपद्यसे ॥३०॥ रावणस्यवचःश्रुत्वासीताऽमर्षसमन्विता ॥ उवाचाधोमुखीभूत्वाविधायतृणमंतरे॥३१॥ राघवाद्बिभ्यतानूनंभिक्षुरूपंत्वयाधृतम् ॥ रहितेराघवाभ्यांत्वंशुनीवहविरध्वरे ॥ ३२ ॥ हृतवानसिमांनीचतत्फलंप्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ यदारामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥३३॥ ज्ञास्यसेमानुषंरामंगमिष्यसियमांतिकम् ॥ समुद्रंशोषयित्वावाशरैर्बद्धाथवारिधिम् ॥३४॥

तिनका बीचमें रखकर कहने लगीं " ॥ ३१ ॥ रे दुष्ट ! रे अधम ! रामचंद्रसे तुझे डर लगता है इसमें कुछ संशय नहीं; इस कारणसे तैंने गोसाँई का रूप धारण किया । जैसे कुत्ता मंडपमें किसीको न देखकर यज्ञका भाग चुरा लेताहै; वैसेही जब राम लक्ष्मण आश्रममें न थे ॥ ३२ ॥ तब तू मुझे हरकर ले आया रे नीच ! परन्तु इस कर्मका फल तुझको शीघ्र भोगना पड़ेगा जिस समय रामचंद्रजीके बाण लगनेसे तेरे शरीरके टुकड़े उडेंगे, तिस समय तुझे ॥ ३३ ॥ समझ पड़ेगा कि, रामचंद्रजीका मनुष्यरूप कैसा है, तब तू यमराजके भवनको चला जायगा समुद्रको सुखाय

—ऐसा अभिमान नहीं करता; वह कृतघ्न(कृतानि हंति सः)—कहिये कर्मोंका नाश करनेवाला है (उनका दर्शन पातेही भक्तोंके संचित व क्रियमाण कर्म नष्ट होते हैं) उसमें सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण नहीं हैं, वह अधम(न धमति शब्दविषयो भवति) —कहिये अवर्णनीय स्वरूप है ॥ २७ ॥ मायापर उसकी भक्ति नहीं है, यह प्रगट है वह गुणरहित, ममताशून्य व अमानी कहिये अहंकारसे अलग है; इसके सिवाय वे [मूढ़—म् (ब्रह्मा) च उः (शिवः) च मू ताभ्यांमूढः, नियमाकत्वेन अभिमतः-] कहिये ब्रह्मदेवजी इनके आपही नियामकहैं इस कारण मानयुक्त हैं; विद्वान् पुरुषोंमें उनको मान मिलता है ॥ २८ ॥ वह नराधम—[नराः अधमाः यस्मात्]-कहिये मनुष्योंसे भी श्रेष्ठ हैं मायामें मिलने वाले नहीं हैं ॥ (गूढार्थ पूरा हुआ) ॥

कर या समुद्रपर बाणोंका पुल बाँधकर युद्धमें तेरा ॥ ३४ ॥ वधकरनेके लिये रामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित आनेहीवालेहैं; इसमें कोई संशय नहीं। हे राक्षसाधम ! मेरे कहनेकी सचाई तुझको शीघ्रही मालूम हो जायगी ॥ ३५ ॥ तेरी सेनाका, पुत्रोंका और फिर तेरा संहार करके श्रीरामचंद्रजी मुझे अपनी नगरी अयोध्यापुरीको ले जायँगे"। जानकीजीके यह कठोर वचन सुनकर राक्षसोंके राजा रावणको क्रोध आगया ॥ ३६ ॥ किसी समयमें क्रोधका वेग अनिवार हो जाता है; रावणको अपने देहकी सुधि न रही; वह खड्ग उठायकर जानकीजीके मारनेको धाया उसके नेत्र लाल २ होगये ॥ ३७ ॥ मंदोदरी अपने पतिका कल्याण करनेके लिये सदा तैयार है; इस अवसरमें उसने पतिको रोककर कहाः—"महाराज ! यह

हंतुंत्वांसमरेरामोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ आगमिष्यत्यसंदेहोद्रक्ष्यसेराक्षसाधम ॥ ३५ ॥ त्वांसपुत्रंसहबलंहत्वानेष्यतिमांपुरम् ॥ श्रुत्वा रक्षःपतिःक्रुद्धोजानक्याःपरुषाक्षरम् ॥ ३६ ॥ वाक्यंक्रोधसमाविष्टःखड्गमुद्यम्यसत्वरः ॥ हंतुंजनकराजस्यतनयांताम्रलोचनः ॥३७॥ मंदोदरीनिवार्याहपतिंपतिहितेरता ॥ त्यजैनांमानुषींदीनांदुःखितांकृपणांकृशाम् ॥३८॥ देवगंधर्वनागानांबह्व्यःसंतिवरांगनाः ॥ त्वामेववरयंत्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥ ३९ ॥ ततोऽब्रवीद्दशग्रीवोराक्षसीर्विकृताननाः ॥ यथामेवशगासीताभविष्यतिसकामना ॥ तथायतध्वंत्वरितंतर्जनादरणादिभिः ॥ ४० ॥ द्विमासाभ्यंतरेसीतायदिमेवशगाभवेत् ॥ तदासर्वसुखोपेताराज्यंभोक्ष्यतिसामया ॥ ४१ ॥ यदिमासद्वयादूर्ध्वंमच्छय्यांनाभिनंदति ॥ तदामेप्रातराशायहत्वाकुरुतमानुषीम् ॥ ४२ ॥

क्या हीन मनुष्यजातिकी स्त्री है; इसको छोड़ दो और दुःखके मारे विचारी दुबली होगई है ? ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! जिनके मदयुक्त नेत्र हैं ऐसी देव, गंधर्व और नागोंकी स्त्रियाँ बहुत हैं, वे सबही तुम्हारे वरनेकी इच्छा रखती हैं, फिर उनको छोड़कर इसके पीछे काहेको पड़ेहो ! ॥ ३९ ॥ यह सुनकर विकराल मुखवाली राक्षसियोंसे रावण कहने लगा,—"हे निशाचरियो ! भय दिखाने तथा आदर सत्कारादिसे, जिस प्रकारसे कामनायुक्त होकर सीता मेरे वशमें आजाय ऐसा यत्न तुम करना ॥ ४० ॥ जो दो महीनेके बीचमें सीता मेरे वशमें आगई तो सब प्रकारके सुखोंसे युक्त होकर मेरे साथ राज्य भोगे ॥ ४१ ॥ जो दो महीनेके उपरान्तभी यह मेरी सेजपर आनेकी इच्छा न करे तो इस मानवीको

मारकर इसको हमारे प्रभातके भोजनको लाइयो ॥ ४२ ॥ यह कहकर रावण स्त्रियोंके साथ रनिवासमें गया; वह राक्षसियें जानकीजीके निकट आय अपनी बुद्धिसे किये हुए अलग २ उपायोंसे उनको डराने लगीं ॥ ४३ ॥ उनमेंकी एक राक्षसी जानकीजीसे बोली;—" सीते ! तेरी तरुणाई (जवानी) वृथा चली । रावणके वश होजाय तो यह सफल होजाय " ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोध करके कहनेलगी । " अहो ! देर करनेसे क्या प्रयोजन है ! अभी इस जानकीके अंगोंके टुकड़े २ कर अलग राँधने लगो । " ॥ ४५ ॥ तीसरी खड्ग उठाय जानकीजीको मारने धाई; कोई एक विकराल मुखवाली राक्षसी मुँह फैलायकर डराने लगी ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वह विकरालमुखी राक्षसियें जानकीजीको

इत्युक्त्वाप्रययौस्त्रीभीरावणोंऽतःपुरालयम् ॥ राक्षस्योजानकीमेत्यभीषयंत्यःस्वतर्जनैः ॥ ४३ ॥ तत्रैकाजानकीमाहयौवनंतेवृथागतम् ॥ रावणेनसमासाद्यसफलंतुभविष्यति ॥ ४४ ॥ अपराचाहकोपेनाकिंविलंबेनजानकी ॥ इदानींछेद्यतामंगंविभज्यचपृथक्पृथक् ॥ ४५ ॥ अन्यातुखड्गमुद्यम्यजानकींहंतुमुद्यता ॥ अन्याकरालवदनाविदार्यास्यमभीषयत् ॥ ४६ ॥ एवंतांभीषयंतीस्ताराक्षसीर्विकृताननाः ॥ निवार्यत्रिजटावृद्धाराक्षसीवाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ शृणुध्वंदुष्टराक्षस्योमद्वाक्यंवोहितंभवेत् ॥ ४८ ॥ नभीषयध्वंरुदतींनमस्कुरुतजानकीम् ॥ इदानीमेवमेस्वप्नेरामःकमललोचनः ॥ ४९ ॥ आरुह्यैरावतंशुभ्रंलक्ष्मणेनसमावृतः ॥ दग्ध्वालंकापुरींसर्वांहत्वारावणमाहवे ॥ ॥ ५० ॥ आरोप्यजानकींस्वांकेस्थितोदृष्टोऽगमूर्धनि ॥ रावणोगोमयह्रदेतैलाभ्यक्तोदिगंबरः ॥ ५१ ॥

डराने लगीं; उनमेंकी एक त्रिजटा राक्षसी जो कि, वृद्धथी सबको हटककर यह बोली ॥ ४७ ॥ हे दुष्ट राक्षसियो ! मेरे वचन सुनो तो तुम्हारा भला होगा; जानकी रोती है, उनको डरावो मत, वरन् उलटे उनके पाँवोंमें पड़ो ॥ ४८ ॥ अभी मैंने स्वप्न देखा है कि, मानों कमललोचन श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित श्वेत ऐरावत हाथीपर बैठे हुए लंकामें आये ॥ ४९ ॥ उन्होंने सारी लंका नगरीको जलायकर युद्धमें रावणका संहार किया और यह भी देखा कि, जानकीजीको अपनी गोदीमें श्रीरामजी आनंदसे बिठलाय पर्वतके शिखरपर बैठे हैं ॥ ५० ॥ रावण तेलसे न्हाया हुआ और नंगा होकर अपने शिरोंकी माला हाथमें लिये हुए पुत्र पौत्रोंके साथ गोबरके कुएँमें स्नानकर रहा है ॥ ५१ ॥

केवल विभीषण भक्तियुक्त व संतुष्ट अंतःकरणसे श्रीरामचंद्रजीके समीप रहकर, उनके चरणोंकी सेवा करता है, ऐसा मैंने देखा है ॥ ५२ ॥ ऐसा मुझे जान पड़ता है; कि, राम निश्चयही सर्वस्व रावणका संहार करके विभीषणको राज्य देंगे और श्रेष्ठ मुखवाली जानकीजीको गोदीमें बैठायकर निःसंदेह अपनी नगरीको चले जायँगे ॥ ५३ ॥ त्रिजटाके वचन सुनकर राक्षसियें घबराईं । और जगह २ चुप चाप बैठ गईं, इसके उपरान्त उन सबको गाढी नींद आगई ॥ ५४ ॥ राक्षसियोंके भय दिखानेसे जानकीजी बहुत डरीं कोई अपना रक्षा करता न मिलनेसे उनको मारे दुःखके मूर्च्छा आगई नेत्रोंमें आँसू भर आये, विचार करते २ वे आपही आप बोलने लगीं ॥ ५५ ॥ इसमें संशय नहीं कि, प्रातःकाल होतेही राक्षसियें

अगाहत्पुत्रपौत्रैश्चकृत्वावदनमालिकाम् ॥ विभीषणस्तुरामस्यसन्निधौहृष्टमानसः ॥ ९२ ॥ सेवांकरोतिरामस्यपादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वथारावणंरामोहत्वासकुलमंजसा ॥ ९३ ॥ विभीषणायाधिपत्यंदत्त्वासीतांशुभाननाम् ॥ अंकेनिधायस्वपुरींगमिष्यतिनसंशयः ॥ ॥ ९४ ॥ त्रिजटायावचःश्रुत्वाभीतास्ताराक्षसस्त्रियः ॥ तूष्णीमासंस्तत्रतत्रनिद्रावशमुपागताः ॥ ९५ ॥ तर्जिताराक्षसीभिःसासीता भीतातिविह्वला ॥ त्रातारंनाधिगच्छंतीदुःखेनपरिमूर्च्छिता ॥ ९६ ॥ अश्रुभिःपूर्णनयनाचिंतयंतीदमब्रवीत् ॥ प्रभातेभक्षयिष्यंतिराक्षस्योमांनसंशयः ॥ इदानीमेवमरणंकेनोपायेनमेभवेत् ॥ ९७ ॥ एवंसुदुःखेनपरिप्लुतासाविमुक्तकंठंरुदतीचिराय ॥ आलंब्यशाखांकृतनिश्चयामृतौनजानतीकंचिदुपायमंगना ॥९८॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमाम० सुंदरकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ उद्बंधनेनवामोक्ष्येशरीरंराघवंविना ॥ जीवितेनफलंकिंस्यान्ममरक्षोधिमध्यतः ॥ १ ॥

हमें खा जायँगी । ऐसा कौनसा उपाय है कि, जिससे अभी हमें मौत आजाय ॥ ५६ ॥ जीव देनेका निश्चय करलिया, परन्तु कोई उपाय नहीं सूझता । इस प्रकार दुःखसे अति व्याकुल हुई वह सुन्दरी पुक्काछोड़के (ऊँचे स्वरसे) रोती हुई वृक्षकी शाखा हाथमें पकड़े बहुत देरतक खड़ी रहीं ॥ ५७ ॥ इ० श्रीमद० भा०सुं० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ महादेवजी बोले, हे पार्वति ! "जानकी कहने लगीं हाँ हाँ अच्छी युक्ति सूझी अपने गलेमें फाँसी लगायकर देह त्याग करना चाहिये रामचंद्रजी पास नहीं और इन राक्षसोंके मेलमे रहना पड़ता है, फिर हमारे जी

वनका क्या फलहै ? ॥ १ ॥ मेरी यह लम्बी वेणी फाँसीके फन्देकेलिये भली उपयोगी होगी" ऐसा विचार सोचकर जानकीजीने मनमें मरनेका निश्चय किया ॥ २ ॥ ऐसी जानकीजीको हनुमान्‌जीने देखा । अबतक हनुमान्‌जीका रूप छोटाहीथा; उन्होंने आपही आप थोड़ासा विचार करके फिर होलै २ जिससे जानकीजीको सुनाई जाय ऐसे स्वरसे वचन कहने लगे । हनुमान्‌जीने इस प्रकारसे कहा ॥ ३ ॥ "इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए दशरथ नामक एक प्रतापवान् राजा अयोध्या नगरीमें राज्य करतेथे । उनके जगद्विख्यात चार ॥ ४ ॥ पुत्र हुए वे सब देवताओंके समान पराक्रमी व तेजस्वी होनेसे सर्व श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हैं । उनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न हैं ॥ ५ ॥ उनमेंसे बड़े पुत्र पिताकी आज्ञासे भाई लक्ष्मण और भार्या

दीर्घवेणीममात्यर्थंसुद्बंधायभविष्यति ॥ एवंनिश्चितबुद्धिंतांमरणायाथजानकीम् ॥२॥ विलोक्यहनुमान्किंचिद्विचार्यैतदभाषत ॥ शनैः शनैःसूक्ष्मरूपोजानक्याःश्रोत्रगंवचः ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतोराजादशरथोमहान् ॥ अयोध्याधिपतिस्तस्यचत्वारोलोकविश्रुताः ॥ ॥ ४ ॥ पुत्रादेवसमाःसर्वैलक्षणैरुप लक्षिताः ॥ रामश्चलक्ष्मणश्चैवभरतश्चैवशत्रुहा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठोरामःपितुर्वाक्याद्दंडकारण्यमागतः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयाभार्ययासह ॥ ६ ॥ उवासगौतमीतीरेपंचवट्यांमहामनाः ॥ तत्रनीतामहाभागासीताजनकनंदिनी ॥ ७ ॥ रहितेरामचंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ ततोरामोऽतिदुःखार्तोमार्गमाणोऽथजानकीम् ॥ ८ ॥ जटायुषंपक्षिराजमपश्यत्पतितंभुवि ॥ तस्मैदत्त्वादिवंशीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥ ९ ॥ सुग्रीवेणकृतामैत्रीरामस्याविदितात्मनः ॥ तद्भार्याहारिणंहत्वावालिनंरघुनंदनः ॥१०॥

सीताजीके साथ दंडकारण्यमें आये ॥ ६ ॥ वहाँपर वह उदार मनके पुरुष गोदावरी नदीके तीर पंचवटीमें रहते हुए । वहाँ महाभाग्यवती जनकजी की कन्या ॥ ७ ॥ दुष्ट रावणने जब रामजी उनके पास न थे चुरा लिया; तब रामजीको बहुतही दुःख हुआ । फिर वह जानकीजीके खोजनेको चले ॥ ८ ॥ इतनेहीमें पृथ्वीपर पडा हुआ पक्षिराज जटायुको श्रीरामचंद्रजीने देखा । उसको स्वर्गलोक देकर अतिशीघ्र श्रीरामजी ऋष्यमूक पर्वतपर आये ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीको अपने स्वरूपका पूर्ण ज्ञान है । वह संकल्पमात्रसे ही सब कार्य कर सक्ते हैं । इस कारण उनको किसीकी सहायता नहीं चाहिये । परन्तु सुग्रीवने अपने कार्यको रामजीके साथ सख्य किया.—अर्थात् दोनोंमें मित्रता हुई । श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवकी भार्याके हरण करने

वाले वालीका वध करके ॥ १० ॥ सुग्रीवको राज्याभिषेक किया व मित्रकार्यको साधा। सुग्रीव वानरोंके राजा हुए; तब उन्होंने वानरोंको बुलाया ॥ ११ ॥ और चारोंओर सीताजीके ढूँढनेको वानर भेज दिये। उनमेंसेही मैंभी एक सुग्रीवका मंत्री हूं ॥ १२ ॥ संपातिके कहे अनुसार मैं अति शीघ्र शत योजन लंबा समुद्रको लाँघकर आयाहूं; और सारी लंकामें उन पतिव्रता जानकीजीको ढूंढा ॥ १३ ॥ तहाँपर कहीं पता नहीं लगा इस कारण पीछेसे हौले हौले मैं अशोकवनिकाके मध्य ढूंढने लगा, तो यहाँपर एक शिंशपा वृक्षके नीचे दुःखसे डूबकर शोक करती हुई रामचंद्रजीकी पटरानी देवी जानकीजीको हमने देखा ॥ १४ ॥ जिसके लिये मैं आयाथा वह कार्य पूरा होगया महाबुद्धिमान् (समयसूचक) हनुमा

राज्येऽभिषिच्यसुग्रीवंमित्रकार्यंचकारसः ॥ सुग्रीवस्तुसमानाय्यवानरान्वानरप्रभुः ॥११॥ प्रेषयामासपरितोवानरान्परिमार्गणे ॥ सीतायास्तत्रचैकोऽहंसुग्रीवसचिवोहरिः ॥ १२ ॥ संपातिवचनाच्छीघ्रमुल्लंघ्यशतयोजनम् ॥ समुद्रंनगरींलंकांविचिन्वञ्जानकींशुभाम् ॥ ॥ १३ ॥ शनैरशोकवनिकांविचिन्वञ्छिंशपातरुम् ॥ अद्राक्षंजानकीमत्रशोचंतींदुःखसंप्लुताम् ॥ १४ ॥ रामस्यमहिषींदेवींकृतकृत्योऽहमागतः ॥ इत्युक्त्वोपररामाथमारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥ १५ ॥ सीताक्रमेणतत्सर्वंश्रुत्वाविस्मयमाययौ ॥ किमिदंमेश्रुतंव्योम्निवायुनासमुदीरितम् ॥ १६ ॥ स्वप्नोवामेमनोभ्रांतिर्यदिवासत्यमेवतत् ॥ निद्रामेनास्तिदुःखेनजानाम्येतत्कुतोभ्रमः ॥ १७ ॥ येनमेकर्णपीयूषंवचनंसमुदीरितम् ॥ सदृश्यतांमहाभागःप्रियवादीममाग्रतः ॥ १८ ॥

नूजी इतना कहकर चुप होरहे ॥ १५ ॥ यह सब वृत्तान्त क्रमसे सुनकर सीताजीको आश्चर्य हुआ, तत्काल उनके मुखसे यह बात निकली कि मैंने जो कुछ सुना है। यह शब्द क्या आकाशमें पवनने उच्चारण किये (पवनमें उठे) हैं ॥ १६ ॥ क्या मैं स्वप्नमें हूं ? या मेरे मनका भ्रम हुआ अथवा यह सब यथार्थ है नहीं; नहीं, स्वप्न तो हैही नहीं, क्योंकि दुःखके मारे मुझको नींद आतीही नहीं और यहभी नहीं कहा जासकता कि मुझको भ्रम हुआ ? क्योंकि पृथ्वीके सब पदार्थोंको मैं ठीक २ देखतीहूं इसमें कोई संशय नहीं कि वास्तवमें इन शब्दोंको किसीने उच्चारण किया ॥ १७ ॥ मेरे कानोंको अमृतके समान लगनेवाले यह वचन जिस कीसीने उच्चारण किये हैं; वह प्रिय भाषण करनेवाला महाभाग्य

वान् प्राणी मेरे आगे प्रगट होवे (मुझको दर्शन दे) ॥ १८ ॥ जानकीजीके यह वचन सुनकर हनुमान्‌जी पत्तोंके समूहमेंसे उतरकर धीरे २ सीताजीके सन्मुख आय पहुँचे ॥ १९ ॥ चटक पक्षीके समान छोटे शरीरवाला लाल मुख युक्त, पीली कांतिसे युक्त शरीरवाला एक वानर हौलेसे सीताजीको नमस्कार करके उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ा रहा ॥ २० ॥ उसको देखकर सीताजी डरगईं, उनको जान पड़ा कि, यह रावण मुझे फँसानेके लिये कपटसे वानररूप धारणकर यहाँपर आया है ॥ २१ ॥ ऐसा विचार मनमें आनेसे वह नीचेको शिर झुकाय मौन हो बैठीं; तब फिर हनुमान्‌जीने—देवी ! तुम्हारे मनमें जो शंका हुई है ॥ २२ ॥ वैसा मैं (अर्थात् रावण) नहींहूँ । मातः ! मेरे विषयमें शंका छोड़ दो मैं

श्रुत्वातज्जानकीवाक्यंहनुमान्पत्रखण्डतः ॥ अवतीर्यशनैःसीतापुरतःसमवस्थितः ॥ १९ ॥ कलविंकप्रमाणाङ्गोरक्तास्यःपीतवानरः ॥ ननामशनकैःसीतांप्रांजलिःपुरतःस्थितः॥२०॥ दृष्ट्वातंजानकीभीतारावणोऽयमुपागतः॥ मांमोहयितुमायातोमाययावानराकृतिः॥२१॥ इत्येवंचिंतयित्वासातूष्णीमासीदधोमुखी॥ पुनरप्याहतांसीतांदेवियत्त्वंविशंकसे ॥२२॥ नाहंतथाविधोमातस्त्यजशंकांमयिस्थिताम् ॥ दासोऽहंकोसलेंद्रस्यरामस्यपरमात्मनः ॥ २३ ॥ सचिवोऽहंहरींद्रस्यसुग्रीवस्यशुभप्रदे ॥ वायोःपुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्यशोभने ॥ ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वाजानकीप्राहहनूमन्तंकृतांजलिम् ॥ वानराणांमनुष्याणांसंगतिर्घटतेकथम् ॥ २५ ॥ यथात्वंरामचंद्रस्यदासोहमिति भाषसे ॥ तामाहमारुतिः प्रीतोजानकींपुरतःस्थितः ॥ २६ ॥ ऋष्यमूकमगाद्रामःशबर्यानोदितःसुधीः॥ सुग्रीवोऋष्यमूकस्थोदृष्टवान्रा मलक्ष्मणौ ॥ २७ ॥

कोशलदेशके राजा परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका दास हूं ॥ २३ ॥ हे कल्याणकारिणी ! मैं वानरोंके राजा सुग्रीवका मंत्रीहूं । हे सुन्दरि ! सब प्राणियोंका प्राण जो पवन है उसका मैं पुत्र हूं ॥ २४ ॥ हाथ जोड़कर आगे खड़ेहुए हनुमान्‌जीके वचन सुनकर जानकीजी बोलीं; वानर और मनुष्यमें मित्रता किस प्रकारसे हुई ? ॥ २५ ॥ तुम कहते हो कि मैं रामचंद्रजीका दास हूं, पर यह कैसे संभव हो सकता है यह प्रश्न सुनकर आगे खड़े हुए हनुमान्‌जीको संतोष हुआ, उन्होंने जानकीजीसे कहा ॥ २६ ॥ हे देवी ! शबरीके कहे अनुसार महाबुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजी ऋष्यमूक

पर्वतपर आये; ऋष्यमूकपर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवने रामचंद्र व लक्ष्मणजीको देखा ॥ २७ ॥ सुग्रीव डरे और इन्होंने रामजीके मनका अभिप्राय जाननेके लिये मुझे पठाया । मैं ब्रह्मचारीके समान रूप धारणकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गया ॥ २८ ॥ रामचंद्रजीका सद्भाव अर्थात् श्रेष्ठ अभिप्राय अथ च ब्रह्मरूपत्व जानकर उन दोनोंको कंधेपर चढ़ाय सुग्रीवके समीप लेगया और राम व सुग्रीवमें मित्रता करायदी ॥ २९ ॥ वालीने सुग्रीवकी स्त्रीको हरण कर लिया था, रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीने उस वालीको एकही बाणसे मारकर सुग्रीवको वानरोंके राज्यपर अभिषिक्त किया, सुग्रीवने तुम्हारे ढूँढनेके लिये बड़े २ बलवान् व पराक्रमी वानरोंको दशों दिशाओंमें भेजाहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मुझको चलताहुआ

भीतोमांप्रेषयामासज्ञातुंरामस्यहृद्गतम् ॥ ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वागतोऽहंरामसन्निधिम् ॥ २८ ॥ ज्ञात्वारामस्यसद्भावंस्कंधोपरिनिधायतौ ॥ नीत्वासुग्रीवसामीप्यंसख्यंचाकरवंतयोः ॥ २९ ॥ सुग्रीवस्यहृताभार्यावालिनातंरघूत्तमः ॥ जघानैकेनवाणेनततोराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ॥ ३० ॥ सुग्रीवंवानराणांसप्रेषयामासवानरान् ॥ दिग्भ्योमहावलान्वीरान्भवत्याःपरिमार्गणे ॥ ३१ ॥ गच्छंतंराघवोदृष्ट्वामामभाषत सादरम् ॥ ३२ ॥ त्वयिकार्यमशेषंमेस्थितंमारुतनंदन ॥ ब्रूहिमेकुशलंसर्वंसीतायैलक्ष्मणस्यच ॥ ३३ ॥ अंगुलीयकमेतन्मेपरिज्ञानार्थ मुत्तमम् ॥ सीतायैदीयतांसाधुमन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वाप्रददौमह्यंकराग्रादंगुलीयकम् ॥ प्रयत्नेनमयाऽऽनीतंदेविपश्यांगुली यकम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाप्रददौदेव्यैमुद्रिकांमारुतात्मजः ॥ नमःकृत्वास्थितोदूराद्बद्धांजलिपुटोहरिः ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वासीताप्रमुदितारामनामांकितांतदा ॥ मुद्रिकांशिरसाधृत्वास्रवदानंदनेत्रजा ॥ ३७ ॥

देखकर श्रीरामचंद्रजीने मुझसे आदरपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ हे पवनकुमार ! तुम्हारे ऊपरही हमारे सारे कार्य निर्भर हैं; सीताजीसे हमारा और लक्ष्मणका समस्त मंगल कहना ॥ ३३ ॥ और पहँचानके लिये यह मेरी उत्तम अँगूठी कि जिसपर मेरे नामके अक्षरोंकी छाप है; सो सीताको सावधानतासे दीजो ॥ ३४ ॥ यह कहकर अपने हाथकी उँगलीसे अँगूठी उतारकर मुझे दीहै । हे देवि ! उस अँगूठीको तुम देखो यह अँगूठी बड़े यत्नसे मैं यहाँपर लायाहूं ॥ ३५ ॥ इतना कहकर पवनके पुत्र हनुमानूजीने वह मुद्रिका देवी सीताजीको दी और वह वानर आपभी दोनों हाथ जोड़े नमस्कारकर दूर खड़ेरहे ॥ ३६ ॥ उस रामनामांकित अँगूठीको देखतेही सीताजीको परम आनंद हुआ, उन्होंने वह अँगूठी शिरपर चढ़ाई; इस वेला

उनके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आंसूं बहनेलगे ॥ ३७ ॥ जानकीजी बोलीं—पवनकुमार ! तुम हमारे प्राणदाता, बड़े चतुर व रामजीके यथार्थ भक्त और प्रियकर्ता हो। मुझको निश्चयहै कि तुमपर रामचंद्रजीका पूर्ण विश्वास है ॥ ३८ ॥ जो ऐसा न हो तो तुम परपुरुषको वे हमारे पास कैसे भेजते? हनुमंत! हमको कैसे २ दुःख मिलतेहैं; इत्यादि सर्वप्रकार से तुमने प्रत्यक्ष देखे हैं ॥ ३९ ॥ यह सर्व वृत्तान्त इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीसे कहना कि, सुनतेही उनको मुझपर दया आजावै। हे साधुशिरोमणे! अब मेरे प्राण केवल दोही महीने रहैंगे; इतने अवकाशमें ॥ ४० ॥ जो रामचंद्र नहीं आये; तो वह दुष्ट मुझे खाडालैगा ! इसकारण विना विलम्बके वानरोंके राजा सुग्रीवको साथ लेकर ॥ ४१ ॥ व दूसरे सेनापतियोंके साथ प्रभु

कपेमेप्राणदातात्वंबुद्धिमानसिराघवे ॥ भक्तोऽसिप्रियकारीत्वंविश्वासोऽस्तितवैवहि ॥ ३८ ॥ नोचेन्मत्सन्निधिंचान्यंपुरुषंप्रेषयेत्कथम् ॥ हनुमन्दृष्टमखिलंममदुःखादिकंत्वया ॥ ३९ ॥ सर्वंकथयरामाययथामेजायतेदया ॥ मासद्वयावधिप्राणाःस्थास्यंतिममसत्तम ॥ ४० ॥ नागमिष्यतिचेद्रामोभक्षयिष्यतिमांखलः ॥ अतःशीघ्रंकपींद्रेणसुग्रीवेणसमन्वितः ॥ ४१ ॥ वानरानीकपैःसार्धंहत्वारावणमाहवे ॥ सपुत्रंसबलंरामोयदिमांमोचयेत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ तत्तस्यसदृशंवीर्यंवीरवर्णयवर्णितम् ॥ यथामांतारयेद्रामोहत्वाशीघ्रंदशाननम् ॥ ४३ ॥ तथायतस्वहनुमन्वाचाधर्ममवाप्नुहि ॥ हनूमानपितामाहदेविदृष्टोयथामया ॥ ४४ ॥ रामःसलक्ष्मणःशीघ्रमागमिष्यतिसायुधः ॥ सुग्रीवेणससैन्येनहत्वादशमुखंबलात् ॥ ४५ ॥

रामचंद्रजी जो यहाँ आवैं,—और पुत्र सैन्य सबके सहित रावणका युद्धमें वधकर जो मुझे छुडावैं ॥ ४२ ॥ तभी ब्राह्मणोंने अनेकग्रंथोंमें जो उनके (रामचन्द्रजीके) प्रभावका वर्णन कियाहै, वह योग्य होगा; जो ऐसा नहीं हुआ तौ कुछ योग्य नहीं हुआ। हेवीर ! जब तुम उनके पास जाओ तौ इसभाँति यहांका वृत्तान्त वर्णन करना कि जिस युक्तिसे रामचंद्र रावणका वध करके अतिशीघ्र मुझे छुड़ावैं ॥ ४३ ॥ ऐसा उपाय करो। हे हनुमंत! वाणीका ऐसा उपयोग करनेपर अर्थात् रामचंद्रजीको ऐसा कहनेपर तुमको बड़ा धर्म होगा। हनुमान्जीने उनसे कहा;—हे देवि! जैसा हम देखतेहैं उससे तौ यही मालूम होताहै ॥ ४४ ॥ कि मेरे मिलतेही रामचंद्रजी अस्त्र शस्त्र लेकर, लक्ष्मण, व सेना, व सुग्रीवके सहित यहांपर शीघ्र

आवेंगे। उनके आयुध नित्यसिद्ध हैं, फिर वह पराक्रमसे रावणका वध करके ॥ ४५ ॥ तुमको अयोध्यामें लेजांयगे। हे जानकी! इसमें कोई संशय नहीं है। यह सुनकर जानकीजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि हे हनुमन्त! तुम्हारा कहना यथार्थ है; परन्तु रामचंद्रजी इस विस्तारवाले समुद्रको किस प्रकारसे तरेंगे? ॥ ४६ ॥ उनके शरीरमें कुछ पंख तो हैंही नहीं परंतु वे सर्वव्यापी परमात्मा हैं इसके सिवाय उनके साथ वानरोंकी सेना और अनेक सेनापति किस प्रकारसे आवैंगे? ॥ हनुमान्‌जीने कहा वे दोनों श्रेष्ठ पुरुष मेरे कन्धोपर बैठकर ॥ ४७ ॥ आवैंगे; वानरोंके राजा सुग्रीवभी सेनाके साथ आकाश मार्गसे होकर क्षणभरमें इस विस्तारवाले समुद्रके पार उतर आवैंगे, निःसंदेह राक्षसोंके समूहको जला डालैंगे ॥ ४८ ॥ हे

समानेष्यतिदेवित्वामयोध्यांनात्रसंशयः ॥ तमाहजानकीरामःकथंवारिधिमाततम् ॥४६॥ तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मावानरानीकपैःसह ॥ हनुमानाहमेस्कंधावारुह्यपुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥ आयास्यतःससैन्यश्चसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ विहायसाक्षणेनैवतीर्त्वावारिधिमाततम् ॥ ४८ ॥ निर्दहिष्यतिरक्षौघांस्त्वत्कृतेनात्रसंशयः ॥ अनुज्ञांदेहिमेदेविगच्छामित्वरयान्वितः ॥ ४९ ॥ द्रष्टुंरामंसहभ्रात्रात्वरयामितवांतिकम् ॥ देविकिंचिदभिज्ञानंदेहिमेयेनराघवः ॥ ५० ॥ विश्वसेन्मांप्रयत्नेनततोगंतासमुत्सुकः ॥ ततःकिंचिद्विचार्याथसीताकमललोचना ॥५१॥ विमुच्यकेशपाशांतेस्थितंचूडामणिंददौ ॥ अनेनविश्वसेद्रामस्त्वांकपींद्रसलक्ष्मणः ॥ ५२ ॥ अभिज्ञानार्थमन्यच्चवदामितवसुव्रत ॥ चित्रकूटगिरौपूर्वमेकदारहसिस्थितः ॥ मदंकेशिरआधायनिद्रातिरघुनंदनः ॥ ५३ ॥

देवी! मुझे आज्ञा दो; मैं अति शीघ्र रामचंद्रजीके दर्शनको जाताहूं ॥ ४९ ॥ जैसेही मैं वहां गया कि भ्राताके साथ श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे पास आनेकी शीघ्रता करैंगे परन्तु हे देवी! मुझको कोई ऐसी निशानी दो कि जिससे श्रीरामचंद्रजीको मेरा विश्वास आजाय ॥ ५० ॥ तुम्हारी दीहुई निशानी बड़ी सावधानतासे लेकर बड़े हर्षके साथ मैं श्रीरामचंद्रजीके पास जाऊंगा,—इसके उपरांत उन कमलनयन सीताजीने हनुमान्‌जीके वचनोंपर थोड़ासा विचार करके ॥ ५१ ॥ अति शीघ्र अपनी वेणीमें उरझेहुए चूड़ामणिको निकालकर हनुमान्‌जीको दिया और कहा, हे वानरश्रेष्ठ! उसको दिखातेही राम-लक्ष्मणको विश्वास आजायगा ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत! निशानीके लिये मैं कोई औरभी बात तुमसे कहतीहूं. पहले चित्रकूटपर्वतपर रहते

हुए एक प्रसंगमें एकांतके समय श्रीरामजी मेरी गोदीमें शिर रखकर सोगये थे ॥ ५३ ॥ इतनेहीमें इन्द्रका पुत्र कागके रूपसे वहाँ आया; उसने मांस की आशासे लालसे दिखलाई देनेवाले मेरे पाँवके अँगूठेको वारम्वार पंजे और चोंचका प्रहार करके विदारण किया ॥ ५४ ॥ फिर श्रीरामजीने जागकर मेरे पाँवमें घाव हुआ देखा ! "हे प्रिये ! मुझको मलिन लगनेवाली यह बात किस दुष्टने की ?" ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने आगेको देखा तो वह काग वारम्वार मेरे पांवपर उड़कर आता है । उसका मुँह चोंच और पंजे रुधिरमें भरे हुए हैं ऐसा उन्होंने देखा । उन्होंने क्रोधित होकर ॥ ५६ ॥ एक तिनका हाथमें ले उसपर दिव्य अस्त्रका प्रयोग किया, और सहजसेही उस कागपर फेंका, वह अग्निके समान धग २ करताहुआ

ऐंद्रःकाकस्तदागत्यनखैस्तुंडेनचासकृत् ॥ ५४ ॥ मत्पादांगुष्ठमारक्तंविददारामिषाशया ॥ ततोरामःप्रबुध्याथदृष्ट्वापादंकृतव्रणम् ॥
॥ ५५ ॥ केनभद्रेकृतंचैतद्विप्रियंमेदुरात्मना ॥ इत्युक्त्वापुरतोऽपश्यद्वायसंमांपुनःपुनः ॥ ५६ ॥ अभिद्रवंतंरक्तास्यनखतुडंचुकोपह ॥
तृणमेकमुपादायदिव्यास्त्रेणाभियोज्यतत् ॥ ५७ ॥ चिक्षेपलीलयारामोवायसोपरितज्ज्वलत् ॥ अभ्यद्रवद्वायसश्चभीतोलोकान्भ्रमन्पु
नः ॥ ५८ ॥ इंद्रब्रह्मादिभिश्चापिनशक्योरक्षितुंतदा ॥ रामस्यपादयोरग्रेऽपतद्भीत्यादयानिधेः ॥ ५९ ॥ शरणागतमालोक्यरामस्तामि
दमब्रवीत् ॥ अमोघमेतदस्त्रंमेदत्त्वेकाक्षमितोव्रज ॥६०॥ सव्यंदत्त्वाततःकाकएवंपौरुषवानपि ॥ उपेक्षतेकिमर्थंमामिदानींसोऽपिराघवः
॥ ६१ ॥ हनूमानापितामाहश्रुत्वासीतानुभाषितम् ॥ देवित्वांयदिजानातिस्थितामत्ररघूत्तमः ॥ ६२ ॥

तिनका ॥ ५७ ॥ कागके अङ्गपर गया । काग भयके मारे त्रिलोकीमें भटकता हुआ फिरा । इन्द्र ब्रह्मादि देवताओंके हाथोंसेभी रक्षा होनेकी आशा नहीं रही । तब वह फ़िर ॥ ५८ ॥ दयासागर श्रीरामचंद्रजीके आगे जाय भयभीतहो उनके पांवोंपर गिरपड़ा । उसको शरण आयाहुआ देखकर श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ ५९ ॥ "हे काग ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है (कभी वृथा होनेवाला नहीं) इसकारण तू अपना एक नेत्र देकर यहां से जा !" तब वह काग अपना बांया नेत्र देकर चलागया । हे हनुमंत ! रामजीका प्रभाव इतना विलक्षणहै ॥ ६० ॥ क्या कारणहै जो ऐसे होनेपर भी अब श्रीरामचंद्रजी मेरी उपेक्षा करतेहैं । हनुमान्‌जीने सीताजीके वचन सुनकर उनसे कहा ॥ ६१ ॥ हे देवि ! तुम्हारा यहां होना जानकर श्रीराम

चंद्रजी क्षणभरमें राक्षसोंके ठट्टसे भरी हुई लंकापुरीको भस्म करडालेंगे ! जानकीजी बोलीं,--हे बालक ! (हनुमंत !) तुम राक्षसोंके साथ किसप्रकारसे युद्ध करोगे; तुम्हारा शरीर बहुतछोटा दिखाई देता है और मुझे जानपड़ता है कि सारे वानर तुम समानही (छोटे छोटे) होंगे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ यह वचन सुनतेही हनुमान्‌जीने सीताको अपना मूलरूप दिखाया; वह रूप मेरु मंदर पर्वतके समान होनेसे राक्षसोंके समूहको भयदायक था; हनुमानजीको प्रचण्ड पर्वतके समान हुआ देखकर सीताजीके आनन्दकी सीमा न रही;और वह उस श्रेष्ठ वानरसे बोलीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ "अहो ! बुद्धि व सामर्थ्यके अनुसार तुम्हारे शरीरका बलभी विलक्षण है। मुझे निश्चय है कि तुम अपने हाथमें लिया हुआ कार्य पूराकर दोगे; अब यहां से

करिष्यतिक्षणाद्भस्मलंकांराक्षसमंडिताम् ॥ जानकीप्राहतंवत्सकथंत्वंयोत्स्यसेऽसुरैः ॥ ६३ ॥ अतिसूक्ष्मवपुःसर्वेवानराश्चभवादृशाः ॥ श्रुत्वातद्वचनंदेव्यैपूर्वंरूपमदर्शयत् ॥ ६४ ॥ मेरुमंदरसंकाशंरक्षोगणविभीषणम् ॥ दृष्ट्वासीताहनूमंतंमहापर्वतसन्निभम् ॥ ६५ ॥ हर्षेणमहताविष्टाप्राहतंकपिकुंजरम् ॥ समर्थोऽसिमहासत्त्वद्रक्ष्यंतित्वांमहाबलम् ॥ राक्षस्यस्तेशुभःपंथागच्छरामांतिकंद्रुतम् ॥ ६६ ॥ बुभुक्षितःकपिःप्राहदर्शनात्पारणंमम ॥ भविष्यतिफलैःसर्वैस्तवदृष्टौस्थितैर्हिमे ॥ ६७ ॥ तथेत्युक्तःसजानक्याभक्षयित्वाफलंकपिः ॥ ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकींप्रणिपत्यसः ॥ किंचिद्दूरमथोगत्वास्वात्मन्येवानुचिंतयत् ॥ ६८ ॥ कार्यार्थमागतोदूतःस्वामिकार्याविरोधतः ॥ अन्यत्किंचिदसंपाद्यगच्छत्यधमएवसः ॥ ६९ ॥

शीघ्र श्रीरामचंद्रजीके पास जाओ ! नहीं तो राक्षसियें देख लेंगी; वह रावणसे कहैंगी और जिससे यहांपर कोई बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा ! जाओ मार्गमें तुमको किसी प्रकारका संकट न होवे" ॥ ६६ ॥ वानरको बहुत भूंख लगीथी इसकारण वह जानकीसे बोलेः--हे देवि ! तुम्हारा दर्शन हुआ। अब मुझको अपना पारण करना उचित जान पड़ता है, आपकी आंखोंके सन्मुख जो फल हैं, इन सबके खानेसे मेरी भूंख भागैगी ॥ ६७ ॥ जानकीजीने 'तथास्तु' कहा तब हनुमानजीने फलों का भक्षण किया इसके उपरान्त जानकीजीका सन्देशा ले व वंदनकर वे जाने लगे; कुछ दूर जाकर उनके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ ॥ ६८ ॥ जो दूत स्वामीका कार्य करनेकेलिये आकर जिससे स्वामीके कार्यमें

कुछ हानि नहो [वरन वह कार्य स्वामीका मन मानाहो) ऐसा कोई दूसरा कार्य विना किये चला जाय उसकी गिनती अधम दूतोमें होती है ॥ ६९ ॥ इसकारण हम अपने पराक्रमके अनुसार कोई दूसरा कार्य करकै रावणकी भेट ले; उससे चार बातें करें; फिर रामचंद्रजीका दर्शन करनेको चले जावें ॥ ७० ॥ मनमें ऐसा निश्चय करके उन महापराक्रमी वानरने वृक्षोंके समूहका समूह उखाड़ लिया; और एकक्षणभरमें अशोक वनिकाको वृक्ष शून्य कर दिया ॥ ७१ ॥ जिस वृक्षके तले सीताजी थीं केवल उस वृक्षको छोड़ बाकी सब उपवनको उखाड़ दिया । उस उपवनके वृक्षोंको उजाड़ता हुआ देखकर राक्षसियें ॥ ७२ ॥ जानकीजीसे कहने लगीं ' यह वानरके समान दीखनेवाला अजान वीर कौन है ? '

अतोऽहंकिंचिदन्यच्चकृत्वादृष्ट्वाथरावणम् ॥ संभाष्यचततोरामदर्शनार्थंव्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥ इतिनिश्चित्यमनसावृक्षखंडान्महावलः ॥ उत्पाट्याशोकवनिकांनिर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ॥ ७१ ॥ सीताश्रयनगंत्यक्त्वावनंशून्यंचकारसः ॥ उत्पाटयंतंविपिनंदृष्ट्वाराक्षसयोषितः॥ ॥७२॥ अपृच्छञ्जानकींकोऽसौवानराकृतिरुद्भटः ॥ ७३ ॥ जानक्युवाच ॥ भवत्यएवजानंतिमायांराक्षसनिर्मिताम् ॥ नाहमेनंविजाना मिदुःखशोकसमाकुला ॥ ७४ ॥ इत्युक्तास्त्वरितंगत्वाराक्षस्योभयपीडिताः॥ हनूमताकृतंसर्वंरावणायन्यवेदयन् ॥ ७५ ॥ देवकश्चिन्म हासत्त्वोवानराकृतिदेहभृत् ॥ सीतयासहसंभाष्यह्यशोकवनिकांक्षणात् ॥ उत्पाट्यचैत्यप्रासादंवभंजामितविक्रमः ॥ ७६ ॥ प्रासादर क्षिणःसर्वान्हत्वातत्रैवतस्थिवान् ॥ तच्छ्रुत्वातूर्णमुत्थायवनभंगंमहाऽप्रियम् ॥ ७७ ॥

॥ ७३ ॥ जानकीजी बोलीं,--"राक्षसोंकी मायाको तुम्हीं जानो । मैं तौ अपने दुःख शोकके आगसे आपही जल रहीहूँ । मैं नहीं जानती कि कौन है" ॥ ७४ ॥ सीताजीसे ऐसा सुनकर भयके मारे राक्षसियें भाग गई । उन्होंने अतिशीघ्र जाकर हनुमानजीके किये हुए सब कर्म रावणसे कहे ॥ ७५ ॥ " हे महाराज ! कोई एक महाबलवान् प्राणी वानरके समान देह धारण करके आयाहै; उसका पराक्रम अनंत दीखता है उसने सीताजीसे वार्ता करके अशोक वनके वृक्ष सबही उखाड़ डाले और वहाँका देवतालय तोड़ डाला ! ॥ ७६ ॥ उस मंदिरके सब रखवालोंको मारकर वह यहीं खड़ाथाः--और अबभी वहाँ खड़ा है" । उपवन उजाड़नेकी अत्यन्त अप्रिय वार्ता कानमें पड़तेही एक साथ चौंककर उठबैठा ॥ ७७ ॥

इस राक्षसोंके राजा रावणने तत्काल हनुमानजीके ऊपर दश करोड़ सेवकोंको पठा दिया । हनुमानजी उस उजाड़े हुए मंदिरके पहले चौकमें बैठेथे ॥ ७८ ॥ इस समय उनका शरीर पर्वतके समान प्रचंड था । एक लोहेका थंभ उन्होंने अपना हथियार बनाया था । उनकी पूंछ थोड़ी थोड़ी हिल रहीथी, उनका मुख व लालशरीर भयंकर दिखलाई दे रहाथा ॥ ७९ ॥ राक्षसोंके बड़े जत्थेको अपने ऊपर आता हुआ देखकर हनुमान्जी सिंहके समान गर्जे; उस सिंहनादको सुनकर राक्षसोंका गर्व टूटगया ॥ ८० ॥ फिर भयंकर आकारवाले हनुमान्जी सब राक्षसोंकी ओर चले । तब राक्षस लोगभी अनेक प्रकारके अस्त्र हनुमान्पर चलाने लगे ॥ ८१ ॥ इसके उपरान्त जिस प्रकार कोई यूथपति

किंकरान्प्रेषयामासनियुतंराक्षसाधिपः ॥ निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमांतरसंस्थितः ॥ ७८ ॥ हनुमान्पर्वताकारोलोहस्तंभकृतायुधः ॥ किंचिद्धांगूलचलनोरक्तास्योभीषणाकृतिः ॥७९ ॥ आपतंतंमहासंघंराक्षसानांददर्शसः ॥ चकारसिंहनादंचश्रुत्वातेमुमुहुर्भृशम् ॥८०॥ हनूमंतमथोद्दष्ट्वाराक्षसाभीषणाकृतिम् ॥ निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैःसर्वराक्षसघातिनम् ॥ ८१ ॥ ततउत्थायहनुमान्मुद्गरेणसमंततः ॥ निष्पिपेषक्षणादेवमशकानिवयूथपः ॥ ८२ ॥ निहतान्किंकराञ्छ्रुत्वारावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ पंचसेनापतींस्तत्रप्रेषयामासदुर्मदान् ॥८३॥ हनूमानपितान्सर्वाँल्लोहस्तंभेनचाहनत् ॥ ततःक्रुद्धोमंत्रिसुतान्प्रेषयामाससप्तसः॥८४॥आगतानपितान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः॥ क्षणान्निःशेषतोहत्वालोहस्तंभेनमारुतिः ॥ ८५ ॥ पूर्वस्थानमुपाश्रित्यप्रतीक्षन्राक्षसान्स्थितः ॥ ततोजगामबलवान्कुमारोऽक्षःप्रतापवान् ॥८६॥

(झुंडकी रक्षा करनेवाला मत्त गजराज) मच्छरोंको एक क्षणभरमें पीस डाल सकता है (कोई क्लेश उसको नहीं होता) वैसेही हनुमान्जीने उठाकर मुद्गरसे उन सारे राक्षसोंको चूर्ण कर डाला ॥ ८२ ॥ अपने सेवक लोगोंके मरनेका वृत्तान्त सुनकर मारे क्रोधसे रावण अपने देहके भानको भूल गया; उसने सेनाके साथ मतवाले पांच सेनापतियोंको हनुमान्जीके ऊपर भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान्जीने लोहेके थंभसे उन सबको मार डाला; तब रावणने संतापित होकर क्रोध करकै मंत्रीके सात पुत्रोंको भेजा ॥ ८४ ॥ वानरोंके अधीश्वर उन हनुमान्जीने पहलेके समान उन रावणके भेजे हुए राक्षसोंको एक २ करके लोहेके थंभसे मार डाला ॥ ८५ ॥ और वह फिर पहली जगह जाकर राक्षसोंकी बाट देखते रहे । फिर

महाबलवान् व प्रतापी रावणका पुत्र अक्ष चला आया ॥ ८६ ॥ इसको देखतेही हनुमान्‌जी मुद्गरको लेकर आकाशको उड़ गये, व अति शीघ्रताके साथ आकाशसे नीचे उतरकर अक्षके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार किया ॥ ८७ ॥ मुद्गरके लगतेही अक्ष मरगया । फिर हनुमान्‌जीने उसकी सारी सेनाको मार डाला ! ॥ ८८ ॥ राक्षसोंके राजा (रावण) ने अक्षके मरनेकी वार्ता सुनी,—तब वह बहुत संतापित होकर इन्द्रजितसे बोलाः— ॥ ८९ ॥ " हे पुत्र ! कुमार (अक्ष) का वध करनेवाला वह शत्रु जहांपर है; तिस स्थानमें मैं जाताहूं; और उसको मार डालताहूं या बांधकर तेरे समीप लिये आताहूं " ॥ ९० ॥ यह सुनकर इन्द्रजित् पितासे बोलाः— ' हे महाराज ! आप पूर्ण विचारवान् हैं, मैं आपको

तमुत्पपातहनुमान्दृष्ट्वाऽऽकाशेसमुद्गरः ॥ गगनात्त्वरितोमूर्ध्निमुद्गरेणव्यताडयत् ॥ ८७ ॥ हत्वातमक्षंनिःशेषंबलंसर्वंचकारसः ॥ ८८ ॥ ततःश्रुत्वाकुमारस्यवधंराक्षसपुंगवः॥ क्रोधेनमहताविष्टइंद्रजेतारमब्रवीत् ॥८९॥ पुत्रगच्छाम्यहंतत्रयत्रास्तेपुत्रहारिपुः ॥ हत्वातमथवाबद्ध्वाआनयिष्यामितेंऽतिकम् ॥ ९० ॥ इंद्रजित्पितरंप्राहत्यजशोकंमहामते ॥ मयिस्थितेकिमर्थंत्वंभाषसेदुःखितंवचः ॥ ९१ ॥ बद्ध्वाऽनेष्येद्रुतंतातवानरंब्रह्मपाशतः ॥ इत्युक्त्वारथमारुह्यराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ९२ ॥ जगामवायुपुत्रस्यसमीपंवीरविक्रमः ॥ ततोऽतिगर्जितंश्रुत्वास्तंभमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ ९३ ॥ उत्पपातनभोदेशंगरुत्मानिवमारुतिः ॥ ततोभ्रमंतंनभसिहनूमंतंशिलीमुखैः ॥ ९४ ॥ विद्धातस्यशिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिःपुनः ॥ हृदयंपादयुगलंषड्भिरेकेनवालधिम् ॥ ९५ ॥

क्या समझा सकताहूं । परन्तु अब अवसरमें आप शोक छोड़ दीजिये । मेरे यहाँपर रहतेहुए आप दुःखित वचन किस कारणसे कहते हैं ! ॥ ९१ ॥ हे तात ! मैं अभी जायकर उस वानरको ब्रह्मपाशमें बाँधकर लिये आताहूं ! " यह कहकर इन्द्रजित् अति शीघ्र रथपर चढ़ा, और साथमें बहुतसे राक्षस लेकर ॥ ९२ ॥ पवनकुमारके निकट आया । वहां जाकर इन्द्रजित् गर्जा उस गर्जनाको सुनकर वह प्रतापी वानर वहीं लोहेका थंभ हाथमें ले ॥ ९३ ॥ गरुड़के समान उडान मारकर आकाशमें गये; हनूमान्‌जीको आकाश भ्रमण करता हुआ देखकर इन्द्रजितने उनपर तीक्ष्ण बाणोंका ॥ ९४ ॥ प्रहार किया; आठ बाण मस्तकपर मारे; फिर आठही बाण हृदयमें मारे; छैः बाण दोनों पाँवोंपर मारे और एक

बाणसे पूंछको ॥ ९५ ॥ भेद करकै फिर सिंहनाद किया। विद्ध होनेपर उन प्रतापशाली हनुमान्‌जीको अत्यन्त आनंद हुआ; उन्होंने अति हर्षसे अपना मुद्गर उठाय ॥ ९६ ॥ इन्द्रजितके सारथीको मार घोड़ेके साथ क्षणभरमें रथको चूर्ण कर डाला। फिर वह बलवान् इन्द्रजित दूसरे रथमें बैठा ॥ ९७ ॥ और शीघ्रही ब्रह्मास्त्र सिद्धकर उसके प्रहारसे वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको बांध राजा रावणके समीप लेचला इन्द्रजित महाबलवान्‌था ॥ ९८ ॥ अहो! लोक जिसके नामका नित्य जप करकै अज्ञानसे उत्पन्न हुए कर्म बंधनको क्षण मात्रमें दूर व हाय करोड सूर्यके समान तेजःपुंज व कल्याणकारक ईश्वरके पदको तत्काल प्राप्त होते हैं (ऐसा जिनके नामका माहात्म्य है) ॥ ९९ ॥ उन

भेदयित्वाततोघोरंसिंहनादमथाकरोत् ॥ ततोऽतिहर्षाद्धनुमान्स्तंभमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ ९६ ॥ जघानसारथिंसाश्वंरथंचाचूर्णयत्क्षणात् ॥ ततोऽन्यंरथमादायमेघनादोमहाबलः ॥ ९७ ॥ शीघ्रंब्रह्मास्त्रमादायबद्ध्वावानरपुंगवम् ॥ निनायनिकटंराज्ञोरावणस्यमहाबलः ॥९८॥ यस्यनामसततंजपंतियेऽज्ञानकर्मकृतबंधनंक्षणात् ॥ सद्यएवपरिमुच्यतत्पदंयांतिकोटिरविभासुरंशिवम् ॥९९॥ तस्यैवरामस्यपदांबुजं सदाहृत्पद्ममध्येसुनिधायमारुतिः ॥ सदैवनिर्मुक्तसमस्तबंधनःकिंतस्यपाशैरितरैश्चबंधनैः ॥ १०० ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ यांतंकपींद्रंधृतपाशबन्धनंविलोकयंतंनगरंविभीतवत् ॥ अताडयन्मुष्टितलैःसुकोपनाःपौराःसमंतादनुयांतईक्षितुम् ॥ १ ॥ ब्रह्मास्त्रमेनंक्षणमात्रसंगमंकृत्वागतंब्रह्मवरेणसत्वरम् ॥ ज्ञात्वाहनूमानपिफल्गुरज्जुभिर्धृतोययौकार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥

श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंको हनुमान्‌जीने अपने हृदयकमलमें सदा सर्वकाल पूर्णपनासे स्थापित कियाहै; अर्थात् उनके समस्त बंधन छूटगये हैं; उनका ब्रह्मपाश या दूसरे क्षुद्र बंधन क्या करनेवाले हैं! अर्थात् कुछ भी नहीं करसक्के ॥ १०० ॥ इ० श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहे० सुन्दर काण्डे; भाषाटीकायांतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ हनुमान्‌जीका रावणसे वार्तालाप और लंकाका भस्म होना। श्रीमहादेवजी कहते हैं,--कि हे पार्वती! अपने हाथमें जिन्होंने पाशका बंधन धारण कियाहै, ऐसे भयभीतके समान लंकापुरीको देखतेहुए हनुमान्‌जीको बड़े क्रोधयुक्त स्वभाववाले नगरनिवासी मूकोंसे मारतेहुए चारोंओरसे देखनेके लिये पीछे चले आवैं हैं ॥ १ ॥ पहलेही ब्रह्माजीने हनुमान्‌जीको वरदान दियाथा कि हमारा ब्रह्मास्त्र तुम्हें स्पर्श

नहीं करेगा, इसकारण ब्रह्मास्त्र उनको एक क्षणभर स्पर्श करके चलागया; इसबातको जानते हुएभी हनुमानूजी पतले डोरियोंसे बाँधकर लंकाको जलाने और रावणसे वार्ता करनेके हेतु गये ॥ २ ॥ उससमय रावण सभामें बैठाहुआ था, इन्द्रजित हनुमानूजीको रावणके आगे खड़ाकरके कहने लगा;— हे तात ! इस वानरनेही बड़े २ दैत्योंको माराहै मैं इसको ब्रह्मास्त्रसे बांधकर यहां लायाहूँ ॥ ३ ॥ इसकारण हे तात ! यह वानर लौकिक साधारण बंदरोंके समान नहीं है इससे मन्त्रियोंके साथ विचार करके जो करना होवे सो करो; बस इतनाही मैं सूचित किये देताहूं, सभाके बीचमेंही रावणके घोर प्रहस्तनामक एक राक्षस बैठाथा; उसके शरीरकी कांति काजलके पर्वतके समानथी; इन्द्रजीतके वचन सुनकर राक्षसोंके राजा रावणने

सभांतरस्थस्यचरावणस्यतंपुरोनिधायाहवलारिजित्तदा ॥ बद्धोमयाब्रह्मवरेणवानरःसमागतोऽनेनहतामहासुराः ॥ ३ ॥ यद्युक्तमत्रार्यविचार्यमंत्रिभिर्विधीयतामेषनलौकिकोहरिः ॥ ततोविलोक्याहसराक्षसेश्वरःप्रहस्तमग्रेस्थितमंजनाद्रिभम् ॥ ४ ॥ प्रहस्तपृच्छैनमसौकिमागतःकिमत्रकार्यंकुतएववानरः ॥ वनंकिमर्थंसकलंविनाशितंहताःकिमर्थंममराक्षसाबलात् ॥ ५ ॥ ततःप्रहस्तोहनुमंतमादरात्पप्रच्छकेनप्रहितोऽसिवा नर ॥ भयंचतेमास्तुविमोक्ष्यसेमयासत्यंवदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥ ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजोरिपुंनिरीक्ष्यलोकत्रयकंटकासुरम् ॥ वक्तुंप्रचक्रेरघुनाथसत्कथांक्रमेणरामंमनसास्मरन्मुहुः ॥ ७ ॥ शृणुस्फुटंदेवगणाद्यमित्रहेरामस्यदूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ॥ यस्याखिलेशस्यहृताधुनात्वयाभार्यास्वनाशायशुनेवसद्धविः ॥ ८ ॥

प्रहस्तको आज्ञा दी ॥ ४ ॥ कि "हे प्रहस्त ! इससे पूँछो कि यह वानर कौन है ? कहांसे आयाहै ? यहां आनेका इसका क्या काम है ? इसने सारे वनका और मंदिरका किस कारणसे नाश किया और बलसे राक्षसोंको किसवास्ते मारा ?" ॥ ५ ॥ इसके उपरांत प्रहस्तने हनूमानूजीसे आदरपूर्वक (सौम्यपन) से पूछा;—"तुझे किसने भेजा ? तुझे डरनहीं ? जो कुछ यथार्थ बातहो वह इस त्रैलोक्याधिपति (रावण) से निवेदनकर; तब मैं तुझे छोड़दूंगा" ॥ ६ ॥ उससमय हनूमानूजीको अत्यन्त हर्ष हुआ, उन्होंने अपने शत्रु; त्रिलोकीको कांटेके समान त्रास देनेवाले रावण राक्षसकी ओर देखकर अन्तःकरणमें वारम्वार श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करके, रघुनाथजीकी पवित्र कथा क्रमसे कहनी आरम्भकी ॥ ७ ॥ हे देवगण व नागादिके शत्रो ! मैं स्पष्ट २ सर्व वृत्तान्त कहताहूं सुनो । कुत्तेने होमका पवित्रद्रव्य हरणाकिया; तो उसको कौनसा बड़ा लाभ हुआ; वरन् वह

उसको अपने नाशहीके कारण हरण करताहै; ऐसेही तुमने जिन शक्तिमान् प्रभुकी भार्याको चुरा लाकर अपने नाशका साधन सिद्ध कियाहै, उन सर्व प्राणियोंके अंतरमें रहनेवाले उन्हीं रामचंद्रजीका मैं दूतहूं ॥ ८ ॥ उन रामजीने मतंगपर्वतपर जाय अग्निके सन्मुख सुग्रीवसे मित्रताकी; व एकही बाणसे वालीका वध करके उस सुग्रीवकोही वानरोंका आधिपत्य; (राज्य) दिया वह महाबलवान् वानरोंके राजा सुग्रीव राम लक्ष्मणके साथ तेरे ऊपर क्रोधकियेहुए प्रवर्षण पर्वत पर बैठेहैं । हे रावण ! उनके आश्रयमें बड़े २ पराक्रमी वानरोंके करोड़ों यूथहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ उन्होंने पृथ्वीकी कन्या (सीताजी) को ढूँढनेके लिये दशों दिशामें बड़े २ वानर जो कि, सामर्थ्यवान् थे पठाये; उनमेंहीका मैंभी पवनका पुत्र एकसाधारण वानरहूं । मैं

सराघवोऽभ्येत्यमतंगपर्वतंसुग्रीवमैत्रीमनलस्यसन्निधौ ॥ कृत्वैकबाणेननिहत्यवालिनंसुग्रीवमेवाधिपतिंचकारतम् ॥९॥ सवानराणामधिपोमहाबलीमहाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ॥ रामेणसार्धंसहलक्ष्मणेनभोःप्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥ संचोदितास्तेनमहाहरीश्वराधरासुतांमार्गयितुंदिशोदश ॥ तत्राहमेकःपवनात्मजःकपिःसीतांविचिन्वञ्छनकैःसमागतः ॥ ११ ॥ दृष्टामयापद्मपलाशलोचनासीताकपित्वाद्विपिनंविनाशितम् ॥ दृष्ट्वाततोऽहंरभसासमागतान्मांहंतुकामान्धृतचापसायकान् ॥ १२ ॥ मयाहतास्तेपरिरक्षितंवपुः प्रियोहिदेहोऽखिलदेहिनांप्रभो ॥ ब्रह्मास्त्रपाशेननिबध्यमांततःसमागमन्मेघनिनादनामकः ॥ १३ ॥ स्पृष्टैवमांब्रह्मवरप्रभावतस्त्यक्त्वागतंसर्वमवैमिरावण ॥ तथाप्यहंवद्धइवागतोहितंप्रवक्तुकामःकरुणारसार्द्रधीः ॥ १४ ॥

सीताजीको ढूँढ़ताहुआ धीरे २ यहाँ आयाहूं ॥ ११ ॥ जिनके नेत्र कमलदलके समानहैं उन जानकीजीको मैंने देखा । मैं जातिका वानरहूं, यह बात सब जगत्में प्रसिद्धहै कि, वानरोंको वृक्षोंका तोड़ना अच्छा लगता है; तैसेही अपने चंचल स्वभावके अनुसार—मैंने वनका नाशकिया,—फिर मैंने देखा कि, मेरे मारनेकी इच्छा करके कुछ एक राक्षस हाथमें धनुषबाण लिये चले आते हैं ॥ १२ ॥ तब मैंने उनका वधकिया और अपने शरीरकी रक्षाकी । हेराजा ! क्योंकि सब प्राणियोंको अपना शरीर दूसरोंसे प्यारा है । फिर मेघनादनामका एक राक्षस मुझको ब्रह्मास्त्रपाशसे बांधकर यहां ले आया ॥ १३ ॥ हे रावण ! मुझे ब्रह्माजीका वरहै; उसके प्रभावसे वह अस्त्र मेरे अंगको स्पर्श करतेही छोड़गया ! यह सब मैं जानताहूं तो मेरे बँधकर

यहां आनेका कारण तुझको कुछ हितोपदेश करना है । मैं यथार्थही तुझसे कहताहूं; तेरे ऊपर दयारूप रस उत्पन्न होनेसे मेरा अंतःकरण बहुतही गीलाहुआहै (तेरे ऊपर दया आनेसे मेरा कलेजा टूटताहै) ॥ १४ ॥ हे रावण ! थोड़ा अच्छे बुरेका विचारकर इस बातको कि, लोकोंको कैसी २ गति मिलती है (धर्माचरणसे स्वर्ग और अधर्म करनेसे नरक मिलताहै) मनमें ला राक्षसकी बुद्धिको मत अंगीकारकर संसारसे मुक्ति होनेका साधनमार्ग दूसरेको पीड़ाका न देनाहै; ऐसा देवताओंने कहा है उसमार्गका आश्रयले; तो तेरे आत्माका अत्यन्त कल्याण होगा ॥ १५ ॥ जो तुम कहो कि, ज्ञानमार्ग मुझे अधिक नहीं है तो इसका उपाय कहताहूं; हे दशानन ! तुम पौलस्त्यके पुत्र कुबेरके भाई; उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणहो; यदि जो तुम्हारीदेहके विषय आत्मबुद्धिहो तो तुम विचार करके देखलो कि, तुम राक्षस नहीं; बरन् उत्तम वंशमें उत्पन्नहुए ब्राह्मणहो । देखो देहसे आत्मा

विचार्यलोकस्यविवेकतोगतिंनराक्षसींबुद्धिमुपैहिरावण ॥ दैवींगतिंसंसृतिमोक्षहैतुकींसमाश्रयात्यंतहितायदेहिनः ॥ १५ ॥ त्वंब्राह्मणो ह्युत्तमवंशसंभवःपौलस्त्यपुत्रोऽसिकुबेरबांधवः ॥ देहात्मबुद्ध्यापिचपश्यराक्षसोनास्यात्मबुद्ध्याकिमुराक्षसोनहि ॥ १६ ॥ शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसंततिर्नतेनचत्वंतवनिर्विकारतः ॥ अज्ञानहेतोश्चतथैवसंततेरसत्त्वमस्याःस्वपतोहिदृश्यवत् ॥ १७ ॥ इदंतुसत्यंतवनास्तिविक्रियाविकारहेतुर्नचतेऽद्वयत्वतः ॥ यथानभःसर्वगतंनलिप्यतेतथाभवान्देहगतोऽपिसूक्ष्मकः॥ देहेंद्रियप्राणशरीरसंगतस्त्वात्मेतिबुद्ध्याखिलबंधभाग्भवेत् ॥ १८ ॥

अलग है ऐसी बुद्धिसे विचार करोगे तो तुम राक्षस नहीं; अर्थात् एक अखंड आत्मास्वरूपहो ॥ १६ ॥ स्थूल शरीर, बुद्धि (सूक्ष्मशरीर) नेत्रादि इंद्रियें; उनसे उत्पन्न होनेवाली बाहर और भीरतकी दुःखपरम्परा तुम्हें नहीं लगीहै; कारण कि, यह दुःख जिसका धर्म है वह चित्त तुम नहींहो तुम आत्माहो आत्माको दुःख क्यों नहीं व्यापता सो सुनो; जो यह कहा जाय कि, दुःखी हैं; तो आत्मा विकारी होगा और आत्मामें कोई विकार नहींहैं ऐसा श्रुति वँ अनुभव दोनोंके प्रमाणसे सिद्धहै । अब मैं दुःखी हूँ, ऐसी प्रतीति यथार्थमें आती है परन्तु वह दुःखपरम्परा केवल अज्ञान मूलकहै । प्राणीको स्वप्नमें दीखते हुए अनेक पदार्थ जैसे मिथ्याहै, तैसेही दुःखकी यह परंपरा असत्य व केवल कल्पितहै ॥ १७ ॥ यदि कोई मनुष्य ऐसी शंका करे कि, इस जगत्में कोई वस्तु सत्य नहीं और जो कुछ सत्यहै तो क्या पदार्थ सत्यहै; इसका उत्तर यहीहै कि, केवल एक तेरा

स्वरूप सत्य है और तू अविकारी, एक अद्वितीय सत्यज्ञानस्वरूप है; यहां शंकाहोतीहै कि—विकारका कारण अज्ञानभी सत्य नहीं है। यहां ऐसा सम झना कि, तुझ अद्वितीय शरीरमें विकारका कारण संभव नहीं होता। इसकारण जैसे सर्वगत आकाश लेपरहित है वैसेही देहमें रहतेहुएभी अलिप्त और अतिसूक्ष्म। अर्थात् वह देहगत सुखादिकी वस्तुतामें लिप्त नहीं होता; इसकारण जैसे आकाश नीलेवर्णवालाहै ऐसी प्रतीति करके मैं सुखीहूं, मैं दुःखीहूँ ऐसी प्रतीति करनी भ्रमात्मकहै; तब क्या मुक्त और संसारी जन्ममरणवालेकी व्यवस्था नहीं है? इसका उत्तर यहीहै कि, जो सूक्ष्मदेह, स्थूलदेह, और प्रमाणादि इन्द्रियोंमें रहाहुआ आत्मा तिसके अविवेकसे अर्थात् तिसके विषय रहीहुई आत्मबुद्धि करके समस्त बंधन मोक्षादिकका भोक्ता होताहै तैसेही आत्मा अनात्माका अविवेकही जन्म मरण होनेका मुख्य कारणहै; तिसमें कोई शंकाकरे कि, जीवको मुक्तिका मिलना अति दुर्लभहै; इसकारण वह कहताहूं; जब जीवको नीचे कहे अनुसार ॥ १८ ॥ मैं चैतन्य तथा अजन्मा ऐसा अक्षरस्वरूपहूं; अर्थात

चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरोह्यानंदभावोऽहमितिप्रमुच्यते ॥ देहोऽप्यनात्मापृथिवीविकारजोनप्राणआत्मानिलएषएवसः ॥ १९ ॥ मनोप्यहंकारविकारएवनोनचापिबुद्धिःप्रकृतेर्विकारजा ॥ आत्माचिदानंदमयोऽविकारवान्देहादिसंघाद्व्यतिरिक्तईश्वरः ॥ २० ॥ निरंजनो मुक्तउपाधितःसदाज्ञात्वैवमात्मानमितोविमुच्यते ॥ अतोऽहमात्यंतिकमोक्षसाधनंवक्ष्येशृणुष्वावहितोमहामते ॥ २१ ॥ विष्णोर्हिभक्तिः सुविशोधनंधियस्ततोभवेज्ज्ञानमतीवनिर्मलम् ॥ विशुद्धतत्त्वानुभवोभवेत्ततःसम्यग्विदित्वापरमंपदंव्रजेत् ॥ २२ ॥

अखंड आनंदरूपहूँ; इस प्रकार आत्मविवेक होताहै; तब नित्यमुक्त होने परभी मुक्त हो जाताहै तथा देहतो पृथ्वीके विकार परमाणुओंसे बना हुआ अनात्मा है; अर्थात् जड़ है। प्राणभी आत्मा नहीं है; क्योंकि वे बाहरी दृष्ट जड़रूपी वायुरूप है ॥ १९ ॥ मनभी आत्मा नहीं है, क्योंकि वह अहंकारका विकार है और बुद्धि अर्थात् अहंकारभी आत्मा नहीं कहलासक्ता क्योंकि वह प्रकृतिके विकाररूप महत्तत्वसे उत्पन्न होता है। आत्मा चैतन्यरूप आनंदमय विकाररहित, देहादिगणोंसे अलग, सब शक्ति ॥ २० ॥ व निरंजन कहिये उपाधिसे छूटा है। जहां इस प्रकार आत्माको जाना कि, पुरुष तत्काल संसारसे छूट जाता है। हे रावण! तुम महाबुद्धिमान् हो, इस कारण मैं तुमसे मोक्षका उत्तम साधन कहताहूं, तुम उन्हें ध्यान देकर सुनो ॥ २१ ॥ विष्णुजीकी भक्तिही अंतःकरण शुद्ध करनेका साधन है। अंतःकरण शुद्ध होनेपर अत्यन्त निर्मल (१९ २० २१

श्लोकमें कहा हुआ आत्मस्वरूपका) ज्ञान होता है; तिससे परमात्माका साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यथार्थ विषय जानने पर वह पुरुष परमपदको प्राप्त कर लेता है ॥ २२ ॥ इस कारण हे रावण ! अबसे तुम प्रकृतिसे परे लक्ष्मीके पति पुराणपुरुष और पापके हरनेवाले श्रीरामचंद्रजीका भजन करो; जो तुम यह जानकर कि, राम राजा दशरथका पुत्र है—उनका भजन क्यों करें, कहो तो वह राम प्रकृतिके परे हैं, और वास्तवमें दशरथजीके पुत्रादि हैं ऐसे मानना केवल कल्पित है। इससे यह मनुष्य है; ऐसी बुद्धिरूप मूर्खपनसे कीहुई शत्रुताकी भावना उनसे छोड़दे। जिसको शरण आये हुए अति प्यारे हैं ऐसा श्रीरामचंद्रजीका हृदयमें भजन करो, सीताजीको आगेकर पुत्र और बांधवोंके साथ श्रीराम चंद्रजीके पासजा उनको नमस्कार करो बस तुरन्तही भयसे छूट जायगा ॥ २३ ॥ जो मनुष्य हृदयमें विराजमान्, सुखरूप अद्वितीय और पर

अतोभजस्वाघहरिंरमापतिंरामंपुराणंप्रकृतेःपरंविभुम् ॥ विसृज्यमौर्ख्यंहृदिशत्रुभावनांभजस्वरामंशरणागतप्रियम् ॥ सीतांपुरस्कृत्यस पुत्रबांधवोरामंनमस्कृत्यविमुच्यसेभयात् ॥२३॥ रामंपरात्मानमभावयञ्जनोभक्त्याहृदिस्थंसुखरूपमद्वयम् ॥ कथंपरंतीरमवाप्नुयाज्जनो भवांबुधेर्दुःखतरंगमालिनः ॥ २४ ॥ नोचेत्त्वमज्ञानमयेनवह्निनाज्वलंतमात्मानमरक्षितारिवत् ॥ नयस्यधोऽधःस्वकृतैश्चपातकैर्विमो क्षशंकानचतेभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषितंतद्वायुसूनोर्दशकंधरोऽसुरः ॥ अमृष्यमाणोऽतिरुषाकपीश्वरंजगादर क्तांतविलोचनोज्वलन् ॥ २६ ॥

मात्मा श्रीरामचंद्रजीका हृदयमें भक्तिसे ध्यान नहीं करता वह मनुष्य दुःखरूप तरंग उठते हुए भवसमुद्रके पारको किस प्रकार पायसके ? अर्थात पार नहीं पावेगा ॥ २४ ॥ जो तुम मेरे कहनेके अनुसार नहीं करोगे तो अज्ञानमय अग्निसे जलते हुए आत्माकी रक्षा नहीं करता हुआ, तू शत्रुके समान अपनी आत्माको अपने किये हुए पापसे नीचे नरकमें लिये जाता है। तिस्से तुझे स्वप्नमेंभी मोक्षकी आशाका होना दुर्लभहै" ॥ २५ ॥ वास्तवमें हनुमान्जीके वचन अमृतके समान हैं, पर रावणको नहीं रुचे, वरन् कानोंमें पड़तेही वह अत्यन्त झुंझलाया—रुचैं कैसे ? राक्षसही तो है, अत्यन्त संतापके मारे उसके नेत्र लाल होगये, आंखोंमेंसे आग निकलने लगी हनूमान्जीसे अति शीघ्र रावणने डाटकर कहा ॥ २६ ॥

"अरे क्या है रे ! हे अधमवानर ! मेरे पास खड़ा हुआ तू निर्भयके समान बड़बड़ाता है । तू बन्दरोंमें अधम और दुष्ट बुद्धिवाला है;—जिसको तू कहता है, वह तेरा राम कौन है ? तथा इस वनमें रहनेवाला सुग्रीव तेरा कौन है, मनुष्योंमें अधम तेरे रामचंद्रको मैं सुग्रीवके सहित मार डालूँगा ॥ २७॥ अब पहले तो तुझे मारताहूं; फिर जानकीको फिर लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको फिर जिसको तू कहता है उस बलवान् वानरोंके राजा सुग्रीवको तिसके साथ उसके एक २ वानरको मैं अति शीघ्र मार डालूंगा रावणके वचन सुनतेही हनुमान्जीके क्रोधकीआग बहुतही भड़की; उस समय देखने वालोंको ऐसा दृष्टि आया कि क्या यह राक्षसोंको भस्म करदेगा ॥ २८ ॥ हनुमान्जी बोले " रे अधम ! जो तेरे समान करोड़ रावण आजायँ तो भी

कथंममाग्रेविलपस्यभीतवत्प्लवंगमानामधमोऽसिदुष्टधीः ॥ कएषरामःकतमोवनेचरोनिहन्मिसुग्रीवयुतंनराधमम् ॥ २७ ॥ त्वांचाद्यहत्वाजनकात्मजांततोनिहन्मिरामंसहलक्ष्मणंततः ॥ सुग्रीवमग्रेबलिनंकपीश्वरंसवानरंहन्म्यचिरेणवानर ॥ श्रुत्वादशग्रीववचःसमारुतिर्विवृद्धकोपेनदहन्निवासुरम् ॥ २८ ॥ नमेसमारावणकोटयोऽधमरामस्यदासोऽहमपारविक्रमः ॥ श्रुत्वातिकोपेनहनूमतोवचोदशाननोराक्षसमेकमब्रवीत् ॥ २९ ॥ पार्श्वेस्थितंमारयखंडशःकपिंपश्यंतुसर्वेऽसुरमित्रबांधवाः ॥ निवारयामासततोविभीषणोमहासुरंसायुधमुद्यतंवधे ॥ राजन्वधार्होनभवेत्कथंचनप्रतापयुक्तैःपरराजवानरः ॥ ३० ॥ हतेऽस्मिन्वानरेदूतेवार्ताकोवानिवेदयेत् ॥ रामायत्वंयमुद्दिश्यवधायसमुपस्थितः ॥ ३१ ॥ अतोवधसमंकिंचिद्न्यच्चिंतयवानरे ॥ सचिह्नोगच्छतुहरिर्यंदृष्ट्वायास्यातिद्रुतम् ॥ ३२ ॥

वह मेरी बराबरी नहीं कर सकते समझा ? मैं रामचंद्रजीका दास हूं । तुझको मेरी शक्तिका अंत नहीं मिलेगा । " हनुमान्जीके यह वचन सुनतेही रावणने अति संतापित होकर निकट बैठे हुए एक राक्षससे कहा ॥ २९ ॥ " इस वानरके टुकड़े टुकड़े करके मार डाल राक्षसोंके सब मित्र और बांधवोंको यह चमत्कार देखने दे । " वह महादैत्य शस्त्र उठाय हनुमान्जीका वध करनेके लिये उठा; तब विभीषणने उसको रोक कर कहा;— " महाराज ! प्रतापशाली पुरुषोंका कुछ होभी जाय तो भी दूसरे राजके बन्दरको कभी नहीं मारना चाहिये ॥ ३० ॥ जो यह दूत वानर मारा जायगा तो जिसका वध करनेको आप तैयार हुए हैं; उस रामको यह समाचार कौन देगा[१] ? ॥ ३१ ॥ इस कारण मैं कहताहूं कि, यह मारने योग्य

१ विभिषणका यह अभिप्रायभी मूल श्लोकसे मिलता है जिस रामके हाथसे मारेजायँगे उसको यह संवाद कौन देगा ? ।

नहीं है पर मारडालनेके समानही (अपमानद्योतक) कोई दूसरा दंड विचारिये। जो कुछ किया जाय, उसका चिह्न इसके अंगपर रहे जब यह वहाँ जायगा ॥ ३२ ॥ उस चिह्नको देखतेही सुग्रीवके साथ राम अति शीघ्र आवेगा;—फिर तुम्हारा उसका युद्ध होगा"। विभीषणके यह वचन सुनकर रावण बोला ॥ ३३ ॥ "विभीषण कहता तो ठीक है। अच्छा, वानरोंको अपनी पूंछपर बड़ा मान होता है यह बात प्रसिद्ध है, इस कारण इसकी पूँछमें भली भाँति वस्त्रादि बाँध ॥ ३४ ॥ अग्नि लगा दो, फिर इसको सारे नगरमें फिराओ; इसके उपरान्त इसे छोड़ दो। वानरोंके समस्त सेनापति इस (दुर्दशा) को देखें" ॥ ३५ ॥ राक्षसोंने जो आज्ञा कहकर हनुमान्‌जीकी पूंछको सन व दूसरे अनेक भाँतिके वस्त्रों

रामःसुग्रीवसहितस्ततोयुद्धंभवेत्तव ॥ विभीषणवचःश्रुत्वारावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥ वानराणांहिलांगूलेमहामानोभवेत्किल ॥ अतो वस्त्रादिभिःपुच्छंवेष्टयित्वाप्रयत्नतः ॥ ३४ ॥ वह्निनायोजयित्वैनंभ्रामयित्वापुरेऽभितः ॥ विसर्जयतपश्यंतुसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३५ ॥ तथेतिशणपट्टैश्चवस्त्रैरन्यैरनेकशः ॥ तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लांगूलंमारुतेर्दृढम् ॥ ३६ ॥ पुच्छाग्रेकिंचिदनलंदीपयित्वाऽथराक्षसाः ॥ रज्जुभिःसुदृढंबद्ध्वाधृत्वातंबलिनोऽसुराः ॥ ३७ ॥ समंताद्भ्रामयामासुश्चोरोऽयमितिवादिनः ॥ तूर्यघोषैर्घोषयंतस्ताडयंतोमुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ हनूमतापितत्सर्वंसोढंकिंचिच्चिकीर्षुणा ॥ गत्वातुपश्चिमद्वारसमीपंतत्रमारुतिः ॥ ३९ ॥ सूक्ष्मोबभूवबंधेभ्योनिःसृतःपुनरप्यसौ ॥ बभूव पर्वताकारस्ततउत्प्लुत्यगोपुरम् ॥ ४० ॥ तत्रैकंस्तंभमादायहत्वातान्रक्षिणःक्षणात् ॥ विचार्यकार्यशेषंसप्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ॥ ४१ ॥

को तेलमें भिजोकर लपेटा ॥ ३६ ॥ बलवान् राक्षसोंने थोड़ी आग पूंछके आगेके भागमें लगादी; और रस्सियोंसे भलीभाँति मजबूत बाँध उनको पकड़ लिया ॥ ३७ ॥ उसके उपरांत 'यह चोरहै' यह कहते २ नगरके चारों ओर हनुमान्‌जीको फिराया और डौंडीपीटी। और वारंवार हनुमान्‌जीको बहुतसा मारा ॥ ३८ ॥ हनुमान्‌जीने यह सब सहा; क्योंकि उनके मनमें कुछ करने की इच्छाथी; पश्चिमद्वारके निकट पहुँचतेही हनुमान्‌जी ॥ ३९ ॥ छोटेहोकर बंधनोंके बाहर निकल आये, फिर उन्होंने पर्वतके समान प्रचण्डरूप धारण करके द्वारके ऊपरको उड़ान लगाई ॥ ४० ॥ वहांसे एक थम्भ उखाड़कर हाथमें ले लिया और क्षणभरके बीचमें उस थंभसे उनसारे राक्षसोंको जोकि पहरेदारथे मारडाला; फिर शेषरहे कार्य

(लंका जलाने) को करनेका विचारकर एक महलसे दूसरे महलपर और घरसे घरपर ॥ ४१ ॥ छलाँगें मारने लगे; उन हनुमान्‌जीने मसालके समान अपनी प्रचण्ड पूंछसे बाजार, अटारी और महलोंके समीप सारी लंकामें आग लगादी ॥ ४२ ॥ राक्षसियें, स्त्रियें, महलोंपर चढ़रहीथीं उन्होंने वहाँसे देखा कि, चारोंओर आग लगी तब वह " हाय ! हाय ! बाबा ! बेटा ! प्राणनाथ पतिं ! " कहकर पुकार करनेलगीं ॥ ४३ ॥ महलोंके ऊपर चढ़ी रहनेपरभी अग्निने उनको ग्रास किया; महलपर चढ़ीहुई वे राक्षसियें अग्निमें गिरनेके समय देवताओंकी नारियोंके समान जानपड़ीं । रावणके विपरीतकालकी सूचना देनेवाला यह एक अपशकुन हुआ; हनुमान्‌जीने एक विभीषणका गृह छोडकर बाकी सारी नगरीको जलायकर भस्मकर दिया

उत्प्लुत्योत्प्लुत्यसंदीप्तपुच्छेनमहताकपिः ॥ ददाहलंकामखिलांसाट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२ ॥ हाताातपुत्रनाथेतिक्रंदमानाःसमंततः ॥ व्याप्ताःप्रासादशिखरेऽप्यारूढादैत्ययोषितः ॥४३॥ देवताइवदृश्यंतेपतंत्यःपावकेऽखिलाः ॥ विभीषणगृहंत्यक्त्वासर्वंभस्मीकृतंपुरम् ॥ ॥ ४४ ॥ ततउत्प्लुत्यजलधौहनुमान्मारुतात्मजः ॥ लांगूलंमज्जयित्वांतः स्वस्थचित्तोबभूवसः ॥४५॥ वायोःप्रियसखित्वाच्चसीतयाप्रार्थितोऽनलः ॥ नददाहहरेःपुच्छंबभूवात्यंतशीतलः ॥४६॥ यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीहतरंतिसद्यः ॥ तस्यैवकिंरघुवरस्यविशिष्टदूतःसंतप्यतेकथमसौप्रकृतानलेन ॥४७॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेसुंदरकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

॥ ४४ ॥ इसके उपरांत पवनके पुत्र हनुमान्‌जी उड़ान मारकर समुद्रपर आये; वहाँपर इन्होंने अपनी पूँछको जलमें बुझाया । मन माना कार्य होनेसे उनके चित्तमें स्वस्थताहुई ॥ ४५ ॥ एकतो अग्नि वायुका सखाहै; उसही पवनके पुत्र हनुमान्‌जी हैं; इसकारण करके और सीताजीकी प्रार्थनासे अग्निने हनुमान्‌जीकी पूंछको कुछभी नहीं जलाया । वरन् चंदनके समान अग्नि अति शीतल होरहेथे ॥ ४६ ॥ अहो ! जिसका नामस्मरण करतेही लोग समस्त पापसे रहित होजाते हैं; व तत्काल तापत्रयरूपी दुर्धर अग्निके पारहोजाते हैं; उन्हीरामके यह हनुमान्‌जी मुख्य दूतहैं फिर लौकिक अग्निसे इनका दाह किसप्रकारसे होसक्ताहै? सारांश यह है कि नहीं होसक्ता ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरा० उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकांडे चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

जानकीजीको प्रणामकर हनुमान्‌जीका बिदाहोना; और रामजीके पास जानकीजीकी कुशल कहना ॥ फिर हनुमान्‌जीने सीताजीके निकट आयकर सीताजीको नमस्कार करके कहा " हे देवि ! आप हमको आज्ञादें; हम श्रीरामचन्द्रजीके समीप जायँगे ॥ १ ॥ हम जातेहैं, छोटे भ्राताके सहित श्रीरामचंद्रजीतुमको भेंटनेके लिये अति शीघ्र आवेंगे " यह कहकर हनुमान्‌जीने जानकीजीकी तीन वार परिक्रमाकी ॥ २ ॥ नमस्कार किया, जब चलनेलगे तब फिर कहा;—" हे देवि ! अब मैं जाताहूं; अति शीघ्र तुम्हारे आनंदके दिन आवेंगे; राम लक्ष्मणजीके साथ ॥ ३ ॥ वानरोंकी अगणित सेनाको तुम अति शीघ्र देखोगी; " तिस समय दुःखसे दुबलेपनको प्राप्तहुई वे जानकीजी हनुमान्‌जीसे बोलीं ॥ ४ ॥ " वत्स ! तुमको देखकर हम सब

ततःसीतांनमस्कृत्यहनूमानब्रवीद्वचः ॥ आज्ञापयतुमांदेविभवतीरामसन्निधिम् ॥ १ ॥ गच्छामिरामस्त्वांद्रष्टुमागमिष्यतिसानुजः ॥ इत्युक्त्वात्रिःपरिक्रम्यजानकींमारुतात्मजः ॥२॥ प्रणम्यप्रस्थितोगंतुमिदंवचनमब्रवीत् ॥ देविगच्छामिभद्रंतेतूर्णंद्रक्ष्यसिराघवम् ॥ ३ ॥ लक्ष्मणंचससुग्रीवंवानरायुतकोटिभिः ॥ ततःप्राहहनूमंतंजानकीदुःखकार्शिता ॥ ४ ॥ त्वांदृष्ट्वाविस्मृतंदुःखमिदानींत्वंगमिष्यसि ॥ इतः परंकथंवर्तेरामवार्ताश्रुतिंविना ॥५॥ मारुतिरुवाच ॥ यद्येवंदेविमेस्कंधमारोहक्षणमात्रतः ॥ रामेणयोजयिष्यामिमन्यसेयदिजानकि ॥६॥ सीतोवाच ॥ रामःसागरमाशोष्यबद्ध्वावाशरपंजरैः ॥ आगत्यवानरैःसार्धंहत्वारावणमाहवे ॥७॥ मांनयेद्यदिरामस्यकीर्तिर्भवतिशाश्वती ॥ अतोगच्छकथंचापिप्राणान्संधारयाम्यहम् ॥८॥ इतिप्रस्थापितोवीरःसीतयाप्रणिपत्यताम् ॥ जगामपर्वतस्याग्रेगंतुंपारंमहोदधेः ॥ ९ ॥

बड़ा दुःख भूलगई थीं; अब तुमभी जाओगे; इसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीका समाचार न पायकर हम किसप्रकारसे जीवको धारण किये रहेंगी ॥ ५ ॥ हनुमान्‌जी बोले;—हे देवि जानकी ! ऐसा है तो चलो मेरेकंधेपर बैठो; जो तुम्हारे मनमें है तो मैं एक क्षणमें तुम्हारी और श्रीरामचंद्रजीकी भेंट करायेदेता हूं " ॥ ६ ॥ सीताजी बोलीं;—" श्रीरामचंद्रजी समुद्रको सुखायकर या उस पर बाणोंके समूहसे पुल बांधकर जब वानरोंके सहित यहां आवेंगे व युद्धमें रावणका वध करके ॥ ७ ॥ जब मुझे लेजायँगे तब श्रीरामचंद्रजीकी कीर्ति सदा रहैगी । इसकारण कहतीहूं कि तुम जाओ; मैं किसीप्रकारसे प्राण धारण किये रहूंगी" ॥ ८ ॥ इसप्रकार सीताजीने संदेशा दिया; तब वह प्रतापी वानर उनको वंदन करके महासमुद्रके पल्लीपार जानेकेलिये

पर्वतके शिखरपरगये ॥ ९ ॥ वहांपर जाकर महाबलवान् हनुमान्‌जी पांवसे पर्वतको दवाय पवनके समान वेगसे आकाश मार्गको उडे, उन्होंने जिस पर्ववको दवाया वह पर्वत पृथ्वीमें बैठगया ॥ १० ॥ यह पर्वत जो तीस योजन ऊँचाथा वह समग्र पृथ्वीके समान होगया; हनुमान्‌जीने आकाशमें जायकर बडाभारी शब्द किया ॥ ११ ॥ यह शब्द सुनकर समस्त वानरोंने जाना कि हनुमान्‌जी आये और सबको बडा आनंद हुआ. वे सबभी बडे शब्दसे गर्जे ॥ १२ ॥ कोई एक वानर बोला "अहो ! यह गर्जना तो हनुमान्‌जीकीहि है, इस शब्दके करनेसे तो मुझे निश्चय होताहै कि वह काज सिद्धकर आये !" दूसरा बोला,—"वानरो ! वहींहैं, वहींहैं, देखो वह वानरश्रेष्ठ हमारे निकट आय पहुँचेहैं" ॥ १३ ॥ इसप्रकार वह

तत्रगत्वामहासत्त्वःपादाभ्यांपीडयन्गिरिम् ॥ जगामवायुवेगेनपर्वतश्चमहीतलम् ॥ १० ॥ ततोमहीसमानत्वंत्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ॥ मारुतिर्गगनांतस्थोमहाशब्दंचकारसः ॥ ११ ॥ तंश्रुत्वावानराःसर्वेज्ञात्वामारुतिमागतम् ॥ हर्षेणमहताविष्टाःशब्दंचक्रुर्महास्वनम् ॥ ॥१२॥शब्देनैवविजानीमःकृतकार्यःसमागतः॥ हनूमानेवपश्यध्वंवानरावानरर्षभम् ॥१३॥एवंब्रुवत्सुवीरेषुवानरेषुसमारुतिः ॥ अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्निवानरानिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ दृष्टासीतामयालंकाधर्षिताचसकानना ॥ संभाषितोदशग्रीवस्ततोऽहंपुनरागतः ॥ १५ ॥ इदा नीमेवगच्छामोरामसुग्रीवसन्निधिम् ॥ इत्युक्त्वावानराःसर्वेहर्षेणालिंग्यमारुतिम् ॥ १६ ॥ केचिच्चुचुंबुर्लांगूलंननृतुःकेचिदुत्सुकाः ॥ हनूमतासमेतास्तेजग्मुःप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १७ ॥ गच्छंतोददृशुर्वीरावनंसुग्रीवरक्षितम् ॥ मधुसंज्ञंतदाप्राहुरंगदंवानरर्षभाः ॥ १८ ॥

वानर परस्पर बातें कररहेथे कि, इतनेहीमें वपनके पुत्र हनुमान्‌जी आकाशमेंसे पर्वतके शिखरपर उतरकर समस्त वानरोंसे इसप्रकार कहनेलगे ॥ १४ ॥ "हे वीर वानरगणो ! हमने जानकीजीको देखा । अशोकवाटिकाके सब वृक्षोंको उखेडकर लंकाको जलाय और रावणके साथ वादविवादकर मैं प्रभुकी कृपासे यहां लौट आयाहूं ॥ १५ ॥ इसकारण हम समस्त वानर अभी श्रीराम और सुग्रीवके पास चलें । " ऐसे हनुमान्‌जीके वचन सुनकर सब वानर हर्षसे उनको हृदयसे लगानेलगे ॥ १६ ॥ कितने एक प्रेमसे उनका चुम्बन करने लगे, कितनेएक उत्साहसे पूंछको ऊँचा करके नाचने लगे; इसप्रकार सर्व आनंदयुक्त होकर हनुमान्‌जीके साथ प्रवर्षणपर्वतकी तरफ चलनेलगे ॥ १७ ॥ मार्गमें जाते हुए वीरोंने मधु नामक वन देखा

कि जिस वनकी रक्षा सदा सुग्रीवजी करते हैं, उस वनको देखकर प्रतापी वानर अंगदजीसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे राजपुत्र ! तुम शूर व महाबुद्धिमान्हो। इस बातकोभी तुम जानतेहो कि, हमको कितना त्रास हुआ, काया कष्टहुआ वे कितने दिनतक खानेको नहीं मिला। हमको अब बहुतही भूंख लगी है; आप आज्ञादे तौ हम यहांके फल खाँय व अमृतके समान मधुर मधु पियें ॥ १९ ॥ खाने पीनेको मिलनेसे हमारे मनमें हर्ष होगा। और सब कोई आज लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रजीके दर्शन करनेको चलेंगे" ॥ २० ॥ अंगदजी कहते हैं 'वानरोंमें श्रेष्ठ हनूमानजी कार्यकी सिद्धि कर आये हैं तिससे तुम प्रसन्न होकर फल और कंद मूलका भक्षण करो, तथा रसके मधुको सुखसे पियो' ॥ २१ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सर्व वा

क्षुधिताःस्मोवयंवीरदेह्यनुज्ञांमहामते ॥ भक्षयामःफलान्यद्यापिवामोऽमृतवन्मधु ॥१९॥ संतुष्टाराघवंद्रष्टुंगच्छामोऽद्यैवसानुजम् ॥ २०॥ अंगदउवाच ॥ हनूमान्कृतकार्योऽयंपिवतैतत्प्रसादतः ॥ जक्षध्वंफलमूलानित्वरितंहरिसत्तमाः॥२१॥ततःप्रविश्यहरयःपातुमारेभिरेमधु॥ रक्षिणस्ताननादृत्यदधिवक्रेणनोदितान् ॥२२॥पिवतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः॥ततस्तान्मुष्टिभिःपादैश्चूर्णयित्वापपुर्मधु॥२३॥ ततोदधिमुखःक्रुद्धःसुग्रीवस्यसमातुलः ॥ जगामरक्षिभिःसार्धंयत्रराजाकपीश्वरः ॥ २४ ॥ गत्वातमब्रवीद्देवचिरकालाभिरक्षितम् ॥ नष्टंमधुवनंतेऽद्यकुमारेणहनूमता ॥ २५ ॥ श्रुत्वादधिमुखेनोक्तंसुग्रीवोहृष्टमानसः ॥ दृष्टाऽऽगतोनसंदेहःसीतांपवननंदनः ॥ २६ ॥

नर सुग्रीवके मामा दधिवक्र (मुख्य रक्षक) के भेजे हुए रखवालोंका अनादर करके एक साथ मधुका पान करने लगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार मधु पीते हुए वानरोंको वनके रखवाले वानर मारने लगे तब उनको अंगदजीके भेजे हुए वानरोंने मूकोंसे और लातोंसे चूर्णकर डाला और फिर मधुको पीने लगे ॥ २३ ॥ सुग्रीवका मामा दधिवक्र बन्दरोंकी इस ढिठाईसे क्रोधायमान् होकर रक्षकोंको साथ ले जहांपर वानरोंके राजा सुग्रीवजी थे वहांपर गया ॥ २४ ॥ व उनसे कहने लगाः—हेराजा बहुत दिनोंसे जतन करके रखाये हुए तुम्हारे मधुवनको आज अंगद और हनुमान्ने सत्यानाश कर डाला ॥ २५ ॥ दधिमुखका ऐसा कहना सुनकर मनमें हर्षको प्राप्त हुए सुग्रीव कहने लगे कि, इसमें कोई संदेह

नहीं कि--पवनके पुत्र हनुमानूजी सीताजीकी सुधि लेकर निश्चय आये ॥ २६॥ जो ऐसा न होता तौ मेरे मधुवनकी ओर देखनेकी किसकी सामर्थ्य है? इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि पवनकुमार हनुमानूने कार्यको सिद्ध किया है ॥ २७ ॥ सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हो श्रीरामचंद्रजीने कहा, " हे राजन् ! तुमने दधिवक्रसे जो कुछ कहा; उसमें सीताकी भी कुछ वार्ताथी सो तुम हमसे कहो " ॥ २८ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि,-हे देव ! पृथ्वीकी पुत्री सीताजीको हनुमानूने देखा; क्योंकि हनुमानादि सर्व वानरोंने मधुवनमें प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ उन्होंने वहांके फलोंको खाया और वनके रखावालोंको मारा है । हे देव ! विनाकार्य किये मेरे मधुवनके देखनेका साहस ॥ ३० ॥ उनको नहीं होता; बस

नोचेन्मधुवनंद्रष्टुंसमर्थःकोभवेन्मम ॥ तत्रापिवायुपुत्रेणकृतंकार्यंनसंशयः ॥ २७ ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंहृष्टोरामस्तमब्रवीत् ॥ किमुच्यते त्वयाराजन्वचःसीताकथान्वितम् ॥ २८ ॥ सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्यंदेवदृष्टाऽवनीसुता ॥ हनूमत्प्रमुखाःसर्वेप्रविष्टामधुकाननम् ॥ २९ ॥ भक्षयंतिस्मसकलंताडयंतिस्मरक्षिणः ॥ अकृत्वादेवकार्यंतेद्रष्टुंमधुवनंमम ॥ ३० ॥ नसमर्थास्ततोदेवीदृष्टासीतेतिनिश्चितम् ॥ रक्षिणो वोभयंमास्तुगत्वाब्रूतममाज्ञया ॥ ३१ ॥ वानरानंगदमुखानानयध्वंममांतिकम् ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंमत्वातेवायुवेगतः ॥ ३२ ॥ हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छतिसुग्रीवःसरामोलक्ष्मणान्वितः ॥ ३३ ॥ युष्मानतीवहृष्टास्तेत्वरयंतिमहाबलाः ॥ तथेत्यंबरमासाद्यययुस्तेवानरोत्तमाः ॥ ३४ ॥ हनूमंतंपुरस्कृत्ययुवराजंतथांगदम् ॥ रामसुग्रीवयोरग्रेनिपेतुर्भुविसत्वरम् ॥ ३५ ॥

इससे निश्चय होता है कि, उन्होंने जानकीजीको देखा है, रक्षकगण ! उनसे जायकर कहो कि, "तुमको भय नहीं है ! तुम मेरी आज्ञाके अनुसार उन वानरोंसे जायकर कहो ॥ ३१ ॥ व अंगदादि वानरोंको हमारे पास ले आओ " । सुग्रीवके वचन सुनकर वे रक्षक पवनके समान वेगसे गये ॥ ३२ ॥ और हनुमानादि वानरोंसे कहने लगे कि, तुमको महाराजने गमन (राजाके समीप) करनेकी आज्ञा दी है; जाओ, राम लक्ष्मणके साथ सुग्रीव तुम्हारे देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३३ ॥ हे महाबलवान् वानरो ! वे अत्यन्त आनंदको प्राप्त होकर (तुम लोगोंके शीघ्रजानेमें) शीघ्रता करा रहे हैं । वानरोंमें श्रेष्ठ वे सब वानर लोग " जो आज्ञा " कहकर आकाशमार्गको चले ॥ ३४ ॥ वहां पहुँचकर

१ टीकाकार राम वार्तांके मतसे "रक्षिगण उन लोगोंके निकट तुमको भय नहीं हैं" ऐसा अनुवाद हो सक्ता है, परन्तु ऐसा अर्थ होनेसे इस श्लोकका द्रुत शब्द ठीक नहीं लगता.

हनुमान् और अंगदजीको आगे करके अति शीघ्र सुग्रीव और रामचंद्रजीके आगे वे सब वानर पृथ्वीपर दंडवत् प्रणाम करकै गिरे ॥ ३५ ॥ हनुमानजीने पृथ्वीमें उतरनेसे पहलेही (आकाशमेंसे) श्रीरामचंद्रजीसे "मैं सीताजीको देख आया वे कुशल हैं" यह कहा; फिर रामचंद्रजीको व पीछे सुग्रीवको साष्टांग प्रणाम किया। और सर्व वृत्तान्तको विस्तारसे कहना आरंभ करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे राजाधिराज ! जानकीजीने आपकी कुशल पूछनेको कहा है । वह शोकसे व्याप्त होकर अशोकवाटिकामें शीशमके वृक्षकी जड़के नीचे बैठी हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! राक्षसियाँ उनको घेरे हुए हैं; अन्न छोड़ देनेसे उनका शरीर दुर्बल हो गया है; वह बारम्बार 'हाराम ! हाराम !' कहकर शोक करती हैं, अंगपरके वस्त्र

हनूमान्राघवंप्राहदृष्टासीतानिरामया ॥ साष्टांगंप्रणिपत्याग्रेरामंपश्चाद्धरीश्वरम् ॥ ३६ ॥ कुशलंप्राहराजेंद्रजानकीत्वांशुचाऽन्विता ॥ अशोकवनिकामध्येशिंशपामूलमाश्रिता ॥३७॥ राक्षसीभिःपरिवृतानिराहाराकृशाप्रभो ॥ हारामरामरामेतिशोचंतीमलिनांबरा॥३८॥ एकवेणीमयादृष्टाशनैराश्वासिताशुभा ॥ वृक्षशाखांतरेस्थित्वासूक्ष्मरूपेणतेकथाम् ॥ ३९ ॥ जन्मारभ्यतवात्यर्थंदंडकागमनं तथा ॥ दशाननेनहरणंजानक्यारहितेत्वयि ॥ ४० ॥ सुग्रीवेणयथामैत्रीकृत्वावालिनिबर्हणम् ॥मार्गणार्थंचवैदेह्याःसुग्रीवेणविसर्जिताः ॥ ॥ ४१ ॥ महाबलामहासत्त्वाहरयोजितकाशिनः ॥ गताःसर्वत्रसर्वेवैतत्रैकोऽहमिहागतः ॥ ४२ ॥ अहंसुग्रीवसचिवोदासोऽहंराघवस्य हि ॥ दृष्टायज्जानकीभाग्यात्प्रयासःफलितोऽद्यमे ॥ ४३ ॥

मलीन होगयेहैं॥ ३८॥वेणी एक (जैसी तुम्हारे निकट थी वैसीही) है ऐसा मैं देख आया; फिर मैं वृक्षकी शाखापर एक जगह सूक्ष्मरूप धारण करकै बैठा और आपकी कथा वर्णनकी और उन सुन्दरीको समझाया बुझाया; वह इस प्रकारसे कि ॥ ३९ ॥ मैं तुम्हारी कथा जन्मसे लेकर विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगेः—आप दंडकारण्यमें आये; तुम्हारे पास न रहते हुए रावणने जानकीजीको चुरालिया ॥ ४० ॥ फिर आपने सुग्रीवके साथ मित्रता करके वालिका नाश किया; सुग्रीवजीने सीताजीकी सुधि लेनेको महाशक्तिमान्, महाचतुर व इन्द्रियोंको जीतनेवाले वानर पठाये वे सब अलग २ दिशाओंमें गये; उनमेंका एक मैं यहां (लंकामें) आयाहूं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मैं सुग्रीवका मंत्री व श्रीरामचंद्रजीका दासहूं । बड़ा

भाग्य है, जो आज मैंने जानकीजीको देखा, आज मेरा यत्न सफल हुआ ॥ ४३ ॥ ऐसा मेरा किया हुआ वर्णन सुनकर सीताजीने नेत्र उघाड़े (प्रफुल्लित किये) और कहा कानोंको अमृतको समान लगनेवाले यह मंजुल शब्द किसने मुझे सुनाये ॥ ४४ ॥ यदि यह सत्य होवे तो वह दर्शन दे; इस समय हमारा शरीर बंदरके समान छोटाथा। मैंने उसी रूपसे ॥ ४५ ॥ जानकीका वंदन किया और हाथ जोड़कर थोड़ी दूरपर खड़ा रहा। हे ईश्वर ! फिर जानकीजीने मुझसे 'तू कौन है ?' इत्यादि बहुतसे प्रश्न किये ॥ ४६ ॥ हे शत्रुओंका नाश करने वाले ! मैंने क्रमसे देवी जानकीजीको सब वृत्तान्त जनाया, फिर आपकी दी हुई अँगूठी उनको दी ॥ ४७ ॥ तब उनको मेरा पूर्ण

इत्युदीरितमाकर्ण्यसीताविस्फारितेक्षणा ॥ केनवाकर्णपीयूषंश्रावितंमेशुभाक्षरम् ॥ ४४ ॥ यदिसत्यंतदायातुमद्दर्शनपथंतुसः ॥ ततोऽहंवानराकारःसूक्ष्मरूपेणजानकीम् ॥ ४५ ॥ प्रणम्यप्रांजलिर्भूत्वादूरादेवस्थितःप्रभो ॥ पृष्टोऽहंसीतयाकस्त्वमित्यादिबहुविस्तरम् ॥ ४६ ॥ मयासर्वंक्रमेणैवविज्ञापितमरिंदम ॥ पश्चान्मयार्पितंदेव्यैभवद्दत्तांगुलीयकम् ॥ ४७ ॥ तेनमामतिविश्वस्तावचनंचेदमब्रवीत् ॥ यथाहदृष्टास्मिहनुमन्पीड्यमानादिवानिशम् ॥ ४८ ॥ राक्षसीनांतर्जनैस्तत्सर्वंकथयराघवे ॥ मयोक्तंदेविरामोऽपित्वच्चिंतापरिनिष्ठितः ॥ ४९ ॥ परिशोचत्यहोरात्रंत्वद्वार्तानाधिगम्यसः ॥ इदानीमेवगत्वाहंस्थितिंरामायतेब्रुवे ॥ ५० ॥ रामःश्रवणमात्रेणसुग्रीवेणसलक्ष्मणः ॥ वानरानीकपैःसार्धमागमिष्यतितेऽतिकम् ॥ ५१ ॥ रावणंसकुलंहत्वानेष्यतित्वांस्वकंपुरम् ॥ अभिज्ञांदेहिमेदेवियथामांविश्वसेद्विभुः ॥ ५२ ॥ इत्युक्तासाशिरोरत्नचूडापाशेस्थितंप्रियम् ॥ दत्वाकाकेनयद्वृत्तंचित्रकूटगिरौपुरा ॥ ५३ ॥

विश्वास हुआ, उन्होंने मुझसे कहा; "हनुमन् ! तुमने अब देखा कि रात दिन मेरे साथ कैसे २ छल किये जातेहैं; राक्षसियें मुझको कैसा डरपाती हैं। यह सर्व समाचार रामचंद्रजीको जनाना"। मैंने कहा—"हे देवि ! रामचंद्रजीभी बराबर आपकीही चिन्ता करते रहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वे आपका समाचार न पायकर दिन रात आपके लिये शोक करते रहते हैं; अब मैं जाकर आपका वृत्तान्त श्रीरामजीसे कहूंगा ॥ ५० ॥ श्रीरामचंद्रजी आपका समाचार सुनतेही सुग्रीव, लक्ष्मण और वानर सेनापतियोंके साथ क्षणभरमें आपके निकट आवेंगे ॥ ५१ ॥ वंशसहित रावणका संहार करके आपको अपनी नगरीमें ले जायँगे; हे देवि ! विभु श्रीरामचंद्रजी जिससे मेरा विश्वास करें ऐसा कोई अभिज्ञान चिह्न (निशानी) आप मुझे दें" ॥ ५२ ॥ मेरे ऐसा याहरे पर उन्होंने अपने केशोंमें पहिरे हुए प्रिय चूडामणिको मुझे दिया; पहले चित्रकूट पर्वत

पर कागके साथ जो कुछ हुआथा ॥ ५३ ॥ वहभी कहा । उस वेला उनके नेत्र आँसुओंसे भरगयेथे । उन्होंन कहा;—"श्रीरामचंद्रजीसे
मेरी कुशल कहकर लक्ष्मणजीसे कहना कि मैंने पहले जो कुछ कुवचन तुमको कहे (अरण्यकाण्ड, श्लोक, ३२ । ३३ । ३४ देखो) ॥ ५४ ॥
उनको क्षमाकरो हे कुलनंदन ! उन वचनोंको मैंने मूर्खपनसे कहाथा अब तुम हमारे ऊपर दयालु होकर ऐसा उपाय करो कि जिससे मेरा
उद्धार करने आवें ॥ ५५ ॥ सीताजीने रोते २ यह वचन कहे । उनको बहुतही दुःख हुआथा ! हे राम ! मैंने आपकी सर्व स्थिति
[शोकावस्था] कहकर उनको धीरज दिया ॥ ५६ ॥ हे राम ! उसके उपरान्त उन्होंने मुझे जानेकी आज्ञा दी और मैं इधर तुम्हारे निकट आया,
और (हाँ भली याद आई) आते २ रावणकी अशोकवाटिका ॥ ५७ ॥ उखाड़ डाली, एक क्षणभरमें वहांपर बहुतसे राक्षसोंको मार

तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षीकुशलंब्रूहिराघवम् ॥ लक्ष्मणंब्रूहिमेकिंचिद्दुरुक्तंभाषितंपुरा ॥ ५४ ॥ तत्क्षमस्वाज्ञभावेनभाषितंकुलनंदन ॥ तारये
न्मांयथारामस्तथाकुरुकृपान्वितः ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वारुदतीसीतादुःखेनमहतावृता ॥ मयाप्याश्वासितारामवदतासर्वमेवते ॥ ५६ ॥
ततःप्रस्थापितोरामत्वत्समीपमिहागतः ॥ सदागमनवेलायामशोकवनिकांप्रियाम् ॥ ५७ ॥ उत्पाट्यराक्षसांस्तत्रबहून्हत्वाक्षणादहम् ॥
रावणस्यसुतंहत्वारावणेनाभिभाष्यच ॥ ५८ ॥ लंकामशेषतोदग्ध्वापुनरप्यगमंक्षणात् ॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यंरामोऽत्यंतप्रहृष्टधीः ॥
॥ ५९ ॥ हनूमंस्तेकृतंकार्यंदेवैरपिसुदुष्करम् ॥ उपकारंनपश्यामितवप्रत्युपकारिणः ॥ ६० ॥ इदानींतेप्रयच्छामिसर्वस्वंममसारुते ॥
इत्यालिंग्यसमाकृष्यगाढंवानरपुंगवम् ॥ ६१ ॥ सार्द्रनेत्रोरघुश्रेष्ठःपरांप्रीतिमवापसः ॥ हनूमंतमुवाचेदंराघवोभक्तवत्सलः ॥ ६२ ॥

डाला; रावणके पुत्रका वध किया; रावणसे वार्ता की ॥ ५८ ॥ सारी लंकाको जलाय फिर अतिशीघ्र यहांपर आया । " हनुमान्‌जीके वचन
सुनकर श्रीरामचंद्रजीके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ ॥ ५९ ॥ उन्होंने कहा;—"हनुमन् ! जो कार्य देवताओंको करनाभी बहुत कठिनथा वह
तुमने पूराकिया; तुमने जो हमारा उपकार कियाहै तिसका प्रत्युपकार हम नहीं देख पातेहैं ॥ ६० ॥ हे हनुमन् ! इस समय मेरे निकट जो
कुछभी है वह सर्वस्व मैं तुम्हें देताहूं ऐसा कहकर रामचंद्रजीने उस वानरश्रेष्ठको पकड़कर गाढ आलिंगन किया (हृदयसे लगाया) ॥ ६१ ॥
तिससे हनुमान्‌जी परम प्रसन्नहुए; उनके नेत्रोंमें आनंदके आँसू आगये फिर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीने हनुमान्‌जीसे कहा ॥ ६२ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! मैं परमेश्वर हूं मेरा आलिंगन (मिलना) जगत्‌में दुर्लभहै; तुम हमारे भक्त और प्यारे हो; इसकारण तुम इसको (मिलनेको) प्राप्त हुए॥ ६३॥
महादेवजी बोले;—हे पार्वति ! इस प्रकार तुलसीपत्रादिसे जिसके चरणयुगलका पूजन करके बहुतेरे मनुष्य विष्णुजीकी अतुल पदवीको प्राप्त होतेहैं;

परिरंभोहिमेलोकेदुर्लभःपरमात्मनः ॥ अतस्त्वंममभक्तोऽसिप्रियोऽसिहरिपुंगव ॥ ६३ ॥ यत्पादपद्मयुगलंतुलसीदलाद्यैःसंपूज्यविष्णु
पदवीमतुलांप्रयांति ॥ तेनैवकिंपुनरसौपरिरब्धमूर्तीरामेणवायुतनयःकृतपुण्यपुंजः ॥ ६४ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहे
श्वरसंवादेसुंदरकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ सुंदरकांडेसर्गाःपंचैवाध्यात्मिकशब्दिते ॥ प्रोक्तास्त्रीणिशतानिश्लोकास्त्रिभुवनपापहराः ॥
अ० ५ श्लो० ३०० ॥

उन्ही श्रीरामचंद्रजीने जिनकी मूर्तिका आलिंगन किया; वह हनुमान्‌जी कि जिन्होंने पुण्यका पुंज कियाहै कृतार्थ होजायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्याहै
॥ ६४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुंदरकांडे कात्यायनगोत्रोद्भव पंडित बलदेवप्रसाद मिश्रकृत भाषानुवादे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

दोहा—लालवरण दुष्टन दलन, दमन शत्रुकुलयूथ ॥ भयटारन वारणकलुष, जय हरि कृपावरूथ ॥ १ ॥
सवैया—शत्रुन आनिके त्रास दई अब वेगि दयाकरि मोहिं उबारो ॥ तो बिन खोजूँ सहायक कौन परयो यह संकट आनिके भारो ॥
अरजी है यही मरजी तेरी गरजी तव द्वारपै बैन उचारो ॥ लूम लपेट निशंक सवंश विध्वंस करो सब शत्रुसंहारो ॥ २ ॥
दोहा—अनुपम सुन्दरकांड यह, जग हित भाषा कीन ॥ पढ़ैं सुनें समुझे सुजन, नित सुख लहैं नवीन ॥ ३ ॥
जाकी कृपाकटाक्ष ते जगपावत कल्यान ॥ सोइ प्रफुल्ललोचन प्रभु, द्रवहु मोहिं जनजान ॥ ४ ॥
वसत राम गंगा निकट, शहर मुरादाबाद ॥ ज्येष्ठ सहोदर गुणविमल, मम ज्वालापरसाद ॥ ५ ॥
तिन सहायतासों कियो, भाषा मति अनुसार ॥ जो अशुद्धि पावहु कतहुँ, सज्जन लेहु सुधार ॥ ६ ॥
लाली अधरनकी लखत; विद्रुमबिम्ब लजाय ॥ नेत्र कमलदल श्याम रँग, सब देवनके राय ॥ ७ ॥
नेक भृकुटि सूधी करत, रचैं चराचर झार ॥ द्विज बलदेव प्रसादपैं, "द्रवहु सो कृपाअगार" ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेते सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते युद्धकाण्डप्रारंभः ॥
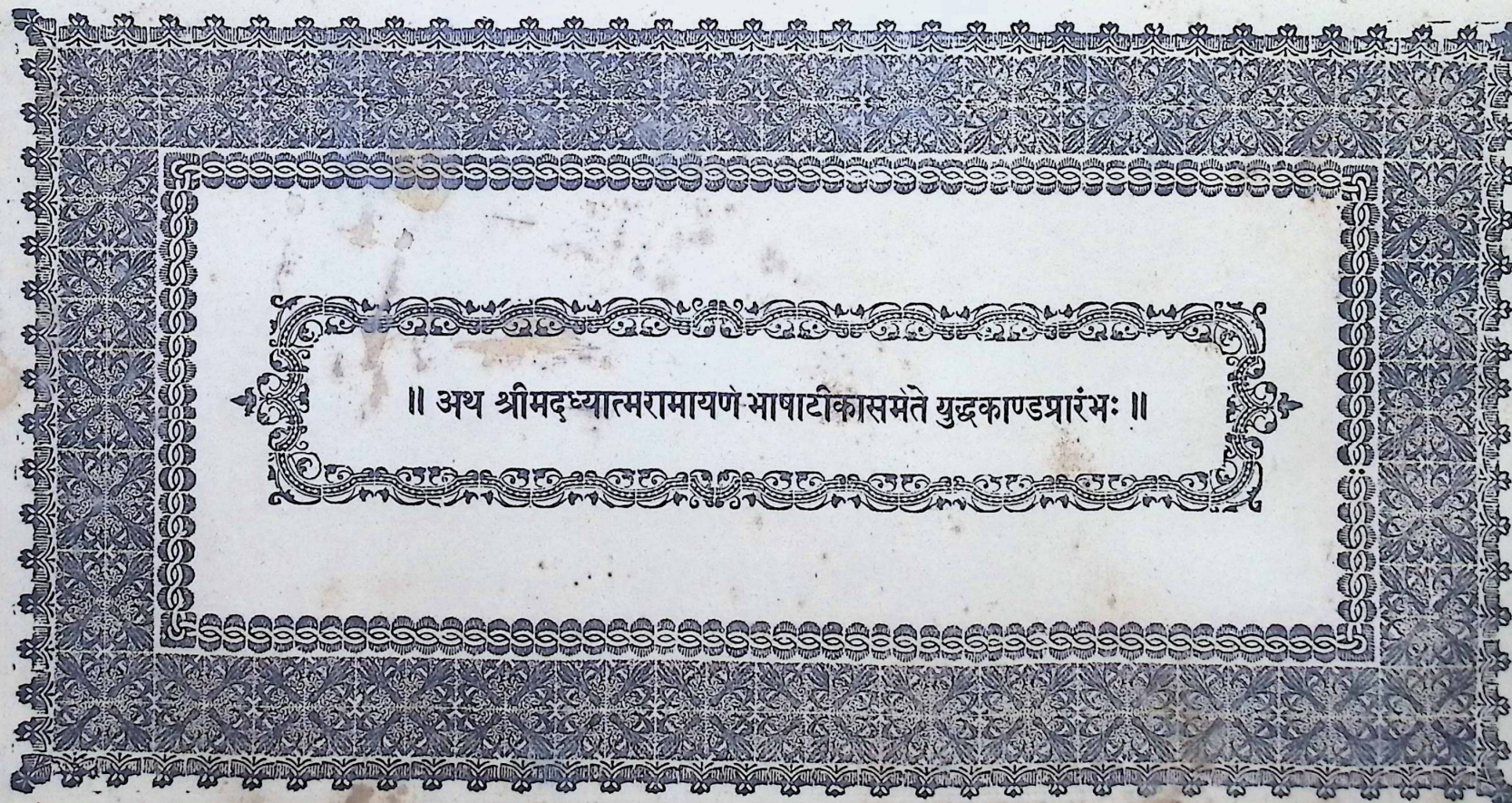
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥ ॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

श्लोकः—यो जगत्पंकिलं हन्ति तमीडे प्रभुमीश्वरम् ॥ तस्याधीनो हि लोको यः सागसो दण्डयत्यसून् ॥ १ ॥

आपिच—स्वयं नग्नो रक्ताम्बरधरमरं शास्त्यतिविधिं स्वयं भिक्षुर्भूभृत्प्रवरतनयाऽस्मै स्पृहयति ॥

स्वयं गोयानो गोपुरपरिजनोऽस्य द्विपरथस्तदीशस्यैश्वर्यं विभवनिरपेक्षं विजयते ॥ २ ॥

टीका—यःपंकिलं कलुषितं जगत् हन्ति जगद्द्रुहामसुरादीनां संहारेण संसारं परिष्करोतीत्यर्थः । तमीश्वरमीडे स्तौमि । तस्य ईशस्य अधीनः अनुगृहीतश्च यः प्रभुः राजा सागसः सापराधान् असून् प्राणान् दण्डयति तमपि प्रभुमनुग्रहनिग्रहयोः कारणं राजानश्च ईडे इति पूर्वेणान्वयः, शिष्टपालनाय दुष्टदमनं प्रभोः कर्तव्यं कर्मेति भावः ॥ १ ॥ स्वयमिति—यः स्वयं नग्नोऽपिअम्बररहितोपि रक्ताम्बरधरं विचित्राम्बरधारिणं अतिविधिमतिक्रान्तवेदविधिं पापचारिणमरं शीघ्रं शास्ति हिनस्ति, स्वयं भिक्षुरपि याचकवृत्तिस्थितोऽपि अस्मै भिक्षवे भूभृत्प्रवरतनया पर्वतराजनंदिनी स्पृहयति यं कामयते इत्यर्थः । एवं गो

श्रीमहादेवउवाच ॥ यथावद्भाषितंवाक्यंश्रुत्वारामोहनूमतः॥उवाचानंतरंवाक्यंहर्षेणमहतावृतः॥१॥कार्यंकृतंहनुमतादेवैरपिसुदुष्करम् ॥

मनसापियदन्येनस्मर्तुंशक्यंनभूतले ॥ २ ॥ शतयोजनविस्तीर्णंलंघयेत्कःपयोनिधिम् ॥ लंकांचराक्षसैर्गुप्तांकोवाधर्षयितुंक्षमः ॥ ३ ॥

यानोऽपि वृषभवहनोऽपि अस्य देवस्य द्विपरथ ऐरावतारूढः देवराजोऽपि गोपुरपरिजनः पुरद्वारि स्थितः । इन्द्रः यं दिदृक्षया बहिर्द्वारि तिष्ठतीति भावः । अत एव विभवनिरपेक्षं हयहस्त्याद्यपेक्षारहितं तत्प्रसिद्धमीशस्य ऐश्वर्यं प्रभुत्वं विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । "पुरद्वारन्तु गोपुरम्" इत्यमरः । ॥ २ ॥

दोहा—जो अघहारत जगतके,भक्तजनन प्रतिपाल ॥ जावश त्रयलोकी अहै, सो शिव होहु दयाल ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीका समुद्रके किनारेपर पहुँचना ॥ महादेवजी बोले;—हे पार्वति ! हनुमान्‌जीका कहा हुआ यथावत् (जैसा हुआथा ऐसा) वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी अत्यन्त प्रसन्न होकरबोले ॥ १ ॥ " स्वर्गके देवताओंसेभी न होसकनेवाला और भूमिपर रहनेवाले मनुष्य जिसको मनमेंभी न लाय सकें ऐसे कार्यको हनुमान्‌ने किया है ॥ २ ॥ कारण कि शतयोजन (४००) कोशके समुद्रको कौन लाँघ सकता है ? इसी प्रकार राक्षसोंकी रखाई हुई

लंकापुरीका जलानारूप तिरस्कार कौन करसकताहै ? ॥ ३ ॥ हनुमानूने सेवकका धर्म भली भाँतिसे पूरा किया । न तो कोई आजतक सुग्रीवका ऐसा सेवक हुआ न आगेको होगा॥४॥हनुमान् जानकीके दर्शन कर आया; इस कार्यका महत्त्व मैं इतनाही समझताहूं कि इसने आज मेरा सारे रघुवंशका, लक्ष्मणका और इन वानरराज (सुग्रीव) के प्राणका संकट टाला ॥ ५ ॥ जानकीके सुधि लानेका कार्य इन्होंने भली भाँतिसे किया । परन्तु समुद्रकी याद आनेसे मेरा मन दुःखित होता है ॥ ६ ॥ मगर मच्छोंसे भरे हुए शतयोजनके लंबे समुद्रको लाँघ पल्लीपार जानेका और शत्रुके वध करनेका कार्य मेरे द्वारा किस प्रकार होगा ? और जानकी हमको कैसे दिखाई देंगी" ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीने कहा;--

भृत्यकार्यंहनुमताकृतंसर्वमशेषतः ॥ सुग्रीवस्येदृशोलोकेनभूतोनभविष्यति ॥ ४ ॥ अहंचरघुवंशश्चलक्ष्मणश्चकपीश्वरः ॥ जानक्यादर्शनेनाद्यरक्षिताःस्मोहनूमता ॥ ५ ॥ सर्वथासुकृतंकार्यंजानक्याःपरिमार्गणम् ॥ समुद्रंमनसास्मृत्वासीदतीवमनोमम ॥ ६ ॥ कथंनक्रझषाकीर्णंसमुद्रंशतयोजनम् ॥ लंघयित्वारिपुंहन्यांकथंद्रक्ष्यामिजानकीम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वातुरामवचनंसुग्रीवः प्राहराघवम् ॥ समुद्रंलंघयिष्यामोमहानक्रझषाकुलम् ॥ ८ ॥ लंकांचविधमिष्यामोहनिष्यामोऽद्यरावणम् ॥ चिंतांत्यजरघुश्रेष्ठचिंताकार्यविनाशिनी ॥ ९ ॥ एतान्पश्यमहासत्त्वाञ्छूरान्वानरपुंगवान् ॥ त्वत्प्रियार्थंसमुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपिपावकम् ॥ १० ॥ समुद्रतरणेबुद्धिंकुरुष्वप्रथमंततः ॥ दृष्ट्वालंकांदशग्रीवोहतइत्येवमन्महे ॥ ११ ॥ नहिपश्याम्यहंकंचित्रिषुलोकेषुराघव ॥ गृहीतधनुषोयस्तेतिष्ठेदभिमुखोरणे ॥ १२ ॥ सर्वथानोजयोरामभविष्यतिनसंशयः ॥ निमित्तानिचपश्यामितथाभूतानिसर्वशः ॥ १३ ॥

हे रघुवीर ! समुद्रमें बड़े २ मगर मच्छ कितनेही भरे रहो हम (वानर) उसके पार उतर जायँगे ॥ ८ ॥ लंकाका नाश करके रावणको मारेंगे । आप चिंता न कीजिये कारण कि;—'चिंता कार्यविनाशिनी' । चिंता कार्यका नाशकरनेवाली है ॥ ९ ॥ इन महाशक्तिमान्, शूरवीर वानरोंकी ओर देखिये यह आपका प्रियकार्य करनेको तैयार हैं । अधिक न कहकर इतनाही कहे देताहूं कि जो आपके अर्थ अग्निमें प्रवेश करना पड़े तोभी यह वानर तैयार हैं ॥ १० ॥ पहले समुद्रपार होनेकी कोई युक्ति कीजिये, फिर लंकाके देखतेही मैं रावणको मरा हुआ समझताहूं ॥ ११ ॥ हे रामचंद्र ! त्रिलोकीमें आपके सामने रण (संग्राम) में धनुष लेकर खड़ा रहे ऐसा मैं किसीकोभी नहीं देखताहूं ॥ १२ ॥ हे राम !

सर्व प्रकार अपनी जय होगी; इसमें जरा भी संशय नहीं है, कारण कि तैसे मंगलसूचक शकुन हमारे देखनेमें आते हैं " ॥ १३ ॥ ऊपर कहे हुए भक्तवीर सुग्रीवके भक्ति और शूरवीरतासे भरे हुए वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी उन वचनोंको आदर देकर अपने सन्मुख खड़े हुए हनुमान्जीसे बोले ॥ १४ ॥ " हे हनुमन् ! हम कोई युक्ति करके (अर्थात् समुद्रको सुखाय या उसपर पुल बाँध करके) इस महासमुद्रके पार जायँगे; परन्तु लंकाके बाहरी दिखावेका तुम मुझसे वर्णन करो; मैं तो ऐसा सुनताहूँ कि देवता और दैत्योंकोभी लंकामें प्रवेश करना दुर्लभहै ॥१५॥ हे वानरेश्वर ! लंकाका स्वरूप जानकर उसके नाशकरनेका उपाय करूंगा । " श्रीरामचंजीके वचन सुनकर हनुमानूजी नम्रतापूर्वक ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर

सुग्रीववचनंश्रुत्वाभक्तिवीर्यसमन्वितम् ॥ अंगीकृत्याब्रवीद्रामोहनूमंतंपुरःस्थितम् ॥ १४ ॥ येनकेनप्रकारेणलंघयामोमहार्णवम् ॥ लंकास्वरूपंमेब्रूहिदुःसाध्यंदेवदानवैः ॥ १५ ॥ ज्ञात्वातस्यप्रतीकारंकरिष्यामिकपीश्वर ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंहनूमान्विनयान्वितः ॥ ॥ १६ ॥ उवाचप्रांजलिर्देवयथदृष्टंब्रवीमिते ॥ लंकादिव्यापुरीदेवत्रिकूटशिखरेस्थिता ॥ १७ ॥ स्वर्णप्राकारसहितास्वर्णाट्टालकसंयुता ॥ परिखाभिःपरिवृतापूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ १८ ॥ नानोपवनशोभाढ्यादिव्यवापीभिरावृता ॥ गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तंभमशुभैः ॥ १९ ॥ पश्चिमद्वारमासाद्यगजवाहाःसहस्रशः ॥ उत्तरेद्वारितिष्ठंतिसाश्ववाहाःसपत्तयः ॥ २० ॥ तिष्ठंत्यर्बुदसंख्याकाःप्राच्यामपितथैवच ॥ रक्षिणोराक्षसावीराद्वारंदक्षिणमाश्रिताः ॥ २१ ॥ मध्यकक्षेप्यसंख्यातागजाश्वरथपत्तयः ॥ रक्षयंतिसदालंकांनानास्त्रकुशलाःप्रभो ॥ २२ ॥

उनसे बोले;—हे देव ! हमने जैसा कुछ देखाहै; वह सब आपसे कहाजाता है हे प्रभो ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसीहुई लंकानगरी वास्तवमें अलौकिक है ॥ १७ ॥ उसका कोट सुवर्णका है; सुवर्णहीकी बनीहुई शहरमें हवेलियेंहैं; शहरके आसपास निर्मल जलसे भरीहुई खाई हैं ॥ १८ ॥ अनेकप्रकारके उपवन तथा सुन्दर बावलियाँ हैं; मणिजड़े स्तंभोंसे युक्त विचित्र शोभावाले बड़े २ घरहैं ॥ १९ ॥ उस शहरके चार द्वारहैं; तिनमें पश्चिमओरके द्वारपर हाथियोंमें चढ़े हुए हजारों योद्धा रक्षा करनेके लिये खड़े हैं । उत्तरके द्वारपर हजारों घुड़सवार और पैदल रहतेहैं ॥ २० ॥ पूर्वकी ओरके द्वारपर दशकरोड़ राक्षसवीर रहतेहैं और इतनेही राक्षस लंकाके दक्षिण द्वारपर रहते हैं ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! नगरीके मध्यभागमें जो

बुर्ज है उसपर असंख्य हाथी घोड़े व पैदल तैयार होकर सदाही लंकाकी रक्षा करतेहैं । वे सब वीर अनेकप्रकारकी अस्त्रविद्यामें कुशलहैं ॥ २२ ॥ जहाँ पहरे खड़ेहुए हैं; ऐसे लंकामें जानेके मार्ग बहुत छोटे, गुप्त व विचित्र प्रकारसे बाँधेहुए हैं । उन मार्गोंपर जहाँ तहाँ तोपैं चढ़ीहुई हैं । हे देवाधिदेव ! ऐसा बन्दोबस्त होनेपरभी मैंने क्या किया सो सुनिये ॥ २३ ॥ लंकापुरीमें रावणकी सेनाके चतुर्थांशको मैंने मारडालाहै; लंकाको जलाय कर उसके सुवर्णमंदिरको तोड़डाला ॥ २४ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! तोपोंको तोड़दिया व जगह २ कोटिको गिराकर छोटे मार्गोंको वड़ा किया । परंतु लंकानगरीको जलाया आपकेही दर्शनोंके प्रतापसेहै ॥ २५ ॥ हे देवाधिदेव ! आप तैयारी कीजिये और महाशूरवीर वानरोंको चारों ओरसे

संक्रमैर्विविधैर्लंकाशतघ्नीभिश्चसंयुता ॥ एवंस्थितेऽपिदेवेशशृणुमेतत्रचेष्टितम् ॥ २३ ॥ दशाननवलौघस्यचतुर्थांशोमयाहतः ॥ दग्ध्वा लंकांपुरींस्वर्णप्रासादोधर्षितोमया ॥ २४ ॥ शतघ्न्यःसंक्रमाश्चैवनाशितामेरघूत्तम ॥ देवत्वद्दर्शनादेवलंकाभस्मीकृताभवेत् ॥ २५ ॥ प्रस्थानंकुरुदेवेशगच्छामोलवणांबुधेः ॥ तीरंसहमहावीरैर्वानरौघैःसमंततः ॥ २६ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ सुग्रीवसैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥२७॥ इदानीमेवविजयोमुहूर्तःपरिवर्तते ॥ अस्मिन्मुहूर्तेगत्वाहंलंकांराक्षससंकुलाम् ॥२८॥ सप्राकारांसुदुर्धर्षांनाशयामिसरावणाम् ॥ आनेष्यामिचसीतांमेदक्षिणाक्षिस्फुरत्यधः ॥ २९ ॥ प्रयातुवाहिनीसर्वावानराणांतरस्विनाम् ॥ रक्षंतुयूथपाःसेनामग्रेपृष्ठेचपार्श्वयोः ॥ ३० ॥ हनूमंतमथारुह्यगच्छाम्यग्रेंऽगदंततः ॥ आरुह्यलक्ष्मणोयातुसुग्रीवत्वंमयासह ॥ ३१ ॥

साथले समुद्रके किनारेपर चलिये" ॥२६॥ हनुमानजीके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले;—"हेसुग्रीव ! तुम सारी सेनाको [समुद्रके किनारे] चलनेकी आज्ञा दो ॥ २७ ॥ कारण कि इस समय विजय नामक मुहूर्त है [इसमें प्रस्थान करनेसे निश्चय जय मिलेगी] इससे मैं इसी मुहूर्तमें लंकाको जानेके लिये तैयारहूं । लंकामें बहुतसे राक्षस वसतेहैं ॥ २८ ॥ अनेक किलेभी वहांपर हैं; इस कारण उसका नाश होना वास्तवमें कठिन है; परन्तु मैं रावणके सहित उस लंका नगरीको धूलमें मिलाय सीताजीको लेआऊँगा । यह देखो मेरी दाँई आँखके नीचेका भाग फड़कताहै ॥ २९ ॥ इस कारण इस चौघड़ियामेंही वानरोंकी सेना चले; जो सेनापति होवे सेनाके आगे पीछे होकर दोनों बगलोंकी रक्षा करे ॥ ३० ॥ मैं हनुमानके

कंधेपर बैठकर आगे चलताहूं; लक्ष्मण अंगदके ऊपर बैठकर चलै, सुग्रीव ! तुम हमारे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैंद, द्विविद, नल, नील, सुषेण, जांबवान्, वैसेही दूसरे ॥ ३२ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले यह सर्व सेनापति चारों ओरसे एक साथ चलें । श्रीरामचंद्रजी वानरोंको ऐसी आज्ञा देकर लक्ष्मणजीको साथ लेकर चले ॥ ३३ ॥ उनके साथही सुग्रीवने प्रस्थान किया; प्रभु श्रीरामचंद्रजी अतिहर्षके साथ सेनाके बीचमें चल रहेथे। सर्व वानरोंका शरीर प्रचंड हाथीके समानथा; वे सब इच्छानुसार रूप धारण करनेवालेथे ॥ ३४ ॥ सर्व वानर युद्धमें जानेके साहससे शीघ्र चलते, गर्जना करते फल और शहद खाते हुए ॥ ३५ ॥ "हम अभी रावणका नाश करेंगे ।"

गजोगवाक्षोगवयोमैंदोद्विविदएवच ॥ नलोनीलःसुषेणश्चजांववांश्चतथापरे ॥ ३२ ॥ सर्वेगच्छंतुसर्वत्रसेनापाःशत्रुघातिनः ॥ इत्याज्ञाप्यहरीत्रामःप्रतस्थेसहलक्ष्मणः ॥ ३३ ॥ सुग्रीवसहितोहर्षात्सेनामध्यगतोविभुः ॥ वारणेंद्रनिभाःसर्वेवानराःकामरूपिणः ॥ ३४ ॥ क्ष्वेलंतःपरिगर्जंतोजग्मुस्तेदक्षिणांदिशम् ॥ भक्षयंतोययुःसर्वेफलानिचमधूनिच ॥ ३५ ॥ ब्रुवंतोराघवस्याग्रेहनिष्यामोऽद्यरावणम् ॥ एवंतेवानरश्रेष्ठागच्छंत्यतुलविक्रमाः ॥ ३६ ॥ हरिभ्यामुह्यमानौतौशुशुभातेरघूत्तमौ ॥ नक्षत्रैःसेवितौयद्वच्चंद्रसूर्याविवांबरे ॥ ३७ ॥ आवृत्यपृथिवींकृत्स्नांजगाममहतीचमूः ॥ प्रस्फोटयंतःपुच्छाग्रानुद्वहंतश्चपादपान् ॥ ३८ ॥ शैलानारोहयंतश्चजग्मुर्मारुतवेगतः ॥ असंख्याताश्चसर्वत्रवानराःपरिपूरिताः ॥३९॥ हृष्टास्तेजग्मुरत्यर्थंरामेणपरिपालिताः ॥ गताचमूर्दिवारात्रंक्वचिन्नासज्जतक्षणम् ॥४०॥

इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख कहते हुए वे अतुलपराक्रमी श्रेष्ठ वानर आगे २ चले ॥ ३६ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनोंजने वानरोंके कंधोंपर बैठेथे, इनके पास बहुतसे वानरोंका मंडल था; उस दिखावेको देखकर मनमें ऐसा आवे कि मानों आकशमें चंद्रमा व सूर्य के घेरे नक्षत्र [तारों] का समूह दिखाई देताहै ॥ ३७ ॥ वह बड़ी भारी सेना वहाँकी समस्त पृथ्वीको ढककर चली । असंख्य वानर पृथ्वीके ऊपर अपनी पूँछके अग्रभागको उछालते लड़ाईके लिये हाथमें वृक्ष लिये ॥ ३८ ॥ पर्वतोंपर चढ़ते हुए पवनके समान वेगसे चलने लगे अगणित वानर इधर उधर चलरहेथे; इस कारण वे वानर बड़े आनंदसे आगे चल रहेथे । वह सेना रात दिन बराबर चलतीथी, एक क्षण भरको

भी कहीं नहीं रुकी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मलय व सह्य नामक दोनों पर्वतोंपर श्रीरामचंद्रजीको विचित्र वन दिखाई दिये इन दोनों पर्वतोंको पीछे छोड़कर ॥ ४१ ॥ क्रमानुसार वानरोंकी सेना और श्रीरामचंद्रजी समुद्रके उत्तर किनारे पर आये; महासमुद्रमें भयंकर गर्जना होरहीथी श्रीरामचंद्रजी हनुमान्‌जीके कंधेपरसे उतरे और सुग्रीवके साथ ॥ ४२ ॥ जलके निकट आये और सुग्रीवसे कहा;—हम सबजने समुद्र पर आय पहुँचे इस महासागरके भीतर अनेक प्रकारके मगर रहतेहैं ॥ ४३ ॥ परंतु हे वानरगणो ! हम लोग विना उपाय किये इस समुद्रके पार नहीं होसकते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर सुग्रीवने समुद्रके अति निकट सेनाका पड़ाव डाला; बड़े २ वानर सेनाकी रक्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ जिसमें बड़ी २ तरंगें उछल रहीहैं, जिसमें भयंकर नाकोंका भयहै, जिसकी गहराईका ठिकाना नहीं, आकाशके समान जिसकी

काननानिविचित्राणिपश्यन्मलयसह्ययोः ॥ तेसह्यंसमतिक्रम्यमलयंचतथागिरिम् ॥४१॥ आययुश्चानुपूर्व्येणसमुद्रंभीमनिःस्वनम् ॥ अवतीर्यहनूमंतंरामःसुग्रीवसंयुतः ॥ ४२ ॥ सलिलाभ्याशमासाद्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ आगताःस्मोवयंसर्वेसमुद्रंमकरालयम् ॥४३॥ इतोगंतुमशक्यंनोनिरुपायेनवानराः ॥ अत्रसेनानिवेशोऽस्तुमंत्रयामोऽस्यतारणे ॥ ४४ ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंसुग्रीवःसागरांतिके ॥ सेनांन्यवेशयत्क्षिप्रंरक्षितांकपिकुंजरैः ॥ ४५ ॥ तेपश्यंतोविषेदुस्तंसागरंभीमदर्शनम् ॥ महोन्नततरंगाढ्यंभीमनक्रभयंकरम् ॥ ४६ ॥ अगाधंगगनाकारंसागरंवीक्ष्यदुःखिताः ॥ तरिष्यामःकथंघोरंसागरंवरुणालयम् ॥ ४७ ॥ हंतव्योस्माभिरद्यैवरावणोराक्षसाधमः ॥ इतिचिंताकुलाःसर्वेरामपार्श्वेव्यवस्थिताः ॥४८॥ रामःसीतामनुस्मृत्यदुःखेनमहतावृतः॥ विलप्यजानकींसीतांबहुधाकार्यमानुषः॥४९॥

लंबाई चौड़ाईका अंत नहीं; ऐसे समुद्रका भयंकर रूप देखतेही सब जने खिन्न हुए। समुद्रके दर्शन करनेसे सबको दुःख हुआ; सबने ऐसा विचार किया कि वरुणजीके वासस्थान इस भयंकर समुद्रको हमलोग कैसे उतरेंगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ राक्षसोंमें अधम रावण आजही मारनेके योग्यहै; ऐसी चिन्तासे व्याकुल होकर सारे वानर श्रीरामचंद्रजीके पास जाकर बैठ गये ॥ ४८ ॥ सीताजीकी याद आनेसे श्रीरामचंद्रजीको बहुत दुःख होने लगा; उन्होंने जनककुमारी सीताके लिये बहुतसा विलाप किया; यद्यपि रामचंद्रजी यथार्थ परमेश्वरथे; परन्तु उन्होंने नरवेष धारणकरनेके कारण विलाप कियाथा क्योंकि इन्होंने किसीकार्यके लिये मनुष्यरूप धारण कियाथा ॥ ४९ ॥

परन्तु वास्तविक देखनेसे उनको कुछभी नहीं है; कारण कि वह तो एकहैं; श्रुतिमें कहाहै कि (द्वितियाद्धि भयं भवति) दूसरेसे भय होताहै परन्तु रामजी स्वयं एकहैं और ज्ञानस्वरूप श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप जो मनुष्य " तत्त्वमसि " इस श्रुतिमें ' तत् ' पद ईश्वरवाचक है और ' असि ' पद विद्यमानपना बतावै हैं; अर्थात् जीवसे कहे है कि परमात्माका स्वरूप है आदि श्रुतियोंसे अंतःकरणमें विराजमान श्रीरामचंद्रजीका स्वरूप जानता है ॥ ॥ ५० ॥ उसको दुःखादि स्पर्श नहीं करसकते अत एव जो आनंदमूर्ति और अव्यय (नाशरहित) होवै उसको दुःख, हर्ष, भय, क्रोध; लोभ, मोह, मदादि कैसे छू सकते हैं ? ॥ ५१ ॥ ऊपर कहेहुए दुखादि, अज्ञानसे उत्पन्न होतेहैं । ज्ञान होतेही अज्ञानका नाश होजाता है, अर्थात यह चिह्न नाशको प्राप्त होजाते हैं । तब ज्ञानरूपी परमात्मामें इनका रहना किस प्रकारसे संभव है; देहाभिमानी प्राणीको दुःख होना संभव

अद्वितीयश्चिदात्मैकःपरमात्मासनातनः ॥ यस्तुजानातिरामस्यस्वरूपंतत्त्वतोजनः ॥ ९० ॥ तंनस्पृशतिदुःखादिकिमुतानंदमव्ययम् ॥ दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ॥ ९१ ॥ अज्ञानलिंगान्येतानिकुतःसंतिचिदात्मनि ॥ देहाभिमानिनोदुःखंनादेहस्यचिदात्मनः ॥ ॥ ९२ ॥ संप्रसादेद्वयाभावात्सुखमात्रंहिदृश्यते ॥ बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धेदुःखंतत्रनदृश्यते ॥ अतोदुःखादिकंसर्वंबुद्धेरेवनसंशयः ॥९३॥ रामःपरात्मापुरुषःपुराणोनित्योदितोनित्यसुखोनिरीहः ॥ तथापिमायागुणसंगतोऽसौसुखीवदुःखीवविभाव्यतेऽबुधैः ॥ ९४ ॥ इतिश्री मदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

है; परन्तु देहरहित परमात्माको किसी प्रकारका दुःख नहीं है ॥ ५२ ॥ जब सुषुप्ति अवस्था होती है और अद्वैतका भान होतेही केवल सुखका अनुभव होताहै; कारण कि उस अवस्थामें बुद्धिका अभाव होताहै तिससे शुद्ध आत्माको दुःखादि नहीं होता इससे सिद्ध होताहै कि बुद्धिसे ही सारे दुःख पैदा होवेहैं; क्योंकि संकल्प विकल्प करना बुद्धिका धर्म है । इससे इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ५३ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजी परमात्मा हैं पुरुष हैं; पुराण (अनादिकालके) हैं; निरंतर नाशरहित हैं; नित्य सुखमय और चेष्टारहित हैं तथापि मायाके गुणमें लीन हुआ अज्ञानी जीवों करके मायाके गुणोंमें लीन होकर श्रीरामचंद्रजी सुखी दुःखी माने गये हैं; परन्तु श्रीरामचंद्रजी स्वयं निर्लेप और निराबाध हैं॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे भाषा० प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

बिभीषणका श्रीरामजीकी शरणमें आना । श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि, हे पार्वति ! इधर उस लंकामें जिसको देवताभी न कर सकें ऐसा हनुमान्जीका किया हुआ कार्य देख रावणने शरमाकर कुछ एक शिर नीचेको किया ॥ १ ॥ उसने अपने सारे मंत्रियोंको बुलाकर इस प्रकार कहा ! "मंत्रियों ! हनुमान्का किया हुआ कार्य तुम लोगोंने देखा? ॥ २ ॥ अरे ! जिस लंकानगरीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे देखना कठिन है ऐसी नगरीमें उसने प्रवेश किया कोई न जाने ऐसे स्थानमें रहतीहुई सीतासे वह मिला इतनाही नहीं, वरन्, उसने हमारे वीर राक्षसोंको मारा, मन्दोदरीके अक्ष नामक पुत्रका वध किया ॥ ३ ॥ सारी लंकामें अग्नि लगादी; समुद्रको लाँघकर तुम सबका तिरस्कारकर वह आनंदसे बेखटके लौट गया ॥ ४ ॥ तुम लोग नीति

लंकायांरावणोदृष्ट्वाकृतंकर्महनूमता ॥ दुष्करंदैवतैर्वापिह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥ आहूयमंत्रिणःसर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ हनूमता कृतंकर्मभवद्भिर्दृष्टमेवतत् ॥ २ ॥ प्रविश्यलंकांदुर्धर्षांदृष्ट्वासीतां दुरासदाम् ॥ हत्वाचराक्षसान्वीरानक्षंमंदोदरीसुतम् ॥ ३ ॥ दग्ध्वालंका मशेषेणलंघयित्वाचसागरम् ॥ युष्मान्सर्वानतिक्रम्यस्वस्थोऽगात्पुनरेवसः ॥४॥ किंकर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयंमंत्रविशारदाः ॥ मंत्रयध्वं प्रयत्नेनयत्कृतंमेहितंभवेत् ॥ ५ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाराक्षसास्तमथाब्रुवन् ॥ देवशंकाकुतोरामात्तवलोकाजितोरणे ॥ ६ ॥ इंद्रस्तुव द्धानिक्षिप्तःपुत्रेणतवपत्तने ॥ जित्वाकुबेरमानीयपुष्पकंभुज्यतेत्वया ॥७॥ यमोजितःकालदंडाद्भयंनाभूत्तवप्रभो ॥ वरुणोहुंकृतेनैवजितः सर्वेऽपिराक्षसाः ॥ ८ ॥

शास्त्रमें निपुण हो; इसकारण जिस कार्यके करनेसे मेरा भला हो वह तुम मुझसे कहो; उसका यत्नके साथ तुम विचार करो" ॥ ५ ॥ रावणके वचन सुनकर राक्षसोंने उत्तर दिया; "हे महाराज ! आपने युद्धमें इन्द्रादि लोकपालोंको जीतलिया है। हे देव ! फिर राममें आप अब कैसी शंका करते हैं, ? ॥ ६ ॥ आपके पुत्रने इन्द्रको बाँध लायकर इस नगरमें डाल दिया, आप स्वयं कुबेरजीको जीतकर उसका पुष्पक विमान ले आये और अब आप उस विमानका भोग करते हैं [अर्थात् उसको अपनी सवारीमें रखते हैं] ॥ ७ ॥ हे प्रतापवान् राजन् !

जब आपने यमको जीता तब उसके कालदण्डसेभी नहीं डरे; वरुणको और सब राक्षसोंको हुंकारसेही जीत लिया[१] ॥ ८ ॥ मय नामक महा असुरभी तुम्हारे भयसे अपनी पुत्री आपको दे अबतक आपके अधीनमें है, फिर दूसरे असुर लोगोंका आधीन होना कुछ बड़ी बात नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु हनुमान्‌ने जो हमारा अपमान किया इससे तो वह अपने आप अपना अपमानकर्ता होता है; वह वानर है; उसके ऊपर अपना बल दिखलानेसे क्या फायदा ? ऐसा विचार कर हमने उसका अपमान नहीं किया क्योंकि वह है क्या और हमारा क्या करेगा ? ॥ १० ॥ ऐसा विचार कर हमने उसको जाने दिया । ऐसे हमारे प्रसादमें वह हनुमान् हमको धोखा दे गया । हमने ऐसी उपेक्षा कीथी, इससेही वह कुछ विक्रम प्रकाश

मयोमहासुरोभीत्याकन्यांदत्वास्वयंतव ॥ त्वद्वशेवर्ततेऽद्यापिकिमुतान्येमहासुराः ॥ ९ ॥ हनूमद्धर्षणंयत्तुतदवज्ञाकृतंचनः ॥ वानरोऽयंकिमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥ १० ॥ इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणंतेनकिंभवेत् ॥ वयंप्रमत्ताःकिंतेनवंचिताःस्मोहनूमता ॥ ११ ॥ जानीमोयदितंसर्वेकथंजीवन्गमिष्यति ॥ आज्ञापयजगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥ १२ ॥ कृत्वायास्यामहेसर्वेप्रत्येकंवानियोजय ॥ कुंभकर्णस्तदाप्राहरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥ आरब्धंयत्त्वयाकर्मस्वात्मनाशायकेवलम् ॥ नदृष्टोऽसितदाभाग्यात्त्वंरामेणमहात्मना ॥ ॥ १४ ॥ यदिपश्यतिरामस्त्वांजीवन्नायासिरावण ॥ रामोनमानुषोदेवःसाक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १५ ॥

करगया; फिर इससे क्या होगा जो हम इन बातोंको जानते होते तो उसको किस प्रकारसे जीता हुआ जाने देते । आज्ञा दीजिये हम इस सारे संसारको वानरशून्य और मनुष्यशून्य करदें ॥ ११ ॥ १२ ॥ और फिर लौट आवें । अथवा आप एक २ को आज्ञा दीजिये "। यह सब सुनकर राक्षसोंके राजा रावणसे कुंभकर्णने कहा ॥ १३ ॥ " हे रावण ! तुमने जिस कार्यका आरंभ किया, इसका परिणाम केवल तेरे नाशका करनेवाला होगा अरे ! सीताको चुरानेके समय उन महाशूर श्रीरामचंद्रजीने तुम्हें नहीं देखा; यह तुम्हारे बड़े भाग्यकी बात हुई ॥ १४ ॥ हे रावण ! जो श्रीरामचंद्रजी तुमको देखलेते तो तुम जीवे हुए नहीं आते रामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं हैं; वे देवता हैं । वह साक्षात् निर्विकार

१ " वरुणको हुंकारसेही जीत लिया और सब राक्षसगण आपके आधीन हैं " टीकाकार इस अर्थको ठीक मानता है । परन्तु मूलमें " आपके आधीनहैं " यह बात नहीं है; यह बात अपनी ओरसे मिलाकर व्याख्या करनी पड़ती है ॥

नारायण हैं ॥ १५ ॥ रामचंद्रजीकी भार्या यशस्विनी सीताजी प्रत्यक्ष भगवती लक्ष्मीजी हैं, उन सुन्दरीके ले आनेसे सर्व राक्षसोंका नाश होनेवाला है ॥ १६ ॥ मच्छ, विषैला पिंड खाकर जिसप्रकार पीछेसे पछिताताहै; तैसेही तुम्हारी स्थिति होरही है; जानकीको लेकर अब तुम इस विचारमें पड़ेहो कि 'अब कैसे होगी ?' अथवा पीछेसे कुछ औरभी होसकता है, जो मच्छ विष भोजन करता है वही मरता है; परन्तु जानकीका हरण करनेसे तुम सारे वंशके साथ मरोगे ॥ १७ ॥ यद्यपि तुमने विनाजाने यह अनुचित कार्य किया है तो हे प्रभो ! मैं सब झगड़ा मिटादूंगा तुम चित्तको सावधान करो" ॥ १८ ॥ कुंभकर्णके वचन सुनकर इन्द्रजित् बोला;—"महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं अभी राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और सब बंदरोंको मारकर फिर आपके निकट आताहूं" ॥ १९ ॥ इतनेहीमें वहांपर भगवद्भक्तशिरोमणि, बुद्धिमान्,

सीताभगवतीलक्ष्मीरामपत्नीयशस्विनी ॥ राक्षसानांविनाशायत्वयानीतासुमध्यमा ॥ १६ ॥ विषपिंडमिवागीर्यमहामीनोयथा तथा ॥ आनीताजानकीपश्चात्त्वयाकिंवाभविष्यति ॥ १७ ॥ यद्यप्यनुचितंकर्मत्वयाकृतमजानता ॥ सर्वंसमंकरिष्यामिस्वस्थचित्तो भवप्रभो ॥ १८ ॥ कुंभकर्णवचः श्रुत्वावाक्यमिंद्रजिदब्रवीत् ॥ देहिदेवममानुज्ञांहत्वारामंसलक्ष्मणम् ॥ सुग्रीवंवानरांश्चैवपुनर्यास्या मितेऽतिकम् ॥ १९ ॥ तत्रागतोभागवतप्रधानोविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ श्रीरामपादद्वयएकतानःप्रणम्यदेवारिमुपोपविष्टः ॥२०॥ विलोक्यकुंभश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन॥विलोक्यकामातुरमप्रमत्तोदशाननंप्राहविशुद्धबुद्धिः ॥ २१ ॥

पुरुषोंमें प्रथम गिननेके योग्य विभीषणजी जाय पहुँचे । उनके अंतःकरणकी वृत्ति रामजीके दोनों चरणोंमें एकाग्र लग रहीथी । वह देवताओंके शत्रु (रावण) को प्रणाम करके उसके निकट बैठे ॥ २० ॥ सभाके बीचमें एकसे एक मदोन्मत्त कुंभकर्णादि दैत्य बैठेथे विभीषणने उन सबके ऊपर एकवार दृष्टि फिराई रामचंद्रजीके भक्त वानरोंके आगे इन राक्षसोंका निभाव क्षणभरभी नहीं होगा; परन्तु यह व्यर्थ बड़ाई मारते हैं । यह मनमें विचारकर विभीषणको बहुतही विस्मय हुआ, विभीषणने यह भी विचार लिया कि, रावण कामातुर है तोभी अत्यन्त निर्मल बुद्धियुक्त होनेसे विभीषणजी अपना कर्तव्य करनेसे नहीं चूकतेथे । अपने स्वभावके अनुसार उन्होंने रावणके चेतानेको नीचे कहते हुए वचन

कहे ॥ २१ ॥ "हे राजन् ! कुंभकर्ण, इन्द्रजित, महापार्श्व, महोदर वैसेही कुंभ, निकुंभ व अतिकाय, यह राक्षस कितनेही शूर हों; परन्तु यह युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख नहीं टिक सकेंगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! 'सीता' नामक प्रबल पिशाचने तुमको पछाड़ रक्खा है उससे आपका छुटकारा नहीं होगा अब जो तुम सीताका सत्कार करके बहुतसे द्रव्यके साथ उसे रामचंद्रजीको दे दोगे, तभी तुम सुख पाओगे ॥ २३ ॥ जबतक रामचंद्रजीके छोड़े हुए तीक्ष्णबाण लंकामें चारों ओर व्याप्त होकर राक्षसोंका माथा नहीं काटते हैं तबतक (शीघ्र) रामचंद्रजीको जानकी लौटा देनेके लिये तुम समर्थ हो ॥ २४ ॥ जबतक पर्वताकार महाबलवान्‌सिंहके समान नखवाले तथा डाढ़से युद्ध करनेवाले वानर आयकर

नकुंभकर्णेंद्रजितौचराजंस्तथामहापार्श्वमहोदरौतौ ॥ निकुंभकुंभौचतथातिकायःस्थातुंनशक्तायुधिराघवस्य ॥ २२ ॥ सीताभिधाने नमहाग्रहेणग्रस्तोऽसिराजन्नचतोविमोक्षः ॥ तामेवसत्कृत्यमहाधनेनदत्वाभिरामायसुखीभवत्वम् ॥ २३॥ यावन्नरामस्यशिताः शिली मुखालंकामभिव्याप्यशिरांसिरक्षसाम् ॥ छिंदंतितावद्रघुनायकस्यभोस्तांजानकींत्वंप्रतिदातुमर्हसि ॥ २४ ॥ यावन्नगाभाःकपयो महाबलाहरींद्रतुल्यानखदंष्ट्रयोधिनः ॥ लंकांसमाक्रम्यविनाशयंतितेतावद्रुतंदेहिरघूत्तमायताम् ॥ २५॥ जीवन्नरामेणविमोक्ष्यसेत्वंगुप्तः सुरेंद्रैरपिशंकरेण ॥ नदेवराजांकगतोनमृत्योः पाताललोकानपिसंप्रविष्टः ॥ २६ ॥ शुभंहितंपवित्रंचविभीषणवचःखलः ॥ प्रतिजग्रा हनैवासौम्रियमाणइवौषधम् ॥ २७ ॥ कालेननोदितोदैत्योविभीषणमथाब्रवीत् ॥ मद्दत्तभोगैःपुष्टांगोमत्समीपेवसन्नपि ॥ २८ ॥ प्रती पमाचरत्येषममैवहितकारिणः ॥ मित्रभावेनशत्रुर्मेजातोनास्त्यत्रसंशयः ॥ २९ ॥

लंकाका नाश नहीं करें तिससे पहलेही तुम जानकी श्रीरामचंद्रजीको देडालो ॥ २५ ॥ देवता और महादेवजी तुम्हारी रक्षा करें तोभी रामचंद्रजी तुम्हें जीताहुआ नहीं छोड़ेंगे, इन्द्रके पास जाओगे पाताल लोकमें जाओगे; तोभी रामचंद्र तुम्हें नहीं छोड़ेंगे" ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले;—हे पार्वति ! विभीषणके यह सौम्य वचन वास्तवमें हितकारक व पथ्य थे; परन्तु उस दुष्ट रावणने उनको इस प्रकार अंगीकार नहीं किया जिस प्रकार मरनहार प्राणी औषधि नहीं लेता ॥ २७ ॥ वह राक्षस कालके प्रेरेहुएके समान विभीषणसे कहने लगा; "मेरे दिये हुए भोगको भोगके इसका शरीर पुष्ट हुआ है यह मेरे निकट रहता है ॥ २८ ॥ मैं नित्य इसका हित करताहूँ और आज यह मुझसे विरुद्ध चलता है यह

मुझको मित्रभाव दिखाता है; परन्तु निःसंदेह यह मेरा शत्रु है ॥ २९ ॥ इस अनार्य और कृतघ्नसे मुझको सम्बन्ध रखना भला नहीं लगता। यह नियमही है कि, जातिवाले अपने जाति भाइयोंका नाश होनेकी सदा इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥ जो इस समुदायका कोई राक्षस मुझसे ऐसा एकभी वचन कहता तो मैं तत्काल उसका नाश कर डालता; अरे नीच ! तैंने जन्म लेकर राक्षसोंके कुलको कलंक लगाया तुझको धिक्कार है" ॥ ३१ ॥ जब रावणने ऐसे कठोर वचन कहकर तिरस्कार किया तब वह महापराक्रमी विभीषणजी हाथमें गदा लिये हुए सभासे उड़े ॥ ३२ ॥ उनके साथही उनके चार मंत्रीभी उड़े; विभीषणजीको अतिशय क्रोध आयाथा; आकाशमें जाय खड़े रहकर उन्होंने रावणसे कहा;—" रावण ! हितकी बात कहतेहुए भी मुझको तैंने धिक्कारा । मेरी ऐसी इच्छा है कि, तेरा नाश न होवे । क्योंकि तू मेरा बड़ा भाई होनेके कारण पिताके

अनार्येणकृतघ्नेनसंगतिर्मेनयुज्यते ॥ विनाशमभिकांक्षंतिज्ञातीनांज्ञातयःसदा ॥ ३० ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधंब्रूयाद्वाक्यमेकंनिशाचरः ॥ हन्मितास्मिन्क्षणेएवधिक्त्वांरक्षः कुलाधमम्॥३१॥रावणेनैवमुक्तःसन्परुषंसविभीषणः ॥ उत्पपातसभामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥३२॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंगगनस्थोऽब्रवीद्वचः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोरावणंदशकंधरम् ॥ माविनाशमुपैहित्वंप्रियवादिनमेवमाम् ॥ ३३ ॥ धिक्करोषितथापित्वंज्येष्ठोभ्रातापितुःसमः ॥ कालोराघवरूपेणजातोदशरथालये ॥ ३४ ॥ कालीसीताभिधानेनजाताजनकनंदिनी ॥ तावुभावागतावत्रभूमेर्भारापनुत्तये ॥॥ ३५ ॥ तेनैवप्रेरितस्त्वंतुनशृणोषिहितंमम ॥ श्रीरामःप्रकृतेःसाक्षात्परस्तात्सर्वदास्थितः ॥३६॥

समान पूज्य है; सर्वके संहार करनेवाले कालने रामरूपसे दशरथके यहां अवतार लिया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सारे संसारका नाश करनेके काममें सहायता करनेवाली काली नामक शक्ति 'सीता' नामसे जनककी कन्या हैं । वे दोनों (सीताराम) भूमिका भार दूर करनेके लिये यहाँपर आये हैं ॥ ३५ ॥ उन कालपुरुषकी प्रेरणासे तुम हमारे हितके वचन नहीं सुनते; श्रीरामचंद्रजी मायाके द्रष्टा हैं । जो कोई शंका करे कि, जो मायाके द्रष्टा हों तो उनमें मायाके गुण आने चाहियें । जैसे पीले, हलदुए वगैरह रंगसे जब वस्त्र छुआ जाता है और तिनके सम्बन्धसे पीला होजाता है वैसेही राममें जानों; उत्तरमें मायाके द्रष्टा होनेपरभी वह सदा मायासे दूर रहते हैं इस कारण पंकमें उगेहुए कमलके समान मायाके

गुणसे लिप्त नहीं होते । और संसारमें प्राणियोंके बाहर भीतर सर्वत्र सम रीतिसे रहकर नाम व रूपादिके भेदसे जिस पदार्थमें रहते हैं वैसेही (पदार्थमय) दिखलाई देने लगते हैं। परन्तु स्वयं मलरहित हैं ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ उदाहरणमें जैसे अलग २ वृक्षोंमें एक महा अग्नि रहाहुआ है, परन्तु आकारमें अन्तर होनेसे अज्ञानियोंको अलग २ आकारका दिखाई देता है; तैसेही ॥ ३८ ॥ अपने शरीरमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय, आनंदमयं यह पाँच कोश हैं । इन कोशोंमें क्रमानुसार वह कोशरूप मालूम पड़ता है और जैसे निर्मल स्फटिक मणिके पास काला रंग लगाया जाय तो स्फटिक काला दिखलाई देता और नीले रंगसे समस्त नीला दिखलाई देता है; तैसेही वास्तवमें परमात्मा शुद्ध है। परन्तु नाम और आकार भेदसे पृथक् २ आकारवाला जान पड़ता है ॥ ३९ ॥ मायाके सत, रज, तमादि गुणसे आप मुक्त हैं तौभी मायाके गुणमें प्रति

बहिरंतश्चभूतानांसमःसर्वत्रसंस्थितः ॥ नामरूपादिभेदेनतत्तन्मयइवामलः ॥ ३७ ॥ यथानानाप्रकारेषुवृक्षेष्वेकोमहानलः ॥ तत्तदाकृतिभेदेनभिद्यतेज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३८ ॥ पंचकोशादिभेदेनतत्तन्मयइवावभौ ॥ नीलपीतादियोगेनानिर्मलः स्फटिकोयथा ॥ ३९ ॥ सएव नित्यमुक्तोऽपिस्वमायागुणबिंबितः ॥ कालःप्रधानंपुरुषोऽव्यक्तंचेतिचतुर्विधः ॥४०॥ प्रधानपुरुषाभ्यांसजगत्कृत्स्नंसृजत्यजः ॥ कालरूपेणकलनांजगतःकुरुतेऽव्ययः ॥ ४१ ॥ कालरूपीसभगवान्रामरूपेणमायया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणाप्रार्थितोदेवस्त्वद्वधार्थमिहागतः ॥ तदन्यथाकथंकुर्यात्सत्यसंकल्पईश्वरः ॥ ४३ ॥ हनिष्यतित्वांरामस्तुसपुत्रबलवाहनम् ॥ हन्यमानंनशक्तोमिद्रष्टुंरामेणरावण ॥ ४४ ॥

बिम्बित होते हैं वह काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त ऐसा चार प्रकारका है ॥ ४० ॥ तिसमें अजन्माभगवान् प्रधान (परिणामरूप) और पुरुषरूपसे (रजोगुणके प्रतिबिम्बरूपसे) सारे जगत्को उत्पन्न करते हैं; वही अविनाशी कालरूपसे (तमोगुणके प्रतिबिम्बरूपसे) जगतका संहार करते हैं (अव्यक्त सतोगुणका प्रतिबिम्ब है) ॥ ४१ ॥ वही कालरूपी भगवान् ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तेरा वध करनेके लिये मायासे रामरूप लेकर यहांपर आये हैं । ईश्वरका संकल्प सत्य होता है वह अपनी प्रतिज्ञाको अन्यथा कैसे होने देगा ॥४२॥४३॥ इस कारण मैं तुझसे कहताहूंकि पुत्र, सेना और वाहनोंके साथ रामचंद्र तुझको मार डालेंगे । हे रावण ! तेरा सारे राक्षसकुलका वध होताहुआ मुझसे न देखा जायगा ॥ ४४ ॥

इस कारण मैं रामचंद्रजीके पास जाताहूं । मेरेजानेपर तू अपने घरमें सुखसे बहुत कालतक रहना" ॥ ४५॥ ऐसा कह रावणके कठोर वचनोंको सुनकर विभीषण क्षणभरमें परिजन और गृहादि समस्त वस्तुओंको छोड़ श्रीरामचंद्रजीके चरणकमल सेवन करनेकी अभिलाषासे रामचंद्रजीके समीप चला गया । अब उसका मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ४६ ॥ इति श्रीमध्यात्मरामायणे उमा० युद्ध० भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ रामचंद्रजीका विभीषणको शरणमें रखना और समुद्रके ऊपर कोप करके बाण चढ़ाना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! महा भाग्यशाली विभीषणजी अपने चार मंत्रियोंके साथ श्रीरामचंद्रजीके पास आये व आकाशमेंही रामजीके सन्मुख खड़े रहकर ॥ १ ॥ ऊँचे स्वरसे बोले, " हे कमलनयन

त्वांराक्षसंकुलंकृत्स्नंततोगच्छामिराघवम्॥मयियातेसुखीभूत्वारमस्वभवनेचिरम् ॥४५॥ विभीषणोरावणवाक्यतःक्षणाद्विसृज्यसर्वंसपरिच्छदंगृहम् ॥ जगामरामस्यपदारविंदयोःसेवाभिकांक्षीपरिपूर्णमानसः ॥ ४६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ ॥ विभीषणोमहाभागश्चतुर्भिर्मंत्रिभिःसह ॥ आगत्यगगनेरामसंमुखेसमवास्थितः ॥ १ ॥ उच्चैरुवाचभोः स्वामिन्रामराजीवलोचन ॥ रावणस्यानुजोऽहंतेदारहर्तुर्विभीषणः ॥ २ ॥ नाम्नाभ्रात्रानिरस्तोऽहंत्वामेवशरणंगतः ॥ हितमुक्तंमयादेवतस्यचाविदितात्मनः ॥ ३ ॥ सीतांरामायवैदेहींप्रेषयेतिपुनःपुनः ॥ उक्तोऽपिनशृणोत्येषकालपाशवशंगतः ॥ ४ ॥ हंतुंमांखड्गमादायप्राद्रवद्राक्षसाधमः ॥ ततोऽचिरेणसाचिवैश्चतुर्भिःसहितोभयात् ॥५॥ त्वामेवभवमोक्षायमुमुक्षुःशरणंगतः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ६

महाराज रामचंद्रजी तुम्हारी स्त्रीके हरनेवाले रावणका मैं छोटा भाई हूं, हे स्वामिन् ! उस रावणने मुझको निकाल दिया है विभीषण ॥ २ ॥ मेरा नाम है, भ्राताने मेरा तिरस्कार कियाहै तिस अज्ञानीसे उसके हितार्थ मैंने वारंवार कहा कि सीता श्रीरामचंद्रजीको देदे; हे देव ! रावणको अपने स्वरूपका ज्ञान नहींहै इसकारण वह नहीं सुनता; कालपाशने उसको पूर्णपनसे अपने आधीनमें करलियाहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ वह अधम राक्षस मुझको मारनेके लिये हाथमें खड्ग लेकर मारनेको तैयार हुआ इतनेहीमें शीघ्र चार मंत्रियोंको साथ ले मैं भयके मारे ॥ ५ ॥ आपकी शरण आया; इस संसारसे छूटकर मोक्षप्राप्त करनेकी मुझको इच्छा है, मेरेसब बंधन छुड़ाओ " विभीषणके वचन सुनकर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीसे

कहा ॥६॥ "हे रामजी ! यह राक्षस मायावी और अधम है इसकारण इसका विश्वास करना उचित नहींहै। दूसरा कोई और होता तो चिन्ता न थी। पर यह उसका छोटा भाई है कि, जिस रावणने सीताको चुरायाहै यह महाबलवान् दिखाई देताहै ॥ ७ ॥ इसके साथ अस्त्र बाँधेहुए इसके मंत्रीभी हैं इनकी सहायतासे अवसर पायकर यह हम सबोंको मारडालेगा इसकारण हे देव ! वानरोंसे इसको मरवाडालनेकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ मेरे मनमें तो ऐसा आवै है; परन्तु अपने मनमें आपनें जो निश्चय किया होय सो मुझसे कहिये।" सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामजी मंद मुसकायकर बोले ॥ ९ ॥ "हे वानरश्रेष्ठ ! जो मेरी संहार करनेकी इच्छा होवे तो आधे क्षणमें इन्द्रके सहित सारे जगत्का संहार करडालूं

विश्वासार्होंनतेराममायावीराक्षसाधमः ॥ सीताहर्तुर्विशेषेणरावणस्यानुजोबली ॥७॥ मंत्रिभिःसायुधैरस्मान्विवरेनिहनिष्यति ॥ तदा ज्ञापयमेदेववानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥ ममैवंभातितेरामबुद्ध्याकिंनिश्चितंवद ॥ श्रुत्वासुग्रीववचनंरामःसास्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥ यदी च्छामिकपिश्रेष्ठलोकान्सर्वान्सहेश्वरान् ॥ निमिषार्धेनसंहन्यांसृजामिनिमिषार्धतः॥१०॥ अतोमयाऽभयंदत्तंशीघ्रमानयराक्षसम्॥११॥ सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते ॥ अभयंसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतंमम ॥ १२ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वासुग्रीवोहृष्टमानसः ॥ विभीषण मथानाय्यदर्शयामासराघवम् ॥१३॥ विभीषणस्तुसाष्टांगंप्रणिपत्यरघूत्तमम् ॥ हर्षगद्गदयावाचाभक्त्याचपरयान्वितः ॥ १४ ॥ रामं श्यामंविशालाक्षंप्रसन्नमुखपंकजम् ॥ धनुर्बाणधरंशांतंलक्ष्मणेनसमन्वितम् ॥ १५ ॥

और आधे क्षणमें फिर नई सृष्टि करूँ ॥ १० ॥ इस कारण मुझे इसका कुछभी भय नहीं है; तिस राक्षसको मैं अभयदान देताहूं ! इस कारण इस राक्षसको शीघ्र मेरेपास लेआओ ॥ ११ ॥ मेरा व्रतही यह है कि, जो प्राणी केवल एक वार 'हे देव ! मैं तुम्हारा हूं' ऐसा कह कर मुझसे अभय माँगता है वह कितनाही निकृष्ट स्थितिका हो या कैसीही योनिमें जन्माहो उसको मैं अभय दे देताहूं।" ॥ १२ ॥ रामचंद्र जीके वचन सुनकर सुग्रीवके मनमें हर्ष हुआ, उन्होंने विभीषणको बुलाय कर श्रीरामचंद्रजीसे मिलाया ॥ १३ ॥ रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र जीको साष्टांग प्रणाम करके हर्षभरी गद्गद वाणीसे विभीषणने रामचंद्रजीकी स्तुति प्रारंभ की ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके शरीरका वर्ण श्याम,

नेत्र विशाल व मुखकमल प्रसन्न था। उनके हाथमें धनुष बाण था, निकटही लक्ष्मणजी खड़ेथे। उनकी मुद्रा शांत दिखलाई देतीथी ॥ १५ ॥ विभीषणने करसंपुट जोड़ उनकी स्तुति करना प्रारंभ किया ॥ १६ ॥ विभीषणने कहा "हे राजाधिराज राम! तुमको नमस्कारहै" तुम सिताके मनमें रमण करते हो, तुमको नमस्कार करताहूं, । तुम्हारा धनुष प्रचंडहै, तुमको प्रणाम करती हूं, हे भक्तवत्सल! तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे राम! आपके स्वरूपका अंत नहीं है; वह रूप शांत है उसका तेज अप्रमाण दिखाई देता है; आप सुग्रीवके मित्र और रघुकुलके अधिपति हैं आपको अनेक नमस्कार हैं ॥ १८ ॥ जिससे प्राणी उत्पन्न होते हैं; जो प्राणियोंका पालन पोषण करताहै और

कृतांजलिपुटोभूत्वास्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ १६ ॥ विभीषणउवाच ॥ नमस्तेरामराजेंद्रनमःसीतामनोरम ॥ नमस्तेचंडकोदंडनमस्तेभक्त वत्सल ॥ १७ ॥ नमोऽनंतायशांतायरामायामिततेजसे ॥ सुग्रीवमित्रायचतेरघूणांपतयेनमः ॥ १८ ॥ जगदुत्पत्तिनाशानांकारणाय महात्मने ॥ त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थायनमोनमः ॥ १९ ॥ त्वमादिर्जगतांरामत्वमेवास्थितिकारणम् ॥ त्वमंतेनिधनस्थानंस्वेच्छा चारस्त्वमेवहि ॥ ॥ २० ॥ चराचराणांभूतानांबहिरंतश्चराघव ॥ व्याप्यव्यापकरूपेणभवान्भातिजगन्मयः ॥ २१ ॥ त्वन्माययाहृत ज्ञानानष्टात्मानोविचेतसः ॥ गतागतंप्रपद्यंतेपापपुण्यवशात्सदा ॥ २२ ॥

अन्तमें प्रयलके समय जो संहार करता है ऐसे अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले महात्मा त्रिलोकीके गुरु अनादिकालसे मायाके साथ रहनेवाले रामचंद्र! मैं आपको नमस्कार करताहूं, अंतर्यामी! तुम्हीं प्रलयके समय जगत्का संहार करतेहो, इससे आपका स्वतंत्रपना सिद्ध होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥ हे राम! आप स्थावर तथा जंगम प्राणियोंके भीतर और उनके बाहरी भागमें रहेहो, तथापि व्याप्त और व्यापक रूपसे आप सारे संसारमें भासते हैं ॥ २१ ॥ तुम्हारी मायाने जिनका ज्ञान हरणकर लिया है, वह अपने स्वरूपको भूलकर कंठमें पहरेहुए हारको जैसे बाहर

१ व्याप्य छोटी वस्तु होती है; जैसे बड़ा मच्छ व्यापक और नन्हीं छमलियाँ उसकी व्याप्य कही जाती हैं।

खोजतेहैं (जिनको यह ज्ञान नहीं है कि यह ज्ञान ईश्वर रूपहै) अर्थात् जिनका आत्मा नष्ट होनेके समान होगयाहै; उन लोगोंके अंतःकरण प्रवृत्तिमार्गमें गुँथे रहते हैं; इस कारण वे बारबार पाप पुण्यके अनुरोधसे जन्ममरणरूप संसारको भोगते रहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक प्राणियोंका अंतःकरण ज्ञानरूपी आपमें एकाग्रपनेसे नहीं लगता तबतक जैसी सीपीमें चाँदीका भास होताहै तैसेही उनको जगत् सत्य भासता है । परन्तु आपके स्वरूपका ज्ञान होतेही तुरन्त मिथ्या भासमान जगत् जैसे सीपीमें चाँदीका भास होताहै, पर वह सीपी चाँदी नहीं है; ऐसा ज्ञान होनेके पीछे वह सीपी मालूम पड़ती है, चाँदी नहीं ज्ञातहोती तैसेही जगत् मिथ्या मालम होताहै ॥ २३ ॥ जबतक भलीभाँति आपके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तबतक स्त्री पुत्रादिमें मन लगायेहुए प्राणी विषयको भोग करते हैं और उस विषयको भोग करनेसे अंतमें महाकष्ट पाते हैं

तावत्सत्यंजगद्भातिशुक्तिकारजतंयथा ॥ यावन्नज्ञायतेज्ञानचेतसानान्यगामिना ॥२३॥ त्वदज्ञानात्सदायुक्ताःपुत्रदारगृहादिषु ॥ रमंतेविषयान्सर्वानंतेदुःखप्रदान्विभो ॥ २४ ॥ त्वमिंद्रोऽग्नियर्मोरक्षोवरुणश्चतथानिलः ॥ कुबेरश्चतथारुद्रस्त्वमेवपुरुषोत्तम ॥२५॥ त्वमणोरप्यणीयांश्चस्थूलात्स्थूलतरःप्रभो ॥ त्वंपितासर्वलोकानांमाताधातात्वमेवहि ॥ २६ ॥ आदिमध्यांतरहितःपरिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ॥ त्वंपाणिपादरहितश्चक्षुःश्रोत्रविवर्जितः ॥२७॥ श्रोताद्रष्टाग्रहीताचजवनस्त्वंखरान्तकः॥कोशेभ्योव्यतिरिक्तस्त्वंनिर्गुणोनिरुपाश्रयः॥२८॥

॥ २४ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र यह आठों दिक्पाल आपहीकी विभूति हैं । पुरुषोत्तम (विष्णुजी) आपही हैं ॥ २५ ॥ हे ईश्वर ! आप सूक्ष्मसेभी अतिसूक्ष्म (अति कठिनाईसे जाननेके योग्य) व स्थूलसेभी अतिस्थूल (सर्वव्यापक) हो । आप सर्व लोकको माता पिताके समान समदृष्टिसे पालन पोषण करते हो (बेटा बुरा हो या अच्छा , मा बाप उसका पालन पोषण भलीभाँतिसे करते हैं, तैसेही आप ऊँच नीच सर्व प्राणियोंका पालन भेददृष्टिरहित होकर करते हैं) ॥ २६ ॥ आपका आदि मध्य व अंत नहींहै । आपमें किसी शक्तिकी कमी नहीं है । अर्थात् आप किसी शक्तिमें लीन नहीं हैं । आपकी घटी बढ़ी नहीं है; आप नित्य परिपूर्ण हैं । आपके हाथ, पांव, नेत्र व कान नहीं हैं ॥ २७ ॥ तोभी आप सुनते हैं, देखते हैं । पकड़ते हैं; दौड़ते हैं; आपहीने खरदैत्यका नाश किया अन्नमय, मनोमय, विज्ञानय, आनंदमय, प्राणमय इन

पांचकोशोंसे आप रहित हैं। आपमें गुण नहीं हैं, व कोई दूसरा आधारभी नहीं है ॥ २८ ॥ कुछ है; वह अमुक है जाना नहीं जाता; इस ज्ञानको निर्विकल्प ज्ञान कहते हैं; हे ईश्वर ! तुम इस प्रकार निर्विकल्प ज्ञानकें विषय हो। इतनाही जाना जाता है कि आपका स्वरूप ऐसा है। अर्थात् यह सिद्ध है कि आपके आकार नहीं; आपके समान पूज्य दूसरा कोई नहीं; आपमें कोई (सोलह) विकार नहीं, अर्थात् उत्पन्न होना उत्पन्न होकर बढ़ना, पूर्णदशामें आना, क्षीण होना व नाश पाना, इन छः विकारोंसे रहित हो जिसकी आदि नहीं है उस प्रकृतिसेभी परे। उसके गणोंसे अलग। जो पुरुष हैं सो आपही हैं ॥ २९ ॥ आप मनुष्यके समान दिखाई देते हैं इस स्वरूपके दिखाई देनेका कारण आपकी माया है, जो विष्णुभक्तजन आपको निर्गुण व जन्मरहित जानते हैं वे मोक्षपाते हैं ॥ ३० ॥ हे राम! आपके चरणकी भक्ति निःश्रेणी सीढी प्राप्त

निर्विकल्पोनिर्विकारोनिराकारोनिरीश्वरः ॥ षड्भावरहितोऽनादिःपुरुषःप्रकृतेःपरः ॥२९॥ माययागृह्यमाणस्त्वंमनुष्यइवभाव्यसे ॥ ज्ञात्वात्वांनिर्गुणमजंवैष्णवामोक्षगामिनः॥३०॥अहंत्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणींप्राप्यराघव ॥ इच्छामिज्ञानयोगाख्यंसौधमारोढुमीश्वर ॥३१॥ नमःसीतापतेरामनमःकारुणिकोत्तम ॥ रावणारेनमस्तुभ्यंत्राहिमांभवसागरात् ॥ ३२ ॥ ततःप्रसन्नःप्रोवाचश्रीरामोभक्तवत्सलः ॥ वरंवृणीष्वभद्रंतेवांछितंवरदोऽस्म्यहम् ॥ ३३ ॥ विभीषणउवाच ॥ धन्योऽस्मिकृतकृत्योऽस्मिकृतकार्योस्मिराघवत्वत्पाददर्शनादेवविमुक्तोऽस्मिनसंशयः ॥ ३४ ॥ नास्तिमत्सदृशोधन्योनास्तिमत्सदृशःशुचिः ॥ नास्तिमत्सदृशोलोकेरामत्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥ ३५ ॥

करके ज्ञानयोग नामक राजमंदिरके शिखरपर चढ़नेकी इच्छा मैं रखताहूं ॥ ३१ ॥ हे सीतानाथ रामचंद्र ! आपको नमस्कार है हे कृपालुओंमें उत्तम ! आपको नमस्कार हो हे महाराज ! भवसागरमेंसे मेरी रक्षा करो हे रावणके शत्रु ! आपको नमस्कार है" ॥ ३२ ॥ यह स्तुति सुनकर भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हो विभीषणसे बोले;—"हे भक्तोत्तम ! तेरा कल्याण हो मैं तुझे वरदेनेके लिये तैयारहूं, जो इच्छा हो सो माँगले ।" ॥ ३३ ॥ विभीषणने कहा "हे रघुवीर! आपके चरणोंका दर्शनहोनेसे मैं धन्य होगया; मैं कृतकृत्य होगया मैं कृतार्थ होगया मैं निःसन्देह मुक्तिको प्राप्त होगया ॥ ३४ ॥ हे रामचंद्रजी ! आपका दर्शन मिलनेसे मुझको मालूम होता है कि संसारमें

१ कृतकृत्य और कृतकार्य दोनोंका एक अर्थ नहीं है, "मैं कृतकार्य होगया, मैंने प्राप्य वस्तु पाई" यह अर्थ टीका संमतहै।

मेरे समान धन्य कोईभी नहीं है, मेरे समान पवित्र कोईभी नहीं; इसीप्रकार मेरे समान गुणवान् कोई दूसरा पृथ्वीपर नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रघुकुमार ! मैं अपने पहले कर्मोंके अनुसार इस संसारबंधनमें पड़ा हुआहूं। इस बंधनके टूटनेको तुम मुझे भक्तिके उत्पन्न होनेवाला अपने स्वरूपका ज्ञान दो व मोक्षप्राप्तिका जो साधन है ऐसे अपने ध्यानमें मेरी प्रवृति करो ॥ ३६ ॥ हे राजाधिराज रामचंद्र ! मैं आपसे विषयसुख नहीं माँगता, पर आपके चरणकमलोंमें सर्वकाल मेरी अखंड भक्ति रहै; इतनाही वर मुझको चाहिये " ॥ ३७॥ यह सुनकर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हुए, व 'तथास्तु' कहकर विभीषणसे बोलेः—" हे विभीषण ! तेरा कल्याण हो. मैं तुझसे अपना सिद्धान्त कियाहुआ एक रहस्य कहताहूं, सुन ॥ ३८ ॥ इस संसारमें जो पुरुष सर्व स्थानोंसे आसक्ति छोड योगाभ्यास करके मेरी भक्ति करनेमें दक्ष (चतुर) रहते हैं; और

कर्मबंधविनाशायत्वज्ज्ञानंभक्तिलक्षणम् ॥ त्वद्ध्यानंपरमार्थंचदेहिमेरघुनन्दन ॥ ३६ ॥ नयाचेरामराजेन्द्रसुखंविषयसंभवम् ॥ त्वत्पादकमलेसक्ताभक्तिरेवसदास्तुमे ॥ ३७ ॥ ओमित्युक्त्वापुनःप्रीतोरामःप्रोवाचराक्षसम् ॥ शृणुवक्ष्यामितेभद्ररहस्यंममनिश्चितम् ॥३८॥ मद्भक्तानांप्रशांतानांयोगिनांवीतरागिणाम् ॥ हृदयेसीतयानित्यंवसाम्यत्रनसंशयः ॥ ३९ ॥ तस्मात्त्वंसर्वदाशांतःसर्वकल्मषवर्जितः ॥ मांध्यात्वामोक्ष्यसेनित्यंघोरसंसारसागरात् ॥ ४० ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तुलिखेद्यःशृणुयादपि॥मत्प्रीतयेममाभीष्टंसारूप्यंसमवाप्नुयात् ॥ ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंप्राहश्रीरामोभक्तभक्तिमान् ॥ पश्यत्विदानीमेवैषममसंदर्शनेफलम् ॥ ४२ ॥ लंकाराज्येऽभिषेक्ष्यामिजलमानयसागरात् ॥ यावच्चंद्रश्चसूर्यश्चयावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ४३ ॥

जिनका स्वभाव अत्यन्त शान्त है उनके हृदयमें मैं सीताजीके साथ नित्य वास करताहूं; इसमें कुछ संशय नहीं:—अर्थात् तेरे अंतःकरणमें मैं हूं ॥ ३९ ॥ तुम सदा शान्त हो; तुझमें पापका लेशमात्र नहीं. इसप्रकार नित्य मेरा ध्यान करनेसे तुम इस भयंकर संसारसमुद्रसे छूट जाओगे ॥ ४० ॥ मुझको प्रसन्न करनेके लिये जो इस स्तोत्रको पढें, लिखें, श्रवण करैं, उनको मेरी सारूप्य मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वती ! भक्तजनोंपर श्रीरामचंद्रजी बड़ा प्रेम करते हैं. वह इसप्रकार विभीषणसे कहकर लक्ष्मणजीसे बोले,—" हे लक्ष्मण ! मेरे दर्शनका फल इसको अभी दिखाना (जताना) चाहिये ॥ ४२ ॥ इसकारण मैं इसका यहींपर इसीक्षण—लंकाके राज्यपर अभिषेक करूंगा।

तुम समुद्रका पानी लाओ । जबतक सूर्य चंद्रमा विद्यमान हैं जबतक पृथ्वी स्थिर रहेगी ॥ ४३ ॥ और जबतक मेरी कीर्ति संसारमें है तबतक यह लंकाका राज्य करै । ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे समुद्रका जल कलसेमें मँगवाया ॥ ४४ ॥ उन लक्ष्मीके पति प्रभुने विभिषणजीके चारों मंत्री और विशेष करकै लक्ष्मणजीसे विभीषणका लंकाके राज्याधिकारपर अभिषेक कराया ॥ ४५ ॥ सर्व वानरोंने "बहुत अच्छा हुआ" यह कहकर बिभीषणके कार्यकी प्रशंसा की । सुग्रीवनेभी बिभिषणको हृदयसे लगायकर कहा:—॥ ४६ ॥ हे विभीषण ! हम सबजने श्रीरामचंद्रजीके सेवक हैं, तथापि तुम हम सबमें मुख्य हो; क्योंकि तुमने केवल भक्तिसे श्रीरामचंद्रजीका आश्रय लिया है ॥ ४७ ॥

यावन्ममकथालोकेतावद्राज्यंकरोत्वसौ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणेनांबुह्यानाय्यकलशेनतम् ॥ ४४ ॥ लंकाराज्याधिपत्यार्थमभिषेकंरमापतिः ॥ कारयामाससचिवैर्लक्ष्मणेनविशेषतः ॥ ४५ ॥ साधुसाध्वितितेसर्वेवानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ॥ सुग्रीवोऽपिपरिष्वज्यविभीषणमथाब्रवीत् ॥ ४६ ॥ विभीषणवयंसर्वेरामस्यपरमात्मनः ॥ किंकरास्तत्रमुख्यस्त्वंभक्त्यारामपरिग्रहात् ॥ ४७ ॥ रावणस्यविनाशेत्वंसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ विभीषणउवाच ॥ अहंकियान्सहायत्वेरामस्यपरमात्मनः ॥ किंतुदास्यंकरिष्येऽहंभक्त्याशक्त्यात्वमायया ॥ ४८ ॥ दशग्रीवेणसंदिष्टःशुकोनाममहासुरः ॥ संस्थितोह्यंबरेवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ त्वामाहरावणोराजाभ्रातरंराक्षसाधिपः ॥ महाकुलप्रसूतस्त्वंराजासिवनचारिणाम् ॥ ५० ॥ ममभ्रातृसमानस्त्वंतवनास्त्यर्थविप्लवः ॥ अहंयदहरंभार्यांराजपुत्रस्यकिंतव ॥ ५१ ॥

तुमको उचित है कि, रावणके मारनेमें सहाय करो ।" ॥ विभीषणने कहा:—हे सुग्रीव ! प्रभु श्रीरामजीकी सहायता करनेको मुझमें क्या सामर्थ्य है ? तथापि भक्तिसे कपटरहित हो यथाशक्ति उनकी सेवा करूंगा ।" ॥ ४८ ॥ रावणने शुक नामक एक महादैत्यको कुछ संदेशा कहकर सुग्रीवके पास भेजाथा; वह यहांपर आय आकाशमें खड़ा रहकर सुग्रीवसे कहनेलगा ॥ ४९ ॥ "हे सुग्रीव ! वाली व रावण एक दूसरेको भ्राता मानतेथे; तुम वालीके भ्राता अर्थात् रावणकेभी भ्राता हुए; उस राक्षसोंके राजाने तुमसे कहा है कि, तुम बडे कुलमें जन्म लेनेसे वनचरोंके राजा हुए हो ॥ ५० ॥ मैं तुमको भ्राताके समान मानताहूं; मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है; इससे तुम्हें क्या ? जो मैं राजपुत्रकी स्त्रीको

हर लाया ॥ ५१ ॥ तुम वानरोंको साथ ले किष्किन्धानगरीको चले जाओ । अरे ! लंकामें देवताभी नहीं आयसक्ते; यहांपर मनुष्य या वानर सेनापतिकी क्या चल सकती है ? तुम्हारी शक्ति ही कितनी है ? ॥ ५२ ॥ ऐसे सन्देशा कहते हुए शुक नाम राक्षसको वानरोंने कूदकर पकड़ा और घूसोंसे मारनेको तैयार हुए ॥ ५३ ॥ जब वानरोंने मारा तब शुकने श्रीरामचंद्रजीसे कहाः—"हे महासमर्थ रामचंद्र ! आप राजाधिराज हैं; यह राजनीति तो आप जानते हैं कि, दूतको नहीं मारना चाहिये । इसकारण आप इन बन्दरोंको रोकें" ॥ ५४ ॥ शुकके विलाप वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने वानरोंसे कहा कि " इसको मत मारो " ! ॥ ५५ ॥ वानरोंके छोड़ देनेपर शुक फिर आकाशको चला गया; वहां जायकर सुग्रीवसे कहने लगा । हे राजन् ! अब मैं जाताहूं; परन्तु रावणसे क्या कहूं ? ॥ ५६ ॥ सुग्रीवने कहाः—"हे शुक ! राव

किष्किंधायांहिहारिभिर्लंकाशक्यानदैवतैः ॥ प्राप्तुंकिंमानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥ ९२ ॥ तंप्रापयंतंवचनंतूर्णमुत्प्लुत्यवानराः ॥ प्रापय्यंततदाक्षिप्रंनिहंतुंदृढमुष्टिभिः ॥ ९३ ॥ वानरैर्हन्यमानस्तुशुकोराममथाब्रवीत् ॥ नदूतान्घ्नन्तिराजेंद्रवानरान्वारयप्रभो ॥ ९४ ॥ रामःश्रुत्वातदावाक्यंशुकस्यपरिदेवितम् ॥ मावधिष्टेतिरामस्तान्वारयामासवानरान् ॥ ९५ ॥ पुनरम्बरमासाद्यशुकःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ ब्रूहिराजन्दशग्रीवंकिंवक्ष्यामिव्रजाम्यहम् ॥ ९६ ॥ सुग्रीवउवाच ॥ यथावालीममभ्रातातथात्वंराक्षसाधम ॥ हंतव्यस्त्वंमयायत्नात्सपुत्रबलवाहनः ॥ ९७ ॥ ब्रूहिमेरामचन्द्रस्यभार्यांहृत्वाक्वयास्यसि ॥ ततोरामाज्ञयाधृत्वाशुकंबद्धान्वरक्षयत् ॥ ९८ ॥ शार्दूलोऽपिततःपूर्वंदृष्ट्वाकपिवलंमहत् ॥ यथावत्कथयामासरावणायसराक्षसः ॥ ९९ ॥

णसे मेरा यह सन्देशा कहना कि ' रे अधम राक्षस ! जैसा वाली मेरा भ्राताथा, वैसाही तू है ! इसकारण तैसेही शीघ्र उपाय करकै मैं तेरा वध करूंगा; वालिको तो अकेलाही माराथा परन्तु तुझे पुत्र, सेना, और वाहनोंके साथ यमलोकको पठाऊंगा ! ' ॥ ५७ ॥ यहभी कहना कि " रामचंद्रजीकी भार्या हरण करकै कहां जायगा ? । " यह कहकर सुग्रीवने—शुकके मनमें कदाचित् 'यह वानरगण इतने प्रचंड समुद्रको लांघकर लंकापर कैसे आवैंगे और क्या करैंगे ? । ' यह शंका आई हो इसके दूर करनेको वानरोंसे उसको बँधवाया; परन्तु श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे फिर छोड़ दिया ॥ ५८ ॥ रावणने शार्दूलनामक एक दूसरा राक्षस वानरोंकी सेनाकी संख्या जाननेके लिये पठायाथा, उसने वानरोंकी प्रचंड सेना निहार

उसका समस्त वृत्तान्त रावणको शुकके पहुँचनेसे पहलेही सुना दिया ॥ ५९ ॥ उसको सुनकर रावणको अपार चिंता उत्पन्न हुई, उसका धीरज खसा, शूरपन न होनेके समान हुआ; वह लंबे श्वास लेताहुआ मंदिरमें बैठा रहा । इधर श्रीरामचंद्रजीने समुद्रको देखकर नेत्र लाल किये और लक्ष्मण जीसे कहा ॥ ६० ॥ "हे पुण्यपुरुष लक्ष्मण ! देखो, इस समुद्रका अंतः करण कितना दुष्ट है ! किनारेपर मेरे आनेपरभी यह दुष्ट मेरा सत्कार नहीं करता; और मेरे दर्शनको नहीं आता ॥ ६१ ॥ यह मुझको मनुष्य समझता है. यह जानता है कि, राम वानरोंको साथ लेकर आया है, मेरा क्या कर लेगा ? परन्तु हे वीर ! (लक्ष्मण !) देखो आज मैं समुद्रको सुखाये डालताहूं ॥ ६२ ॥ संतापरहित हो पयदलही सब वानर इसके पार

दीर्घचिंतापरोभूत्वानिःश्वसन्नास्समंदिरे ॥ ततःसमुद्रमावेक्ष्यरामोरक्तांतलोचनः ॥ ६० ॥ पश्यलक्ष्मणदुष्टोऽसौवारिधिर्मामुपागतम् ॥ नाभिनंदतिदुष्टात्मादर्शनार्थंममानघ ॥ ६१ ॥ जानातिमानुषोऽयंमेकिंकरिष्यतिवानरैः ॥ अद्यपश्यमहाबाहोशोषयिष्यामिवारिधिम् ॥ ॥ ६२ ॥ पादेनैवगमिष्यंतिवानराविगतज्वराः ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षआरोपितधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ तूणीराद्बाणमादायकालाग्निसदृशप्रभम् ॥ संधायचापमाकृष्यरामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ पश्यंतुसर्वभूतानिरामस्यशरविक्रमम् ॥ इदानींभस्मसात्कुर्यांसमुद्रंसरितांपतिम्॥६५॥एवंब्रुवतिरामेतुसशैलवनकानना ॥ चचालवसुधाद्यौश्चदिशश्चतमसावृताः ॥ ६६ ॥ चुक्षुभेसागरोवेलांभयाद्योजनमत्यगात् तिमिनक्रझषामीनाःप्रतप्ताःपरितत्रसुः॥६७॥एतस्मिन्नंतरेसाक्षात्सागरोदिव्यरूपधृक्॥ दिव्याभरणसंपन्नःस्वभासाभासयन्दिशः॥६८॥

उतर जांयगे । " क्रोधके मारे रामचंद्रजीके नेत्र लाल होगये; उन्होंने इतना कहकर धनुषको चढ़ाया ॥ ६३ ॥ तरकशसे प्रलयकालकी अग्निके समान तेजवाला बाण निकाल धनुषपर जोड़ा और फिर धनुषको खैंचकर कहा;-- ॥ ६४ ॥ "सर्व प्राणी रामके बाणका प्रभाव अवलोकन करें; मैं अभी इस नदीपति समुद्रको भस्म किये डालताहूं । " ॥ ६५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीने यह शब्द उच्चारण किये, उसी समय पर्वत, उपवन, व महावनोंके सहित पृथ्वी थरथर कांपनेलगी, स्वर्ग कंपायमान हुआ; दशों दिशा अंधकारसे भरगई ॥ ६६ ॥ समुद्र खलबला गया और मारे डरके मर्यादाको छोड़कर एक योजन आगे आगया । उसमेंके छोटे बड़े मच्छ, सूस, व मगर तापसे घबरागये ॥ ६७ ॥ थोड़ेही अवकाशमें साक्षात्

समुद्र दिव्यरूप धारण कर, अंगपर दिव्य अलंकार पहरे अपनी कांतिसे सर्व दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ रामचंद्रजीके पास आया ॥ ६८ ॥ समुद्र अपने पेटके दिव्यरत्न—रामचंद्रजीको अर्पण करनेके लिये, हाथमें ले आयाथा; वह महामोलका उपायन (नजराना) उसने रामचंद्रजीके चरणोंपर रक्खा ॥ ६९ ॥ रामचंद्रजीके नेत्र लाल हो रहेथे । समुद्र उनको साष्टांग नमस्कार कर बोला,— ' हे जगत्पाल ! त्रैलोक्यरक्षक राम ! मेरी रक्षा करो, नाश न कीजिये ॥ ७० ॥ मेरेशीघ्र न आनेसे मुझपर क्रोध न कीजिये; कारण जब सब संसारकी उत्पत्ति आपने की तभी मुझे उत्पन्न किया; और मेरा स्वभाव जड़ सुस्त या अज्ञानी ठहराय दिया है । हे देव ! आपने जो स्वभाव बनाय दिया है, उसको अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥ ७१ ॥

स्वांतःस्थदिव्यरत्नानिकराभ्यांपरिगृह्यसः ॥ पादयोःपुरतःक्षिप्त्वारामस्योपायनंबहु ॥ ६९ ॥ दंडवत्प्रणिपत्याहरामंरक्तांतलोचनम् ॥ त्राहित्राहिजगन्नाथरामत्रैलोक्यरक्षक ॥७०॥ जडोऽहंरामतेसृष्टःसृजतानिखिलंजगत् ॥ स्वभावमन्यथाकर्तुंकःशक्तोदेवनिर्मितम्॥७१॥ स्थूलानिपंचभूतानिजडान्येवस्वभावतः ॥ सृष्टानिभवतैतानित्वदाज्ञांलंघयंतिन ॥ ७२ ॥ तामसादहमोरामभूतानिप्रभवंतिहि ॥ कारणानुगमात्तेषांजडत्वंतामसंस्वतः ॥ ७३ ॥ निर्गुणस्त्वंनिराकारोयदामायागुणान्प्रभो ॥ लीलयांगीकरोषित्वंतदावैराजनामवान्॥७४॥गुणात्मनोविराजश्चसत्वाद्देवाबभूविरे ॥ रजोगुणात्प्रजेशाद्यामन्योर्भूतपतिस्तव ॥ ७५ ॥ त्वामहंमाययाच्छन्नंलीलयामानुषाकृतिम् ॥ ७६ ॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, व पृथ्वी, यह स्थूल पंच महाभूत स्वभावसेही जड़ आपने बनाये हैं; वे आपकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सकते (तुम्हारे दियेहुए जड़ स्वभावके विरुद्ध आचरण नहीं करते) ॥ ७२ ॥ पंच महाभूत तामस अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं; इस कारण तामसके जो जड़ादिक गुण हैं; वे पंच महाभूतोंमें स्वभावसेही रहे हैं; शास्त्रमें कहा है कि ' कारणगुणा हि कार्यगुणानारभंते ' कारणमें जो गुण होते हैं; वे कार्यके गुणको उत्पन्न करते हैं ॥ ७३ ॥ आप तो निर्गुण और निराकार हो; परन्तु जब क्रीड़ा करनेकी इच्छासे मायाके गुणको अंगीकार करते हो तब तुम्हारा नाम वैराज होता है ।। ७४ ॥ गुणरूप विराट् भगवान्के सत्वगुणसे सनकादि देवता उत्पन्न होते हैं; रजोगुणसे ब्रह्मादि देवता पैदा होते हैं और आपके तमोगुण (कोप) से भूतपतिगण (रुद्र और पंचभूतके अधिष्ठात्री देवता) उत्पन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ आप मायाके गुणमें ढककर

क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यका आकार धारण करते हो ॥ ७६ ॥ परन्तु आप निर्गुणको मेरी जड़ बुद्धि, तथा मैं जड़ किस प्रकारसे जानसकूं ? हे अमरश्रेष्ठ ! जैसे लकड़ीकी मार पशुको ठीक मार्गमें चलाती है, तैसेही आपका दंड मूर्ख प्राणियोंको श्रेष्ठमार्गका बतानेवाला है ॥ ७७ ॥ हे भक्तवत्सल ईश्वर ! आप शरणागतका हित करते हैं इस कारणसे मैं आपकी शरण आयाहूं, मुझको अभय दीजिये मैं आपको लंकामें जानेका मार्ग देताहूं ॥ ७८ ॥ रामचंद्रजी बोले;—मेरा बाण पीछे नहीं फिरता; इस कारण वह स्थान शीघ्र बता दे ? कि जहांपर मैं यह बाणछोडूं यह अमोघ महाबाण कहां छोडूं ? ॥ ७९ ॥ वह महातेजस्वी महासागर श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर और उनके हाथमें बाण देखकर उनसे बोला

जडबुद्धिर्जडोमूर्खःकथंजानामिनिर्गुणम् ॥ दंडएवहिमूर्खाणांसन्मार्गप्रापकःप्रभो ॥ ७७ ॥ भूतानाममरश्रेष्ठपशूनांलगुडोयथा ॥ शरणंतेव्रजामीशशरण्यंभक्तवत्सल ॥ अभयंदेहिमेरामलंकामार्गंददामिते ॥७८॥ रामउवाच ॥ अमोघोऽयंमहाबाणःकस्मिन्देशेनिपात्यताम् ॥ लक्षंदर्शयमेशीघ्रंबाणस्यामोघपातिनः ॥७९॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकरेदृष्ट्वामहाशरम् ॥ महोदधिर्महातेजाराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥८०॥ रामोत्तरप्रदेशेतुद्रुमकुल्यइतिश्रुतः ॥ प्रदेशस्तत्रबहवःपापात्मानोदिवानिशम् ॥ ८१ ॥बाधंतेमांरघुश्रेष्ठतत्रतेपात्यतांशरः ॥ रामेणसृष्टोबाणस्तुक्षणादाभीरमंडलम् ॥ ८२ ॥ हत्वापुनःसमागत्यतूणीरेपूर्ववत्स्थितः ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठंसागरोविनयान्वितः ॥ ८३ ॥ नलःसेतुंकरोत्वस्मिञ्जलेमेविश्वकर्मणः ॥ सुतोधीमान्समर्थोऽस्मिन्कार्येलब्धवरोहरिः ॥ ८४ ॥ कीर्तिंजानंतुतेलोकाःसर्वलोकमलापहाम् ॥ इत्युक्त्वाराघवंनत्वाययौसिंधुरदृश्यताम् ॥ ८५ ॥

॥ ८० ॥ "हे राम ! उत्तर दिशामें 'द्रुमकुल्यनामक' विख्यात एक देश है वहांपर बहुतसे पापी रहते हैं; वे रात दिन ॥ ८१ ॥ मुझे बहुत पीड़ा देते हैं । हे रघुवीर ! यह आपका बाण उस देशपर चले" रामचंद्रजीने बाण छोड़ा; वह बाण एक क्षणभरके बीचमें उन भीलोंके समुदायको ॥ ८२ ॥ मारकर फिर पहलेकी भाँति जायकर तरकसमें होरहा, फिर समुद्र नम्र होकर श्रीरामचंद्रजीसे कहनेलगा ॥ ८३ ॥ "हे राम ! विश्वकर्माके पुत्र नलसे मेरेजलपर पुल बँधाओ, यह वानर चतुरहोनेसे इस कार्यके करनेको समर्थ है; क्योंकि उसको ब्रह्माजीसे "तुझको पुल बाँधना आवैगा" ऐसा वर मिला है ॥ ८४ ॥ पुल बाँधनेसे आपकी कीर्तिको सब लोक जान जांयगे; आपकी कीर्ति, सब लोकोंकेपापोंको दूर करनेवाली

है इतना कह रामजीका वंदन कर समुद्र अंतर्धान होगया ॥ ८५ ॥ फिर रामचंद्र सुग्रीव और लक्ष्मणने दूसरे वानरोंको नलके सहित आज्ञादी कि इस नलके साथ तुम शीघ्र पुल बांधो ॥ ८६ ॥ फिर नलने अत्यन्त प्रसन्न हो पर्वतके समान ऊंचे सेनापतियोंको साथ लेकर पर्वत व वृक्षोंसे शत योजन (चारशत कोश) का लंबा और चौड़ा दृढ पुल बांधा ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे० उमा० युद्ध० भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥
महादेवजीकी स्थापना, पुल बाँधना, शुकका रावणको उपदेश ॥ सेतु बांधनेका आरंभ करनेसे पहले श्रीरामचंद्रजीने वहांपर 'रामेश्वर' नामक शिवलिंगकी स्थापना करके लोकोंका हित करनेके लिये ऐसा कहा (प्रसिद्ध किया) कि जो कोई पुरुष रामेश्वर लिंगका दर्शन करके

ततोरामस्तुसुग्रीवलक्ष्मणाभ्यांसमन्वितः ॥ नलमाज्ञापयच्छीघ्रंवानरैःसेतुबंधने ॥ ८६ ॥ ततोऽतिहृष्टःप्लवगेंद्रयूथपैर्महानगेंद्रप्रतिमैर्युतोनलः ॥ बबंधसेतुंशतयोजनायतंसुविस्तृतंपर्वतपादपैर्दृढम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सेतुमारभमाणस्तुतत्ररामेश्वरंशिवम् ॥ संस्थाप्यपूजयित्वाहरामोलोकहितायच ॥ १ ॥ प्रणमेत्सेतुबंधंयोदृष्ट्वारामेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यतेमदनुग्रहात् ॥ २ ॥ सेतुबंधेनरःस्नात्वादृष्ट्वारामेश्वरंहरम् ॥ संकल्पनियतोभूत्वागत्वावाराणसींनरः ॥ ३ ॥ आनीयगंगासलिलंरामेशमभिषिच्यच ॥ समुद्रेक्षिप्ततद्भारोब्रह्मप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ कृतानिप्रथमेनाह्नायोजनानिचतुर्दश ॥ द्वितीयेनतथाचाह्नायोजनानितुविंशतिः ॥ ५ ॥ तृतीयेनतथाचाह्नायोजनान्येकविंशतिः ॥ चतुर्थेनतथाचाह्नाद्वाविंशतिरितिश्रुतम् ॥ ६ ॥ पंचमेनत्रयोविंशद्योजनानिसमंततः ॥ बबंधसागरेसेतुंनलोवानरसत्तमः ॥ ७ ॥

सेतुबंधको वंदन करैंगे उनपर मैं अनुग्रह करूंगा और वे प्राणी ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूट जाएँगे ॥ १ ॥ २ ॥ जहां सेतु बांधा है वहांपर स्नान करके रामेश्वर भगवान्के दर्शन कर संकल्प करे कि मैं रामेश्वरको गंगाजलसे न्हवाऊँगा यह संकल्प करके काशीमें जाय ॥ ३ ॥ वहांसे गंगाजल लाय उससे रामेश्वरको नहवावे और जिसमें जल भरकर लायाहो वह पात्रादि (या कामर) समुद्रमें डाल देवे; उस मनुष्यको निःसंदेह ब्रह्मकी प्राप्ति होजायगी ॥ ४ ॥ पहले दिन नलने चौदह योजन (छप्पन कोश) पुल बांधा, दूसरे दिन बीस योजन (अस्सीकोश) ॥ ५ ॥ तीसरे दिन इक्कीस योजन (चौरासी कोस) चौथे दिन बाईस योजन (अट्ठासी कोश) बांधा ॥ ६ ॥ पांचवें दिन तेईस योजन (बानबे कोश)

बांधा; इस प्रकार उस वानरश्रेष्ठ नलने समुद्रपर सेतु बांधकर तैयार किया ॥ ७ ॥ वानर लोग उसी सेतुके मार्गसे होकर सौ योजन (चारसौ कोश) समुद्रके पार चले। वानरोंकी सेना इतनी बड़ी थी कि उसकी गिनती नहीं की जाती। उन वानर वीरोंने जाय कर सुवेल पर्वतको रोक लिया ॥ ८ ॥ राम हनुमान् पर व लक्ष्मणजी अंगदपर बैठगये; लंका नगरीका दिखावा देखनेके लिये रामचन्द्रजी उस ऊँचे पर्वतपर चढ़े ॥ ९ ॥ लंकानगरी विस्तीर्ण थी; उसमें जिधर तिधर चित्रविचित्र ध्वजा फहराय रहीथीं विचित्र महलोंसे ठसाठस भरी हुई थी। उस शहरका किला द्वारोंके सहित सुवर्णका था ॥ १० ॥ शहरके आस पास खाई खुदीथी, शहरमें तोपें लगी हुईथीं, कोई नहीं आसके ऐसे उसमें मार्ग

तेनैवजग्मुःकपयोयोजनानांशतंद्रुतम् ॥ असंख्याताःसुवेलाद्रिंरुरुधुःप्लवगोत्तमाः ॥८॥ आरुह्यमारुतिंरामोलक्ष्मणोऽप्यंगदंतथा ॥ दिदृक्षूराघवोलंकामारुरोहाचलंमहत् ॥९॥ दृष्ट्वालंकांसुविस्तीर्णांनानाचित्रध्वजाकुलाम् ॥ चित्रप्रासादसंबाधांस्वर्णप्राकारतोरणाम्॥१०॥ परिखाभिःशतघ्नीभिःसंक्रमैश्चविराजिताम् ॥ प्रासादोपरिविस्तीर्णप्रदेशेदशकंधरः ॥११॥ मंत्रिभिःसहितोवीरैःकिरीटदशकोज्ज्वलः ॥ नीलाद्रिशिखराकारःकालमेघसमप्रभः ॥ १२ ॥ रत्नदंडैःसितच्छत्रैरनेकैःपरिशोभितः ॥ एतस्मिन्नंतरेबद्धोमुक्तोरामेणवैशुकः ॥ १३ ॥ वानरैस्ताडितःसम्यग्दशाननमुपागतः ॥ प्रहसन्रावणःप्राहपीडितःकिंपरैःशुक ॥ १४ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशुकोवचनमब्रवीत् ॥ सागरस्योत्तरेतीरेऽब्रुवंतेवचनंयथा ॥ ततउत्प्लुत्यकपयोगृहीत्वामांक्षणात्ततः ॥ १५ ॥

बनायेथे, उस शहरमें महलके ऊपरके विशालभागमें रावण बैठा हुआथा ॥ ११ ॥ उसके आसपास पराक्रमी प्रधान मंडली बैठी थी, रावण दशमस्तक पर दशमुकुट ओढ़ रहाथा और काले पर्वतके शिखरके समान दिखलाई देताथा ॥ १२ ॥ उसके ऊपर सुवर्णकी डंडी लगे अनेक श्वेत छत्र शोभायमान होरहे हैं। वह रावण इसप्रकार से बैठाथा कि इतनेमें वह शुक जिसको बन्दरोंने बांधा और रामचंद्रजीने छुड़ादियाथा ॥ १३ ॥ वानरोंके हाथकी बड़ीभारी मार खाय ज्यों त्यों करके रावणके पास जाय पहुंचा उसको देखकर रावण हँसताहुआ बोला,—"क्योंरे ? क्या शत्रुओंने तुझको मारा है ?" ॥ १४ ॥ रावणके वचन सुनकर शुकने कहा महाराज! मैंने समुद्रके उत्तर किनारेपर जाय आपका कहाहुआ

सन्देशा जैसेका तैसा सुग्रीवसे कहा । इतनेहीमें वानरोंने उड़ानमारकर मुझको क्षणभरमें पकड़ लिया ॥ १५ ॥ व उनके घूँसोंके मारनेसे व नख और दाँतोंसे काटने नोंचनेसे मेरे अंगके टुकडे़ उड़गये । मैं 'हे राम ! मेरी रक्षा करो' ऐसा कहकर चिल्लानेलगा; तब रघुवीरने वानरोंसे ॥ १६ ॥ कहा कि—'इसको छोड़ दो । तब वानरोंने मुझको छोड़ दिया वानरोंकी उस सेनाको देख मुझे बहुतही भय लगा मैं शीघ्रही इधर चला आया ॥ १७ ॥ समुद्रके समान राक्षसोंकी बड़ी भारी सेना और वानरोंकी सेनाका एक होना, देवता व दैत्योंकी मित्रताके समान दुर्लभ है; अर्थात् इन दोनों सेनाओंमें मेल नहीं होगा ॥ १८ ॥ वह अभी शहरके किलेपर आयाही चाहते हैं । इसकारण शीघ्रतासे एकही निश्चय करो । या तो रामचंद्रजीको

मुष्टिभिर्नखदंतैश्चहंतुंलोप्तुंप्रचक्रमुः ॥ ततोमांरामरक्षेतिक्रोशंतंरघुपुंगवः ॥ १६ ॥ विसृज्यतामितिप्राहविसृष्टोऽहंकपीश्वरैः ॥ ततोऽहमागतोभीत्यादृष्ट्वातद्वानरंवलम् ॥ १७ ॥ राक्षसानांवलौघस्यवानरेन्द्रवलस्यच ॥ नैतयोर्विद्यतेसंधिर्देवदानवयोरिव ॥ १८ ॥ पुरप्राकारमायांतिक्षिप्रमेकतरंकुरु ॥ सीतांवास्मैप्रयच्छाशुयुद्धंवादीयतांप्रभो ॥ १९ ॥ मामाहरामस्त्वंब्रूहिरावणंमद्वचःशुक ॥ यद्बलंचसमाश्रित्यसीतांमेहृतवानसि ॥ २० ॥ तद्दर्शययथाकामंससैन्यःसहवांधवः ॥ श्वःकालेनगरींलंकांसप्रकारांसतोरणाम् ॥ २१ ॥ राक्षसंचवलंपश्यशरैर्विध्वंसितंमया ॥ घोररोषमहंमोक्ष्येबलंधारयरावण ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वोपररामाथरामःकमललोचनः ॥ एकस्थानगतायत्रचत्वारःपुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥ श्रीरामोलक्ष्मणश्चैवसुग्रीवश्चविभीषणः ॥ एतएवसमर्थास्तेलंकांनाशयितुंप्रभो ॥ २४ ॥

सीता लौटायदो ; अथवा हे समर्थ ! शीघ्र युद्धके लिये तयार होओ ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने मुझसे कहाहै कि हे शुक ! रावणसे मेरा संदेशा कहना कि, जिस शक्तिके भरोसेपर तू हमारी सीताजीको चुराकर लेगयाहै ॥ २० ॥ वह अब दिखाओ । अपनी सहायताको सैन्य बांधवजन जितने चाहिये खुशीसे ले आ । कल सबेरे कोट और द्वारोंके सहित लंका नगरीका ॥ २१ ॥ और राक्षसोंकी सेनाका बाणोंसे मैं विध्वंस करूंगा । मैं भयंकर क्रोधको छोडूंगा, हे रावण ! तू अपने बलको धारणकर ॥ २२ ॥ इतना कहकर कमललोचन रामचंद्रजी चुप होगये । हे रावण ! वहाँपर यह चार वीर पुरुष इकट्ठे बैठे हैं ॥ २३ ॥ हे बलवान् पुरुष ! श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण ये चारों जनेही लंकाको जड़से उखाड़कर उसके भस्म

करनेको समर्थ हैं ॥ २४ ॥ दूसरे सब वानर एक ओरको बैठेही रहें। रामचंद्रजीका बल और स्वरूप जो कुछ मैंने देखाहै; और जो कुछ उनके शस्त्र मैंने देखेहैं तिनसे मेरे मनमें निश्चय हुआहै कि ॥ २५ ॥ अकेले श्रीरामचंद्रजीही सारी नगरीका नाश करेंगे । और सब सावधानीसे बैठे रहैं (उनकी आवश्यकता नहीं) वानरोंकी अगणित सेना जिधर तिधर भररहीहै देखो ॥ २६ ॥ जिस सेनामें पर्वतोंके समान ऊँचे वानर गर्जरहे हैं, देखो उनकी गिनती कीजाय तो पार नहीं पायाजाय परन्तु उनमेंसे मुख्य २ वानरोंके नाम मैं गिनाताहूं ॥ २७ ॥ यह जो एक वानर लंकाकी ओर मुख करके गर्ज रहाहै, तिसके निकट शतसहस्र सेनापति खड़ेहुए दीखते हैं, वह सुग्रीव है ॥ २८ ॥ इधर यह जो एक दूसरा पर्वतके शिखरके समान

उत्पाट्यभस्मीकरणेसर्वेतिष्ठंतुवानराः ॥ तस्ययाद्दग्बलंदृष्टंरूपंप्रहरणानिच ॥ २५ ॥ वधिष्यतिपुरंसर्वमेकस्तिष्ठंतुतेत्रयः ॥ पश्यवानरसेनांतामसंख्यातांप्रपूरिताम् ॥ २६ ॥ गर्जंतिवानरास्तत्रपश्यपर्वतसन्निभाः ॥ नशक्यास्तेगणयितुंप्राधान्येनब्रवीमिते ॥ २७ ॥ एषयोऽभिमुखोलंकांनदंस्तिष्ठतिवानरः ॥ यूथपानांसहस्राणांशतेनपरिवारितः ॥ २८ ॥ सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलोनामाग्निनंदनः ॥ एषपर्वतशृंगाभःपद्मकिंजल्कसन्निभः ॥ २९ ॥ स्फोटयत्यभिसंरब्धोलांगूलंचपुनःपुनः ॥ युवराजोंऽगदोनामवालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥ ३० ॥ येनदृष्टाजनकजारामस्यातीववल्लभा ॥ हनूमानेषविख्यातोहतोयेनतवात्मजः ॥ ३१ ॥ श्वेतोरजतसंकाशोमहाबुद्धिपराक्रमः ॥ तूर्णंसुग्रीवमागम्यपुनर्गच्छतिवानरः ॥ ३२ ॥ यस्त्वेषसिंहसंकाशःपश्यत्यतुलविक्रमः ॥ रंभोनाममहासत्त्वोलंकांनाशयितुंक्षमः ॥ ३३ ॥

वानर दिखाई देताहै इसके अंगकी कांति कमलके केशरके समान है, यह सुग्रीवका सेनापति अग्निका पुत्र नील है ॥ २९ ॥ यह जो वारंवार क्रोध करके पूँछको पटक रहाहै यह वालीका पुत्र, अतुलपराक्रमी युवराज अंगद है ॥ ३० ॥ जिसने रामचंद्रजीके अत्यन्त प्यारी जानकीजीकी सुधि लादी और तुम्हारे पुत्रका वध किया वह प्रसिद्ध हनुमान् यहां खड़ाहै देखो ॥ ३१ ॥ जिसकी कांति चाँदीके समानहै और जो शीघ्रही सुग्रीवके पास जायकर फिरलौट जाताहै । इस वानरका नाम 'श्वेत' है इसकी बुद्धि व शक्ति अद्भुत है ॥ ३२ ॥ और यह जो दूसरा वानर इधर देख रहाहै इसका नाम रंभ है जिसप्रकार इसका शरीर सिंहके समान दीखता है; वैसाही इसका पराक्रम अतुल और बुद्धि विलक्षण है, यह अकेलाही

लंकाका नाश कर सकता है ॥ ३३ ॥ हे राजाधिराज ! यह एक वानर जो लंकाकी ओर ऐसे देखता है, मानो जलाही देगा; इसका नाम शरभ है; यह एक करोड़ वानरोंके सेनाका नायक है ॥ ३४ ॥ तैसेही महापराक्रमी पनस, मैन्द, द्विविद, जिसने पुल बांधा उस विश्वकर्माका पुत्र यह नल है, व और दूसरेभी बहुत हैं ॥ ३५ ॥ हे रावण ! वानरोंके गुण वर्णन या उनकी गिनती करनेकी सामर्थ्य किसमें हैं ? सबही शूर हैं सबहीके शरीर प्रचंड हैं, प्रत्येकको युद्धकी इच्छा है ॥ ३६ ॥ यह सब राक्षससमूहके सहित निःसंदेह लंकाको चूर्ण कर डालेंगे। इस सेनामें एक वीरके आधीन में कितने वानर हैं उनकी संख्या मैं कहता हूं सुन ॥ ३७ ॥ नील, अंगद, हनुमान्, श्वेत, शरभ, पनस, मैंद, रंभ, और द्विविद; इनमें प्रत्येकके

एषपश्यतिवैलंकांदिधक्षन्निववानरः ॥ शरभोनामराजेंद्रकोटियूथपनायकः ॥ ३४ ॥ पनसश्चमहावीर्योमैंदश्चद्विविदस्तथा ॥ नलश्चसेतुकर्तासौविश्वकर्मसुतोबली ॥ ३५ ॥ वानराणांवर्णनेवासंख्यानेवाकईश्वरः ॥ शूराःसर्वेमहाकायाःसर्वेयुद्धाभिकांक्षिणः ॥ ३६ ॥ शक्ताःसर्वेचूर्णयितुंलंकांरक्षोगणैःसह ॥ एतेषांबलसंख्यानंप्रत्येकंवच्मितेशृणु ॥ ३७ ॥ एषांकोटिसहस्राणिनवपंचचसप्तच ॥ तथाशंखसहस्राणितथार्बुदशतानिच ॥ ३८ ॥ सुग्रीवसचिवानांतेबलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अन्येषांतुबलंनाहंवक्तुंशक्तोऽस्मिरावण ॥ ३९ ॥ रामोनमानुषःसाक्षादादिनारायणःपरः ॥ सीतासाक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ॥ ४० ॥ ताभ्यामेवसमुत्पन्नंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ तस्माद्रामश्चसीताचजगतस्तस्थुषश्चतौ ॥ ४१ ॥ पितरौपृथिवीपालतयोर्वैरीकथंभवेत् ॥ अजानतात्वयाऽऽनीताजगन्मातैवजानकी ॥ ४२ ॥ क्षणनाशिनिसंसारेशरीरेक्षणभंगुरे ॥ पंचभूतात्मकेराजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥ ४३ ॥

आधीनमें इक्कीस हजार करोड़, सैकडों शंख, (संख्याका एकस्थान) तैसेही सैकडों अरब सेना हैं ॥ ३८ ॥ यह तो सुग्रीवके मंत्रियोंकी सेना गिनाई हे रावण ! दूसरोंकी सेनाकी गिनती करानेको मैं असमर्थ हूं ॥ ३९ ॥ रामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं, बरन् साक्षात् परमात्मा आदि नारायण हैं, तैसेही सीताजी जगत्की उत्पन्न करनेवाली चैतन्य शक्ति हैं और जगत्के निर्माणमें माया स्वरूप हैं ॥ ४० ॥ पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे यह स्थावर और जंगम वस्तुसे भराहुआ जगत् उत्पन्न हुआ, इस कारण राम तथा सीता स्थावर और जंगमरूप इस जगत्के ॥ ४१ ॥ माता पिता हैं। हेपृथ्वीपालक ! उनसे वैर करनेवाला प्राणी कैसे जीवित रहैगा ? तुम अज्ञानतासे जगत्की माता जानकीको हरकर ले आयेहो ॥ ४२ ॥ यह संसार एक

क्षणभरमें नाश होनेवाला है; और शरीरभी क्षणभंगुर है;—हे राजन् ! यह देह पाच भतोंका बनाहुआ चौवीस तत्त्वोंके योगसे रचा गया है ॥ ४३ ॥ इसमें मल, मांस, हाड़ इत्यादि दुर्गन्धि युक्त पदार्थ भरे हैं; यह शरीर केवल अहंकारका घर है; ऐसे जड़ स्वरूपी देहकी तुम काहेको इतनी प्रीति करतेहो ? ॥ ४४ ॥ कारण कि तुमने ऊपर कहे हुए देहके अर्थ ब्रह्महत्यादि पापभी किये हैं । जिनका भोगनेवाला देह है । वह तो इस मृत्युलोकमेंही नाश पावैगा (अर्थात् नित्य तेरे साथ नहीं रहैगा) ॥ ४५ ॥ और सुखदेनेवाला तथा दुःख देनेवाला पुण्य और पापही परलोकमें आत्माके साथ जाता है; वास्तवमें वह पुण्य और पाप आत्माको नहीं हैं; परन्तु देहके सम्बन्धसे आत्मामें कल्पित होते हैं । यथार्थ देखा जाय तो

मलमांसास्थिदुर्गंधभूयिष्ठेऽहंकृतालये ॥ कैवास्थाव्यतिरिक्तस्यकायेतवजडात्मके ॥ ४४ ॥ यत्कृतेब्रह्महत्यादिपातकानिकृतानिते ॥ भोगभोक्तातुयोदेहःसदेहोऽत्रपतिष्यति ॥ ४५ ॥ पुण्यपापेसमायातोजीवेनसुखदुःखयोः ॥ कारणेदेहयोगादिनात्मनःकुरुतोऽनिशम् ॥ ॥ ४६ ॥ यावद्देहोस्मिकर्तास्मीत्यात्माहंकुरुतेऽवशः ॥ अध्यासात्तावदेवस्याजन्मनाशादिसंभवः ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वंत्यजदेहादाव भिमानंमहामतेआत्मातिनिर्मलःशुद्धोविज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः ॥ ४८ ॥ स्वाज्ञानवशतोवंधंप्रतिपद्यविमुह्यति ॥ तस्मात्त्वंशुद्धभावेनज्ञात्वाऽऽत्मानंसदास्मर ॥ ४९ ॥ विरतिंभजसर्वत्रपुत्रदारगृहादिषु ॥ निरयेष्वपिभोगःस्याच्छ्वसूकरतनावपि ॥ ५० ॥

आत्मा शुद्ध और पापपुण्यसे रहित है ॥ ४६ ॥ जबतक आत्मा, 'मैं देह हूं' 'मै कर्ता हूं' इसप्रकार पराधीन होकर कर्म करताहै तबतक अज्ञानताका अध्यवसाय उसमेंसे नहीं जाता; और उसका नाशवंत, तथा जन्मवंत देह ऐसाका ऐसाही रहता है ॥ ४७ ॥ इस कारण हे बुद्धिमान् ! तुम देहादिका अभिमान छोड़ दो, आत्मा अतिनिर्मल है, शुद्ध है, विज्ञानमय है अचल है, अव्यय है, ॥ ४८ ॥ परन्तु अज्ञानी प्राणी अपने शुद्ध आत्माको नहीं देखते हैं; तिससे वारंवार जन्ममरणरूप बंधनमें पड़कर मोह पाते हैं और उसके (शरीरके) सम्बन्धसे वारंवार कर्ममें प्रवर्तते हैं इसकारण तुम आत्माको स्वभावसेही नित्यशुद्ध, ज्ञानवान् और कर्मादिसे छुटाहुआ जानो ॥ ४९ ॥ पुत्र, स्त्री, और गृहादिसे सम्बन्ध मत रक्खो । कारण कि

१ बुद्धि, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियां, पंच महाभूत और उसके शब्द स्पर्शादि गुण तथा प्रकृति यह सब मिलकर चौवीस तत्त्व होते हैं ।

यह भोग तो नरकादिमेंभी मिलते हैं । कुत्ते और शूकरादिके शरीरमेंभी भोग मिलता है; इसकारण भोगका लालच छोड दो ॥ ५० ॥ सारसारको जिसमें जानाजाय ऐसे इस मनुष्यजन्ममें जन्मना बहुत दुर्लभ है, उसमेंभी कर्मभूमि (भरतखंड) में जन्म मिलना तो बहुतही दुर्लभ है । तिसमेंभी ब्राह्मणकुलमें जन्म मिलना तो महादुर्लभ है इन सबके मिलनेपर ॥ ५१ ॥ कौन विचारवान् पुरुष देहमें आत्मबुद्धि रखकर भोगमें ललचायकर उसका दासकी भाँति सेवन करेगा ? तुमको ब्राह्मणका जन्मही नहीं मिला बरन् तुमने पौलस्त्यके उत्तम वंशमें जन्म लिया है ॥ ५२ ॥ ऐसे होकरभी अज्ञानीके समान भोगके पीछे किसकारणसे दौड़ते हो । इसकारण अब सबका संग छोड़ केवल परमात्मा रामचंद्रजीका भक्तिसे आश्रय करके उनको सीता लौटायकर सर्वकाल उनके चरणोंकी सेवा करते रहो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ऐसा करनेसे सर्व पापोंसे छूटकर विष्णु

देहंलब्ध्वाविवेकाढ्यंद्विजत्वंचविशेषतः ॥ तत्रापिभारतेवर्षेकर्मभूमौसुदुर्लभम् ॥ ५१ ॥ कोविद्वानात्मसात्कृत्वादेहंभोगानुगोभवेत् ॥ अतस्त्वंब्राह्मणोभूत्वापौलस्त्यतनयश्चसन् ॥ ५२ ॥ अज्ञानीवसदाभोगाननुधावसिकिंमुधा ॥ इतःपरंवात्यक्त्वात्वंसर्वसंगंसमाश्रय ॥ ॥ ५३ ॥ राममेवपरात्मानंभक्तिभावेनसर्वदा ॥ सीतांसमर्प्यरामायतत्पादानुचरोभव ॥ ५४ ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंप्रयास्यासि ॥ नोचेद्गमिष्यसेऽधोऽधःपुनरावृत्तिवर्जितः ॥ अंगीकुरुष्वमद्वाक्यंहितमेववदामिते ॥ ५५ ॥ सत्संगतिंकुरुभजस्वहरिंशरण्यं श्रीराघवंमरकतोपलकांतिकांतम् ॥ सीतासमेतमनिशंधृतचापबाणंसुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेवितांघ्रिम् ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

लोकमें चले जाओगे । नहीं तो तुम ऊँचे लोकसे वर्जित होकर उत्तरोत्तर नीचेके लोकमें जाओगे । मेरा उपदेश स्वीकार करो मैं तुम्हारे हितकी बात कहताहूं ॥ ५५ ॥ हे रावण ! इस कारणसे तुम सत्पुरुषोंका समागम करो और शरण आये हुएकी रक्षा करनेवाले (अर्थात् तू शत्रु है जो तू शरणमें जायगा तो तेरीभी रक्षा करेंगे) श्रीरघुवंशमें अवतार लियेहुए मरकतमणिके समान कांतिवाले, निरन्तर सीताजीके साथ रहनेवाले, धनुष बाणके धारण करनेवाले, सुग्रीव और विभीषणसे सेवित हैं चरण जिनके ऐसे श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करो ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

शुकका अपने घरको जाना, रावणका रामचंद्रजीसे संग्राम करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले,— हे पार्वति ! शुकका कहाहुआ अज्ञानका नाश करनेवाला वचन सुनकर रावणको क्रोध हो आया और लाल लाल नेत्रकर मानों शुकको भस्मही कर डालेगा, ऐसे शुकसे बोला ॥ १ ॥ "अरे शुक तेरी बुद्धि अत्यन्त दुष्ट है ? तू मेरा नौकर होकर मुझे किस प्रकारसे गुरुके समान उपदेश करता है ? मैं त्रिलोकीको शिक्षा देनेवाला हूं, ऐसे मुझको तू शिक्षा देतेहुए लजाता नहीं ? ॥ २ ॥ मैं तुझे अभी मार डालता; परन्तु तेरे पहले किये हुए उपकार याद आवे हैं; इसीकारण मारने लायक तुझकोभी मैं छोड़ देताहूं॥ ३॥अरे मूर्ख ! तू अभी यहांसे चलाजा मैं तेरी ऐसी बातें नहीं सुनना चाहता" । यह आपका मुझ पर बड़ा अनुग्रह हुआ; यह कहकर शुक

श्रुत्वाशुकमुखोद्गीतंवाक्यमज्ञाननाशनम् ॥ रावणःक्रोधताम्राक्षोदहन्निवतमब्रवीत् ॥ १॥ अनुजीव्यसुदुर्बुद्धेगुरुवद्भाषसेकथम् ॥ शासिताऽहंत्रिजगतांत्वंमांशिक्षन्नलज्जसे ॥ २ ॥ इदानीमेवहन्मित्वांकिंतुपूर्वकृतंतव ॥ स्मरामितेनरक्षामित्वांयद्यपिवधोचितम् ॥ ३ ॥ इतोगच्छविमूढत्वमेवंश्रोतुंनमेक्षमम् ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वावेपमानोगृहंययौ ॥ ४ ॥ शुकोऽपिब्राह्मणःपूर्वंब्राह्मिष्ठोब्रह्मवित्तमः ॥ वानप्रस्थविधानेनवनेतिष्ठन्स्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥ देवानामभिवृद्ध्यर्थंविनाशायसुरद्विषाम् ॥ चकारयज्ञविततिमविच्छिन्नांमहामतिः ॥ ६ ॥ राक्षसानांविरोधोऽभूच्छुकोदेवहितोद्यतः ॥ वज्रदंष्ट्रइतिख्यातस्तत्रैकोराक्षसोमहान् ॥ ७ ॥ अंतरंप्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ॥ कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदंमुनेः ॥ ८ ॥ तेनसंपूजितोऽगस्त्योभोजनार्थंनिमंत्रितः ॥ गतेस्नातुंमुनौकुंभसंभवेप्राप्यचांतरम् ॥ ९ ॥

काँपता २ वैखानसके आश्रममें चला गया ॥ ४ ॥ पहले जन्ममें यह शुक ब्रह्मनिष्ठ और वेद जाननेवाला एक ब्राह्मण था, यह वनमें वानप्रस्थकी रीतिसे रहता और अपना धर्म कर्म करताथा ॥ ५ ॥ इस महाशयके देवताओंका उदय और असुरोंका नाश होनेके लिये बहुतसे यज्ञ निरन्तर किये ॥ ६ ॥ इसप्रकार देवताओंके हितमें तत्पर हुए शुकका दैत्योंके साथ बड़ा विरोध होगया तहां राक्षसोंमें वज्रदंष्ट्र नामक एक बड़ा राक्षस था ॥ ७ ॥ वह शुकका बुरा करनेके लिये तैयार होकर उचित अवसर ढूंढनेका यत्न करनेलगा; एक समय उस शुक मुनिके आश्रममें अगस्त्यजी आये ॥ ८ ॥ तब शुकने उनका आदर सत्कारकर भोजनके लिये नेवता दिया । मुनि अगस्त्यजी स्नान करनेको गये । यह अवसर पाय ॥ ९ ॥

उस (वज्रदंष्ट्र) राक्षसने अगस्त्यजीका वेष धारणकर शुकके पास जायकर कहा;—" हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारी इच्छा आज मुझे अवश्य जिमानेकी होय तो मांससहित भोजन कराना ॥ १० ॥ मैंने बहुत दिनोंसे बकरेका मांस नहीं खाया है "। शुकने ' बहुत अच्छा ' कहकर मांसके सर्व भोजन भलीभाँति तैयार कराये ॥ ११ ॥ अगस्त्य मुनि स्नान करके आये और जीमने बैठे इधर उस दुष्टराक्षसने घरमें शुककी स्त्रीका मन मोहितकर अतिसुन्दर शुककी स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करके फिर बाहर जाय ॥ १२ ॥ मुनि अगस्त्यजीके पात्रमें मनुष्यमांसके तैयार किये हुए सब पदार्थ परसताहुआ । परसनेके पीछे तुरतही वह राक्षस अंतर्द्धान होगया मनुष्यके मांसको देखकर अति क्रोधसे ॥ १३ ॥ अगस्त्यजीने शुकसे कहा कि;—" मनुष्यका मांस महा अपवित्र गिना जाता है हे दुष्टबुद्धे ! तैंने न खाये योग्य मनुष्यका मांस मुझे खानेको दिया ॥ १४ ॥ इस

अगस्त्यरूपधृक्सोऽपिराक्षसःशुकमब्रवीत् ॥ यदिदास्यसिमेब्रह्मन्भोजनंदेहिसामिषम् ॥ १० ॥ बहुकालंनभुक्तंमेमांसंछागांगसंभवम् ॥ तथेतिकारयामासमांसभोज्यंसविस्तरम् ॥ ११ ॥ उपविष्टेमुनौभोक्तुंराक्षसोऽतीवसुंदरम् ॥ शुकभार्यावपुर्धृत्वातांचांतर्मोहयन्खलः ॥ ॥ १२ ॥ नरमांसंददौतस्मैसुपक्कंबहुविस्तरम् ॥ दत्त्वैवांतर्दधेरक्षस्ततोदृष्ट्वाचुकोपसः ॥१३॥ अमेध्यंमानुषंमांसमगस्त्यःशुकमब्रवीत् ॥ अभक्ष्यंमानुषंमांसंदत्तवानासिदुर्मते ॥ १४ ॥ मह्यंत्वंराक्षसोभूत्वातिष्ठत्वंमानुषाशनः ॥ इतिशप्तःपुरोभीत्याप्राहागस्त्यंमुनेत्वया ॥१५॥ इदानींभाषितंमेऽद्यमांसंदेहीतिविस्तरम् ॥ तथैवदत्तंमदेवाकिंमेशापंप्रदास्यसि ॥ १६ ॥ श्रुत्वाशुकस्यवचनंमुहूर्तंध्यानमास्थितः ॥ ज्ञात्वारक्षःकृतंसर्वंततःप्राहशुकंसुधीः ॥ १७ ॥ तवापकारिणासर्वंराक्षसेनकृतंत्विदम् ॥ अविचार्यैवमेदत्तःशापस्तेमुनिसत्तम ॥ १८ ॥

कारण तू मनुष्यका खानेवाला राक्षस होजा" जब अगस्त्यजीने ऐसा शाप दे दिया तो शुक्र मानिके आगे भयभीत होकर बोला, हे मुने ! आपने ॥ १५ ॥ अभी तो मुझसे कहाहै कि " मुझे बहुत प्रकारका मांस विस्तार सहित दो तिसीके अनुसार मैंने आपको भोजन दिया । हे ज्ञानवंत ! फिर मुझे शाप देनेका क्या कारण है ? " ॥ १६ ॥ शुकके वचन सुनकर अगस्त्य मुनिने दो घडीतक ध्यान धरकर देखा तब उन्होंने जानलिया कि, यह सब राक्षसकी करतूतहै; महाबुद्धिमान् मुनिने तत्काल शुकसे कहा ॥ १७ ॥ राक्षसके मनमें तेरी घात करानेकी थी इस कारण उसने यह सारी

१ टीकाकार इस अर्थको मानताहै कि—" शुकका स्त्रीको पाकशालामें अज्ञानकर रखके उसका रूप धारणकर आप भोजन परसा था "।

करतूत की; हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने केवल तुझको अविचारसे शाप देदिया ॥ १८ ॥ परन्तु यह मेरा वचन कभी अन्यथा होनेवाला नहीं; इसकारण तू राक्षस का शरीर धारणकरके रावणकी सहायता करताहुआ ॥ १९ ॥ रहा रामचंद्रजीके लंकामें जानेतक तुझे इस योनिमें रहना पडेगा । जब रामचंद्रजी रावणका वध करनेके लिये वानरोंको साथ ले लंकाके निकट जायँगे ॥ २० ॥ फिर रावण तुझको दूत बनायकर रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीके पास भेजेगा । रामचंद्रजीका दर्शन करतेही तू शापसे छूटजायगा । फिर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेशकरके मुक्त होताहुआ तू परमपदको पावेगा इसप्रकार अगस्त्य मुनिने शुकसे कहा वास्तवमें यह शुक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसेभी अतिश्रेष्ठ था ॥ २१ ॥ २२ ॥ ब्रह्मशापसे वह

तथापिमेवचोऽमोघमेवमेवभविष्यति ॥ राक्षसंवपुरास्थायरावणस्यसहायकृत् ॥ १९ ॥ तिष्ठतावद्यदारामोदशाननवधायहि ॥ आगमिष्यतिलंकायाःसमीपंवानरैःसह ॥ २० ॥ प्रेषितोरावणेनत्वंचारोभूत्वारघूत्तमम् ॥ दृष्ट्वाशापाद्विनिर्मुक्तोवोधयित्वाचरावणम् ॥ २१ ॥ तत्त्वज्ञानंततोमुक्तःपरंपदमवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिनाशुकोब्राह्मणसत्तमः ॥ २२ ॥ बभूवराक्षसःसद्योरावणंप्राप्यसंस्थितः ॥ इदानींचाररूपेणदृष्ट्वारामंसहानुजम् ॥ २३ ॥ रावणंतत्त्वविज्ञानंबोधयित्वापुनर्द्रुतम् ॥ पूर्ववद्ब्राह्मणोभूत्वास्थितोवैखानसैःसह ॥ २४ ॥ ततःसमागमद्वृद्धोमाल्यवान्राक्षसोमहान् ॥ बुद्धिमान्नीतिनिपुणोराज्ञोमातुःप्रियःपिता ॥ २५ ॥ प्राहतंराक्षसंवीरंप्रशांतेनांतरात्मना ॥ शृणुराजन्वचोमेऽद्यश्रुत्वाकुरुयथेप्सितम् ॥२६॥ यदाप्रविष्टानगरींजानकीरामवल्लभा ॥ तदादिपुर्यांदृश्यंतेनिमित्तानिदशानन ॥ २७॥

तत्काल राक्षस होगया वह रावणके निकट जायकर रहा अब उसने दूतरूपसे जायकर छोटे भ्राताके सहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन किया व ॥ २३ ॥ लौटनेपर रावणको तत्वज्ञानका उपदेश किया तिससे उसका शाप छूटगया; वह पहलेके अनुसार ब्राह्मण होकर ऋषियोंके साथ आश्रममें रहनेलगा ॥ २४ ॥ इधर लंकामें माल्यवान् नामक एक वृद्ध महान् राक्षस रावणके निकट आया, वह महाबुद्धिमान् नीतिशास्त्रका जाननेवाला राजाकी माताका प्रिय पिता अर्थात् रावणका नानाथा ॥ २५ ॥ इस माल्यवानने पराक्रमी राक्षस (रावण) से कहा— “ हे राजन् ! तुम प्रथम मेरी बात सुनकर पीछे जैसी इच्छा हो वैसा करना ॥ २६ ॥ जबसे इस लंकापुरीमें सीता आई है तबसे हम भयंकर

अपशकुन इस लंकापुरीमें देखतेहैं ॥ २७ ॥ तिनके देखनेसे निश्चय जाना जाताहै कि, आपका नाश होजायगा । वह कौनसे घोर अपशकुन हैं। सो मैं कहताहूं सुनो; आकाशमें अति भयंकर मेघ आकर कठोर शब्दसे गर्जते हैं ॥ २८ ॥ व सदा लंका नगरीके ऊपर गर्म रुधिरकी वर्षा करतेहैं देवताओंकी मूर्तियाँ रोती हैं; उनके शरीरपर पसीना आजाताहै और वह अपने स्थानपरसे खसक जाती हैं ॥ २९ ॥ प्रत्येक राक्षसके आगे खडी रहकर कालिका देवी शुभ्र दाँत निकालकर हँसती हैं; अर्थात् यह बतातीहैं कि, सबको खाजाऊँगी । गायोंमें गधे उत्पन्न होते हैं । न्योले व चूहे ॥ ३० ॥ बिल्लियोंसे लड़तेहैं, सर्प गरुड़से लड़नेको तैयार होतेहैं, महाभयंकर महादुःख देनेवाला, मुंडेहुए शिर

घोराणिनाशहेतूनितानिमेवदतःशृणु ॥ खरस्तनितनिर्घोषामेघाअतिभयंकराः ॥ २८ ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वदा ॥ रुदंतिदेवलिंगानिस्विद्यंतिप्रचलंतिच ॥ २९ ॥ कालिकापांडुरैर्दंतैःप्रहसत्यग्रतःस्थिता ॥ खरागोषुप्रजायंतेमूषकानकुलैःसह ॥ ३० ॥ मार्जारेणतुयुध्यंतिपन्नगागरुडेनतु ॥ करालोविकटोमुंडःपुरुषःकृष्णपिंगलः ॥ ३१ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेत्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदृश्यंतेनिमित्तान्युद्भवंतिच ॥ ३२ ॥ अतःकुलस्यरक्षार्थंशांतिंकुरुदशानन ॥ सीतांसत्कृत्यसधनांरामायाशुप्रयच्छभोः ॥ ३३॥ रामंनारायणंविद्धिविद्वेषंत्यजराघवे ॥ यत्पादपोतमाश्रित्यज्ञानिनोभवसागरम् ॥ ३४ ॥ तरंतिभक्तिपूतांतास्ततोरामोनमानुषः ॥ भजस्वभक्तिभावेनरामंसर्वहृदालयम् ॥ ३५ ॥ यद्यपित्वंदुराचारोभक्त्यापूतोभविष्यसि ॥ मद्वाक्यंकुरुराजेंद्रकुलकौशलहेतवे ॥ ३६ ॥

वाला, काले और पीले रंगका ॥ ३१ ॥ कालापुरुष एक २ राक्षसोंके गृहमें दिखाई देताहै, अर्थात् एकमरण एक घरमें नित्य होताहै; ऐसे औरभी बहुतसे अपशकुन देखनेमें आतेहैं और उत्पन्न होतेहैं ॥ ३२ ॥ हे रावण ! कुलकी रक्षाकरनेके लिये शांतिकर और श्रीरामचंद्रजीका सत्कारकर उनको धनके साथ सीता अर्पण कर दो ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीको साक्षात् नारायण जानकर उनसे द्वेष छोड़ दो; उनके ऊपर भक्ति रक्खो, ज्ञानीपुरुष भक्तिसे पवित्र अंतःकरणवाले होकर श्रीरामचंद्रजीके चरणरूप नौकाका आश्रय करके संसारसागरके पार होजाते हैं; इसकारण तू रामचंद्रजीको मनुष्य मत समझ और सर्वके हृदयमें विराजमान होतेहुए रामचंद्रजीका भजन कर ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तू दुराचारी

भी भक्तिके योगसे पवित्र होजायगा । हे राजाधिराज ! मेरे कहे अनुसार करो तो तुम्हारे कुलका कल्याण होगा " ॥ ३६ ॥ इस प्रकार माल्यवान्‌ने हितकारक उपदेश किया, परन्तु रावणका अंतःकरण दुष्ट था, वह भलीभाँतिसे मृत्युके आधीन होगयाथा; इसकारण यह उपदेश उससे नहीं सहाजा (रुचा) सका; वह बोला ॥ ३७ ॥ " हे राक्षस ! राम मनुष्य, कृपण केवल वानरोंका आश्रय करनेवाला, पिताजीने जिसको निकाल दियाहै और मुनियोंका प्यारा, अर्थात् बलहीन है उनको किस बातमें तुम समर्थ मानतेहो ? ॥ ३८ ॥ ऐसा जान पडता है कि, अवश्य तुमको रामचंद्रने उपदेशके लिये भेजाहै, इससे तुम असंबद्ध (जो इच्छा होवे सो) वचन बोले रहेहो, तुम वृद्ध और कुटुम्बी (नाना) हो इस

तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥३७॥ मानवंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थं मन्यसेकेनहीनंपित्रामुनिप्रियम् ॥ ३८ ॥ रामेणप्रेषितोनूनंभाषसेत्वमनर्गलम् ॥ गच्छवृद्धोऽसिवंधुस्त्वंसोढंसर्वंत्वयोदितम् ॥ ३९ ॥ इतोमत्कर्णपदवींदहत्येतद्वचस्तव ॥ इत्युक्त्वासर्वसचिवैःसहितःप्रस्थितस्तदा ॥ ४० ॥ प्रासादाग्रेसमासीनःपश्यन्वानरसैनिकान् ॥ युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥ ४१ ॥ रामोऽपिधनुरादायलक्ष्मणेनसमाहृतम् ॥ दृष्ट्वारावणमासीनंकोपेनकलुषीकृतः ॥ ॥ ४२ ॥ किरीटिनंसमासीनंमंत्रिभिःपरिवेष्टितम् ॥ शशांकार्धनिभेनैवबाणेनैकेनराघवः ॥ ४३ ॥ श्वेतच्छत्रसहस्राणिकिरीटदशकं तथा ॥ चिच्छेदनिमिषार्धेनतदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४४ ॥

कारणसे तुम्हारा सब कहना सहन करताहूं ॥ ३९ ॥ अब तुम्हारे वचन मेरे कानोंको जलाते हैं " । ऐसा कहकर रावण सभामेंसे मंत्रियोंको साथ लेकर उठगया ॥ ४० ॥ फिर रावण राजमंदिरके शिखर पर बैठकर वानरोंकी सेनाको देखने लगा और अपने पास जो राक्षस थे उनसे लड़नेके लिये तैयार होनेको कहा ॥ ४१ ॥ इधर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीका लादिया हुआ धनुष हाथमें लेलिया । रावणको राजमंदिर पर बैठा देखकर रामचंद्रजी मारे क्रोधके खलबलागये ॥ ४२ ॥ मस्तकोंपर मुकुट धारण किये रावण मंत्रियोंके बीचमें बैठाथा । श्रीरामचंद्रजीने एक अर्द्धचंद्राकार बाणसे ॥ ४३ ॥ रावणके हजार श्वेत छत्र तोड़ डाले; व दश मुकुट भी काट गिराये, यह एक बड़ी विलक्षण बात हुई ॥ ४४ ॥

रावणको अति लाज लगी और वह अतिशीघ्र अपने मंदिरको चलागया; फिर इस दुष्टने प्रहस्तादि सर्व राक्षसोंको बुलायकर ॥ ४५ ॥ अति शीघ्रतासे उनको वानरोंके साथ युद्ध करनेके लिये जानेकी आज्ञा दी, रावणकी आज्ञा पाय राक्षसोंकी सेना चली। ढोल; भेरी मृदंग, शंख, आनक व दुन्दुभि इत्यादि बाजे बजने लगे ॥ ४६ ॥ राक्षस लोग ऊंट, भैंसा, गधे, सिंह और चीतोंके ऊपर सवार हो, तरवार, शूल, धनुष, फाँस, भाले, तोमरादि आयुध हाथमें लेकर ॥ ४७ ॥ लंकाके चारों द्वारोंपर आतेहुए दिखाई देने लगे रामचंद्रजीने वानर वीरोंको पहलेहीसे आज्ञा दे दीथी ॥ ४८ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा पाय वे वानरसेनापति पर्वतोंके छोटे २ शृङ्ग व बडे २ शिखर उखाड़ अनेक जाति

लज्जितोरावणस्तूर्णंविवेशभवनंस्वकम् ॥ आहूयराक्षसान्सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान्खलः ॥४५॥ वानरैःसहयुद्धायनोदयामाससत्वरः ॥ ततो भेरीमृदंगाद्यैःपणवानकगोमुखैः ॥ ४६ ॥ महिषोष्ट्रैःखरैःसिंहैर्द्वीपिभिःकृतवाहनाः ॥ खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥ ४७ ॥ लक्षिताःसर्वतोलंकांप्रतिद्वारमुपाययुः ॥ तत्पूर्वमेवरामेणनोदितावानरर्षभाः ॥४८॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिशिखराणिमहांतिच ॥ तरूंश्चोत्पाट्यविविधान्युद्धायहरियूथपाः ॥ ४९ ॥ प्रेक्षमाणाराघवस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा ॥ ५० ॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥ ५१ ॥ कोटीशतयुताश्चान्येरुरुधुर्नगरंभृशम् ॥ आप्लवंतः प्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ ५२ ॥ रामोजयत्यतिबलोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणानुपालितः ॥ ५३ ॥

के वृक्षोंको उपाट युद्धके लिये खडे थे ॥ ४९ ॥ रावणकी सेनाके झुंडके झुंड आतेहुए देखकर वह वानर रामचंद्रजीका प्रियकार्य करनेकी इच्छासे लंकापर चढे ॥ ५० ॥ कितनेही वानरोंके हाथमें वृक्ष दीखतेथे; कितनोंके हाथोंमें पर्वतोंके शिखर थे, कोई घूँसेही ताने हुए थे। फिर वह वानरसेनापति अपने आधीनके किसीके सहस्र, किसीके करोड़ ॥ ५१ ॥ किसीके शतकोटि इतने यूथपोंको साथ लेकर नगरीको चारोंओरसे घेर लेतेहुए। कोई वानरश्रेष्ठ उड रहाथा, कोई नीचे आताथा कोई गर्जता था; इस प्रकार जिधर तिधर गडबड हो रहीथी ॥ ५२ ॥ ' अति बलवान् रामचंद्रजीकी जयहो ! महापराक्रमी लक्ष्मणजीकी जय हो ! रामचंद्रजीने जिनकी रक्षा की है उन राजा

सुग्रीवकी जय हो ' ॥ ५३ ॥ ऐसा पुकारकर वानरगण शत्रुओंसे युद्ध करने लगे. हनुमान्, अंगद, कुमुद, नील ॥ ५४ ॥ नल, शरभ, मैंद, द्विविद, जाम्बवान्, दधिवक्र, केसरी, तार ॥ ५५ ॥ व औरभी बलवान् वानर जो कि यूथपति थे लंकाके द्वारोंपर कूद २ चारोंओरसे लंकाको रोक लेते हुए ॥ ५६ ॥ वानरोंके शरीर प्रचंड थे । वे वृक्षोंसे पर्वतोंके शिखरसे और दाँतोंसे राक्षसोंको बडे वेगसे मारते काटते हुए । वैसेही वे भयंकर राक्ष सभी क्रोधित होकर सर्व द्वारोंमेंसे ॥ ५७ ॥ बाहर निकलकर वानरोंको हटाते हुए, भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, कुल्हाडी आयुधोंसे वानरोंको मारने लगे । जैसे इन राक्षसोंके शरीर बडे २ थे वैसेही इनमें शक्तिभी बडीथी ॥ ५८ ॥ वैसेही विजयशाली वानरभी राक्षसोंको मारने लगे। रणभूमिमें

इत्येवंघोषयंतश्चसमंयुयुधिरेऽरिभिः ॥ हनूमानंगदश्चैवकुमुदोनीलएवच ॥ ५४ ॥ नलश्चशरभश्चैवमैंदोद्विविदएवच ॥ जांबवान्दधिवक्रश्चकेसरीतारएवच ॥ ५५ ॥ अन्येचबलिनःसर्वेयूथपाश्चप्लवंगमाः ॥ द्वाराण्युत्प्लुत्यलंकायाःसर्वतोरुरुधुर्भृशम् ॥ तदावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ ५६ ॥ विजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दंतैश्चवेगिताः ॥ राक्षसाश्चतदाभीमाद्वारेभ्यःसर्वतोरुषा ॥ ५७ ॥ निर्गत्यभिंदिपालैश्चखड्गैःशूलैःपरश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरानीकंमहाकायामहाबलाः ॥ ५८ ॥ राक्षसांश्चतथाजघ्नुर्वानराजितकाशिनः ॥ तथाबभूवसमरोमांसशोणितकर्दमः ॥ ५९ ॥ रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ तेहयैश्चगजैश्चैवरथैःकांचनसन्निभैः ॥ ६० ॥ रक्षोव्याघ्रायुयुधिरेनादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाश्चकपींद्राश्चपरस्परजयैषिणः ॥ ६१ ॥ राक्षसान्वानराजघ्नुर्वानरांश्चैवराक्षसाः ॥ रामेणविष्णुनादृष्टाहरयोदिविजांशजाः ॥ ६२ ॥ बभूवुर्बलिनोहृष्टास्तदापीतामृताइव ॥ सीताभिमर्शपापेनरावणेनाभिपालितान् ॥ ६३ ॥

जिधर तिधर मांस व रुधिरकी कीच होगई ॥ ५९ ॥ राक्षस और वानरोंका यह युद्ध इतना अद्भुत हुआ कि, पहले संसारमें जो घोर युद्ध होगये व आगेको होंगे उन सबका दृष्टान्त यह युद्ध होगया वे शूर राक्षस, हाथी, घोडा व सुवर्णमय रथोंमें बैठकर युद्ध करते थे। उन्होंने गर्जना करके दशोंदिशाओंको शब्दायमान कर दिया, राक्षस और वानर दोनोंही परस्पर जयकी इच्छा करते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ वानर राक्षसोंको मारते और राक्षस वानरोंको मारते थे । वानरोंने देवअंशसे अवतार लिया था, तिसपर साक्षात् विष्णुरूपी रामचंद्रने उनपर कृपा दृष्टि की है ॥ ६२ ॥ इस कारण उस समय वह अमृत पीनेके समान बलवान् होकर आनंद प्राप्त करतेहुए, राक्षसोंकी अवस्था इससे उलटी

थी । जिसने सीताजीको चुरा लानेका पापकर्म किया वह रावणही राक्षसोंका पालक है इसकारण ॥ ६३ ॥ राक्षसोंका ऐश्वर्य व सामर्थ्य नष्ट होगयाथा । ऐसे राक्षसोंपर वानर लोग बड़े बलसे प्रहार करते थे । इस प्रकारसे युद्ध होते हुए राक्षसोंकी बहुतसी सेना मारी गई । केवल उस सेनाका चौथा भाग बचरहा ॥ ६४ ॥ अपनी सेनाको वानरोंसे माराहुआ देख वह खोटी बुद्धिवाला दैत्य मेघनाद गुप्तरूपसे वहाँ आया । उसको ब्रह्माजीके वरसे वीरश्री प्राप्त हो रहीथी ॥ ६५ ॥ यह मेघनाद सारी अस्त्रविद्यामें निपुण था, तिसने आकाशसे ब्रह्मास्त्रके सहित अनेक शस्त्र जिधर तिधर छोडकर वानरोंकी सेनाको पीडादी ॥ ६६ ॥ और बराबर बाणोंकी वर्षा की; यह एक अद्भुत बात हुई । समस्त अस्त्र

हतश्रीकान्हतबलान्राक्षसानुग्रतेजसा ॥ चतुर्थांशावशेषेणनिहतंराक्षसंबलम् ॥ ६४ ॥ स्वसैन्यंनिहतंदृष्ट्वामेघनादोऽथदुष्टधीः ॥ ब्रह्मदत्तवरःश्रीमानंतर्धानंगतोऽसुरः ॥ ६५ ॥ सर्वास्त्रकुशलोव्योम्निब्रह्मास्त्रेणसमंततः ॥ नानाविधानिशस्त्राणिवानरानीकमर्दयन् ॥ ६६ ॥ ववर्षशरजालानितदद्भुतमिवाभवत् ॥ रामोऽपिमानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदांवरः ॥ ६७ ॥ क्षणंतूष्णीमुवासाथददर्शपतितंबलम् ॥ वानराणांरघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभः ॥ ६८ ॥ चापमानयसौमित्रेब्रह्मास्त्रेणासुरंक्षणात् ॥ भस्मीकरोमिमेपश्यबलमद्यरघूत्तम ॥ ६९ ॥ मेघनादोऽपितच्छ्रुत्वारामवाक्यमतंद्रितः ॥ तूर्णंजगामनगरंमाययामायिकोऽसुरः ॥ ७० ॥ पतितंवानरानीकंदृष्ट्वारामोऽतिदुःखितः ॥ उवाच मारुतिंशीघ्रंगत्वाक्षीरमहोदधिम् ॥ ७१ ॥

जाननेवालोंमें श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ थे, परन्तु ब्रह्मास्त्रको मान देनेके लिये ॥ ६७ ॥ क्षणभर चुप बैठे रहे । इतनेमेंही रामचंद्रजीने वानरोंकी सेनाको गिरते हुए देखा; तब उन्होंने क्रोधित होकर अग्निके समान लाल हो लक्ष्मणजीसे कहा;— ॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! धनुष लाओ (धनुष श्रीरामचंद्रजीके हाथमेंही था, परन्तु क्रोधके मारे उनको धनुषका ज्ञान नहीं रहा) मैं ब्रह्मास्त्रसे सब राक्षसोंकी सेनाको भस्मकर डालताहूं । हे रघुवीर ! आज मेरा पराक्रम देखो ! ॥ ६९ ॥ वह मायावी मेघनाद सावधान रहकर श्रीरामचंद्रजीकी सेनाको भली भाँति देख रहाथा; रामचंद्रजीके वचन उसके कानोंमें गये । उसने अतिशीघ्र नगरका मार्ग लिया ॥ ७० ॥ वानरसेनाको गिरी हुई देख अतिदुःखित हो श्रीरा

मचंद्रजी हनुमान्‌जीसे बोले—हे हनुमंत! अतिशीघ्र क्षीरमहासागर पर जाओ ॥ ७१ ॥ वहांपर द्रोणनामक एक पर्वत है; तिस पर उत्तम २ औषधियें उगती हैं; झटपट जायकर उस पर्वतको यहां ले आओ । और इन वानरोंके समूहको जिवाओ । तुम महा बुद्धिमान् हो मुझे निश्चय है कि, यह कार्य तुम्हारे हाथसे सिद्ध होगा, इस कार्यके करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति सदा रहेगी । पवनकुमार (हनुमान्) ' जैसी आपकी आज्ञा, कहकर तत्काल चलेगये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ कुछ विलम्बमें वह श्रेष्ठ वानर द्रोण पर्वत लेकर आये, और सर्व वानरोंको जिवाय वह पर्वत फिर जहांका तहां रखकर शीघ्र पलट आये ॥ ७४ ॥ वानरोंकी सेना फिर पहलेके समान भयंकर गर्जना करने लगी यह शब्द सुनकर रावणको

तत्रद्रोणगिरिर्नामदिव्यौषधिसमुद्भवः ॥ समानयद्रुतंगत्वासंजीवयमहामते ॥७२॥ वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्तेसुस्थिराभवेत् ॥ आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वाजगामानिलनंदनः ॥ ७३॥ आनीयचगिरिंसर्वान्वानरान्वानरर्षभः ॥ जीवयित्वापुनस्तत्रस्थापयित्वाययौद्रुतम् ॥ ॥ ७४ ॥ पूर्ववद्वैरवंनादंवानराणांवलौघतः ॥ श्रुत्वाविस्मयमापन्नोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥७५॥ राघवोमेमहाञ्छत्रुःप्राप्तोदेवविनिर्मितः॥ हंतुंतंसमरेशीघ्रंगच्छंतुममयूथपाः ॥ ७६ ॥ मंत्रिणोबांधवाःशूरायेचमत्प्रियकांक्षिणः॥ सर्वेगच्छंतुयुद्धायत्वरितंममशासनात् ॥ ७७ ॥ येनगच्छंतियुद्धायभीरवःप्राणविप्लवात्॥ तान्हनिष्याम्यहंसर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वाभयसंत्रस्तानिर्जग्मूरणकोविदाः ॥ अतिकायःप्रहस्तश्चमहानादमहोदरौ ॥ ७९ ॥ देवशत्रुर्निकुंभश्चदेवांतकनरांतकौ ॥ अपरेवलिनःसर्वेययुर्युद्धायवानरैः ॥ ८० ॥ एतेचान्येचवहवःशूराःशतसहस्रशः ॥ प्रविश्यवानरंसैन्यंममंथुर्वलदर्पिताः ॥ ८१ ॥

आश्चर्य हुआ, वह राक्षसोंसे बोला ॥ ७५ ॥ "इस लडाईमें देवताओंसे उत्पन्न किया हुआ राम मेरा प्रबल शत्रु प्राप्तहुआ है, उसको मारनेके लिये मेरे सेनापति शीघ्र जायँ ॥ ७६ ॥ मेरेमंत्री कुटुम्बी और मेरे हितकी इच्छा करनेवाले शूर वीर लोग सबही कोई मेरी आज्ञाके अनुसार शीघ्रतासे लडनेको जायँ ॥ ७७ ॥ जो डरकर प्राणका बचाव करनेको लड़ाईमें नहीं जायँगे उन सबको आज्ञाका अपमान करनेवाला समझकर मैं मार डालूंगा ॥ ७८ ॥ यह आज्ञा सुनकर सारे युद्धनिपुण राक्षस भयभीत होकर युद्धके लिये चले । अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर ॥ ७९ ॥ देवशत्रु, निकुंभ, देवान्तक, नरांतक व और दूसरे बलवान् राक्षसभी वानरोंसे युद्ध करनेको चले ॥ ८० ॥ व और भी

दूसरे सैकड़ों हजारों राक्षस जो कि, शूर थे वानरोंकी सेनामें घुसकर बलके गर्वसे उसको दहीके समान मथनेलगे ॥ ८१ ॥ वे राक्षस भुशुण्डी, भिन्दिपाल, बाण, तरवार कुल्हाडी व औरभी विविध भाँतिके अस्त्रोंसे वानरसेनापतियोंको मारने लगे ॥ ८२ ॥ उन वानरोंनेभी पर्वतोंके शिखर, नख, डाड और मूके इन शस्त्रोंके प्रहारसे सर्व राक्षसोंके सेनापतियोंका प्राणोंसे वियोग करा दिया ॥ ८३ ॥ कितनेही राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीने मारा, कितनेहीको सुग्रीवने संहारा, कुछ हनुमान्‌जीने; कुछ महाप्रतापी लक्ष्मणजीने; बचे बचाये दूसरे सेनापतियोंने मारे । इस प्रकारसे सर्व राक्षस मारे गये ॥ ८४ ॥ वानरोंके शरीरमें रामजीकी शक्तिका संचार हो रहाथा; इसकारण वे महाबलवान् हुए नहीं तो उनमें इतनी

भुशुंडिभिंदिपालैश्चबाणैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ अन्यैश्चविविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥ ८२ ॥ तेपादपैःपर्वताग्रैर्नखदंतैश्चमुष्टिभिः ॥ प्राणैर्विमोचयामासुःसर्वराक्षसयूथपान् ॥ ८३ ॥ रामेणनिहताःकेचित्सुग्रीवेणतथापरे ॥ हनूमताचांगदेनलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ यूथपैर्वानराणांतेनिहताःसर्वराक्षसाः ॥ ८४ ॥ रामतेजःसमाविश्यवानराबलिनोऽभवन् ॥ रामशक्तिविहीनानामेवंशक्तिःकुतोभवेत् ॥ ८५ ॥ सर्वेश्वरःसर्वमयोविधातामायामनुष्यत्वविडंबनेन ॥ सदाचिदानंदमयोऽपिरामोयुद्धादिलीलांवितनोतिमायाम् ॥ ८६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ श्रुत्वायुद्धेबलंनष्टमतिकायमुखंमहत् ॥ रावणोदुःखसंतप्तःक्रोधेनमहतावृतः ॥ १ ॥ निधायेंद्रजितंलंकारक्षणार्थंमहाद्युतिः ॥ स्वयंजगामयुद्धायरामेणसहराक्षसः ॥ २ ॥ दिव्यंस्यंदनमारुह्यसर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ राममेवाभिदुद्रावराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ ३ ॥

शक्ति कैसे होती ? ॥ ८५ ॥ श्रीरामचंद्रजी सर्व समर्थ हैं, सर्वमय हैं, स्वयं जगत्‌के रचनेवाले हैं सच्चिदानंदमय हैं तोभी अपनी मायाकरके मनुष्यका अनुकरण (नकल) कर युद्धादि अपनी लीला कर रहेहैं ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उ० यु० भा० पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजीके शक्ति लगना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि, हे पार्वति ! अतिकाय जिसका नायक; ऐसी सारी प्रचंड सेना युद्धमें मारी गई, यह समाचार सुनकर मारे दुःखके रावणके सर्वांग तप्त होगये उसको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १ ॥ उस महातेजस्वीने लंकाकी रक्षा करनेको इन्द्राजितको छोड़ा और रामचंद्रजीके

साथ लड़ाई करनेको सर्व अस्त्रशस्त्रवाले दिव्य रथमें बैठकर रामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २ ॥ ३ ॥ उसने सर्पके समान उग्र बाण छोड़कर अनेक वानरोंको मारा व सुग्रीवादि यूथपोंको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥ इतनेहीमें महाशक्तिमान् विभीषणजी हस्तमें गदा लेकर राक्षसोंके साथ युद्ध करते हुए दिखाई दिये तब रावणने विभीषणके ऊपर मय असुरकी (अपने सुसरे-यानी मन्दोदरीके पिताकी) दीहुई प्रचंड शक्ति छोड़ी ॥ ५ ॥ इस शक्तिको विभीषणका घात करनेके लिये जाताहुआ देखकर लक्ष्मणजीने विचार किया कि, विभीषणको रामचंद्रजीने अभय दिया है इस कारण इस दैत्यका वध होना योग्य नहीं है। और मुझपर इस शक्तिका कुछ चलनेवाला नहीं ॥ ६ ॥ ऐसा निश्चयकर वह प्रतापी लक्ष्मणजी

वानरान्बहुशोहत्वाबाणैराशीविषोपमैः ॥ पातयामाससुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥४॥ गदापाणिंमहासत्त्वंतत्रदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ उत्स सर्जमहाशक्तिंमयदत्तांविभीषणे ॥ ५ ॥ तामापतंतीमालोक्यविभीषणविघातिनीम् ॥ दत्ताभयोऽयंरामेणवधार्होंनायमासुरः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणोभीमंचापमादायवीर्यवान् ॥ विभीषणस्यपुरतःस्थितोऽकंपइवाचलः ॥७॥ साशक्तिर्लक्ष्मणतनुंविवेशामोघशक्तितः॥ यावंत्यःशक्तयोलोकेमायायाःसंभवंतिहि ॥ ८ ॥ तासामाधारभूतस्यलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ मायाशक्त्याभवेत्किंवाशेषांशस्यहरे स्तनोः ॥ ९ ॥ तथापिमानुषंभावमापन्नस्तदनुव्रतः ॥ मूर्च्छितःपतितोभूमौतमादातुंदशाननः ॥ १० ॥ हस्तैस्तोलयितुंशक्तोनबभूवा तिविस्मितः ॥ सर्वस्यजगतःसारंविराजंपरमेश्वरम् ॥ ११ ॥

हाथमें भयंकर धनुष लेकर विभीषणके आगे पर्वतकी समान निश्चल हो खडे रहे ॥ ७ ॥ उस शक्तिकी सामर्थ्य अमोघ (वृथा न जानेवाली) थी वह लक्ष्मणजीके अंगपर जायकर गिरी मायासे उत्पन्न होनेवाली जिनकी शक्तियां जगत्में हैं ॥ ८ ॥ उन सबके आधार लक्ष्मणजी हैं, कारण कि, वह महात्मा शेषजीके अंश अर्थात् परमेश्वरकी विभूति थे; उनको यह मायाशक्ति क्या कर सकती है ? ॥ ९ ॥ तथापि स्वयं अंगीकार किये हुए मनुष्यरूपके अनुकूल वर्ताव करनेको मूर्च्छित होकर लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिरे, रावण उनको उठानेका यत्न करनेलगा ॥ १० ॥ हाथोंसे बहुतेरा उठाना चाहा परन्तु न उठासका; तब रावण बहुतही विस्मितहुआ (महादेवजी बोले—हे पार्वति !) लक्ष्मणजी सब जगत्के सार हैं,

विराट् (स्थूलजटा) रूप उनकाही है, वह परमेश्वर हैं ॥ ११ ॥ सर्वलोकोंके आधार होनेसे व्यापक हैं उनका उठाना छोटेसे राक्षससे कैसे हो ? जब हनुमानूजीने देखा कि, रावण लक्ष्मणजीको लेजाना चाहता है ॥ १२ ॥ तब हनुमानूजीने क्रोधित होकर वज्रके समान अपने मूकेका रावणकी छातीमें प्रहार किया; उसके लगनेसे रावण घुटने टेककर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १३ ॥ उसके मुख, नेत्र और कानोंमेंसे रुधिर गिरने लगा; वह नेत्रोंको चलायमान करता हुआ जैसे तैसे रथमें बैठ गया ॥ १४ ॥ इधर हनुमानूजी रावणसे घायल कियेहुए लक्ष्मणजीको अपनी भुजाओंसे उठायकर श्रीरामचंद्रजीके निकट ले आये ॥ १५ ॥ वह जन्मरहित स्वयंप्रकाश परमेश्वर (लक्ष्मण) जी वास्तवमें सर्व जड़ पदार्थोंसेभी

कथंलोकाश्रयंविष्णुंतोलयेल्लघुराक्षसः ॥ ग्रहीतुकामंसौमित्रिंरावणंवीक्ष्यमारुतिः ॥ १२ ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्भुवि ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रश्रवणैरुद्वमन्त्राधिरंबहु ॥ निघूर्णमाननयनोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ अथलक्ष्मणमादायहनूमान्रावणार्दितम् ॥ आनयद्रामसामीप्यंबाहुभ्यांपरिगृह्यतम् ॥ १५ ॥ हनूमतःसुहृत्त्वेनभक्त्याचपरमेश्वरः ॥ लघुत्वमगमद्देवोगुरूणांगुरुरप्यजः ॥ १६ ॥ साशक्तिरपितंत्यक्त्वाज्ञात्वानारायणांशजम् ॥ रावणस्यरथंप्रागाद्रावणोपिशनैस्ततः ॥१७॥ संज्ञामवाप्यजग्राहवाणासनमथोरुषा ॥ राममेवाभिदुद्रावदृष्ट्वारामोऽपितंक्रुधा ॥ १८ ॥ आरुह्यजगतांनाथोहनूमंतंमहाबलम् ॥ रथस्थंरावणंदृष्ट्वाअभिदुद्रावराघवः ॥ १९ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ रामोगंभीरयावाचाराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २० ॥

अतिशय जड़ (भारी) थे; परन्तु हनुमानूजीके प्रेम व भक्तिसे लघु (हलके) होगये (उनके उठानेमें हनुमानूजीको जराभी श्रम नहीं हुआ) ॥ १६ ॥ जो शक्ति लक्ष्मणजीको लगीथी, वहभी जानगई कि, यह (लक्ष्मण) नारायणजीके अंशावतार हैं; इस कारण वह लक्ष्मणजीको छोड़कर रावणके रथपर लौटगई फिर रावणभी धीरे धीरे ॥ १७ ॥ चैतन्य हुआ और धनुष बाण ले क्रोध करके रामचंद्रजीकी ओर दौडा । जगत्पति रामचंद्रजीने रावणको देखकर महाक्रोधित हुए ॥१८॥ रावणको रथमें बैठाहुआ देखकर जगत्पति रामचंद्रजी तत्काल महापराक्रमी हनुमानूजीके काँधेपर बैठे और रावणके सन्मुख जायकर खड़े हुए ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने वज्र पडनेके समान कठोर अपने धनुष रोदेका शब्द किया । और गंभीर वाणीसे

राक्षसोंके राजा रावणसे कहा ॥ २० ॥ "हे राक्षसाधम ! खड़ारह । मेरी दृष्टि सब जगह सम है (मैं किसीसे द्वेष नहीं करता) ऐसा होनेपर भी तैंने मेरा वह अपराध किया है जिसको मैं नहीं सहसक्का; अब आज मेरे आगेसे कहां जायगा ? अर्थात् मेरी समदर्शिता ऐसी है पापीको दंड और पुण्यवानकी उन्नति; यह मेरी समदर्शिताका फल है ॥ २१ ॥ जिन बाणोंसे जनस्थानमें तेरे राक्षसोंका घात किया है उनसेही मैं आज तेरा वध करताहूं मेरे सामने खड़ारह" ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर रावणने, युद्धमें श्रीरामचंद्रजीको काँधेपर बैठाये हुए हनुमान्जीके तीक्ष्ण बाण मारे ॥ २३ ॥ तीव्र बाणोंके लगनेसे पवनकुमारका तेज; अपने तेजप्रभावसे बराबर बढताही गया उन महाकपिने बड़ी भारी गर्जना की ॥२४॥

राक्षसाधमतिष्ठाद्यक्कगमिष्यसिमेपुरः ॥ कृत्वाऽपराधमेवंमेसर्वत्रसमदर्शिनः ॥ २१ ॥ येनवाणेननिहताराक्षसास्तेजनालये ॥ तेनैवत्वांह निष्यामितिष्ठाद्यममगोचरे ॥ २२ ॥ श्रीरामस्यवचःश्रुत्वारावणोमारुतात्मजम् ॥ वहंतंराघवंसंख्येशरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥ २३ ॥ हतस्यापिशरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोःस्वतेजसा ॥ व्यवर्धतपुनस्तेजोननर्दचमहाकपिः ॥ २४ ॥ ततोदृष्ट्वाहनूमंतंसव्रणंरघुसत्तमः ॥ क्रोधमा हारयामासकालरुद्रइवापरः ॥२५॥ साश्वंरथंध्वजंसूतंशस्त्रौघंधनुरंजसा ॥ छत्रंपताकांतरसाचिच्छेदाशितसायकैः ॥२६॥ ततोमहाशरे णाशुरावणंरघुसत्तमः ॥ विव्याधवज्रकल्पेनपाकारिरिवपर्वतम् ॥ २७ ॥ रामबाणहतोवीरश्चचालचमुमोहच ॥ हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्यरघूत्तमः ॥ २८ ॥ अर्धचंद्रेणचिच्छेदतत्किरीटंरविप्रभम् ॥ अनुजानामिगच्छत्वमिदानींवाणपीडितः ॥ २९ ॥

हनुमान्जीके शररीरमें घाव हुआ देखकर रामचंद्रजी महाक्रोधित होकर प्रलयकालके दूसरे रुद्रके समान जान पड़ने लगे ॥ २५ ॥ रामजीने तीक्ष्णबाणोंको मारकर रावणका रथ, घोडे, ध्वजा, सारथी, शस्त्रसमूह, धनुष, छत्र, पताका सबकोही एक साथ क्षणभरमें सहजसे काट डाला ॥ २६ ॥ फिर जैसे पहले इन्द्रने पर्वतोंपर वज्र चलायाथा वैसेही रामचंद्रजीने तत्काल एक वज्रतुल्य प्रचंड बाण रावणके मारा ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीका बाण लगनेसे उस वीरका शरीर थर २ काँपने लगा उसको मूर्च्छा आगई; धनुष हाथसे गिर गया, उसकी अवस्था देखकर रामचंद्रजीने ॥ २८ ॥ एक अर्द्धचंद्राकार बाण ! मारकर सूर्यके समान तेजस्वी उसका मुकुट काट डाला और उससे कहा;—"हे रावण बाणसे पीडित हुए तुझको मैं

जानेकी आज्ञा देताहूं ॥ २९ ॥ लंकामें जाय आजके दिन विश्रामलेकर सावधान हो फिर प्रभातही आयकर मेरी सामर्थ्यको देखना " रामचंद्र जीके बाणका श्रेष्ठ प्रहार लगनेसे गर्व उतर गयाहै जिसका, ऐसा रावण ॥ ३० ॥ व्याकुल व लज्जित होकर लंकाको चला गया। इधर रामजी लक्ष्मणजीको भूमिपर चेष्टारहित पड़ा हुआ देखकर ॥ ३१ ॥ शोक करने लगे, मनुष्यका अवतार लेनेसे उनको यह लीला करनी पड़ी। कुछ देर पीछे वह हनुमान्‌जीसे बोले, वत्स ! जैसे तुम पहले वह दिव्य, औषधी लायेथे; वैसेही अब लायकर लक्ष्मणको और वानरोंको जिलाओ, रामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय वह महावानर 'बहुत अच्छा' कहकर चले ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हनुमान्‌जी पवनके समान वेगसे

प्रविश्यलंकामाश्वास्यश्वःपश्यासिवलंमम ॥ रामबाणेनसंविद्धोहतदर्पोऽथरावणः ॥ ३० ॥ महत्यालज्जयायुक्तोलंकांप्राविशदातुरः ॥ रामोऽपिलक्ष्मणंदृष्ट्वामूर्छितंपतितंभुवि ॥३१॥ मानुषत्वमुपाश्रित्यलीलयाऽनुशुशोचह ॥ ततः प्राहहनूमंतंवत्सजीवयलक्ष्मणम् ॥३२॥ महौषधीःसमानीयपूर्ववद्वानरानापि ॥ तथेतिराघवेणोक्तोजगामाशुमहाकपिः ॥ ३३ ॥ हनूमान्वायुवेगेनक्षणात्तीर्त्वामहोदधिम् ॥ एत स्मिन्नंतरेचारारावणायन्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ रामेणप्रेषितोदेवहनूमान्क्षीरसागरम् ॥ गतोनेतुंलक्ष्मणस्यजीवनार्थमहौषधीः ॥ ३५ ॥ श्रुत्वातच्चारवचनंराजाचिंतापरोऽभवत् ॥ जगामरात्रावेकाकीकालनेमिगृहंक्षणात् ॥ ३६ ॥ गृहागतंसमालोक्यरावणंविस्मयान्वितः॥ कालनेमिरुवाचेदंप्रांजलिर्भयविह्वलः ॥ अर्घ्यादिकंततः कृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३७ ॥ किंतेकरोमिराजेंद्रकिमागमनकारणम् ॥ कालनेमिमुवाचेदंरावणोदुःखपीडितः ॥ ३८ ॥

क्षणभरके बीचमें महासागरको उलाँघकर दूसरी पार गये, इतनेहीमें रावणके दूतोंने यह वार्ता रावणसे कही; वे बोले ॥ ३४ ॥ "हे महाराज ! रामचंद्रने लक्ष्मणको जिलानेके लिये दिव्य औषधि लानेके कारण हनुमान्‌जीको पठाया है, वह हनुमान् क्षीरसमुद्रपर गया है" ॥३५॥ दूतोंके वचन सुनकर रावणको बड़ी भारी चिन्ता हुई, वह वैसेही रात्रिकी बेला अकेला चलकर एक क्षणमें कालनेमिके घरपर गया ॥ ३६ ॥ रावणको अपने घरपर आया हुआ देखकर कालनेमिको विस्मय हुआ, उसने रावणको अर्घ्य दिया और पूजा करके आदरसत्कार किया, फिर डरके मारे काँपता २ रावणके आगे खड़ा हो हाथ जोड़कर बोला ॥ ३७ ॥ "हे राजाधिराज ! मैं आपकी कौनसी सेवा करूं ? आप किस अभिप्रायसे

इधर आये हैं ?" रावण दुःखके मारे त्रासित होरहाथा, उसने कालनेमिको उत्तर दिया ॥ ३८ ॥ "कालचक्रकी गतिसे मुझपरभी संकट आनकर पड़ा है मेरी मारी हुई शक्तिका प्रहार लगनेसे लक्ष्मण भूमिपर गिरा ॥ ३९ ॥ उसको जिलानेके लिये औषधी लानेको हनुमान् गया है; इस समय मेरा तुझसे यही कहना है कि, तू कोई ऐसा उपायकर कि जिससे हनुमान्का कोई विघ्नहो, तू बड़ा बुद्धिमान् है, निःसन्देह यह कार्य तेरे हाथसे होगा ॥ ४० ॥ तू कपटसे मुनिवेष धारण करके इस प्रबल वानरको फँसा और कल प्रभाततक उसका समय यहाँपर बीते ऐसी व्यवस्था करके फिर अपने घरमें लौट आना " ॥ ४१ ॥ रावणके वचन सुनकर कालनेमिने उससे कहा; हे महाराज रावण ! तुम मेरे वचन सुनो;

ममापिकालवशतःकष्टमेतदुपस्थितम् ॥ मयाशक्त्याहतोवीरोलक्ष्मणःपतितोभुवि ॥ ३९ ॥ तंजीवयितुमानेतुमौषधीर्हनुमान्गतः ॥ यथातस्यंभवेद्विघ्नंतथाकुरुमहामते ॥ ४० ॥ माययामुनिवेषेणमोहयस्वमहाकपिम् ॥ कालात्ययोयथाभूयात्तथाकृत्वैहिमंदिरे ॥ ४१ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाकालनेमिरुवाचतम् ॥ रावणेशवचोमेऽद्यशृणुधारयतत्त्वतः ॥ ४२ ॥ प्रियंतेकरवाण्येवनप्राणान्धारयाम्यहम् ॥ मारीचस्ययथारण्येपुराभून्मृगरूपिणः ॥ ४३ ॥ तथैवमेनसंदेहोभविष्यतिदशानन ॥ हताःपुत्राश्चपौत्राश्चबांधवाराक्षसाश्चते ॥ ४४ ॥ घातयित्वाऽसुरकुलंजीवितेनापिकिंतव ॥ राज्येनवासीतयावाकिंदेहेनजडात्मना ॥४५॥ सीतांप्रयच्छरामायराज्यंदेहिविभीषणे ॥ वनंयाहिमहाबाहोरम्यंमुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥

और उनका ठीक २ विचारकरो ॥ ४२ ॥ आपका प्रियकार्य करनेमें मेरा प्राण जाताहोय तो मैं प्राण छोड़ देनेको तैयारहूं; पहले मारीच दैत्य हरिणका रूप धारणकर वनमें गयाथा, जैसी अवस्था उसकी हुई ॥ ४३ ॥ वैसेही अवस्था मेरी होगी, इसमें कुछ भी संन्देह नहीं । हे रावण ! जब तुम्हारे पुत्र पौत्र बाँधवादि सर्वराक्षस मरण पाय गये ॥ ४४ ॥ ऐसी रीतिसे राक्षसकुलका नाश करानेपर तुमको जगत्में क्या करना है ? राज्य सीता, या इस जड़रूपी देहसे तुमको क्या फल होगा ? ॥ ४५ ॥ तुम्हारी बाँहे प्रचंड हैं; तुम प्रतापी वीरहो; यह सब बात ठीक है, परन्तु शक्तिका ऐसा उपयोग करनेसे क्या ? इसकारण मैं आपसे कहताहूं कि सीता रामचंद्रको देदो, राज्य विभीषणको दो और तुम आनंदसे उस

रमणीय वनमें जहांपर ऋषिलोग रहते हैं रहो ॥ ४६ ॥ वहांपर तुम प्रातःकालही पवित्र जलसे स्नान करना, संध्यादिक कर्म करना और एकांतमें पद्मासनादि सुखदाई आसनोंपर बैठना ॥ ४७ ॥ हे राजन्! सर्व बाहरी विषयोंमें अनुराग छोड़ दो, बाहरके प्रापंचिक विषयोंमें लीन हुई इन्द्रियोंको धीरे २ आत्मामें लगाओ ॥ ४८ ॥ हे पापरहित! और इसका सदा विचार करते रहो कि, आत्मा प्रकृतिसे अलगहै या नहीं। देह, बुद्धि, इन्द्रियें इत्यादिक स्थावर जंगम सर्व जगत् ॥ ४९ ॥ अर्थात् ब्रह्माजीसे लेकर अतिसूक्ष्म कीटपर्यन्त जो कुछ दीखताहै व सुनाई आता है वह सब प्रकृतिहै; उसकोही कोई मा[या] कहतेहैं ॥ ५० ॥ जगद्रूपी वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार होनेका कारण वही (प्रकृति) है।

स्नात्वाप्रातःशुभजलेकृत्वासंध्यादिकाःक्रियाः ॥ ततएकांतमाश्रित्यसुखासनपरिग्रहः ॥४७॥ विसृज्यसर्वतःसंगमितरान्विषयान्बहिः॥ बहिःप्रवृत्ताक्षगणंशनैःप्रत्यक्प्रवाहय ॥ ४८ ॥ प्रकृतेर्भिन्नमात्मानंविचारयसदाऽनघ ॥ चराचरंजगत्कृत्स्नंदेहबुद्धींद्रियादिकम् ॥ ४९ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंदृश्यतेश्रूयतेचयत् ॥ सैषाप्रकृतिरित्युक्तासैवमायेतिकीर्तिता ॥५०॥ सर्गस्थितिविनाशानांजगद्वृक्षस्यकारणम् ॥ लोहितश्वेतकृष्णादिप्रजाःसृजतिसर्वदा ॥ ५१ ॥ कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः ॥ मोहयत्यनिशंदेवमात्मानंस्वैर्गुणैर्विभुम् ॥५२॥ कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान्स्वगुणानात्मनीश्वरे ॥ आरोप्यस्ववशंकृत्वातेनक्रीडतिसर्वदा ॥५३॥ शुद्धोऽप्यात्मामाययायुक्तःपश्यतीवसदाबहिः ॥ विस्मृत्यचस्वमात्मानंमायागुणविमोहितः ॥ ५४ ॥

वह त्रिगुणात्मक होनेसे अपने गुणोंके अनुरूप रक्त (लाल, राजस) श्वेत (सफेत सात्विक) व कृष्ण (काला तामस) इत्यादि वर्णकी प्रजा नित्य उत्पन्न किया करती है ॥ ५१ ॥ उसके पुत्र काम क्रोधादिहैं और हिंसा तृष्णादि कन्याहैं। आत्मा (जीव) मूलके विभु (व्यापक) व ज्ञानरूपहैं परन्तु प्रकृति इस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करके अपने आपही उत्पन्न कियेहुए उन पदार्थोंके द्वारा; उस आत्माको नित्य मोहित करती है (तिन पदार्थों पर 'मैं' व 'मेरा' बुद्धि लगवा देतीहै) ॥ ५२ ॥ समर्थ आत्मापर कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि अपने गुण आरोप करके उनको अपने आधीन करलेती है और फिर उनके साथ सदा क्रीड़ा करती रहती है ॥ ५३ ॥ आत्मा वास्तवमें शुद्ध (दर्शनादि विकार रहित) है; परन्तु

उसको समागम प्राप्त होनेसे वह अपना रूप भूलजाती है और मायाके गुणोंसे मोहित होताहुआ बाहरके विषयोंको देखने (भोगने) लगती है ॥ ५४ ॥ फिर जब "मैं ज्ञानरूपहूं" ऐसा ज्ञान होताहै, उस जगद्गुरुकी गाँठ पड़ी व उसने उपदेश किया कि, इसकी दृष्टि विषयोंसे अलग होतीहै; फिर यह शुद्ध मुक्त आत्मरूपको स्पष्ट देखने लगताहै, ॥ ५५ ॥ प्राणीको गुरुका उपदेश मिला व तत्त्वचिंतनका अवसर प्राप्त हुआ कि, वह जीवन्मुक्त होजाता है; अर्थात् प्रकृतिके सुखदुःखादि गुणप्रवाहसे छूटताहै; इसकारण हे रावण ! तू अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर इस प्रकारसे आत्मविचारकर ॥ ५६ ॥ इस कारण तुम शीघ्र आत्माको प्रकृतिसे अलग जानो; ऐसा ज्ञान करनेसे मुक्ति मिलेगी ।

यदासद्गुरुणायुक्तोबोध्यतेबोधरूपिणा ॥ निवृत्तदृष्टिरात्मानंपश्यत्येवसदास्फुटम् ॥ ५५ ॥ जीवन्मुक्तःसदादेहीमुच्यतेप्राकृतैर्गुणैः ॥ त्वमप्येवंसदात्मानंविचार्यनियतेंद्रियः ॥ ५६ ॥ प्रकृतेरन्यमात्मानंज्ञात्वामुक्तोभविष्यसि ॥ ध्यातुंयद्यसमर्थोऽसिसगुणंदेवमाश्रय ॥ ॥ ५७ ॥ हृत्पद्मकर्णिकेस्वर्णपीठेमणिगणान्विते ॥ मृदुश्लक्ष्णतरेतत्रजानक्यासहसंस्थितम् ॥ ५८ ॥ वीरासनंविशालाक्षंविद्युत्पुंजनिभांवरम् ॥ किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ नूपुरैःकटकैर्भांतंतथैववनमालया ॥ लक्ष्मणेनधनुर्द्वंद्वकरेणपरिसेवितम् ॥ ॥ ६० ॥ एवंध्यात्वसदात्मानंरामंसर्वहृदिस्थितम् ॥ भक्त्यापरमयायुक्तोमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ६१ ॥ शृणुवैचरितंतस्यभक्तैर्नित्यमनन्यधीः ॥ एवंचेत्कृतपूर्वाणिपापानिचमहान्त्यपि ॥ क्षणादेवविनश्यंतियथाऽग्नेस्तूलराशयः ॥ ६२ ॥

जो मेरा कहाहुआ ज्ञान कुछ अशक्य ज्ञात हो तो देवताके सगुणरूपका आश्रयकरो ॥ ५७ ॥ हृदयकमलकी कर्णिकामें, मणिगण शोभित अतीव मृदु और स्निग्ध सुवर्णके सिंहासनपर जानकीजीके साथ श्रीरामचंद्रजी बैठेहैं ॥ ५८ ॥ वे वीरासन पर आसीन हैं । उसके नेत्र विशाल वस्त्र बिजलीके समान पीले चमकदार हैं, किरीट, हार, बाजू, कौस्तुभ इत्यादि गहने शरीर पर जगह २ दिखलाई देते हैं ॥ ५९ ॥ नूपुर कड़े वनमालाके पहरनेसे उनकी मूर्ति विशेष शोभायमान होरहीहै । दोधनुष हाथमें लेकर लक्ष्मणजी (एक धनु अपना व दूसरा रामचंद्रजीका) सेवाके लिये निकट खड़ेहैं ॥ ६० ॥ जो पुरुष सर्वान्तर्यामी आत्मरूपी रामचंद्रजीका इस प्रकारसे नित्य ध्यान करताहै; उसकी रामचंद्रजीपर अत्युत्तम भक्ति होती है; वह निःसंदेह मुक्तिको प्राप्त होजाताहै ॥ ६१ ॥ हे रावण ! भक्तजन उनके चरित्र गाया करते हैं; तुम

उन चरित्रोंको निरंतर श्रवण करतेरहो—ऐसा करनेसे जो पहले तुमने असंख्य महापातक किये हैं; वे अग्नि लगनेसे
बडा भारी ढेर जलजाता है, तेरे पाप तैसेही क्षणभरमें नष्ट होजायँगे ॥ ६२ ॥ वैर छोडकर एकांतचित्तसे भक्त हो उन
स्वरूप केवल रामचंद्रजीका भजनकरो । वे नाम रूपसे वर्जितहैं; मनमें सदा उनके ब्रह्मरूपका विचार कियाकरो
मद० उमा० युद्ध० भा० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ कालनेमिका माराजाना, लक्ष्मणजीका जीवित होना, कुम्भकर्णका सोतेसे
कहते हैं, कि, हे पार्वति ! वास्तवमें कालनेमिके वचन अमृतके समान मधुर व हितकारी थे; परन्तु रावणको नहीं रुचे, जैसे तत्ता घी
रपूर्णमेकंविहायवैरंनिजभक्तियुक्तः ॥ हृदासदाभावितभावरूपमनामरूपंपुरुषंपुराणम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामा
श्वरसंवादे युद्धकांडेषष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ कालनेमिवचःश्रुत्वारावणोऽमृतसन्निभम् ॥
घताग्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत् ॥ १ ॥ निहन्मित्वांदुरात्मानंमच्छासनपराङ्मुखम् ॥ परैःकिंचिद्गृहीत्वात्वंभाषसेरामकिं
॥ कालनेमिरुवाचेदंरावणंदेवकिंक्रुधा ॥ नरोचतेमेवचनंयदिगत्वाकरोमितत् ॥३॥ इत्युक्त्वाप्रययौशीघ्रंकालनेमिर्महासुरः॥
ावणेनैवहनूमद्विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ सगत्वाहिमवत्पार्श्वंतपोवनमकल्पयत् ॥ तत्रशिष्यैःपरिवृतोमुनिवेषधरःखलः ॥ ५ ॥
से उबल उठता है वैसेही इन वचनोंको सुनतेही रावणके अंगोंमें आग बढगई; वह क्रोधसे लाल २ नेत्र कर कालनेमिसे बोला;—
" दुष्ट ! तू मेरी आज्ञाको उल्लंघन करताहै इस कारण मैं तुझे मारे डालताहूं; तू शत्रुके पाससे कुछ लेकर (धनादि) रामचंद्रजीके दास
हो ऐसा कहताहै इसमें कुछ संशय नहीं " ॥ २ ॥ कालनेमिने रावणको उत्तर दिया;—" देव ! क्रोधसे क्या काम है ? यदि मेरा कहना
मनको न भावे तो (जैसा आप कहते हैं) जाकर वही करताहूं " ॥ ३ ॥ इतना कहकर वह महादैत्य कालनेमि वहांसे अति शीघ्र चला;
क फिर रावणने हनुमान्‌जीका विघ्न करनेके लिये जानेको आग्रह करके आज्ञादी; तब वह निरुपाय होगया ॥ ४ ॥ उसने हिमालयके

" मन २ में सदा भजन करो । वे स्वयं नामरूपसे रहितहैं, किन्तु यह भुवनके नाम रूप उनसेही होतेहैं । " यह अर्थभी ठीकहै ।

भागमें (उतारमें) जाय महात्मा पवनकुमार हनुमानूजी जिस मार्गमें जातेथे; उस मार्गमें एक उपवन तैयार किया और स्वयं मुनिका वेष य चेलोंके साथ वहां स्थित हुआ। जब हनुमानूजी उस मार्गसे जाने लगे तो यह रमणीक आश्रम उनको दिखाई दिया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब जस्वी पवनकुमारने मनमें विचारकिया कि, पहलेभी मैं द्रोणपर्वतपर आय गयाथा; परन्तु तब यह उत्तम आश्रम मेरे देखनेमें नहीं आया ॥ ७ ॥ क्या मैं मार्ग भूलगया ? या मेरे चित्तको कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ है (आश्रम न होने परभी मुझे आश्रम मालूम पडता है) ? अथवा मैं संध्या बिताऊँ, सब मुनियोंका दर्शन करूं ॥ ८ ॥ जलपियूं और फिर उस अत्युत्तम द्रोणपर्वतपर जाऊँ इस प्रकार अपने आप कह हनुमा

मार्गमासाद्यवायुसूनोर्महात्मनः ॥ ततोगत्वाददर्शाथहनूमानाश्रमंशुभम् ॥ ६ ॥ चिंतयामासमनसाश्रीमान्पवननंदनः ॥ मेतन्मेमुनिमंडलमुत्तमम् ॥ ७ ॥ मार्गोविभ्रंशितोवामेभ्रमोवाचित्तसंभवः ॥ यद्वाऽऽविश्याश्रमपदंदृष्ट्वामुनिमशेषतः ॥ ८ ॥ ंततोयामिद्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वाप्रविवेशाथसर्वतोयोजनायतम् ॥ ९ ॥ आश्रमंकदलीशालखर्जूरपनसादिभिः ॥ कफलैर्नम्रशाखैश्चपादपैः ॥ १० ॥ वैरभावविनिर्मुक्तंशुद्धंनिर्मललक्षणम् ॥ तस्मिन्महाश्रमेरम्येकालनेमिःसराक्षसः ॥ ११ ॥ ास्थायचकारशिवपूजनम् ॥ हनूमानभिवाद्याहगौरवेणमहासुरम् ॥१२॥ भगवन्रामदूतोऽहंहनूमान्नामनामतः ॥ रामकार्येण ंधगंतुमुद्यतः ॥ १३ ॥

प्रवेश किया, यह आश्रम चारों ओरसे चारकोशका विस्तारवाला था ॥ ९ ॥ इस आश्रममें केला, शाल, खजूर, कटहल तिधर लग रहे हैं। उनकी डालियें पके हुए फलोंके भारसे झुकरही हैं ॥ १० ॥ वहांपर सर्प, न्यौले इत्यादि परस्पर स्वभा प्राणी वैरभाव छोडकर एकसाथ क्रीडा करते हैं, जिधर तिधर पवित्रजन व निर्मल लक्षण दिखाई देते हैं, ऐसे उस विस्तीर्ण राक्षस कालनेमि ॥ ११ ॥ कपटयोग अंगीकारकरके बैठा हुआ महादेवजीकी आराधना कररहाथा। हनुमानूजीने पूज्य यका वंदन कर कहा ॥ १२ ॥ "हे त्रिकालज्ञ मुने ! मैं हनुमान् रामचंद्रजीका दूत हूं, रामचंद्रजीका कोई बडा कार्य

करनेके लिये क्षीरसमुद्रपर जाताहूं ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मनिष्ठ मुने ! मारे प्यासके मेरा कंठ सूखगयाहै । यहापर पानी कहीं है ? मेरी इच्छा है कि मैं पेटभर पानी पियूं । हे मुनिवर ! सो बताओ कि पानी कहां है ?" ॥ १४ ॥ हनुमान्‌जीके वचन सुनकर कालनेमिने उनसे कहा । "मेरे कमंडलुमें जल है सो तुम पिओ ॥ १५ ॥ यह पके हुए फल खाय, यहां सुखसे रहकर निद्रा लो । पानी पीतेही शीघ्रतासे जानेकी त्वराकरनेका कारण नहीं है ॥ १६ ॥ मैं अपने तपकी सामर्थ्यसे भूत, भविष्य और वर्तमानको जानताहूं, लक्ष्मणजी चैतन्य होगये व और सारे वानरभी रामजीकी दृष्टिसे जीवित होगये हैं" यह सुनकर हनुमान्‌जी बोले,—हे मुने ! मुझे बहुत प्यास लगी है, लोटेके जलसे वह शान्त नहीं होगी; इसकारण

तृषामांबाधतेब्रह्मन्नुदकंकुत्रविद्यते ॥ यथेच्छंपातुमिच्छामिकथ्यतांमेमुनीश्वर ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वामारुतेर्वाक्यंकालनेमिस्तमब्रवीत् ॥ कमंडलुगतंतोयंममत्वंपातुमर्हसि ॥ १५ ॥ भुंक्ष्वचेमानिपक्वानिफलानितदनंतरम् ॥ निवसस्वसुखेनात्रनिद्रामोहित्वरास्तुमा ॥ १६ ॥ भूतंभव्यंभविष्यंचजानामितपसास्वयम् ॥ उत्थितोलक्ष्मणःसर्वेवानरारामवीक्षिताः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वाहनुमानाहकमंडलुजलेनमे ॥ नशाम्यत्यधिकातृष्णाततोदर्शयमेजलम् ॥ १८ ॥ तथेत्याज्ञापयामासवटुंमायाविकल्पितम् ॥ बटोदर्शयविस्तीर्णंवायुसूनोर्जलाशयम् ॥ १९ ॥ निमील्यचाक्षिणीतोयंपीत्वागच्छममांतिकम् ॥ उपदेक्ष्यामितेमंत्रंयेनद्रक्ष्यसिचौषधीः ॥ २० ॥ तथेतिदर्शितंशीघ्रं वटुनासलिलाशयम् ॥ प्रविश्यहनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ॥ २१ ॥ ततश्चागत्यमकरीमहामायामहाकपिम् ॥ अग्रसत्तंमहावेगान्मारुतिंघोररूपिणी ॥ २२ ॥ ततोददर्शहनुमान्ग्रसंतींमकरींरुषा ॥ दारयामासहस्ताभ्यांवदनंसाममारह ॥ २३ ॥

मुझे कोई सरोवर दिखादो ॥ १७ ॥ १८ ॥ कालनेमिने 'अच्छा' कहकर, शीघ्रही मायासे रचेहुए एक ब्रह्मचारीको आज्ञादी कि "बटो ! इस पवनकुमारको बड़ा भारी सरोवर दिखाओ ।" ॥ १९ ॥ फिर कालनेमि हनुमान्‌जीसे बोला "तुम आँखें मूँदके पानी पी झटपट मेरे पास चले आओ; तब मैं तुम्हें मंत्रका उपदेश करूंगा; तिस मंत्रकी सामर्थ्यसे तुम्हें औषधी दीख जायगी ॥ २० ॥ हनुमान्‌जीने 'अच्छा' कहकर तुरंतही बटुकके दिखायेहुए सरोवरमें प्रवेश किया व आँख बंद करके पानी पीने लगे ॥ २१ ॥ इतनेहीमें महामायाकी जाननेवाली, घोर रूपा मकरी महावेगसे आयकर महाकपि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ग्रासकरने लगी ॥ २२ ॥ हनुमान्‌जीने नेत्र खोल यह देखा कि, एक मकरी हमें

निगले जाती है; उन्होंने क्रोधित होकर दोनों हाथोंसे उस मकरीका मुख चीर डाला कि जिससे वह तत्काल मरगई ॥ २३ ॥ इतनेहीमें आकाशके मध्य दिव्यरूप धारण करनेवाली एक स्त्री दिखाई देनेलगी; उसका नाम धान्यमाली था, वह हनुमान्‌जीसे बोली;— ॥ २४ ॥ " हे वानरेश्वर ! तुम्हारी कृपाकरके मैं आज शापसे छूटगई। मैं एक अप्सराहूं। किसीकारणसे मुनिने मुझे शाप दियाथा, इससेही मैं मकरी हुई ॥ २५ ॥ हे पापरहित ! अब मेरे कहनेको ध्यान देखर सुनो; आश्रममें जिस पुरुषको तुमने देखाहै वह कालनेमि नामक महादैत्य है; मार्गमें तुम्हारे कार्यमें विघ्न डालनेको रावणने उसे भेजाहै ॥ २६ ॥ वह मुनि नहीं, वरन् मुनिके समान वेषधारण करनेवाला मुनियोंका मारनेवाला राक्षसहै; तुम इस

ततोऽतरिक्षेदहशेदिव्यरूपधरांगना ॥ धान्यमालीतिविख्याताहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥ त्वत्प्रसादादहंशापाद्विमुक्तास्मिकपीश्वर ॥ शप्ताहंमुनिनापूर्वमप्सराःकारणांतरे ॥ २५ ॥ आश्रमेयस्तुतेदृष्टःकालनेमिर्महाऽसुरः ॥ रावणप्रहितोमार्गेविघ्नंकर्तुंतवानघ ॥ २६ ॥ मुनिवेषधरोनासौमुनिर्विप्रविहिंसकः ॥ जहिदुष्टंगच्छशीघ्रंद्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ गच्छाम्यहंब्रह्मलोकंत्वत्स्पर्शाद्धूतकल्मषा ॥ इत्युक्त्वासाययौस्वर्गंहनूमानप्यथाश्रमम् ॥२८॥ आगतंतंसमालोक्यकालनेमिरभाषत ॥ किंविलंबेनमहतातववानरसत्तम ॥२९॥ गृहाणमत्तोमंत्रांस्त्वंदेहिमेगुरुदक्षिणाम् ॥ इत्युक्तोहनुमान्मुष्टिंदृढंबद्ध्वाहराक्षसम् ॥ ३० ॥ गृहाणदक्षिणामेतामित्युक्त्वानिजघानतम् ॥ विसृज्यमुनिवेषंसकालनेमिर्महासुरः ॥ ३१॥ युयुधेवायुपुत्रेणनानामायाविधानतः ॥ महामायिकदूतोऽसौहनूमान्मायिनांरिपुः ॥३२॥

दुष्टका वध करके अतिशीघ्र अत्युत्तम द्रोणपर्वतपर चले जाओ ॥ २७ ॥ तुम्हारे स्पर्शसे मेरे पाप नष्ट होगये; अब मैं ब्रह्मलोकको जाती हूं। " इतना कहकर वह स्वर्गको गई और इधर हनुमान्‌जी आश्रममें आये ॥ २८ ॥ उनको निकट आता हुआ देखकर कालनेमिने कहा;—" हे वानरवीर ! इतनी अबेर वहाँपर क्यों लगाई ? ॥ २९ ॥ अच्छा अब मुझसे मंत्र सीखो और मुझे गुरुदक्षिणा दो, " उस राक्षसके यह कहनेपर हनुमान्‌जी भलीभाँति मूका बाँधकर उस राक्षससे बोले;— ॥ ३० ॥ " यह ले दक्षिणा ! यह कहकर हनुमान्‌जीने उसके एक घूँसा मारा; तत्काल वह महादैत्य कालनेमि ऋषिवेष छोड़ करके ॥ ३१ ॥ हनुमान्‌जीके साथ युद्ध करने लगा; दैत्यने अनेक प्रकारकी माया की परन्तु यह

हनुमानूजी महामाया करनेवाले (सर्व जगत्के आदि कारण माया जिनके आधीन है तिन रामचंद्रजीके) दूत व मायावी (कपटी) राक्षसोंके शत्रु हैं; फिर इस राक्षसकी लघुमाया इनका क्या करसकती है ? ॥ ३२ ॥ हनुमानूजीने उसके शिरपर एक घूँसामारा, तिस घूँसेसे शिर फटगया और वह दैत्य मरण पाता हुआ । इसके उपरान्त हनुमानूजी क्षीरसमुद्र पर गये और वहांपर महागिरि द्रोणको उन्होंने देखा ॥ ३३ ॥ परन्तु उसपर औषधी कहीं न दिखाई दी । इस कारण हनुमानूजीने उस पर्वतकोही उखाड़ लिया और शीघ्रही वायुवेगसे; श्रीरामचंद्रजीके निकट आया ॥ ३४ ॥ उनसे बोले "हे देवाधिदेव ! यह महापर्वतही ले आयाहूं; इसका जो उपयोग होवे सो कर लीजिये,— इस कार्यमें विलम्ब करना योग्य नहीं ।" ॥ ३५ ॥ हनुमानूजीके वचन सुनकर रामचंद्रजीका अंतःकरण प्रसन्न हुआ । उन्होंने विना विलम्ब

जघानमुष्टिनाशीर्ष्णिभग्नमूर्धाममारसः ॥ ततःक्षीरनिधिंगत्वादृष्ट्वाद्रोणंमहागिरिम् ॥ ३३ ॥ अदृष्ट्वाचौषधीस्तत्रगिरिमुत्पाट्यसत्वरः ॥
गृहीत्वावायुवेगेनगत्वारामस्यसन्निधिम् ॥ ३४ ॥ उवाचहनुमान्राममानीतोऽयंमहागिरिः ॥ यद्युक्तंकुरुदेवेशविलंबोनात्रयुज्यते ॥३५॥
श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरामःसंतुष्टमानसः ॥ गृहीत्वाचौषधीःशीघ्रंसुषेणेनमहामतिः ॥ ३६ ॥ चिकित्सांकारयामासलक्ष्मणायमहात्मने ॥
ततःसुप्तोत्थितइवबुद्धाप्रोवाचलक्ष्मणः ॥ ३७ ॥ तिष्ठतिष्ठक्वगंतासिहन्मीदानींदशानन ॥ इतिब्रुवंतमालोक्यमूर्ध्न्यवघ्रायराघवः ॥ ३८ ॥
मारुतिंप्राहवत्साद्यत्वत्प्रसादान्महाकपे ॥ निरामयंप्रपश्यामिलक्ष्मणंभ्रातरंमम ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वावानरैःसार्धंसुग्रीवेणसमन्वितः ॥
विभीषणमतेनैवयुद्धायसमवस्थितः ॥ ४० ॥

किये पहाड़ परसे औषधी लेली । रामचंद्रजीके हाथका स्पर्श होतेही औषधीका तेज बढ़ने लगा फिर उन महाबुद्धिमान् प्रभुने महामति सुषेणसे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजीकी चिकित्सा कराई । तत्काल लक्ष्मणजी मोह छोड़कर नींदसे उठे हुएके समान उठकर कहनेलगे ॥ ३७ ॥ दशानन ! खड़ारह ! ! 'कहां जायगा मैं अभी तेरा वध करताहूं !' लक्ष्मणजीको ऐसा बोलता हुआ देख रामचंद्रजीने उसका शिर सूँघा और ॥ ३८ ॥ हनुमानूजीसे कहा,— "वत्स ! वानरेश्वर ! आज केवल तेरे अनुग्रहसे मेरे भ्राताकी पीड़ा दूर होगई व इस लक्ष्मणको मैंने देखा ॥ ३९ ॥ रामचंद्रजी इतना कह, वानरों और सुग्रीवको साथले विभीषणके मतानुसार (क्योंकि इनको लंकाका सब भेद भलीभाँति

ज्ञातथा) युद्धकी तैयारीसे खड़े रहे ॥ ४० ॥ युद्धमें बड़े उत्साही वानरगण पाषाण, वृक्ष व पर्वतोंके शिखर लेकर युद्ध करनेके लिये शत्रुके सन्मुख चले ॥ ४१ ॥ इधर महादैत्य रावण रामचंद्रजीके बाण लगनेसे घायल होगयाथा, सिंहने हाथीकी, या गरुडने सर्पकी जैसी दशाकी हो; वैसेही रामचंद्रजीने रावणकी अवस्था कीथी ॥ ४२ ॥ महासमर्थ रामचंद्रजीसे हार खाय वह उठाकर राजा घरपर गया और सिंहसनापर बैठे राक्षसोंसे कहने लगा ॥ ४३ ॥ हे राक्षसगण ! ब्रह्माजीने पहलेही यह स्थिर कर दिया है कि, मनुष्यके हाथसे हमारी मृत्यु होगी । मरा वधकर सके ऐसा कोई मनुष्य पृथ्वीपर नहीं है ॥ ४४ ॥ इसकारण साक्षात् नारायण मनुष्य हुए हैं; इसमें कोई संशय नहीं । परमेश्वरही दशरथका

पाषाणैःपादपैश्चैवपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ युद्धायाभिमुखाभूत्वाययुःसर्वेयुयुत्सवः ॥ ४१ ॥ रावणोविव्यथेरामबाणैर्विद्धोमहासुरः ॥ मातंगइवसिंहेनगरुडेनेवपन्नगः ॥ ४२ ॥ अभिभूतोगमद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ सिंहासनेसमाविश्यराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ मानुषेणैवमेमृत्युमाहपूर्वंपितामहः ॥ मानुषोहिनमांहंतुंशक्तोऽस्तिभुविकश्चन ॥ ४४ ॥ ततोनारायणःसाक्षान्मानुषोऽभून्नसंशयः ॥ रामोदाशरथिर्भूत्वामांहंतुंसमुपस्थितः ॥ ४५ ॥ अनरण्येनयत्पूर्वंशप्तोऽहंराक्षसेश्वराः ॥ उत्पत्स्यतेचमद्वंशेपरमात्मासनातनः ॥ ४६ ॥ तेनत्वंपुत्रपौत्रैश्चबांधवैश्चसमन्वितः ॥ हनिष्यसेनसंदेहइत्युक्त्वामांदिवंगतः ॥ ४७ ॥ सएवरामःसंजातोमदर्थेमांहनिष्यति ॥ कुंभकर्णस्तुमूढात्मासदानिद्रावशंगतः ॥ ४८ ॥ तंविबोध्यमहासत्वमानयंतुममांतिकम् ॥ इत्युक्तास्तेमहाकायास्तूर्णंगत्वातुयत्नतः ॥ ४९ ॥ विबोध्यकुंभश्रवणंनिन्यूरावणसन्निधिम् ॥ नमस्कृत्यसराजानमासनोपरिसंस्थितः ॥ ५० ॥

पुत्र होकर मेरे मारनेको यहां आया है ॥ ४५ ॥ हे राक्ष वीरगण ! अनरण्यने पहले मुझे शाप दिया है कि "मेरे (अनरण्यके) वंशमें सनातन परमात्मा अवतार लेंगे ॥ ४६ ॥ तिनके हाथसे पुत्र, पौत्र बांधवादि सबके साथ तू (रावण) माराजायगा," इतना कहकर अनरण्य स्वर्गको चले गये ॥ ४७ ॥ वही यह राम मेरे मारनेके लिये उत्पन्न हुआ है इसकारण यह मेरा वध करेगा । मूढस्वभाव कुंभकर्ण तो सदा सोताही रहता है ॥ ४८ ॥ उस महाबलवान्को जगायकर मेरेपास ले आओ । रावणके ऐसा कहनेपर बड़े शरीरवाले राक्षसगण शीघ्रतासे जाय बडे यत्नसे ॥ ४९ ॥ कुंभकर्णको जगाय रावणकेपास ले आये । वह राजाको प्रणाम करके आसनपर बैठगया ॥ ५० ॥

तब राजा रावण अपने भ्रातासे दीनवाणी कहने लगा " भइया कुंभकर्ण ! बड़ाही संकट आन पड़ा है; सो उसको तुम सुनो ॥ ५१ ॥ हमारे शूर पुत्र, पौत्र, बांधवोंको रामचंद्रने मारडाला ऐसा जानपड़ता है कि, मेरा मृत्युसमय निकट आगया. इस समय मैं क्या करूं ? ॥ ५२ ॥ यह पराक्रमी दशरथका पुत्र रामचंद्र सुग्रीवके साथ बड़ी सेना ले समुद्रके पार होकर यहाँ आया और हमारी सेनाको काट रहा है ॥ ५३ ॥ युद्धमें मुख्य २ राक्षसोंको वानरोंने मारडाला; परन्तु इस युद्धमें कदापि वानरोंका क्षय दिखाई नहीं देता ॥ ५४ ॥ हे महाबलवान् कुंभकर्ण ! उनका नाश कर, जिसके लिये तुमको जगाया गया है; हे महाबलवान् ! भ्राताके लिये यह कठिन होने योग्य कार्य सिद्धकर " ॥ ५५ ॥ रावणके यह

तमाहरावणोराजाभ्रातरंदीनयागिरा ॥ कुंभकर्णनिबोधत्वंमहत्कष्टमुपस्थितम् ॥ ५१ ॥ रामेणानिहताःशूराःपुत्राःपौत्राश्चबांधवाः ॥ किंकर्तव्यमिदानींमेमृत्युकालउपस्थिते ॥ ५२ ॥ एषदाशरथीरामःसुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंसबलस्तीर्त्वामूलंनःपरिकृंतति ॥ ५३ ॥ येराक्षसामुख्यतमास्तेहतावानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकदाचन ॥ ५४ ॥ नाशयस्वमहाबाहोयदर्थेपरिबोधितः ॥ भ्रातुरर्थेमहासत्त्वकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वातद्रावणेंद्रस्यवचनंपरिदेवितम् ॥ कुंभकर्णोजहासोच्चैर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ पुरामंत्रविचारेतेगदितंयन्मयानृप ॥ तदद्यत्वामुपगतंफलंपापस्यकर्मणः ॥ ५७ ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तोरामोनारायणःपरः ॥ सीताचयोगमायेतिबोधितोऽपिनबुध्यसे ॥ ५८ ॥ एकदाहंवनेसानौविशालायांस्थितोनिशि ॥ दृष्टोमयामुनिःसाक्षान्नारदोदिव्यदर्शनः ॥ ५९ ॥ तमब्रुवंमहाभागकुतोगंतासिमेवद ॥ इत्युक्तोनारदःप्राहदेवानांमंत्रणेस्थितः ॥ ६० ॥

आर्त वचन सुन कुंभकर्ण ठठायकर हँसा और रावणसे बोला ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! पहले एकान्तमें मंत्रणा होनेके समय जो मैंने तुमसे कहाथा उसही पापकर्मका फल आज तुमको प्राप्त हुआ ! ॥ ५७ ॥ तिस समय मैंने तुमसे कहाथा कि, राम परमात्मा नारायण हैं, व सीताजी योगमाया हैं, कितनाही उपदेश किया परन्तु तुम नहीं समझे ! ॥ ५८ ॥ एक अवसरमें हेमन्त रजनीमें वनके बीच पर्वतके शिखरपर मैं बैठाथा; इतनेहीमें साक्षात् नारदजी मुनि मुझको दिखाई दिये; उनका दर्शन पाना सर्व स्थानमें अलभ्य लाभ समझा जाता है ॥ ५९ ॥ मैंने उनसे कहा " हे

१ " विशालरजनी " शब्दका अर्थ–"हेमन्तरजनी" है । टीकाकार कहता है कि, 'विशाल' का अर्थ–'विशाल शिला' समझना चाहिये, अर्थात् " विशाल शिलाके ऊपर " ।

महाज्ञानवंत ! आप कहाँसे आतेहो सो कहिये,–" मेरा यह प्रश्न सुनकर नारदजी बोले;–देवताओंका कुछ गुप्तविचार हो रहाथा वहाँपर मैं इतनी देरतक बैठाथा और अब वहींसे आरहा हूँ ॥ ६० ॥ वहांपर जो वृत्तान्त हुआ वह मैं यथार्थ २ तुझसे कहताहूँ सुन,–तू और तेरे भ्राता रावणने देवताओंको बहुत त्रास दिया है; इसकारण वे विष्णुजीके पास गये ॥ ६१ ॥ उनके अंतःकरणमें भक्ति होनेसे नित्य विष्णुजीमें लगे हुए हैं। देवताओंने उन समर्थ देवाधिदेवकी स्तुति करके प्रार्थना करी कि "हे देव ! यह रावण त्रिलोकीका शत्रु उत्पन्न हुआ है; उसके आगे किसीकी कुछ नहीं चलती, आप उसका वध कीजिये ॥ ६२ ॥ ब्रह्माजीने पहलेही ऐसा संकेत कर रक्खा है कि, मनुष्यके हाथसे उसकी

तत्रोत्पन्नमुदंतंतेवक्ष्यामिशृणुतत्त्वतः ॥ युवाभ्यांपीडितादेवाःसर्वैविष्णुमुपागताः ॥ ६१ ॥ ऊचुस्तेदेवदेवेशंस्तुत्वाभक्त्यासमाहिताः ॥ जहिरावणमक्षोभ्यंदेवत्रैलोक्यकंटकम् ॥ ६२ ॥ मानुषेणमृतिस्तस्यकल्पिताब्रह्मणापुरा ॥ अतस्त्वंमानुषोभूत्वाजहिरावणकंटकम् ॥ ॥ ६३ ॥ तथेत्याहमहाविष्णुःसत्यसंकल्पईश्वरः ॥ जातोरघुकुलेदेवोरामइत्यभिविश्रुतः ॥ ६४ ॥ सहनिष्यतिवःसर्वानित्युक्त्वाप्रययौ मुनिः ॥ अतोजानीहिरामंत्वंपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ६५ ॥ त्यजवैरंभजस्वाद्यमायामानुषविग्रहम् ॥ भजतोभक्तिभावेनप्रसीदातिरघूत्तमः॥ ॥ ६६ ॥ भक्तिर्जनित्रीज्ञानस्यभक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ॥ भक्तिहीनेनयत्किंचित्कृतंसर्वमसत्समम् ॥ ६७॥ अवताराःसुबहवोविष्णो र्लीलानुकारिणः ॥ तेषांसहस्रसदृशोरामोज्ञानमयःशिवः ॥ ६८ ॥

मृत्यु होगी; इसकारण आप मनुष्यअवतार धारण करके रावण नाम शत्रुका वध कीजिये " ॥ ६३ ॥ महाविष्णुजीने 'अच्छा' कहा है उन प्रभुका संकल्पभी अन्यथा नहीं हो सकता और उन्हीं देवताने रघुकुलमें रामनामसे अवतार लिया है ॥ ६४ ॥ वह तुम्हारा सबका नाश करेंगे। इतना कहकर मुनिजी स्वर्गको चले गये। हे रावण ! निश्चय समझो कि, श्रीरामचंद्रजी सनातन ब्रह्म हैं ॥ ६५ ॥ उनसे वैर भाव छोड़दे व उनकी भक्तिकर उन्होंने माया करके मनुष्यरूप धारण किया है; भक्तिभावसे सेवा करनेवालेपर रामचंद्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ६६ ॥ भक्ति ज्ञान उत्पन्न करते व मोक्ष देते हैं, भक्तिहीन प्राणीका सब कुछ करना निष्फल होता है ॥ ६७ ॥ विष्णुजीके अनेक अवतार होगयेहैं.

वह जो स्वरूप धारण करते हैं, उसकेही अनुरूप लीला करते हैं। ऐसे सहस्र अवतारोंके समान (साधारण अवतारोंसे सहस्रगुण बड़ा) यह एक रामावतार ज्ञानरूप व कल्याणकारक है ॥ ६८ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष मन, वचन, कायसे नित्य रामचंद्रजीका भजन करते हैं, वे अनायास संसारके पार हो हरिपदको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६९ ॥ पृथ्वीपर जो शुद्ध मनके पुरुष नित्य रामचंद्रजीका ध्यान करते व उनके चरित्रोंको पढ़ते हैं, वे साधु हैं। यह काल एक सहासर्प है, उस सर्पका शरीर संसार है;—यह सर्व लोक इस सर्पकी कुंडलीमें फँसे हुए हैं;—परन्तु साधुलोग इन फन्दोंसे सदा छूटे हुए हैं, उनको सीतापतिके अनंत सुखरूपी पदकी प्राप्ति निःसंदेह होगी ॥ ७० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे

रामंभजंतिनिपुणामनसावचसानिशम् ॥ अनायासेनसंसारंतीर्त्वायांतिहरेःपदम् ॥ ६९ ॥ येराममेवसततंभुविशुद्धसत्त्वाध्यायंति तस्यचरितानिपठंतिसंतः ॥ मुक्तास्तएवभवभोगमहाहिपाशैःसीतापतेःपदमनंतसुखंप्रयांति ॥ ७० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वाभ्रुकुटीविकटाननः ॥ दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥ त्वमानीतोनमेज्ञानबोधनायसुबुद्धिमान् ॥ मयाकृतंसमीकृत्ययुद्धयस्वयदिरोचते ॥ २ ॥ नोचेद्ग च्छसुषुप्त्यर्थंनिद्रात्वांबाधतेधुना ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ३ ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायतूर्णंयुद्धायनिर्ययौ ॥ सलंघयि त्वाप्राकारंमहापर्वतसन्निभः ॥ ४ ॥

युद्धकांडे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ कुंभकर्णका माराजाना ॥ महादेवजी बोले—हे पार्वति ! कुंभकर्णके वचन सुनतेही मानो क्रोधसे रावण आसनसे उछलपड़ा; भौंहैं चढ़गईं; मुख उग्र होगया, रावण यह बोला ॥ १ ॥ "जानता हूं कि, तुम बड़े बुद्धिमान् हो, परन्तु ज्ञानका उपदेश लेनेके लिये मैंने तुमको नहीं बुलाया है, जो कुछ मैंने कहा है; उसको सहन करकै यदि रुचि होवै तो जाय कर युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तो आनंदसे अपने घरपर जाकर सोवो; (समझता हूं) इससमय तुम नींदसे कातर हो रहेहो !" रावणके वचन सुनकर महाबलवान् कुंभकर्ण जानगया ॥ ३ ॥ कि "यह रूठ गये" इस समय अधिक उपदेश देना उचित नहीं । इसकारण बहुत शीघ्र युद्धके लिये निकला । उसका

शरीर प्रचंड पर्वतके समान था । वह नगरके कोटको उलांघ ॥ ४ ॥ वानरोंको घबड़ाता हुआ शीघ्र नगरके बाहर आया । उसने वहाँ बड़ा घोर गर्जन किया कि, जिससे समुद्रमें शब्द होने लगा ॥ ५ ॥ मारे क्रोधके दोनों हाथोंसे वानरोंको खायकर उनको पीडा देने लगा; जिसप्रकार समस्त प्राणी काल अथवा यमको देखकर भागते हैं; वैसेही पंखदार पर्वतके समान उस कुंभकर्णको देखकर तिससमय समस्त वानर भागने लगे, हाथमें मुद्गर लेकर कुंभकर्ण वानरोंकी सेनामें घूमने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ घूमनेके झपट्टेमें कितने एक वानर पृथ्वीपर गिरगये । आस पासके वारनोंको हाथोंसे पकड़ मुख मसलडाला. कितनेहीको मुद्गरोंके प्रहारसे चूर्ण किया; कितनोंहीको अनेक प्रकारसे लात मूके मारकर

निर्ययौनगरात्तूर्णंभीषयन्हरिसैनिकान् ॥ सननादमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ ५ ॥ वानरान्कालयामासवाहुभ्यांभक्षयन्रुषा ॥ कुंभकर्णंतदादृष्ट्वासपक्षमिवपर्वतम् ॥ ६ ॥ दुद्रुवुर्वानराःसर्वेकालांतकमिवाखिलाः ॥ भ्रमंतंहरिवाहिन्यांमुद्गरेणमहावलम् ॥ ७ ॥ कालयंतंहरीन्वेगाद्भक्षयंतंसमंततः ॥ चूर्णयंतंमुद्गरेणपाणिपादैरनेकधा ॥ ८ ॥ कुंभकर्णंतदादृष्ट्वागदापाणिर्विभीषणः ॥ ननामचरणौतस्यभ्रातुर्ज्येष्ठस्यबुद्धिमान् ॥ ९ ॥ विभीषणोऽहंभ्रातुर्मेदयांकुरुमहामते ॥ रावणस्तुमयाभ्रातर्बहुधापरिबोधितः ॥ १० ॥ सीतांदेहीतिरामायरामःसाक्षाज्जनार्दनः ॥ नशृणोतिचमांहंतुंखड्गमुद्यम्यचोक्तवान् ॥ ११ ॥ धिक्त्वांगच्छेतिमांहत्वापदापापिभिरावृतः ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिःसार्धंरामंशरणमागतः ॥१२॥ तच्छ्रुत्वाकुंभकर्णोऽपिज्ञात्वाभ्रातरमागतम् ॥ समालिंग्यचवत्सत्वंजीवरामपदाश्रयः ॥१३॥

तोड़ने लगा ॥ ८ ॥ यह देखकर गदा हाथमें लिये हुए बुद्धिमान्विभीषणजीने अपने बड़े भ्राता उस कुंभकर्णके चरणोंमें प्रणाम करके कहा— ॥ ९ ॥ हे भ्रातः! मैं, विभीषण आपका भ्राता वंदन करता हूं आप बहुत ज्ञानवान् हैं मुझपर दया कीजिये । रावणको मैंने अनेक प्रकारसे समझाया ॥ १० ॥ कि—सीता रामचंद्रजीको देदो रामचन्द्रजी साक्षात् सर्ववंद्य परमेश्वर हैं । परन्तु उसने मेरा एक कहा न सुना, बरन् मेरे मारनेको खड्ग उठायकर कहा ॥ ११ ॥ कि 'तुझको धिक्कार है! यहाँसे निकलजा । भ्रातः! दुष्ट पापी मंत्रियोंसे युक्त रावणने मेरे लात मारी ! इस कारण मैं अपने चारों मंत्रियोंको साथ लेकर रामचंद्रजीकी शरणमें आया" ॥ १२ ॥ यह वचन सुनकर कुंभकर्णने समझा कि, भइया निकट

खडा है (मारे क्रोधसे अबतक नहीं पहँचानाथा) तब उसने विभीषणको हृदयसे लगायकर कहा। "वत्स ! बहुत अच्छा हुआ कि, तैंने रामचंद्रजीके चरणोंका आश्रय लिया तुम बहुत कालतक जीवित रहो ॥ १३ ॥ इससे राक्षसोंके कुलकी रक्षा व हित होगा; तुम महा भगवद्भक्त हो, ऐसा मैंने नारदजीके मुखसे सुना है ॥ १४ ॥ हे तात ! इस समय मैं किसी अपने विरानेको देखता या पहँचानता नहींहूं, मारे मदके मेरे नेत्र धूंदले हो रहेहैं कदाचित् भूलसे तेरेही प्रहार लगजाय !" ॥ १५ ॥ कुंभकर्णके ऐसा कहनेसे विभीषणके मुखपर आंसू बहने लगे वह भ्राताके चरणोंकी वंदना करके रामचंद्रजीके निकट आये और चिंतायुक्त होकर खडे रहे ॥ १६ ॥ इधर कुम्भकर्ण हाथ पांवसे वानरोंका चूरा करता हुआ सेनामें फिरने लगा।

कुलसंरक्षणार्थायराक्षसानांहितायच ॥ महाभागवतोऽसित्वंपुरामेनारदाच्छ्रुतम् ॥ १४ ॥ गच्छतातममेदानींदृश्यतेनचकिंचन ॥ मदीयोवापरोवापिमदमत्तविलोचनः ॥ १५ ॥ इत्युक्तोऽश्रुमुखोभ्रातुश्चरणावभिवंद्यसः ॥ रामपार्श्वमुपागत्यचिंतापरउपस्थितः ॥ १६ ॥ कुंभकर्णोऽपिहस्ताभ्यांपादाभ्यांपेषयन्हरीन् ॥ चचारवानरींसेनांकालयन्गंधहस्तिवत् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वातंराघवःक्रुद्धोवायव्यंशस्त्रमादरात् ॥ चिक्षेपकुंभकर्णायतेनाचिच्छेदरक्षसः ॥ १८ ॥ समुद्गरंदक्षहस्तंतेनघोरंननादसः ॥ सहस्तःपतितोभूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥ १९ ॥ पर्यंतमाश्रिताःसर्वेवानराभयवेपिताः ॥ रामराक्षसयोर्युद्धंपश्यंतःपर्यवस्थिताः ॥ २० ॥

गंधहस्ती[1]के मदकी गंध आनेसे जैसे हाथी दूर भाग जाते हैं, वैसेही कुम्भकर्णको देखतेही मारे भयके वानरोंकी सेना भागने लगी ॥ १७ ॥ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजीको क्रोध आया; उन्होंने सावधानसे एक शस्त्रपर वायव्यास्त्रकी स्थापना की। फिर वह कुम्भकर्णपर चलाया; तिसके लगनेसे मुद्गरसहित उस राक्षसका दहिना हाथ कटपडा, हाथके टूटनेसे कुम्भकर्ण भयंकर गर्जा; उस हाथने पृथ्वीपर गिरते २ अनेक वानरोंको मसलडाला ॥ १८ ॥ १९ ॥ कुछ एक धूर्त वानर कुम्भकर्णके शरीरके धोरे खडे हुएथे (हाथ पसारकर कुम्भकर्ण जैसेही उनको पकडना चाहते तब वे वानर छिटककर उसके पंजेसे चूक उसकी बगलके निकट खडे हो रहते; और जैसे २ कुम्भकर्ण फिरता वैसेही वैसे उसकी बगलके नीचेको

१ जिसके गंधकी बास अनेसे दूसरे हाथी भाग जाते हैं उस हाथीको "गंधगज" कहते हैं। उसके समान ।

फिरते उनका यह धूर्तपन कुम्भकर्णने नहीं जाना) परन्तु अब हाथ टूटनेपर वे सब भयके मारे थर २ काँपने लगे और एकटक होकर राक्षस और रामचंद्रजीका युद्ध खडे हो देखने लगे ॥ २० ॥ एक हाथ कटजानेपर कुम्भकर्ण दूसरे हाथसे वृक्ष उठाय युद्धमें रामजीको मारनेके लिये अति वेगसे उनके सन्मुख धाया ॥ २१ ॥ परन्तु रामचंद्रजीने ऐन्द्रास्त्र चलायकर वृक्षसहित उसकी बांई भुजाभी काटडाली. दोनों हाथ टूटनेपरभी वह गर्जता हुआ सामनेको चला आता है ऐसा देखकर रामचंद्रजीने ॥ २२ ॥ तीक्ष्ण और अर्द्धचन्द्राकार दो बाण लिये; और उससे कुम्भकर्णके दोनों पांव काट डाले; वह पांव " सों सों " शब्द करतेहुए लंकाले द्वारपर जायकर गिरे ॥ २३ ॥ दोनों हाथ व दोनों पाँव कट जानेसे वह अतिभयंकर कुम्भकर्ण

कुंभकर्णश्छिन्नहस्तःशालमुद्यम्यवेगतः ॥ समरेराघवंहंतुंदुद्रावतमथोच्छिनत् ॥ २१ ॥ शालेनसहितंवामहस्तमैंद्रेणराघवः ॥ छिन्नबाहुमथायांतंनर्दंतंवीक्ष्यराघवः ॥ २२ ॥ द्वावर्धचंद्रौनिशितावादायास्यपदद्वयम् ॥ चिच्छेदपतितौपादौलंकाद्वारिमहास्वनौ ॥ २३ ॥ निकृत्तपाणिपादोऽपिकुंभकर्णोऽतिभीषणः ॥ वडवामुखवद्वक्त्रंव्यादायरघुनंदनम् ॥ २४ ॥ अभिदुद्रावनिनदन्राहुश्चंद्रमसंयथा ॥ अपूरयच्छिताग्रैश्चसायकैस्तद्रघूत्तमः ॥ २५ ॥ शरपूरितवक्त्रोऽसौचुक्रोशातिभयंकरः ॥ अथसूर्यप्रतीकाशमैंद्रंशरमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ वज्राशनिसमंरामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ॥ सतत्पर्वतसंकाशंस्फुरत्कुंडलदंष्ट्रकम् ॥ २७ ॥ चकर्तरक्षोधिपतेःशिरोवृत्रमिवाशनिः ॥ तच्छिरःपतितंलंकाद्वारिकायोमहोदधौ ॥ २८ ॥ शिरोऽस्य रोधयद्द्वारंकायोनक्राद्यचूर्णयत् ॥ ततोदेवाःसऋषयोगंधर्वाःपन्नगाःखगाः॥२९॥

जैसे राहु चन्द्रपर दौडता है ऐसे वडवामुखके[1] समान अपना मुख फैलाय गर्जता हुआ श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया। रामचंद्रजीने तीक्ष्ण नोंकके बाण मारकर उसका मुख भरदिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ बाणोंके द्वारा मुख भरजानेसे वह अति भयंकर दैत्य चिल्लाने लगा; फिर रामजीने सूर्यके समान तेजस्वी एक अत्युत्तम बाण ले उसपर ऐन्द्रास्त्रकी स्थापनकी और इन्द्रके वज्रके समान अथवा विजयके समान वह बाण दैत्यके मारनेके लिये उसपर चलाया; जैसे वज्र चलायकर इन्द्रजीने वृत्रासुरका वध कियाथा तैसेही तिस बाणने उस राक्षस वीरकी मस्तक काटकर धडसे अलग किया; वह मस्तक पर्वतके समान प्रचंड था;उसमें कुंडल व डाढें चमक रहीथीं, कुंभकर्णका शरीर लंकाके द्वारपर गिरा और धड महासागरमें पडा॥२६॥२७॥२८॥उसके मस्तकने

१ समुद्रमें ओरस चौरसका शतयोजनका विस्तारवाला वडवाग्निका कुंडहै उसको "वड़वामुख" कहते हैं, तैसा।

द्वारको बंद कर लिया और धड़ने समुद्रके नाकेआदि प्राणियोंको चूरा कर डाला । कुंभकर्णके मारे जानेपर ऋषियोंके सहित देवता, गंधर्व; सर्प, पक्षी, ॥२९॥ सिद्ध, यक्ष, गुह्यक और अप्सराआदि सबहीको आनंद हुआ; यह सब रामचंद्रजीपर फूलोंकी वर्षा करकै उनकी स्तुति करने लगे ॥३०॥ तिस अवसरमें देवर्षि नारदजी रामजीके दर्शन करनेको आकाशसे शीघ्रतापूर्वक नीचे उतर आये । उनकी अंगकांतिके जिधर तिधर फैलनेसे दशों दिशा प्रकाशमान दिखाईदेने लगीं ॥ ३१ ॥ रामजीका शरीर नीले कमलके समान श्यामवर्ण है, मूर्ति अति सुन्दर, हाथमें धनुष धारण किये हुए, नेत्र रक्तवर्ण और विशाल, दूसरे हाथमें इन्द्रास्त्र लिये हुए हैं ॥ ३२ ॥ ऐसे वे प्रभु, बाणोंके प्रहारसे विह्वल होकर पड़े हुए वानरोंकीओर दयादृष्टिसे देख रहेथे । उस मूर्तिको देखकर नारदजीके अंतरमें भक्ति उछली । उन्होंने गद्गदवाणीसे श्रीरामजीकी स्तुति करना प्रारंभ किया ॥ ३३ ॥ नारदजी

सिद्धायक्षागुह्यकाश्चअप्सरोभिश्चराघवम् ॥ ईडिरेकुसुमासारैर्वर्षतश्चाभिनंदिताः ॥ ३० ॥ आजगामतदारामंद्रष्टुंदेवमुनीश्वरः ॥ नारदोगगनात्तूर्णंस्वभासाभासयन्दिशः ॥ ३१ ॥ राममिंदीवरश्याममुदारांगंधनुर्धरम् ॥ ईषत्ताम्रविशालाक्षमैंद्रास्त्राँचितबाहुकम् ॥ ३२ ॥ दयार्द्रदृष्ट्यापश्यंतंवानराञ्छरपीडितान् ॥ दृष्ट्वागद्गदयावाचाभक्त्यास्तोतुंप्रचक्रमे ॥ ३३ ॥ नारदउवाच ॥ देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ॥ नारायणाखिलाधारविश्वसाक्षिन्नमोऽस्तुते ॥ ३४ ॥ विशुद्धज्ञानरूपोऽपित्वंलोकानतिवंचयन् ॥ माययामनुजाकारःसुखदुःखादिमानिव ॥ ३५ ॥ त्वंमाययागूह्यमानःसर्वेषांहृदिसंस्थितः ॥ स्वयंज्योतिःस्वभावत्वंव्यक्तएवामलात्मनाम् ॥ ३६ ॥ उन्मीलयन्सृजस्येतन्नेत्रेरामजगत्त्रयम् ॥ उपसंह्रियतेसर्वंत्वयाचक्षुर्निमीलनात् ॥ ३७ ॥

बोले;—" हे देवाधिदेव ! आप सर्व जगत्के स्वामी सनातन परमात्मा हो; जिसको नारायण कहते हैं व सब जगत्के आधार और सर्व विश्वके साक्षी आपही हैं, आपको नमस्कार हो ॥ ३४ ॥ अतिनिर्मल ज्ञानही वास्तवमें तुम्हारा रूप है ऐसा होनेपरभी आप माया करके मनुष्यका अवतार ले (मुझकोभी साधारण प्राणियोंके समान सुख दुःख भोगने पड़ते हैं) ऐसा दिखाते हो । परन्तु यह केवल आपकी सब लोकोंको ठगनेकी युक्ति है ॥ ३५ ॥ आप सर्वके हृदयमें रहते हैं । परन्तु मायासे ढके रहनेके कारण किसीको दिखाई नहीं देते आपका स्वरूप स्वयंप्रकाश है । जिनके अंतःकरण शुद्ध होते हैं, उनको स्पष्ट आपका दर्शन मिलता है ॥ ३६ ॥ हे राम ! आप नेत्र उघाडनेसे त्रिलोकीको उत्पन्न करते हैं; तैसेही आप

नेत्र मूँदकर विश्वका लय करते हैं (तुम्हारे नेत्रोंका खुलना मूंद जानाही जगत्‌की उत्पत्ति और लयका कारण है) ॥ ३७ ॥ जिसके आधारसे यह सब जगत् भासता है, जिससे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होती है; और जिससे अधिक लोकमें कोई नहीं है, सो वह ब्रह्म आपही हैं; आपको नमस्कार होवो ॥ ३८ ॥ मुनिश्रेष्ठगण जिसको प्रकृति, पुरुष, काल, व्यक्त स्वरूप पंच भूतादि, और अव्यक्त स्वरूप ब्रह्म कहकर [1]विचारते हैं, तुम वही रामचंद्रजी हो; आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ कितने एक स्थानोंमें वेदोंने कहा है कि–आपका स्वरूप विकाररहित व शुद्ध ज्ञान है और उन्होंने [वेदोंने] कहीं २ यह कहा है कि, आप सब जगत्‌के आकार हो ॥ ४० ॥ तिसमें प्रथम शुद्ध और विकाररहित रूप बताया; और फिर यह कहा कि, जगत्‌रूप है। जगत् स्वयं विकारसे भराहै इस कारण ईश्वरभी विकारी ठहरा; इसपर वेदवादियोंका परस्पर विरोध दिखलाई देता है; विना

यस्मिन्सर्वमिदंभातियतश्चैतच्चराचरम् ॥ यस्मान्नकिंचिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मैतेब्रह्मणेनमः ॥३८॥ प्रकृतिंपुरुषंकालंव्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ॥
यंजानंतिमुनिश्रेष्ठास्तस्मैरामायतेनमः ॥३९॥ विकाररहितंशुद्धंज्ञानरूपंश्रुतिर्जगौ ॥ त्वांसर्वजगदाकारमूर्तिंचाप्याहसाश्रुतिः ॥ ४० ॥
विरोधोदृश्यतेदेववैदिकोवेदवादिनाम् ॥ निश्चयंनाधिगच्छंतित्वत्प्रसादंविनाबुधाः ॥ ४१ ॥ माययाक्रीडतोदेवनविरोधोमनागपि ॥
रश्मिजालंरवेर्यद्वद्दृश्यतेजलवद्भ्रमात् ॥ ४२ ॥ भ्रांतिज्ञानात्तथरामत्वयिसर्वंप्रकल्प्यते ॥ मनसोविषयोदेवरूपंतेनिर्गुणंपरम् ॥ ४३ ॥

तुम्हारी कृपा हुए लोग अज्ञानीही रहते हैं। उनसे वेदवचनोंका यथार्थ (परस्पर) विरुद्ध न होनेवाला अर्थ नहीं जानाजाता ॥ ४१ ॥ हे देव ! जब तुम मायाकी सहायतासे लीला करते हो, तब फिर कुछ विरोध नहीं रहता; " तुम निराकार और साकार हो " इन दो श्रुतियोंसे विरोध हो रहाथा परन्तु तुम्हारे प्रसादसे निश्चय होता है कि, तुम मायाके आश्रयमें साकार और वास्तवमें निराकार हो; इसलिये अब कुछ विरोध नहीं रहा। जिस प्रकार भ्रमसे सूर्यकी किरणें जलके समान मालूम पड़ती हैं अर्थात् जैसे मरीचिकामें जलका भ्रम होता है ॥ ४२ ॥ उस भ्रमज्ञान होनेपर वह पानी नहीं, किन्तु सूर्यकी किरणें हैं, ऐसा ज्ञान होना कठिन है। एक वस्तुमें दूसरी वस्तुके ज्ञान होनेको " भ्रान्तिज्ञान " कहते हैं। जैसे सीपीमें

[1] " प्रकृति, पुरुष और व्यक्तस्वरूपकाल (निमेषादि) और अव्यक्तस्वरूपकाल (क्षणादि) टीकाकार इस अर्थको मानताहै।

चांदीका ज्ञान होता है । इस ज्ञानको 'भ्रान्तिज्ञान' कहते हैं । इस 'भ्रान्तिज्ञान' के होनेपर आपके जगत्का रूप कल्पित हुआ है; परन्तु आपका स्वरूप और परम है । वह श्रवण, मनन, निदिध्यास; आदिसे सत्कार पाये हुए मनसे जाना जाता है; क्योंकि श्रुतिमें भी कहा है कि "दृश्यते परया बुद्ध्या" उत्तम बुद्धिसे जाना जाता है । महाराज! जब आपका निर्गुण स्वरूप नहीं जाना जाय तो उसकी सेवा कैसे की जाय ? इस प्रकार विचारकर निर्गुण रूपको न जाननेसे उस रूपका विचार किये विना आपके जे अवतार रूप हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनका बुद्धिमान् निपुण पुरुष सेवन करते हैं, और फिर वही ज्ञानसंपन्न होकर संसारसमुद्रके पार हो जाते हैं । भक्तिमार्गमें काम, क्रोधादि अनेक शत्रु हैं ॥ ४५ ॥ जैसे बिल्ली चूहेको डराती है तैसेही शत्रु बराबर अंतःकरणको डराते रहते हैं । तुम्हारा स्मरण करनेवाले भक्तोंके अंतःकरणमें आपका रूप नित्य प्रगट रहता है ॥ ४६ ॥ हे

कथंदृश्यंभवेदेवदृश्याभावेभजेत्कथम् ॥ अतस्तवावतारेषुरूपाणिनिपुणाभुवि ॥ ४४ ॥ भजंतिबुद्धिसंपन्नास्तरंत्येवभवार्णवम् ॥ कामक्रोधादयस्तत्रबहवःपरिपंथिनः ॥ ४५ ॥ भीषयंतिसदाचेतोमार्जारामूषकंयथा ॥ त्वन्नामस्मरतानित्यंत्वद्रूपमपिमानसे ॥४६॥ त्वत्पूजानिरतानांतेकथामृतपरात्मनाम् ॥ त्वद्भक्तसंगिनांरामसंसारोगोष्पदायते ॥ ४७ ॥ अतस्तेसगुणंरूपंध्यात्वाहंसर्वदाहृदि ॥ मुक्तश्चरामिलोकेषुपूज्योऽहंसर्वदेवतैः ॥ ४८ ॥ रामत्वयामहत्कार्यंकृतंदेवहितेच्छया ॥ कुंभकर्णवधेनाद्यभूभारोऽयंगतःप्रभो ॥ ४९ ॥

राम ! वास्तवमें यह संसार समुद्रके समान विस्तारवाला है तौ परन्तु जो लोग आपकी पूजा करनेमें तत्पर हैं; आपके कथारूपी अमृत पीनेमें चित्तकी वृत्तिको लगाते हैं; और तुम्हारे भक्तोंका संग करते हैं; उनको वह (संसारसमुद्र) गायके खुरका जो पृथ्वीमें गढा पड़ता है; और उसमें जो पानी भर जाता है,—उसके समान अल्प मालूम होनेलगता है ॥ ४७ ॥ हे देव ! इस कारण मैं आपके सगुण रूपका सदा हृदयमें ध्यान करके त्रिलोकीमें फिरताहूँ; आपके ध्यानके प्रभावसे मैं संसारके तापोंसे छुटा हुआहूँ; व इसीलिये सब देवता मुझको पूज्य मानते हैं ॥ ४८ ॥ हे राम ! आपने देवताओंके हितके लिये बडा भारी कार्य किया है; हे महाराज ! कुंभकर्णका संहार किया तिससे आज भूमिके ऊपरसे भयका नाश हुआ ॥ ४९ ॥

कल लडाईमें लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको मारेंगे, और परसोंके दिन आप रावणका संहार करेंगे ॥ ५० ॥ मैं सिद्ध पुरुषोंके साथ आकाशमें रहकर यह सब चरित्र देखताहूँ; हे देव! मेरे ऊपर दया करो अब मैं स्वर्गको जाताहूँ॥ ५१ ॥ (गान चाल, भैरव ताल इकताला वावाउल भजनकी चालपर, ताल इकताला

" बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम । गोविन्द गोविन्द केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव ॥

हरि हरि हरि वंशीधर श्याम नारायण वासुदेव । नंदनंदन जगवन्दन वृन्दावन चारु चंद्र गरे गुंजदाम ॥

हरीचंद जनरंजन शरण सुखद मधुरमूर्ति, सीतापति पूर्णकरन सतत भक्तकाम" ॥

त्रिकालज्ञानी नारदजी इतना कहकर व रामचंद्रजीका समाचार लेकर पापरहित ब्रह्मलोकको चलेगये । जातेहुए मार्गमें देवताओंने उनकी

श्वोहनिष्यतिसौमित्रिरिंद्रजेतारमाहवे ॥ हनिष्यसेऽथरामत्वंपरश्वोदशकंधरम् ॥५०॥ पश्यामिसर्वंदेवेशासिद्धैःसहनभोगतः ॥ अनुगृह्णीष्वमांदेवगमिष्यामिसुरालयम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाराममामंत्र्यनारदोभगवानृषिः ॥ ययौदेवैःपूज्यमानोब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥ ५२ ॥ भ्रातरंनिहतंश्रुत्वाकुंभकर्णमहाबलम् ॥ रावणःशोकसंतप्तोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ५३ ॥ मूर्च्छितःपतितोभूमावुत्थायविललापह ॥ पितृव्यंनिहतंश्रुत्वापितरंचातिविह्वलम् ॥५४॥ इंद्रजित्प्राहशोकार्तंत्यजशोकंमहामते ॥ मयिजीवतिराजेंद्रमेघनादेमहाबले ॥ ५५ ॥ दुःखस्यावसरःकुत्रदेवांतकमहामते ॥ त्येतुतेदुःखमखिलंस्वस्थोभवमहीपते ॥ ५६ ॥

पूजा की ॥ ५२ ॥ रावणको समाचार मिला कि, महाबलवान् भ्राता कुंभकर्णको महापराक्रमी रामचंद्रजीने मारडाला इसकारण तुरंत शोकमें तत्परहो मूर्च्छा खायकर रावण गिरपड़ा; थोड़ी देरमें चैतन्यता आनेपर उठकर विलाप करने लगा । इन्द्रजितभी अपने चचा कुंभकर्णका माराजाना सुनकर और यह जानकर कि, इसीसे हमारे पिता व्याकुल हो रहेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह समझ इन्द्रजित पितासे जायकर बोला;—" हे महामते ! किस कारणसे शोक करतेहो ? हेराजेंद्र ! मुझ बलवान् मेघनादके जीते हुए ॥ ५५ ॥ आपको दुःख करनेका क्या काम है ? हे बुद्धिमान् ! आपने देवताओंसे वैर बांधकर उनको जर्जर कर दिया ! फिर मनुष्यसे आप क्या भय खाते हैं ? हे पृथ्वीनाथ ! आपके

सब दुःख दूर होंगे, आप सावधान रहैं ॥ ५६ ॥ मैं शत्रुके मुख्य २ वीरोंका संहारकरके उनके व अपने दुःख और बलको बराबर कर दूँगा । अब मैं निकुंभिला (विवर) में जाय अग्निको प्रसन्न किये लेताहूँ ॥ ५७ ॥ व उससे रथादि सामग्री लूंगा जिससे शत्रु मुझको नहीं जीत सकैंगे । ” इतना कहकर शीघ्र इन्द्रजित ऊपर कहे हुए होमस्थलमें गया ॥ ५८ ॥ निकुंभिला स्थानमें जाय पहुँचनेपर उसने लालफूल व लालवस्त्र अपने अंगपर धारण किये, लाल चन्दन लगाय मौनव्रत धारण करके हवन करना आरम्भ किया ॥ ५९ ॥ इस बातको बिभीषणजीने जानकर उस दुष्टके आरम्भ किये होमका सारा वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कहा ॥ ६० ॥ “ हे राम ! मेघनादकी बुद्धि अत्यन्त दुष्ट है, जो इसका आरम्भ किया यह

सर्वंसमीकरिष्यामिहनिष्यामिचवैरिपून् ॥ गत्वानिकुंभिलांसद्यस्तर्पयित्वाहुताशनम्॥५७॥लब्ध्वारथादिकंतस्मादजेयोऽहंभवाम्यरेः॥ इत्युक्त्वात्वरितंगत्वानिर्दिष्टंहवनस्थलम् ॥ ५८ ॥ रक्तमाल्यांबरधरोरक्तगंधानुलेपनः ॥ निकुंभिलास्थलेमौनीहवनायोपचक्रमे ॥५९॥ विभीषणोऽथतच्छ्रुत्वामेघनादस्यचेष्टितम् ॥ प्राहरामायसकलंहोमारंभंदुरात्मनः ॥ ६० ॥ समाप्यतेचेद्धोमोऽयंमेघनादस्यदुर्मतेः ॥ तदाऽजेयोभवेद्रामसमेघनादःसुरासुरैः ॥ ६१ ॥ अतः शीघ्रंलक्ष्मणेनघातयिष्यामिरावणिम् ॥ आज्ञापयमयासार्धंलक्ष्मणंबलिनांवरम् ॥ हनिष्यतिनसंदेहोमेघनादंतवानुजः ॥ ६२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहमेवागमिष्यामिहंतुमिंद्राजितंरिपुम् ॥ आग्नेयेनमहास्त्रेणसर्वराक्षस घातिना ॥ ६३ ॥ विभीषणोऽपितंप्राहनासावन्यैर्निहन्यते ॥ यस्तुद्वादशवर्षाणिनिद्राहारविवर्जितः ॥ ६४ ॥ तेनैवमृत्युर्निर्दिष्टोब्रह्मणा स्यदुरात्मनः ॥ लक्ष्मणस्तुअयोध्यायानिर्गम्यायात्त्वयासह ॥ ६५ ॥

होम निर्विघ्नतासे पूरा होगया तो मेघनादको देवता या दैत्यभी नहीं जीत सकते ॥ ६१ ॥ इसकारण मैं शीघ्र जायकर लक्ष्मणजीसे रावणके पुत्र का वध कराताहूँ । हे बलवान् श्रेष्ठ ! लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि, आपके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी मेघनादका वध करेंगे ” ॥ ६२ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले,–“ इन्द्रजितके मारनेको मैं जाऊँगा; मेरे पास अग्निका दिया हुआ प्रचंड आग्नेयास्त्र है, यह सर्व राक्षसोंका नाश करनेको समर्थ है; तिससे मैं शत्रुका वध करूँगा ॥ ६३ ॥ विभीषणने उनसे कहा; “ हे राम ! इसका वध दूसरेके हाथसे नहीं होगा । जिस पुरुषने बाहर वर्षतक नींद व आहारको छोड दिया है ॥ ६४ ॥ उसके हाथसे इस दुष्टका वध होगा, ऐसा ब्रह्माजीने

निरूपण किया है, केवल लक्ष्मणजीमें ही यह गुण दिखाई देते हैं ! जबसे वह आपके साथ अयोध्यासे आये ॥ ६५ ॥ हे राजाधिराज ! रघुवीर तबसे उन्होंने निद्राका नाम नहीं जाना है । अर्थात् त्याग दिया है । इस त्यागका कारण आपकी सेवाके सिवाय दूसरा कुछभी नहीं है । यह सब मैं जानता हूं ॥ ६६ ॥ इसकारण हे देवाधि देव ! लक्ष्मणजीको शीघ्र मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । वह निःसंदेह इन्द्रजितको मारैंगे; वह साक्षात् पृथ्वीको मस्तकपर धारण करनेवाले शेषजी हैं ॥ ६७ ॥ हे राम ! आप चौदह भुवनके स्वामी साक्षात् नारायण हैं; व लक्ष्मणजी शेषहैं; आप दोनों जगद्रूपी नाटकके सूत्रधार होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले आये हो" ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे भाषाटीकायाम

तदादिनिद्राहारादीन्नजानातिरघूत्तम ॥ सेवार्थंतवराजेंद्रज्ञातंसर्वमिदंमया ॥६६॥ तदाज्ञापयदेवेशलक्ष्मणंत्वरयामया ॥ हनिष्यतिनसंदेहःशेषःसाक्षाद्धरा धरः ॥ ६७ ॥ त्वमेवसाक्षाज्जगतामधीशोनारायणोलक्ष्मणएवशेषः ॥ युवांधराभारनिवारणार्थंजातौजगन्नाटकसूत्रधारौ ॥ ६८॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकाण्डेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वारामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ जानामितस्यरौद्रस्यमायांकृत्स्नांविभीषण ॥ १ ॥ सहिब्रह्मास्त्रविच्छूरामोयावीचमहाबलः ॥ जानामिलक्ष्मणस्यापिस्वरूपंममसेवनम् ॥ २ ॥ ज्ञात्वैवासमहंतूष्णींभविष्यत्कार्यगौरवात् ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंप्राहरामोज्ञानवतांवरः ॥ ३ ॥ गच्छलक्ष्मणसैन्येनमहताजहिरावणिम् ॥ हनूमत्प्रमुखैःसर्वैर्यूथपैःसहलक्ष्मण ॥ ४ ॥

ष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ रुद्रजी बोले कि--हे पार्वति ! विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीने कहा" विभीषण ! उस भयंकर राक्षसके सारे कपटोंको मैं जानताहूँ ॥ १ ॥ वह महापराक्रमी शूर कपटी होकर ब्रह्मास्त्रका उपक्रमोपसंहार (ब्रह्मास्त्र चलाना और फिर उसको अपने पास बुलालेना) जानताहै । लक्ष्मणजीका स्वरूप व उनकी कीहुई सेवाकोभी मैं जानताहूँ ॥ २ ॥ मैं बराबर जानताहूँ कि ,लक्ष्मणजीने आहार, नींदका त्याग कर दिया है यह जानकरभी होनहार कार्य इन्द्रजितके वधकी कठिनाई विचारकर तबसे चुप बैठाहूँ, मैंने इस कठोर व्रतका इन्हें निषेध नहीं किया " (विभीषणसे) यह वचन कह ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ३ ॥ " हे लक्ष्मण ! बड़ी सेनाको साथ लेजाओ और रावणके पुत्रका

वध करो । हे लक्ष्मण ! हनुमानादि सर्व सेनापतियोंको साथ लेलो ॥ ४ ॥ रीछोंका राजा जांबवान्भी अपनी सेनाके सहित तुम्हारे साथ जायगा । विभीषणजी मंत्रियोंको साथ लेकर तुम्हारे साथ जायँगे ॥ ५ ॥ क्योंकि यह (विभीषण) वनकी गुफाओं और निकुंभिलाको जानते हैं । " रामचंद्रजीकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणजीने माथे चढ़ाली और विभीषणभी निकटहीथे ॥ ६ ॥ लक्ष्मणजीका पराक्रम बड़ा तेज था; उन्होंने । हाथमें बड़ाभारी दूसरा धनुष लिया व रामचंद्रजीके चरणकमलोंका स्पर्श (वंदन कर) प्रसन्न होकर बोले ॥ ७ ॥ आज मेरे धनुषसे छूटेहुए बाण इन्द्रजितके शरीरको भेदकर भोगावती (पातालगंगा) के जलमें स्नान करनेको पातालमें जायँगे ॥ ८ ॥ वह लक्ष्मणजी इतना कह रामचंद्र

जांबवानृक्षराजोऽयंसहसैन्येनसंवृतः ॥ विभीषणश्चसचिवैःसहत्वामभियास्यति ॥ ५ ॥ अभिज्ञस्तस्यदेशस्यजानातिविवराणिसः ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वालक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ६ ॥ जग्राहकार्मुकंश्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः ॥ रामपादांबुजंस्पृश्यहृष्टःसौमित्रिरब्रवीत् ॥ ७ ॥ अद्यमत्कार्मुकान्मुक्ताःशरानिर्भिद्यरावणिम् ॥ गमिष्यंतिहिपातालंस्नातुंभोगावतीजले ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाससौमित्रिःपरिक्रम्यप्रणम्य तम् ॥ इंद्रजिन्निधनाकांक्षीययौत्वरितविक्रमः ॥ ९ ॥ वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ विभीषणश्चसहितोमंत्रिभिस्त्वरितं ययौ ॥ १० ॥ जांबवत्प्रमुखाऋक्षाःसौमित्रिंत्वरयाऽन्वगुः ॥ गत्वानिकुंभिलादेशंलक्ष्मणोवानरैःसह ॥ ११ ॥ अपश्यद्बलसंघातं दूराद्राक्षससंकुलम् ॥ धनुरानम्यसौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥ १२ ॥ अंगदेनचवीरेणजांबवान्राक्षसाधिपः ॥ तदाविभीषणःप्राहसौमित्रिंपश्यराक्षसान् ॥ १३ ॥ यदेतद्राक्षसानीकंमेघश्यामंविलोक्यते ॥ अस्यानीकस्यमहतोभेदनेयत्नवान्भव ॥ १४ ॥

जीकी प्रदक्षिणाकर इन्द्रजितके मारनेको अतिशीघ्रतासे चरण धरतेहुए चले ॥ ९ ॥ पीछे २ हनुमान्जी अनेकसहस्रवानर साथ लेकर चले । विभीषणजीभी मंत्रियोंके साथ तुरंत चले ॥ १० ॥ जाम्बवानादि रीछभी लक्ष्मणजीके पीछे २ गये । लक्ष्मणजी वानरोंके साथ निकुंभिला नामक स्थानपर जाय पहुँचे ॥ ११ ॥ उन्होंने दूरसे वहाँपर राक्षसोंकी सेनाका बहुत समूह देखा तब महाविक्रमकारी लक्ष्मणजी धनुष उठायकर सावधान होरहे ॥ १२ ॥ उनके साथही साथ वीरअंगद जाम्बवान्भी तैयार हुए उससमय राक्षसोंके राजा विभीषणने लक्ष्मणजीसे कहा; " हे लक्ष्मण ! इन राक्षसोंको देखो ॥ १३ ॥ यह जो बादलोंके समान काली राक्षसोंकी सेना दिखाई देतीहै इस भारी

३५

राक्षसोंकी सेनाको विदीर्ण करनेका यत्न कीजिये ॥ १४ ॥ कारण कि इस सेनाके मरवे इन्द्राजित दिखा देगा जब तक उसका कार्य पूरा नहीं हो तबतक तुम जायकर उसके साथ युद्ध करो ॥ १५ ॥ उस दुष्टका मारनाही परमधर्म है । हे वीर ! तुम उसका वध करो । " तिन शुभलक्षणसंपन्न लक्ष्मणजीने विभीषणके वचन सुनकर ॥ १६ ॥ राक्षसपति रावणके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा की । वानर सेनापति, पाषाण, पर्वतोंके शिखर, व वृक्षोंको चलाय २ कर ॥ १७ ॥ चारों ओरसे दैत्योंपर प्रहार करनेलगे; राक्षसोंनेभी वानरसेनापतियों पर और वानरोंकी सेनापर कुल्हाड़ी, तीक्षणबाण, तोमरादि शस्त्रोंकी मार लगाई, तब अत्यन्त कोलाहल होने लगा और उन वानर व राक्षसोंका

राक्षसेंद्रसुतोऽप्यस्मिन्भिन्नेदृश्योभविष्यति ॥ अभिद्रवाशुयावद्वैनैतत्कर्मसमाप्यते ॥ १५ ॥ जहिवीरदुरात्मानंहिंसापरमधार्मिकम् ॥
विभीषणवचःश्रुत्वालक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ १६ ॥ ववर्षशरवर्षाणिराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ पाषाणैःपर्वताग्रैश्च वृक्षैश्चहरियूथपाः ॥ १७ ॥
निर्जघ्नुःसर्वतोदैत्यांस्तेऽपिवानरयूथपान् ॥ परश्वधैःशितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥ १८ ॥ निर्जघ्नुर्वानरानीकंतदाशब्दोमहानभूत् ॥
ससंप्रहारस्तुमुलःसंजज्ञेहरिरक्षसाम् ॥ १९ ॥ इंद्रजित्स्वबलंसर्वेमर्द्यमानंविलोक्यसः ॥ निकुंभिलांचहोमंचत्यक्त्वाशीघ्रंविनिर्गतः ॥
॥२०॥ रथमारुह्यसधनुःक्रोधेनमहताऽगतम् ॥ समाह्वयित्वासौमित्रिंयुद्धायरणमूर्धनि ॥२१॥ सौमित्रेमेघनादोऽहंमयाजीवन्नमोक्ष्यसे ॥
तत्रदृष्ट्वापितृव्यंसप्राहनिष्ठुरभाषणम् ॥ २२ ॥ इहैवजातःसंवृद्धःसाक्षाद्भ्रातापितुर्मम ॥ यस्त्वंस्वजनमुत्सृज्यपरभृत्यत्वमागतः ॥ २३ ॥

तुमुल युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ १९ ॥ अपनी सेनाको अतिशय मारखातेहुए देखकर इन्द्रजित शीघ्रही निकुंभिला और होमको छोडकर बाहर आया ॥ २० ॥ वह बड़े भारी क्रोधसे धनुष हाथमें ले रथमें बैठकर रणभूमिमें आया और लक्ष्मणजीको युद्धके लिये बुलाताहुआ बोला ॥ २१ ॥ "हे लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूं अब तू मेरे निकटसे जीताहुआ नहीं बचेगा ।" इतनेहीमें इन्द्राजितकी दृष्टि अपने चाचा (विभीषण) पर गई, इन्द्रजितने उनसे निठुर वचन कहे ॥ २२ ॥ "अरे ! तुम मेरे पिताके सहोदर भ्राता हो तुम लंकामेंही जन्मे और यहीं इतने बड़ेहुए परन्तु इससमय अपने हितकारी सगे भलोंको छोड़कर शत्रुओंका दासपन करते हो; तुमको धिक्कार है ॥ २३ ॥

म तुम्हारे पुत्रके समान हूं तोभी तुम मुझसे कैसे द्वेष करते हो ? वास्तवमें तुम 'अत्यन्त अधम' व 'नीच मन' हो"! इसप्रकार विभीषणसे कह इन्द्रजितने अपनी दृष्टि हनुमान्‌जीकी पीठपर बैठेहुए लक्ष्मणजीपर डाली ॥ २४ ॥ वह (इन्द्रजित्) जिस विशाल रथमें बैठाथा; तिसमें अनेक शस्त्र व खड्ग तैयार रक्खेहुयेथे; उसने एक लंबा लचकदार (साढेसात वेतका) धनुष उठाय उसपर भयंकर टंकार करके कहा ॥ २५ ॥ 'हे वानरो ! आज हमारे बाण तुम्हारे प्राणोंको पियेंगे' इधर शत्रुका नाश करनेमें तैयार लक्ष्मणजीने शीघ्र एक बाण ले ॥ २६ ॥ राक्षसेश्वर पर छोड़ा; मारे क्रोधके लक्ष्मणजी सर्पके समान फुंकार माररहेथे; इन्द्रजितने लाल २ नेत्रकर लक्ष्मणजीको देखा ॥ २७ ॥ लक्ष्म

कथंद्रुह्यसिपुत्रायपापीयानासिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंदृष्ट्वाहनूमत्पृष्ठतःस्थितम् ॥ २४ ॥ उद्यदायुधनिस्त्रिंशेरथेमहतिसंस्थितः ॥ महा
प्रमाणमुद्यम्यघोरंविस्फारयन्धनुः ॥२५॥ अद्यवोमामकावाणाःप्राणान्पास्यंतिवानराः ॥ ततःशरंदाशरथिःसंधायामित्रकर्शनः ॥२६॥
ससर्जराक्षसेंद्रायक्रुद्धःसर्पइवश्वसन् ॥ इंद्रजिद्रक्तनयनोलक्ष्मणंसमुदैक्षत ॥ २७ ॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतःशरैः ॥ मुहूर्त
मभवन्मूढःपुनःप्रत्याहृतेंद्रियः ॥ २८ ॥ ददर्शावस्थितंवीरंवीरोदशरथात्मजम् ॥ सोऽभिचक्रामसौमित्रिंक्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २९ ॥
शरान्धनुषिसंधायलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ यदितेप्रथमेयुद्धेनदृष्टोमेपराक्रमः ॥ ३० ॥ अद्यत्वांदर्शयिष्यामितिष्ठेदानींव्यवस्थितः ॥
इत्युक्त्वासप्तभिर्बाणैरभिविव्याधलक्ष्मणम् ॥३१॥ दशभिश्चहनूमंतंतीक्ष्णधारैःशरोत्तमैः ॥ ततःशरशतेनैवसंप्रयुक्तेनवीर्यवान् ॥३२॥
क्रोधद्विगुणसंरब्धोनिर्बिभेदविभीषणम् ॥ लक्ष्मणोपितथाशत्रुंशरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥

णजीके छोड़ेहुए इन्द्रके वज्रसे समान तीक्ष्ण बाणके अंगमें लगनेपर इन्द्रजित क्षणभर मूर्च्छितरहा, परन्तु शीघ्र चैतन्यताको प्राप्त हो ॥ २८ ॥ अपने सन्मुख वीर दशरथजीके पुत्र (लक्ष्मणजी) को देखताहुआ । वह राक्षस क्रोधसे लाल २ नेत्रकर लक्ष्मणजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २९ ॥ और धनुषपर बाण चढाय लक्ष्मणजी से कहने लगा "जो पहले कभी युद्धमें मेरा पराक्रम न देखा होय तो ॥ ३० ॥ आज तुझे दिखाताहूं, खड़ा रह" ऐसा कहकर इन्द्रजितने लक्ष्मणजीके सात बाण मारे ॥ ३१ ॥ और दश तीखी धारके उत्तम बाण हनुमान्‌जीके मारे उस वीर्यवान्‌ने शत बाण धनुषपर चढाय ॥ ३२ ॥ दूना क्रोधकर बिभीषणजीको भेद डाला; लक्ष्मणजीनेभी इसीभाँति शत्रुके ऊपर बाणोंकी वर्षा की॥ ३३॥

इन्द्रजितका सुवर्णके समान तेजःपुंज कवच, बाण लगनेसे टुकड़े २ हो रथपर गिरपड़ा और वहाँपर फिर बाण लगनेसे तिल २ हो पृथ्वीपर गिरा ॥ ३४ ॥ तब रावणके पुत्रने अतिक्रोध करकै युद्धमें महापराक्रमी शूर लक्ष्मणजीके हजार बाण मारे ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीकाभी दिव्यकवच टूटकर पृथ्वीपर गिरा, वे दोनों परस्पर एक दूसरेके कार्यका प्रतिकार करने लगे ॥ ३६ ॥ दोनोंही मारे श्रमके वारंवार श्वास लेते हुए। दोनोंके शरीर विंध गयेथे और लोलुहान होगयेथे! फिर घोर युद्ध होने लगा ॥ ३७ ॥ दोनोंही महापराक्रमी व शूर थे; उन्होंने बहुत देर तक तीक्ष्ण बाणोंको चलाय २ परस्पर युद्ध किया; परन्तु किसीको जय अथवा पराजय नहीं मिली ॥ ३८ ॥ इतनेमें वीर लक्ष्मणजीने पाँच

तस्यबाणैःसुसंविद्धंकवचंकांचनप्रभम् ॥ व्यशीर्यतरथोपस्थेतिलशःपतितंभुवि ॥ ३४ ॥ ततःशरसहस्रेणसंक्रुद्धोरावणात्मजः ॥ विभेदसमरेवीरंलक्ष्मणंभीमविक्रमम् ॥ ३५ ॥ व्यशीर्यतापतद्दिव्यंकवचंलक्ष्मणस्यच ॥ कृतप्रतिकृतान्योऽन्यंवभूवतुरभिद्रुतौ ॥ ३६ ॥ अभीक्ष्णंनिःश्वसंतौतौयुद्धचेतांतुमुलंपुनः ॥ शरसंवृतसर्वांगौसर्वतोरुधिरोक्षितौ ॥ ३७ ॥ सुदीर्घकालंतौवीरावन्योन्यंनिशितैःशरैः ॥ अयुध्येतांमहासत्त्वौजयाजयविवर्जितौ ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःपंचभिःशरैः ॥ रावणेःसारथिंसाश्वंरथंचसमचूर्णयत् ॥ ३९॥ चिच्छेदकार्मुकंतस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ सोऽन्यत्तुकार्मुकंभद्रंसज्यंचक्रेत्वरान्वितः ॥ ४० ॥ तच्चापमपिचिच्छेदलक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः ॥ तमेवच्छिन्नधन्वानंविव्याधानेकसायकैः ॥ ४१ ॥ पुनरन्यत्समादायकार्मुकंभीमविक्रमः ॥ इंद्रजिल्लक्ष्मणंबाणैःशितैरादित्यसन्निभैः ॥ ४२ ॥ विभेदवानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः ॥ ततऐंद्रंसमादायलक्ष्मणोरावणिंप्रति ॥ ४३ ॥

बाण मारकर रावणके पुत्र मेघनादके सारथीको मारडाला; घोड़ोंके सहित रथका चूरा किया ॥ ३९ ॥ और हाथकी कौशल दिखानेको मेघनादका धनुषभी काट डाला इन्द्राजितने झटपट दूसरा उत्तम धनुष लेकर चढालिया ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीने तीन बाण मारकर उस उत्तम धनुषकोभी काट डाला और टूट गया है धनुष जिसका ऐसे उस शत्रुपर अनेक बाण छोड़े ॥ ४१ ॥ फिर तीक्ष्ण पराक्रमी इन्द्रजितने दूसरे धनुष लेकर लक्ष्मणजीके सूर्यके समान चमकतेहुए तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ४२ ॥ और सर्व दिशाओंको बाणोंसे भरदिया व सब वानरोंकों वींध

डाला तब लक्ष्मणजीने एक बाणपर ऐन्द्रास्त्रकी स्थापना की; वह बाण उठाय इन्द्रजितपर क्रोधकर ॥ ४३ ॥ धनुषपर चढाया; बड़े कठोर दृढ धनुषको कानतक खैंच वीर रामचन्द्रजीके चरणकमलका स्मरण करके बोलेः—॥ ४४ ॥ " यदि दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी परम धार्मिक, सत्यवचन कहनेवाले और त्रिलोकीमें उनके आगे खडा होनेवाला कोई शत्रु नहीं है तो हे बाण ! तू इस रावणके पुत्रका वधकर " ॥ ४५ ॥ वीर लक्ष्मणजीने ऐसी शपथ करके उस सरल जानेवाले बाणको कानतक खैंच समरमें इन्द्रजितके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ तिस बाणने इन्द्रजितका तेजःपुंज मस्तक धडसे अलगकर पृथ्वीपर गिराया । उस शिरपर मुकुट था व कानोंमें कुण्डल चमकतेथे ॥ ४७ ॥ तिस समय देवता

संधायाकृष्यकर्णांतंकार्मुकंदृढनिष्ठुरम् ॥ उवाचलक्ष्मणोवीरःस्मरन्रामपदांबुजम् ॥ ४४ ॥ धर्मात्मासत्यसंधश्चरामोदाशरथिर्यदि ॥
त्रिलोक्यामप्रतिद्वंद्वस्तदेनंजहिरावणिम् ॥४५॥ इत्युक्त्वाबाणमाकर्णाद्विकृष्यतमजिह्मगम्॥ लक्ष्मणःसमरेवीरःससर्जेंद्रजितंप्रति॥४६॥
सशरःसशिरस्त्राणंश्रीमज्ज्वलितकुंडलम् ॥ प्रमथ्येंद्रजितःकायात्पातयामासभूतले ॥ ४७ ॥ ततःप्रमुदितादेवाःकीर्तयंतोरघूत्तमम् ॥
ववर्षुःपुष्पवर्षाणिस्तुवंतश्चमुहुर्मुहुः ॥ ४८ ॥ जहर्षशक्रोभगवान्सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ आकाशेऽपिचदेवानांशुश्रुवेदुंदुभिस्वनः ॥ ४९ ॥
विमलंगगनंचासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी ॥ निहतंरावणिंदृष्ट्वाजयजल्पसमन्वितः ॥ ५० ॥ गतश्रमःससौमित्रिःशंखमापूरयद्रणे ॥
सिंहनादंततःकृत्वाज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥ ५१ ॥ तेननादेनसंहृष्टावानराश्चगतश्रमाः ॥ वानरेंद्रैश्चसहितःस्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥ ५२ ॥
लक्ष्मणःपरितुष्टात्माददर्शाभ्येत्यराघवम् ॥ हनूमद्राक्षसाभ्यांचसहितोविनयान्वितः ॥ ५३ ॥

ओंको परमानंद प्राप्त हुआ, वे रामचंद्रजीकी कीर्तिका वर्णन करने लगे । स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा हुई; देवताओंने रामचंद्रजीकी स्तुति की ॥ ४८ ॥ देवता व महर्षियोंके साथ इन्द्रजी हर्षित हुए आकाशसे देवताओंके नगाडे बजनेका शब्द सुनाई आने लगा ॥ ४९ ॥ आकाश निर्मल हुआ । रावणके पुत्रको मृतक हुआ देखकर पृथ्वी स्थिर होगई; देवताओंने लक्ष्मणजीकी जयजयकार की ॥ ५० ॥ फिर जब लक्ष्मणजीकी थकावट उतरी तब उन्होंने शंख बजाय सिंहके समान गर्जना की धनुषपर टंकार दी ॥ ५१ ॥ टंकारको सुनकर वानर हर्षित हुए व उनका भ्रम दूर होगया; वानर वीरोंके अंतःकरण सावधान हुए उन्होंने लक्ष्मणजीकी स्तुति की ॥ ५२ ॥ लक्ष्मणजीका मनभी प्रसन्न हुआ वह

वानरोंको साथ लेकर लौट आये, उन्होंने हनुमान् और विभीषण दोनोंके साथ जायकर नम्रतासे रामजीका दर्शन किया ॥ ५३ ॥ लक्ष्मणजी अपने बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीको साक्षात् सर्वव्यापी नारायण जानतेथे । लक्ष्मणजीने रामजीका वंदनकर उनसे कहा;— " हे रघुवीर ! मैंने आज आपकी कृपासे रणमें रावणके पुत्र (इन्द्रजित) का वध किया " ॥ ५४ ॥ लक्ष्मणजीके मुखसे निकले हुए इन वचनोंको सुनतेही रामचंद्रजीको आनंद हुआ, उन्होंने प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय मस्तक सूंघ स्नेह सहित कहा ॥ ५५ ॥ " लक्ष्मण ! धन्य है ! तुमने आज बडाभारी कार्य किया मुझे बहुत संतोष हुआ । हे शत्रुदमन ! मेघनादके मरनेसे हमने सबकुछ जीत लिया ॥ ५६ ॥ तीन

ववंदेभ्रातरंरामंज्येष्ठंनारायणंविभुम् ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहतोरावणिराहवे ॥ ५४ ॥ श्रुत्वातल्लक्ष्मणाद्भक्त्यातमालिंग्यरघूत्तमः ॥ मूर्ध्न्यवघ्रायमुदितःसस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ साधुलक्ष्मणतुष्टोऽस्मिकर्मतेदुष्करंकृतम् ॥ मेघनादस्यानेधनेजितंसर्वमरिंदम ॥ ५६ ॥ अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरःकथंचिद्विनिपातितः ॥ निःसपत्नःकृतोऽस्म्यद्यनिर्यास्यतिहिरावणः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकान्मयायोद्धुंतंहनिष्यामिरावणम् ॥ मेघनादंहतंश्रुत्वालक्ष्मणेनमहाबलम् ॥ ५८ ॥ रावणःपतितोभूमौमूर्च्छितःपुनरुत्थितः ॥ विललापातिदीनात्मापुत्रशोकेनरावणः ॥ ५९ ॥ पुत्रस्यगुणकर्माणिसंस्मरन्पर्यदेवयत् ॥ अद्यदेवगणाःसर्वेलोकपालामहर्षयः ॥ ६० ॥

दिन तीन राततक संग्राम करके वह मरा । वास्तवमें वह बडा शूर था; मैं समझताहूं कि ,आज तुमने मेरे सर्व[1] शत्रुओंका नाश किया । रावण पुत्र शोकसे शोकित होकर मेरे साथ युद्ध करनेको आवेगा; बस मैं रावणका संहार करूंगा " महाबलवान् लक्ष्मणजीके हाथसे मेघनादका माराजाना सुन्तेही ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ रावण मूर्च्छा खायकर पृथ्वीपर गिरा; फिर कुछ वेलामें चैतन्य होकर विलाप करने लगा । पुत्रशोकही तो है उसको जान पडा कि, आज मैं निराधार होगया ॥ ५९ ॥ पुत्रके गुणग्राम और कार्य याद करके शोकको प्रकाश करता हुआ, आज सारे

१ आठवें सर्गके पचासवें श्लोकमें नारदजीका यह कहना कि " कल लडाईमें लक्ष्मणजी इन्द्रजितको मारेंगे" शीघ्रता सूचित करताहै । यहां कलका अर्थ दूसरे दिनका नहीं लगाया " युद्धमें सब राक्षसोंका नाश करके ही" टीकाकार इस अर्थको मानताहै ॥

देवगण, लोकपाल व महान् २ ऋषि ॥ ६० ॥ यह जानकर कि, इन्द्रजित मारागया निर्भयहो सुखसे सोवेंगे "। इस प्रकार रावण अनेक भाँतिसे विलाप करनेलगा । पुत्र मेघनादसे रावण बड़ी प्रीति करताथा ॥ ६१ ॥ फिर महा क्रोधित हो (शत्रुओंका) नाश करनेकी इच्छासे सब राक्षसोंके युद्धमें जानेके लिये कहा ॥ ६२ ॥ वह वीर रावण, पुत्रके वधसे अत्यन्त संतापित और क्रोधके वश हो बुद्धिसे कर्तव्य समझ कर सीताजीके मारनेको दौड़ागया ॥ ६३ ॥ सीताजी राक्षसियोंके समूहके बीचमें बैठीथीं रावणको क्रोधसहित हाथमें खड्ग लिये हुए आता देखकर वह डरीं और शोकाकुल हुईं ॥ ६४ ॥ इस अवसरमें रावणका एक सुपार्श्वनामक मंत्री जो कि, मनका निर्मल बड़ा बुद्धिमान् और

हतमिंद्रजितंज्ञात्वासुखंस्वप्स्यंतिनिर्भयाः ॥ इत्यादिबहुशःपुत्रलालसोविललापह ॥ ६१ ॥ ततःपरमसंक्रुद्धोरावणोराक्षसाधिपः ॥ उवाचराक्षसान्सर्वान्विनाशायिषुराहवे ॥ ६२ ॥ सपुत्रवधसंतप्तःशूरःक्रोधवशंगतः ॥ संवीक्ष्यरावणोबुद्ध्याहंतुंसीतांप्रदुद्रुवे ॥ ६३ ॥ खड्गपाणिमथायांतंक्रुद्धंदृष्ट्वादशाननम् ॥ राक्षसीमध्यगासीताभयशोकाकुलाभवत् ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नंतरेतस्यसाचिवोबुद्धिमाञ्छुचिः ॥ सुपार्श्वोनाममेधावीरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥ ननुनामदशग्रीवसाक्षाद्वैश्रवणानुजः ॥ वेदविद्याव्रतस्नातःस्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ ६६ ॥ अनेकगुणसंपन्नःकथंस्त्रीवधमिच्छसि ॥ अस्माभिःसहितोयुद्धेहत्वारामंचलक्ष्मणम् ॥ प्राप्स्यसेजानकींशीघ्रमित्युक्तःसन्यवर्तत ॥ ६७ ॥ ततोदुरात्मासुहृदानिवेदितंवचःसुधर्म्यंप्रतिगृह्यरावणः ॥ गृहंजगामाशुशुचाविमूढधीःपुनःसभांचप्रययौसुहृद्वृतः ॥ ६८ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेनवमःसर्गः ॥ ९ ॥

विचारवान् था; वहाँपर आया उसने रावणसे कहा ॥ ६५ ॥ " हे दशवदन ! यहक्या ? तुम प्रत्यक्ष कुबेरके छोटे भ्राता, वेदविद्यामें निष्णात—(चतुर) व्रत करनेमें निपुण; व अपने कर्मोंका आचरण करनेमें तत्पर हो ॥ ६६ ॥ ऐसे अनेक गुण तुममें हैं। फिर स्त्रीका वध करनेमें तुम्हारी इच्छा कैसे होती है ? हम लोगोंके साथ आप रणमें राम लक्ष्मणको मारकर शीघ्रही जानकीको प्राप्तहोंगे " । मंत्रीके यह कहनेपर रावण फिरा ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त दुरात्मा रावण; बंधुके कहे उत्तम धर्मयुत वचन मानलेताहुआ और शोकसे मूढ़बुद्धिहो शीघ्रतासे घरको चला गया । वहाँसे फिर बंधु बांधवोंके साथ संग्राममें गया ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्ध० भा० नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

रावणका शुक्रमत ग्रहणकरना ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं—कि, हे पार्वति ! फिर रावण राक्षस मंत्रियोंके साथ विचार करके रणमें बचे बचाये राक्षसोंको साथ ले रामचंद्रजीके साथ युद्ध करनेको चला ॥ १ ॥ जिसप्रकार पतंगा बहुतसे पतंगोंको साथले जलती हुई आगमें प्रवेश करताहै वैसेही रावणका यह जाना हुआ । फिर श्रीरामचंद्रजीने युद्धमें उन सर्वराक्षसोंका संहार किया ॥ २ ॥ और स्वयं रावण रामचंद्रजीके तीखे बाणसे छातीमें घाव खाय पीड़ितहो शीघ्र लंकामें प्रवेश करताहुआ ॥ ३ ॥ वारंवार रामचंद्रजी व हनुमान्जीका अलौकिक पराक्रम देखकर रावण शीघ्र शुक्राचार्यके पास गया ॥ ४ ॥ रावणने शुक्राचार्यको नमस्कार कर हाथ जोड विनती करके कहा कि 'हे गुरुश्रेष्ठ ! रामचंद्रने राक्षससेनापतियोंके सहित

श्रीमहादेवउवाच ॥ सविचार्यसभामध्येराक्षसैःसहमंत्रिभिः ॥ निर्ययौयेऽवशिष्टास्तेराक्षसैःसहराघवम् ॥ १ ॥ शलभःशलभैर्युक्तंप्रज्वलंतमिवानलम् ॥ ततोरामेणनिहताःसर्वेतेराक्षसायुधि ॥२ ॥ स्वयंरामेणनिहतस्तीक्ष्णवाणेनवक्षसि ॥ व्यथितस्त्वरितंलंकांप्रविवेशदशाननः ॥३॥ दृष्ट्वारामस्यबहुशःपौरुषंचाप्यमानुषम् ॥ रावणोमारुतेश्चैवशीघ्रंशुक्रांतिकंययौ॥४॥नमस्कृत्यदशग्रीवःशुक्रंप्रांजलिरब्रवीत् ॥ भगवन्राघवेणैवंलंकाराक्षसयूथपैः ॥ ५ ॥ विनाशितामहादैत्यानिहताःपुत्रबांधवाः ॥ कथंमेदुःखसंदोहस्त्वयितिष्ठतिसद्गुरौ ॥ ६ ॥ इति विज्ञापितोदैत्यगुरुःप्राहदशाननम् ॥ होमंकुरुप्रयत्नेनरहसित्वंदशानन ॥ ७ ॥ यदिविघ्नोनचेद्धोमेतर्हिहोमानलोत्थितः ॥ ८ ॥ महान्रथश्चवाहाश्चचापतूणीरसायकाः ॥ संभविष्यंतितैर्युक्तस्त्वमजेयोभविष्यसि ॥९॥ गृहाणमंत्रान्मद्दत्तान्गच्छहोमंकुरुद्रुतम् ॥ इत्युक्तस्त्वरितंगत्वारावणोराक्षसाधिपः ॥ १० ॥ गुहांपातालसदृशींमंदिरेस्वेचकारह ॥ लंकाद्वारकपाटादिवद्ध्वासर्वत्रयत्नतः ॥ ११ ॥

लंकाका इस प्रकारसे ॥ ५ ॥ नाश किया है कि,—उन्होंने हमारे बडे २ दैत्य व बंधुजनोंको मारा है । आप सरीके सद्गुरुके रहते हमको इतना दुःख कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ६ ॥ इस प्रकार विनती करनेपर शुक्राचार्यने रावणसे कहा;—" हे दशानन ! तुम किसी यत्नके साथ एकान्तमें होम करो ॥ ७ ॥ जो अनुष्ठानमें कुछ विघ्न नहीं हुआ तो होमाग्निसे उठा हुआ ॥ ८ ॥ एक प्रचंड रथ, घोडे, धनुष, तरकश इत्यादि सामग्री तुम्हें मिलेगी फिर तुम जीत जाओगे ॥ ९ ॥ मैं जिन मंत्रोंको देताहूं उन मंत्रोंको ग्रहण करके शीघ्र होम करो " । गुरुजीकी यह वार्ता सुनकर राक्षसोंका राजा रावण तुरत चला ॥ १० ॥ रावणने अपने मंदिरमें पातालके समान एक गुहा तैयार कराई, लंकाके द्वार व किंवाड चारों ओरसे

बन्द कर दिये ॥ ११ ॥ जारण मारण कार्यके योग्य होमकी सामग्री विधिविधानसे एकत्र की और गुहामें प्रवेश कर व्रत धार एकान्तम मौन व्रत धारण किया ॥ १२ ॥ बहुतसा धुँआ निकलने लगा उसको देखतेही रावणका छोटा भ्राता (विभीषण) भयभीत हुआ उसने होम का धुँआ रामचंद्रजीको दिखायकर कहा ॥ १३ ॥ " हे राम ! देखिये; रावणने होम करना आरम्भ किया है जो होम समाप्त होजायगा तो रावण अजीत होजायगा ? ॥ १४ ॥ इस कारण होममें विघ्न करनेको शीघ्र बडे २ वानरोंको भेज दीजिये "। रामचंद्रजीने " अच्छा " कहकर सुग्रीवकी सलाहसे और वानर अंगदको ॥ १५ ॥ व पवनकुमारादि महाबलवान् वीरोंको—तहां जानेकी आज्ञा दी । वे कोटको लांघकर राव

होमद्रव्याणिसंपाद्ययान्युक्तान्याभिचारिके ॥ गुहांप्रविश्यचैकांतेमौनीहोमंप्रचक्रमे ॥ १२ ॥ उत्थितंधूममालोक्यमहांतंरावणानुजः ॥ रामायदर्शयामासहोमधूमंभयाकुलः ॥ १३ ॥ पश्यरामदशग्रीवोहोमंकर्तुंसमारभत् ॥ यदिहोमःसमाप्तःस्यात्तदाऽजेयोभविष्यति ॥ ॥ १४ ॥ अतोविघ्नायहोमस्यप्रेषयाशुहरीश्वरान् ॥ तथेतिरामः सुग्रीवसंमतेनांगदंकपिम् ॥ १५ ॥ हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेशमहाव लान् ॥ प्राकारंलंघयित्वातेगत्वारावणमंदिरम् ॥ १६ ॥ दशकोट्यःप्लवंगानांगत्वामंदिररक्षकान् ॥ चूर्णयामासुरश्वांश्चगजांश्चन्यहनन्क्ष णात् ॥ १७ ॥ ततश्चसरमानामप्रभातेहस्तसंज्ञया ॥ विभीषणस्यभार्यासाहोमस्थानमसूचयत् ॥ १८ ॥ गुहापिधानपाषाणमंगदःपा दघट्टनैः ॥ चूर्णयित्वामहासत्त्वःप्रविवेशमहागुहाम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वादशाननंतत्रमीलिताक्षंदृढासनम् ॥ ततोंऽगदाज्ञयासर्वेवान राविविशुर्द्रुतम् ॥ २० ॥ तत्रकोलाहलंचक्रुस्ताडयंतश्चसेवकान् ॥ संभारांश्चिक्षिपुस्तत्रहोमकुंडेसमंततः ॥ २१ ॥

णके मंदिरके निकट गये ॥ १६ ॥ यह दशकरोड वानर चले थे; उन्होंने वहां पहुँचतेही पहरेवालोंको मारा और क्षणभरमेंही घोडे हाथियों को मारडाला ॥ १७ ॥ इसप्रकार रातभर लंकामें लडाई होती रही; जब सवेरा हुआ, तब सरमाने हाथके संकेतसे होमस्थलको बतादिया । यह सरमा विभीषणकी स्त्री थी ॥ १८ ॥ गुहाके मुखपर उसको ढकनेके लिये बडीभारी शिला रक्खी थी, महापराक्रमी अंगदजीने लात मारकर उस पत्थरको तोड डाला और उस महागुहामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ वहाँपर रावण आंख बंद किये हुए निश्चल आसनपर बैठाथा उसको देखकर अंगदजीकी आज्ञा ले सारे वानर भितर चले आये ॥ २० ॥ और तहां कोलाहल करने लगे; रावणके सेवकलोगोंको इच्छानुसार मार

ने लगे और चारों ओरसे होमकी सामग्री कुण्डमें डालने लगे ॥ २१ ॥ हनुमान्‌जीने क्रोधित होकर बलात्कारसे रावणके हाथमेंसे स्रुवा छीनलिया वानरसेनापति हनुमान्‌जीने उस स्रुवासेही रावणको मारा ॥ २२ ॥ इधर उधरसे सारे वानर उसको दांतोंसे काटने व लकडियोंसे मारने लगे; इतने प्रहार लगतेथे परन्तु रावणने अपना ध्यान नहीं छोड़ा कारण कि, उसके मनमें अग्निसे रथादि सामग्री लेकर शत्रुको जीतनेकी इच्छा थी ॥ २३ ॥ तब अंगदजी शीघ्रतासे रावणके अंतःपुरमें जाय, उसकी मनोहर मन्दोदरीकी चोटी पकड रावणके पास घसीटलाये ॥ २४ ॥ अंगदजीने उसको रावणके सन्मुख खडा किया । मन्दोदरी रावणके सन्मुख अनाथके समान रोने लगी अंगदने उसकी रत्नजडी कंचुकी फाड़ डाली ॥ २५ ॥ चोलीसे

स्रुवमाच्छिद्यहस्ताच्चरावणस्यबलाद्रुषा ॥ तेनैवसंजघानाशुहनुमान्प्लवगाग्रणीः ॥ २२ ॥ घ्नंतिदंतैश्चकाष्ठैश्चवानरास्तामितस्ततः ॥ नजहौरावणोध्यानंहतोऽपिविजिगीषया ॥२३॥ प्रविश्यांतःपुरेवेश्मन्यंगदोवेगवत्तरः ॥ समानयत्केशबंधेधृत्वामंदोदरींशुभाम् ॥२४॥ रावणस्यैवपुरतोविलपंतीमनाथवत् ॥ विददारांगदस्तस्याःकंचुकंरत्नभूषितम् ॥ २५ ॥ मुक्ताविमुक्ताःपतिताःसमंताद्रत्नसंचयैः ॥ श्रोणिसूत्रंनिपतितंत्रुटितंरत्नचित्रितम् ॥२६॥ कटिप्रदेशाद्विस्रस्तानीवीतस्यैवपश्यतः ॥ भूषणानिचसर्वाणिपतितानिसमंततः ॥ २७ ॥ देवगंधर्वकन्याश्चनीताहृष्टैःप्लवंगमैः ॥ मंदोदरीरुरोदाथरावणस्याग्रतोभृशम् ॥ २८ ॥ क्रोशंतीकरुणंदीनाजगाददशकंधरम् ॥ निर्लज्जोऽसिपरैरेवंकेशपाशेविकृष्यते ॥ २९ ॥ भार्यातवैवपुरतःकिंजुहोषिनलज्जसे ॥ हन्यतेपश्यतोयस्यभार्यापापैश्चशत्रुभिः ॥ ३० ॥

मोती, रत्नसमूहोंके साथ टूटकर नीचे गिरने लगे । रत्नसे गुँथी हुई तगडीभी वानरोंकी खैंचाखैंचीसे टूटकर पृथ्वीपर गिरपड़ी ! उसमें चित्र विचित्र रत्न लगे हुएथे ॥ २६ ॥ उसका नारा कमरमेंसे खुलगया और सारे गहने जिधर तिधर गिरे । यह सब बातें रावणके सन्मुख हो रहींथीं ॥ २७ ॥ और २ वानरगण हर्षितचित्तसे (रावणपत्नी) देवकन्या और गंधर्वकन्याओंको होमस्थानमें ले आये । रावणके आगे मन्दोदरी अतिशय शोक करने लगी ॥ २८ ॥ वह विचारी करुणा स्वरसे विलाप करके रावणसे बोली,—“ अरे ! तू पक्का निर्लज्ज है शत्रु तेरे ही प्रत्यक्ष तेरी भार्याके केश पकडकर खैंचते हैं, ॥ २९ ॥ और तू हर्षसे होम कर रहा है ? तुझे लाज नहीं आती ? दुष्ट ! शत्रु आँखों देखते जिसकी

भार्याको मारें ॥ ३० ॥ उसको तत्काल तिसी जगह जीव देना चाहिये; ऐसी अवस्था देखनेसे उसका मरना भला है। हे मेघनाद ! हाय ! हाय ! अरे वानर तेरी माताको क्लेश देरहे हैं ॥ ३१ ॥ जो तू जीवित होता तो मुझपर इस दुःखका अवसर नहीं आता ! हमारे स्वामीने अपने जीवनकी आशासे स्त्री और लाज दोनोंको छोड दिया है ! " ॥ ३२ ॥ मन्दोदरीके विलापको सुनकर राजा रावणने शीघ्र उठ खड्ग उठाय "देवीको (राणी मन्दोदरीको) छोड़ " । ऐसे कह ॥ ३३ ॥ अंगदजीकी कमरमें प्रहार किया; इसके उपरान्त सारे वानर (इस प्रकारसे) उस बडे होमका विध्वंस कर (मन्दोदरी आदि स्त्रियोंको छोड़) इसस्थानको त्याग कर चले गये ॥ ३४ ॥ सबही आनन्दसे श्रीरामचंद्रजीके निकट

मर्तव्यंतेनतत्रैवजीवितान्मरणंवरम् ॥ हामेघनादतेमाताक्लिश्यतेबतवानरैः ॥ ३१ ॥ त्वयिजीवतिमेदुःखमीदृशंचकथंभवेत् ॥ भार्या लज्जाचसंत्यक्ताभर्त्रामेजीविताशया ॥ ३२ ॥ श्रुत्वातद्देवितंराजामंदोदर्यादशाननः ॥ उत्तस्थौखड्गमादायत्यजदेवीमितिब्रुवन् ॥३३॥ जघानांगदमव्यग्रःकटिदेशेदशाननः ॥ ततोत्सृज्ययुःसर्वेविध्वंस्यहवनंमहत् ॥ ३४ ॥ रामपार्श्वमुपागम्यतस्थुः सर्वेप्रहर्षिताः ॥ रावणस्तुततोभार्यामुवाचपरिसांत्वयन् ॥ ३५ ॥ दैवाधीनमिदंभद्रेजीवताकिंनदृश्यते ॥ त्यजशोकंविशालाक्षिज्ञानमालंब्यनिश्चितम् ॥ ॥ ३६ ॥ अज्ञानप्रभवःशोकःशोकोज्ञानविनाशकृत् ॥ अज्ञानप्रभवाहंधीःशरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३७ ॥ तन्मूलःपुत्रदारादिसंबंधःसंसृतिस्ततः ॥ हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ ३८ ॥

आय पहुँचे । इस ओर रावण स्त्रीको समझाकर कहनेलगा ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरि ! सब बात दैवके आधीन है । जो प्राणी जीवित रहते हैं वह असंभवित वस्तुको भी देखते हैं जो प्रसंग आता है तो असंभव कर्मभोगको भोगताहै; हे विशालनयने ! ऐसे निश्चित ज्ञानको आश्रय करके शोक छोड़ दो ॥ ३६ ॥ अज्ञानके सिवाय मनुष्यको शोक होनेका और कुछ कारण नहीं है । शोक होनेके पीछे अंतःकरणमें ज्ञानका नाश होनेके कारण अज्ञान बढ़ता है । मनुष्य अपनी देहमें जो 'अहं-मैं' बुद्धि करता है । इसका कारणभी अज्ञानही है ॥ ३७ ॥ इस कारण अज्ञान छोड़कर ज्ञानदृष्टिसे देखो ! अज्ञानदृष्टिसे मनुष्य पुत्र स्त्री आदिमें सम्बन्ध समझता है और सम्बन्धी वासनासे मनुष्यको कर्मबंधन हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम

इत्यादि सब विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ३८ ॥ जन्म, मृत्यु, जरा यह आवभी अज्ञानसेंही उत्पन्न होवे हैं परन्तु आत्मा तो एक शुद्ध (निर्गुण) मायाकार्यसे अलग अलिप्त ॥ ३९ ॥ आनंदरूपी व ज्ञानमय है और वह सुख तथा दुःखसे छूटा हुआ है आत्माको तीन कालमें किसीके साथ संयोग अथवा वियोग नहीं है ॥ ४० ॥ हे अनिन्दिते ! अपनी आत्माको इस प्रकारसे जानकर शोक छोड़ दो । मैं अभी जाताहूं और लक्ष्मणके सहित रामका वधकरके ॥ ४१ ॥ आताहूं, नहीं तो श्रीरामजी वज्रतुल्य बाणोंसे मेरा शरीर छिन्न भिन्न करेंगे तो मैं उनके पदको प्राप्त होऊँ ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! मैं आज्ञा देताहूं, कि सीताको मारकर मेरे समस्त प्रेतकार्य[1] तुम करना अथवा मेरे मृतक शरीरके साथ आगमें जल

अज्ञानप्रभवाह्येतेजन्ममृत्युजरादयः ॥ आत्मातुकेवलःशुद्धोव्यतिरिक्तोह्यलेपकः ॥ ३९ ॥ आनंदरूपोज्ञानात्मासर्वभावविवर्जितः ॥ नसंयोगोवियोगोवाविद्यतेकेनाचित्सतः॥४०॥एवंज्ञात्वात्वमात्मानंत्यजशोकमनिंदिते ॥ इदानीमेवगच्छामिगत्वारामंसलक्ष्मणम्॥४१॥ आगमिष्यामिनोचेन्मांदारयिष्यतिसायकैः ॥ श्रीरामोवज्रकल्पैश्चततोगच्छामितत्पदम् ॥४२॥ तदात्वयामेकर्तव्याक्रियामच्छासनात्प्रिये ॥ सीतांहत्वामयासार्धंत्वंप्रवेक्ष्यसिपावकम् ॥४३॥ एवंश्रुत्वावचस्तस्यरावणस्यातिदुःखिता ॥ उवाचनाथमेवाक्यंशृणुसत्यंतथाकुरु॥ ॥ ४४ ॥ शक्योनराघवोजेतुंत्वयाचान्यैःकदाचन ॥ रामोदेववरःसाक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४५॥मत्स्योभूत्वापुराकल्पेमनुंवैवस्वतंप्रभुः॥ ररक्षसकलापद्भ्योराघवोभक्तवत्सलः ॥ ४६ ॥ रामःकूर्मोऽभवत्पूर्वंलक्षयोजनविस्तृतः ॥ समुद्रमथनेपृष्ठेदधारकनकाचलम् ॥ ४७ ॥

मरना । " ॥ ४३ ॥ रावणके यह वचन सुनकर मन्दोदरी महादुःखित होकर बोली " हे नाथ ! मेरे सत्यवाक्य श्रवणकरके उसके अनुसार कार्य करो ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! तुम या दूसरे वीर रामचंद्रजीको कभीभी नहीं जीत सकेंगे । रामजी साक्षात् देवाधिदेव प्रकृति और जीवके नियामक हैं ॥ ४५ ॥ इन्हीं भक्तवत्सल प्रभु रामचंद्रजीने पहले एक कल्पमें मत्स्यावतार लेकर वैवस्वत मनुको सारे संकटोंसे छुड़ाया ॥ ४६ ॥ इन्हीं रामजीने पहले लक्ष योजनके विस्तारका कूर्मरूप ग्रहण किया, और समुद्रमथनेके समय पीठपर सुवर्णपर्वत (मन्दर) को धारण कियाथा ॥४७॥

१. शास्त्रमें कहा है कि जिसके पुत्र न होय उस अपुत्र मनुष्यकी उत्तरक्रिया उसकी स्त्री करै इसके विषयमें मनुजीका " पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् " वचन है ।

इन्हीं महात्माने किसी समय पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वाराहशरीर धारण किया और हिरण्याक्ष असुरको मारा ॥ ४८ ॥ राम चंद्रजीने पूर्वकालमें नृसिंहमूर्ति धारणकर त्रिलोककंटक हिरण्यकशिपु दैत्यका वध किया ॥ ४९ ॥ इन रामचंद्रजीनेंही पूर्व कालमें, बलिको बांध लिया व तीन पांवसे त्रिलोकीको नापकर इन्द्रको दिया, इन्द्र इनका सेवक है ॥ ५० एकसमय जिधर तिधर क्षत्रियस्वरूपी राक्षस उत्पन्न होकर पृथ्वीको अतिशय भार हुएथे; तिसवेला इन रामचंद्रजीनेंही परशुराम अवतार धारण किया और क्षत्रियोंको अनेक [इक्कीस] वार संहार कर पृथ्वीको जीता और पृथ्वी मुनि (कश्यप) को देदी ॥ ५१ ॥ उन्हीं परेसे परे परमात्माने अब रघुवंशमें अवतार लिया

हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तोहतोनेनमहात्मना ॥ क्रोडरूपेणवपुषाक्षोणीमुद्धरताक्वचित् ॥ ४८ ॥ त्रिलोककंटकंदैत्यंहिरण्यकशिपुंपुरा ॥ हत वान्नारसिंहेनवपुषारघुनंदनः ॥ ४९ ॥ विक्रमैस्त्रिभिरेवासौवलिंवद्ध्वाजगत्त्रयम् ॥ आक्रम्यादात्सुरेंद्रायभृत्यायरघुसत्तमः ॥ ५० ॥ राक्षसाःक्षत्रियाकाराजाताभूमेर्भरावहाः ॥ तान्हत्वावहुशोरामोभुवंजित्वाह्यदान्मुनेः ॥ ५१ ॥ सएवसांप्रतंजातोरघुवंशेपरात्परः ॥ भवदर्थेरघुश्रेष्ठोमानुषत्वमुपागतः ॥ ५२ ॥ तस्यभार्याकिमर्थंवाहृतासीतावनाद्बलात् ॥ ममपुत्रविनाशार्थंस्वस्यापिनिधनायच ॥५३॥ इतःपरंवावैदेहींप्रेषयस्वरघूत्तमे ॥ विभीषणायराज्यंतुदत्त्वागच्छामहेवनम् ॥ ५४ ॥ मंदोदरीवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ कथं भद्रेरणेपुत्रान्भ्रातॄन्राक्षसमंडलम् ॥ घातयित्वाराघवेणजीवामिवनगोचरः ॥ ५५ ॥ रामेणसहयोत्स्यामिरामवाणैःसुशीघ्रगैः ॥ विदार्य माणोयास्यामितद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ५६ ॥

है; तुम्हारा वध करनेके लिये उन्होंने मनुष्यरूप धारण किया है। वही यह राम हैं ॥ ५२ ॥ तुमने पुत्रका नाश करानेके लिये उनकी स्त्रीको वनमेंसे बलसे हरण किया और अपनी भी मृत्युका कारण सीताहीको किया ॥ ५३ ॥ अब तुम जानकीको रामचंद्रजीके पास भेज दो और राज्य विभीषणको दे फिर वनको चले जाओ ॥ ५४ ॥ मन्दोदरीके वचन सुन रावणने कहा;–हे सुन्दरि ! मैंने रामसे युद्धमें पुत्रोंका, भ्राताओंका व राक्षस समूहका घात कराया है अब मैं वनमें जायकर कैसे जीवित रहूं ? मैं लोगोंको अपना मुख कैसे दिखाऊँगा ॥ ५५ ॥ इस कारण मैं रामचंद्रजीसे युद्ध करनेको जाताहूं । रामचंद्रजीके बाण अत्यन्त शीघ्र चलते हैं उनके लगनेसे मेरा शरीर छिन्नभिन्न होजायगा तब मैं मृत्यु पायकर विष्णुजीके

परमपदको प्राप्त हूंगा ॥ ५६ ॥ यह मैं जानताहूं कि, रामचंद्रजी विष्णुके अवतार हैं, और सीता लक्ष्मीजीका अवतार हैं; जानबूझकर मैं जनककी कन्या सीताको बलात्कार हरण करलाया; इस उद्देशसे कि रामके हाथसे मरण होनेसे सद्गति मिलेगी ॥ ५७ ॥ हे प्रिये ! मैं तुझको व संसारको छोड़ मृतबंधुओंके साथ जाऊँगा । रामजी युद्धमें मेरा वध करेंगे इस लिये मैं, मुमुक्षुलोग जिस परमानंदमय पवित्र पदको पाते हैं ॥ ५८ ॥ तिस गतिको जाऊँगा; अंतकालमें रामजीका दर्शन पानेसे इस राक्षस देहसे मुझकरके हुए सर्व पाप धुल जायँगे । जो मुक्ति दुर्लभ है वह निश्चय मुझे मिलेगी ॥ ५९ ॥ हे प्रिये ! यह संसार एक समुद्र है; इस समुद्रमें पाच क्लेश अर्थात् १ अविद्या, जैसे सीपीमें चाँदीका भास होना रस्सीमें सर्पका भास होना इत्यादि । २ अस्मिता, अर्थात् ऐसा मानना कि शरीरसे कोई आत्मा नहीं है । ३ राग, अर्थात् किसी वस्तुमें आसक्ति । ४ द्वेष, अर्थात्

जानामिराघवंविष्णुंलक्ष्मींजानामिजानकीम् ॥ ज्ञात्वैवजानकीसीतामयानीतावनाद्बलात् ॥ ५७ ॥ रामेणनिधनंप्राप्ययास्यामीतिप रंपदम् ॥ विमुच्यत्वांतुसंसाराद्गमिष्यामिसहप्रिये ॥ ५८ ॥ परानंदमयीशुद्धासेव्यतेयामुमुक्षुभिः ॥ तांगतिंतुगमिष्यामिहतोरामेणसं युगे ॥ ५९ ॥ प्रक्षाल्यकल्मषाणीहमुक्तिंयास्यामिदुर्लभाम् ॥ ६० ॥ क्लेशादिपंचकतरंगयुगंभ्रमाढ्यंदारात्मजाप्तधनबंधुझषाभियुक्तम् ॥ और्वानलाभनिजरोषमनंगजालंसंसारसागरमतीत्यहरिंव्रजामि ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेदशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ इत्युक्त्वावचनंप्रेम्णाराज्ञींमंदोदरींतदा ॥ रावणःप्रययौयोद्धुंरामेणसहसंयुगे ॥ १ ॥

पराया भला देखकर मनमें डाह करना । ५ अभिनिवेश, अर्थात् मरणादिका भय व इन पांचोसे उत्पन्न होनेवाली स्थूलवृत्ति जिसमें तरंगें उछलती हैं, एकके पीछे एक आनेवाला सुख दुःखही जिसमें भँवररूप है. स्त्री, पुत्र, आप्त, द्रव्य, बंधु इत्यादि जलजन्तु फिरते हैं । वडवाग्निके समान प्रखर तेजस्वी अपना क्रोध रहता है, जिसमें कामदेवरूपी जल पड़ा हुआ है । ऐसे संसारसागरके पार होकर मैं हरिकी शरण जाताहूं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥ राम रावणका संग्राम ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि " हे पार्वति ! रावण मन्दोदरीको ऊपर कहे अनुसार प्रेमसे समझाय बुझाय रामजीसे युद्ध करनेको रणभूमिमें जानेकी

तैयारी करता हुआ ॥ १ ॥ वह रावण भयंकर राक्षसोंको साथले मजबूत रथमें बैठा। इस रथमें सोलह पहियेथे; रक्षा करनेके लिये वरूथ (छतरी) लगा हुआ ज्वारिद्वार था ॥ २ ॥ उस रथमें गधे जुते हुएथे, उन गधोंका मुख पिशाचोंके समान भयंकर था; इस कारण उसको देखतेही डर लग ताथा। इसमें अस्त्र शस्त्रादिक सब सामग्री भररहीथी ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भयंकर आकारवाला रावण रणको चला; रावण उग्र दिखलाई देताथा और रणमें बड़े निर्दयीपनके कार्य करताथा; उसको देखतेही रामजीसे रक्षित वानरसेनाभी घबरा गई ॥ ४ ॥ हनुमानूजी कूदकर रावणसे युद्ध करनेको आये, हनुमानूजीके पराक्रमकी उपमा नहीं दी जासकती, उन्होंने निकट जाय राक्षसकी छातीपर दृढमूका बाँध वेगसे मारा। उस घूँसेका

दृढंस्यंदनमास्थायवृतोघोरैर्निशाचरैः ॥ चक्रैःषोडशभिर्युक्तंसवरूथंसकूवरम् ॥ २ ॥ पिशाचवदनैर्घोरैःखरैर्युक्तंभयावहम् ॥ सर्वास्त्रश स्त्रसहितंसर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३ ॥ निश्चक्रामाथसहसारावणोभीषणाकृतिः ॥ आयांतंरावणंदृष्ट्वाभीषणंरणकर्कशम् ॥ ४ ॥ संत्रस्ताभू त्तदासेनावानरीरामपालिता ॥ ५ ॥ हनूमानथचोत्प्लुत्यरावणंयोद्धुमाययौ ॥ आगत्यहनुमान्रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥ ६ ॥ मुष्टिंबंधंदृढं बद्ध्वाताडयामासवेगतः ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणजानुभ्यामपतद्रथे ॥ ७ ॥ मूर्च्छितोऽथमुहूर्तेनरावणःपुनरुत्थितः ॥ उवाचचहनूमंतंशूरोऽसि ममसंमतः ॥ ८ ॥ हनूमानाहतंधिङ्मांयस्त्वंजीवसिरावण ॥ त्वंतावन्मुष्टिनावक्षोममताडयरावण ॥ ९ ॥ पश्चान्मयाहतःप्राणान्मो क्ष्यसेनात्रसंशयः ॥ तथेतिमुष्टिनावक्षोरावणेनापिताडितः ॥ १० ॥ विघूर्णमाननयनःकिंचित्कश्मलमाययौ ॥ संज्ञामवाप्यकपिराड्रा वणंहंतुमुद्यतः ॥ ११ ॥

प्रहार लगनेसे रावणको मूर्च्छा आगई; वह घुटने टेककर रथमें गिरपड़ा; परन्तु फिर कुछ देरमें सावधान होकर बोला,—“ मैं मानताहूं कि तू शूर है ” ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ हनुमानूजीने उससे कहा मुझे धिक्कार है ! क्योंकि हे रावण ! तू मेरे मूकेका प्रहार पायकरभी जीवितही रहा । हे रावण ! तूभी मेरी छातीमें एक मूका मारले ॥ ८ ॥ कारण कि फिर मैं तेरे घूँसा मारूंगा कि जिससे तू अवश्यही प्राण छोड़ेगा; इसमें कोई संशय नहीं, इससे तेरे मनमें मेरे मारनेकी इच्छा जैसे कि तैसे रहजायगी ! ”—रावणने ‘ ठीक ’ कहकर हनुमानूजीकी छातीमें घूँसा मारा ॥ ९ ॥ जिससे हनुमानूजीके नेत्र घूमें और कुछेक मूर्च्छा आई। वानरेश्वर चैतन्यताको प्राप्तहो रावणके मारनेको दौड़े ॥ १० ॥ तैसेही राक्षसपति रावण डरकर दूसरी ओरको

चलागया, हनुमान्, अंगद, नल, व नील ॥ ११ ॥ यह चारों बराबर खड़ेथे इनके सन्मुख अग्निवर्ण, सर्परोमा, खड्गरोमा और वृश्चिक रोमा ॥ १२ ॥ यह चारों बड़े राक्षस दिखाई दिये तब इन चारों वानरोंने क्रमसे इन चार राक्षसोंके साथ युद्ध करना आरंभ किया; फिर वे चारों पराक्रमी राक्षसोंको मारकर ॥ १३ ॥ १४ ॥ पृथक् २ गर्जते हुए रामचंद्रजीके पास आये; इतनेहीमें रावण मारे क्रोधके दाँतोंसे ओठोंको चबाता ॥ १५ ॥ आँखें निकालकर रामजीके ऊपर धाया। रावण रथमें बैठाथा व रामजी पृथ्वीपर खड़ेथे; परन्तु उस क्रूर राक्षसने रामजीकी इस स्थितिका विचार न करके उनपर वज्रके समान महाभयंकर बाणोंका प्रहार किया। जैसे मेघ जलधारा छोड़ता है तैसे रावण बाण छोड़ताथा। उसने रामजीके

ततोऽन्यत्रगतोभीत्यारावणोराक्षसाधिपः ॥ हनूमानंगदश्चैवनलोनीलस्तथैवच ॥ १२ ॥ चत्वारसमवेताग्रेदृष्ट्वाराक्षसपुंगवान् ॥ अग्निवर्णंतथासर्परोमाणंखड्गरोमकम् ॥१३॥ तथावृश्चिकरोमाणंनिर्जघ्नुःक्रमशोऽसुरान् ॥ चत्वारश्चतुरोहत्वाराक्षसान्भीमविक्रमान् ॥१४॥ सिंहनादंपृथक्कृत्वारामपार्श्वमुपागताः ॥ ततःक्रुद्धोदशग्रीवःसंदश्यदशनच्छदम् ॥ १५ ॥ विवृत्यनयनेक्रूरोराममेवान्वधावत ॥ दशग्रीवोरथस्थस्तुरामंवज्रोपमैःशरैः ॥ १६ ॥ आजघानमहाघोरैर्धाराभिरिवतोयदः ॥ रामस्यपुरतःसर्वान्वानरानपिविव्यथे ॥ १७ ॥ ततः पावकसंकाशैःशरैःकांचनभूषणैः ॥ अभ्यवर्षद्रणेरामोदशग्रीवंसमाहितः ॥ १८ ॥ रथस्थंरावणंदृष्ट्वाभूमिष्ठंरघुनन्दनम् ॥ आहूयमातलिंशक्रोवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ रथेनममभूमिष्ठंशीघ्रंयाहिरघूत्तमम् ॥ त्वरितंभूतलंगत्वाकुरुकार्यंममानघ ॥ २० ॥ एवमुक्तोऽथतंनत्वामातलिर्देवसारथिः ॥ ततोहयैश्चसंयोज्यहरितैःस्यंदनोत्तमम् ॥ २१ ॥ स्वर्गाज्जयार्थंरामस्यह्युपचक्राममातलिः ॥ अब्रवीच्चततोराममप्रतर्क्यंरथोस्थितः ॥ प्रांजलिर्देवराजेनप्रेषितोऽस्मिरघूत्तम ॥ २२ ॥

सामनेही सर्व वानरोंको जर्जर करडाला ॥ १६ ॥ १७ ॥ युद्धमें रामजी जराभी नहीं डगमगाए, बरन्, अग्निके समान प्रकाशित सुवर्णकी फोंक लगे बाणोंकी वर्षा रावणपर कर रहेथे॥ १८॥इन्द्रने, रावणको रथमें बैठा हुआ व रामजीको पृथ्वीमें खड़ा हुआ देख मातलिको बुलायकर कहा कि ॥ १९ ॥ "हे पापरहित! मेरा रथ लेकर पृथ्वीपर खड़े हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट शीघ्र जाओ और यह मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥ इन्द्रकी ऐसी आज्ञा पाय देव सारथी मातलि उसका वंदनकर शीघ्रही तिस उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोड़ता हुआ और उसको लेकर ॥ २१ ॥ रामजीका विजय होनेके लिये

उनके निकट आया; इन्द्रका रथ साधारण प्राणियोंको नहीं दिखाई देता है; तिस रथमें बैठा हुआ मातलि हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीसे बोला;—" हे रघुवीर ! मुझे देवराजने भेजाहै ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! यह रथ देवराजका है आप शत्रुओंको इसपर बैठकर जीतें, इस कारणसे यह भेजागया है । हे महाशय ! यह शोभायमान इन्द्रधनुष, यह कभी न टूटनेवाला, कवच, यह खड्ग, यह दिव्य दो तरकश, ये सब वस्तु मैं लायाहूं । हे राम ! इस रथपर बैठिये, मैं सारथिका कार्य करताहूं; हे देव ! जिसप्रकार इन्द्रने वृत्रासुरको मारा वैसेही आप रावण राक्षसका संहार कीजिये " ॥ २३ ॥ २४ ॥ मातलिके ऐसे कहनेपर राम उस उत्तम रथकी प्रदक्षिणा व वंदनकर रथपर चढ़े;—इस समय यह जानकर कि " अब रावणका वध शीघ्र होगा " सब लोकोंको आनंद हुआ ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त महासमर्थ श्रीरामचंद्रजीका व उस चतुर रावणका महासंग्राम होनेलगा; वह भयंकर दिखाव

रथोऽयंदेवराजस्यविजयायतवप्रभो ॥ प्रेषितश्चमहाराजधनुरैंद्रंचभूषितम् ॥ २३ ॥ अभेद्यंकवचंखड्गंदिव्यतूणीयुगंतथा ॥ आरुह्यचरथं रामरावणंजहिराक्षसम् ॥ २४ ॥ मयासारथिनादेववृत्रंदेवपतिर्यथा ॥ इत्युक्तस्तंपरिक्रम्यनमस्कृत्यरथोत्तमम् ॥ २५ ॥ आरुरोहरथं रामोलोकाँल्लक्ष्म्यानियोजयन् ॥ ततोऽभवन्महायुद्धंभैरवंरोमहर्षणम् ॥ २६ ॥ महात्मनोराघवस्यरावणस्यचधीमतः ॥ आग्नेयेनचआग्नेयंदैवंदैवेनराघवः ॥ २७ ॥ अस्त्रंराक्षसराजस्यजघानपरमास्त्रवित् ॥ ततस्तुससृजेघोरंराक्षसंचास्त्रमस्त्रवित् ॥ २८ ॥ क्रोधेनमहताविष्टोरामस्योपरिरावणः ॥ रावणस्यधनुर्मुक्ताःसर्पाभूत्वामहाविषाः ॥ शराःकांचनपुंखाभाराघवंपरितोऽपतन् ॥ २९ ॥ तैःशरैःसर्पवदनैर्वमद्भिरनलंमुखैः ॥ दिशश्चविदिशश्चैवव्याप्तास्तत्रतदाभवन् ॥ ३० ॥

देखकर देखनेवालोंके रोम खड़े होगये ॥ २६ ॥ श्रीरामजी अस्त्रविद्यामें निपुण थे; राक्षसपति रावण जो अस्त्र छोड़े रामचंद्रजीभी वही अस्त्र छोड़कर उसका प्रतिकार करें । इसप्रकार आग्नेयास्त्रपर आग्नेयास्त्र छोड़ इन्द्रास्त्रपर इन्द्रास्त्र छोड़ रावणको हतवीर्य करते रहे ॥ ॥ २७ ॥ रावणभी अस्त्रोंको भलीभाँति जानताथा; फिर उसने अत्यन्त क्रोधित होकर रामजीपर एक भयंकर राक्षसास्त्र छोड़ा ॥ २८ ॥ रावणके अस्त्रका पृष्ठभाग सुवर्णसे मढ़ा हुआथा; उस बाणके धनुषसे छूटतेही उसमेंसे अत्युग्र विषैले सर्प निकलकर चारों ओरसे रामजीपर गिरे ॥ २९ ॥ उन सर्पमुखी बाणोंके मुखसे अग्नि निकलतीथी; ऐसे बाणोंसे उस समय दिशा विदिशा भरगई ॥ ३० ॥

इसके उपरान्त श्रीरामजीने जिधर तिधर सर्पोंको फैला हुआ देखकर उस अस्त्रका डरानेवाला गरुड़ास्त्र युद्धमें रावणके ऊपर छोड़ा ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीका छोड़ा हुआ बाण गरुडरूपी बना । गरुड़ सर्पका मारक शत्रु है इसलिये उन गरुड़रूपी बाणोंने जिधर तिधर उन सर्परूपी फैले हुए बाणोंको काटडाला ॥ ३२ ॥ युद्धमें रावणने यह देखकर कि, रामने मेरे अस्त्रका प्रतिकार किया. रामजीपर भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजी अपना कार्य चतुरताके सहित सहजसेही करतेथे उन्होंने रावणके बाण लीलासेही काट दिये तब रावणने फिर बाणसमूहको छोड़कर रामजीको पीड़ित किया और एक भयंकर बाण मातलिके मारा ॥ ३४ ॥ रामजीके रथका ध्वज सुवर्णका था; रावणने अत्यन्त क्रोधित होकर

रामःसर्पांस्ततोदृष्ट्वासमंतात्परिपूरितान् ॥ सौपर्णमस्त्रंतद्घोरंपुरःप्रावर्तयद्रणे ॥३१॥ रामेणमुक्तास्तेबाणाभूत्वागरुडरूपिणः॥चिच्छिदुः सर्पबाणाँस्तान्समंतात्सर्पशत्रवः ॥ ३२ ॥ अस्त्रेप्रतिहतेयुद्धेरामेणदशकंधरः ॥ अभ्यवर्षत्ततोरामंघोराभिःशरवृष्टिभिः ॥३३ ॥ ततःपुनः शरानीकैराममक्लिष्टकारिणम् ॥ अर्दयित्वातुघोरेणमातलिंप्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥ पातयित्वारथोपस्थेरथकेतुंचकांचनम् ॥ ऐंद्रानश्वान भ्यहनद्रावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ३५ ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाश्चारणाःपितरस्तथा ॥ आर्ताकारंहरिंदृष्ट्वाव्यथिताश्चमहर्षयः ॥३६॥ व्यथितावा नरेंद्राश्चबभूवुःसविभीषणाः ॥ दशास्योविंशतिभुजःप्रगृहीतशरासनः ॥ ३७ ॥ददृशेरावणस्तत्रमैनाकइवपर्वतः ॥ रामस्तुभ्रुकुटिंबद्ध्वाक्रो धसंरक्तलोचनः ॥ ३८ ॥ कोपंचकारसदृशंनिर्दहन्निवराक्षसम् ॥धनुरादायदेवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥ ३९ ॥

ध्वजा काटकर रथमें गिराई और इन्द्रके घोडोंको जर्जर किया ॥ ३५ ॥ रामजीके शरीरको विह्वल हुआ देख देव, गंधर्व, चारण तैसेही पितरआदि सबको खेद हुआ व महर्षियोंको चिन्ता हुई ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर यूथपतिभी अतिशय चिन्ता करते हुए । दशमुखवाला बीस हाथवाला, हाथमें धनुष इस प्रकारका ॥ ३७ ॥ वह रावण रणभूमिमें मैनाक पर्वतके समान प्रचंड दिखाई देने लगा रामजीके नेत्र मारे क्रोधसे लाल होगये. उन्होंने भ्रुकुटी चढ़ाई ॥ ३८ ॥ और अपने पराक्रमके अनुसार ईर्षा धारण करते हुए । इससमय रामजी ऐसे जान पड़तेथे मानो रावणको भस्म कर डालेंगे वर्षाऋतुके समय आकाशमें दिखाई देनेवाले इन्द्रधनुषके समान अपने अद्भुत विस्तीर्ण धनुषको श्रीरामजीने उठाया ॥ ३९ ॥

प्रलयकालकी अग्निके समान धुक् धुक् करता हुआ बाण हाथमें लिया व आगे खड़े हुए शत्रुपर अग्निके समान प्रदीप्त दृष्टि फेंकी ॥ ४० ॥ मारे क्रोधके उनका तेज प्रदीप्त होरहाथा । उन कालरूपी रामचंद्रजीने सर्व लोकोंके सन्मुख अपने पराक्रमको दिखानेका आरंभ किया ॥ ४१ ॥ रामचंद्रजीने कानतक धनुष खैंच रावणके बाण मार वानरसेनाको आनंद दिया । इस समय राम जीकी मूर्ति कालमृत्युके समान उग्र होनेपरभी रमणीय दिखाई देतीथी ॥ ४२ ॥ जिस समय रामजी शत्रुपर धाये तिस समय उनके कोपयुक्त मुखको देखकर सब प्राणियोंको भय लगा और पृथ्वी थर २ काँपने लगी ॥ ४३ ॥ रामजीका रूप महाभयंकर दिखाई देने लगा;

गृहीत्वापाणिनाबाणंकालानलसमप्रभम् ॥ निर्दहन्निवचक्षुर्भ्यांददृशेरिपुमंतिके॥४०॥पराक्रमंदर्शयितुंतेजसाप्रज्वलन्निव ॥ प्रचक्रमेकाल रूपीसर्वलोकस्यपश्यतः ॥ ४१ ॥ विकृष्यचापंरामस्तुरावणंप्रतिविध्यच ॥ हर्षयन्वानरानीकंकालांतकइवाबभौ ॥ ४२ ॥ क्रुद्धंराम स्यवदनंदृष्ट्वाशत्रुंप्रधावतः ॥ तत्रसुःसर्वभूतानिचचालचवसुंधरा ॥ ४३ ॥ रामंदृष्ट्वामहारौद्रमुत्पातांश्चसुदारुणान् ॥ त्रस्तानिसर्व भूतानिरावणंचाविशद्भयम् ॥ ४४ ॥ विमानस्थाःसुरगणाःसिद्धगंधर्वकिन्नराः ॥ ददृशुःसुमहायुद्धंलोकसंवर्तकोपमम् ॥ ऐंद्रमस्त्रंसमा दायरावणस्याशिरोऽच्छिनत् ॥ ४५ ॥ मूर्धानोरावणस्याथवहवोरुधिरोक्षिताः ॥ गगनात्प्रपतंतिस्मतालादिवफलानिहि ॥ ४६ ॥ नदिनंनचवैरात्रिर्नसंध्यानादिशोऽपिवा ॥ प्रकाशंतेनतद्रूपंदृश्यतेतत्रसंगरे ॥ ४७ ॥

जिधर तिधर अत्यन्त दारुण उत्पात दीखे; तब सर्व प्राणियोंको त्रास हुआ व रावणको भी भय लगा ॥ ४४ ॥ देवगण, सिद्ध; गन्धर्व व किन्नर विमानोंमें बैठकर जो आकाश मार्गमें आयेथे वे नीचे होते हुए संसारका यह प्रलयके समान अत्यन्त कठोर युद्ध देखते हुए चुप चाप खड़े रहे । रामचंद्रजीने इन्द्रास्त्र लेकर रावणका मस्तक काटा ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार ताड़ वृक्षके फल पृथ्वीपर गिरते हैं वैसेही रामजीके द्वारा काटे हुए रावणके अनेक मस्तक आकाशमेंसे नीचे पृथ्वीपर गिरने लगे । वह रुधिरसे भीगे हुएथे ॥ ४६ ॥ इस युद्धके होनेपर न दिन दिखाई दे न रात जान पड़े, न संध्याकाल मालूम हो, न दिशायें दीखें (बराबर अनेक दिनतक युद्ध होता रहाथा) अनेकवार रामचंद्रजीने रावणके मस्तक काटे

परन्तु युद्धमें रावणका वह कवन्धरूप किसीको नहीं दिखाई दिया,—क्योंकि जितनीवार शिर काटे गयेथे तितनीहीवार नये जम आयेथे ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीका चित्त विस्मित हुआ । वह विचारने लगे कि वारंवार उत्पन्न हुए समान तेजवाले मस्तक एक सौ, एकवार काटे गये ॥ ४८ ॥ परन्तु अवतक रावणकी आयु पूरी नहीं होती; अवतक यह रावण नहीं मरता; यह क्या वात है ! वह कौशल्याजीके आनंद बढानेवाले (राम) महापराक्रमीथे; वह सर्व अस्त्र शस्त्रोंहीको नहीं जानतेथे वरन् वह सब उनके निकट तैयार रहतेथे । अब रामचंद्रजीको चिन्ता उत्पन्न हुई कि, आजतक जिन २ वाणोंसे मैंने महाबलवान् पराक्रमी दैत्योंको मारा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वही वाण रावणके वधकार्यमें निष्फल

ततोरामोबभूवाथविस्मयाविष्टमानसः ॥ शतमेकोत्तरंछिन्नंशिरसांचैकवर्चसाम् ॥ ४८ ॥ नचैवरावणःशांतोदृश्यतेजीवितक्षयात् ॥ ततः सर्वास्त्रविद्वीरःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ ४९॥ अस्त्रैश्चबहुभिर्युक्तश्चिंतयामासराघवः ॥ यैर्यैर्बाणैर्हतादैत्यामहासत्वपराक्रमाः ॥५०॥ एतेते निष्फलंयातारावणस्यनिपातने ॥ इतिचिंताकुलेरामेसमीपस्थोविभीषणः ॥ ५१ ॥ उवाचराघवंवाक्यंब्रह्मदत्तवरोह्यसौ ॥ विच्छिन्ना वाहवोऽप्यस्यविच्छिन्नानिशिरांसिच॥ ५२॥उत्पत्स्यंतिपुनःशीघ्रमित्याहभगवानजः॥नाभिदेशेऽमृतंतस्यकुंडलाकारसंस्थितम्॥ ५३ ॥ तच्छोषयानलास्त्रेणतस्यमृत्युस्ततोभवेत्॥विभीषणवचःश्रुत्वारामःशीघ्रपराक्रमः ॥५४॥पावकास्त्रेणसंयोज्यनाभिंविव्याधरक्षसः ॥अनंतरंचचिच्छेदशिरांसिचमहाबलः ॥ ५५ ॥ वाहूनपिचसंरब्धोरावणस्यरघूत्तमः ॥ ततोघोरांमहाशक्तिमादायदशकंधरः ॥ ५६ ॥

होगये अब क्या किया जाय ? इस प्रकार रामचंद्रजी चिन्ताकुल हो रहेथे कि, इतनेमें निकट स्थित विभीषण ॥ ५१ ॥ रामजीसे कहने लगे,— " हे रघुवीर ! इसको ब्रह्माजीने वर दिया है कि, इसके बाँहें और शिर कटजाने परभी ॥ ५२ ॥ वे फिर शीघ्रही नवीन हो जाँयगे ऐसा ब्रह्माजीने कहा है; इसके नाभिस्थानमें कुंडलके आकारके समान अमृत रक्खा हुआ है ॥ ५३ ॥ हे राम ! उस अमृतकुंडको आग्नेयास्त्र चलायकर सुखा डालिये तब इसकी मृत्यु होगी "। रामजी पराक्रमको शीघ्र करतेथे, उन्होने विभीषणके वचन सुनतेही ॥ ५४ ॥ आग्नेयास्त्र चलाय राक्षसकी नाभिको भेद किया फिर उसके मस्तक काटकर बाहोंको काटा । तिससमय महापराक्रमी बहुतही क्रोधित हो रहेथे फिर

रावणने एक महाभयंकर महाशक्ति उठाई व ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ विभीषणके मारनेको उसपर चलाई, क्योंकि विभीषणपर रावणका बहुतही क्रोध आ रहाथा । श्रीरामचंद्रजीने सुवर्णालंकृत तीक्ष्ण बाण चलायकर उस शक्तिके टुकडे २ कर डाले ॥ ५७ ॥ नौ मस्तक कट जानेपर रावणका तेज जाता रहा व रूप मलीन होगया; उन भयंकर मस्तकोंके छिन्न भिन्न होनेसे वह विरूप दिखाई देने लगा ॥ ५८ ॥ अब उसका एक मुख्यमस्तक और दो बांहे बच रहीं तो भी वह वीर रणभूमिमें शोभायमान था । उसने फिर क्रोधित होकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रसमूहकी ॥ ५९ ॥ वर्षा रामचंद्रजीपर की । रामचंद्रजी भी उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उस समय महाभयंकर तुमुल संग्राम हुआ । देखनेवालोंके रुयें खड़े

विभीषणवधार्थायचिक्षेपक्रोधविह्वलः ॥ चिच्छेदराघवोबाणैस्तांशितैर्हेमभूषितैः ॥ ५७ ॥ दशग्रीवाशिरश्छेदात्तदातेजोविनिर्गतम् ॥ म्लानरूपोबभूवाथच्छिन्नैःशीर्षैर्भयंकरैः ॥ ५८ ॥ एकेनमुख्यशिरसावाहुभ्यांरावणोबभौ ॥ रावणस्तुपुनःक्रुद्धोनानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥ ॥ ५९ ॥ ववर्षरामंतंरामस्तथाबाणैर्ववर्षच ॥ ततोयुद्धमभूद्घोरंतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ ६० ॥ अथसंस्मारयामासमातलीराघवंतदा ॥ विसृज्यास्त्रंवधायास्यब्राह्मंशीघ्रंरघूत्तम ॥ ६१ ॥ विनाशकालःप्रथितोयःसुरैःसोऽद्यवर्तते ॥उत्तमांगंनचैतस्यच्छेत्तव्यंराघवत्वया ॥६२॥ नैवशीर्ष्णिप्रभोवध्योवध्यएवहिमर्मणि ॥ ततःसंस्मारितोरामस्तेनवाक्येनमातलेः ॥ ६३ ॥ जग्राहसशरंदीप्तंनिःश्वसंतमिवोरगम् ॥ यस्यपार्श्वेतुपवनःफलेभास्करपावकौ ॥ ६४ ॥ शरीरमाकाशमयंगौरवेमेरुमंदरौ ॥ पर्वस्वपिचविन्यस्तालोकपालामहौजसः ॥ ६५ ॥

होगये ॥ ६० ॥ फिर मातलिने रामचंद्रजीको याद दिलादी कि—हे रघुवीर ! इसका वध करनेके लिये शीघ्र ब्रह्मास्त्र छोडिये ॥ ६१ ॥ वह समय, जो रावणके नाश होनेका देवताओंने नियत किया है वह इस समय आगया है । हे राघव ! आप इसका मस्तक न काटिये ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! मस्तकपर कितनाही प्रहार कीजिये यह नहीं मरेगा, वक्षस्थलरूप मर्मदेशमें प्रहार लगतेही यह मर जायगा । मातलिके वचन सुनकर रामजीको याद आई; तब ॥ ६३ ॥ उन्होंने सर्पके समान फुंकार मारता हुआ एक प्रदीप्त बाण हाथमें लिया; इस बाणके दोनों ओर पवन देवताको स्थापित किया गयाथा, फलकपर सूर्य और अग्नि स्थापित थे ॥ ६४ ॥ शरीर आकाशमय (अर्थात् आकाशवत व्यापक हिरण्यगर्भरूपवाला) उसके

(बाण) भारीपनमें मेरु मन्दर पर्वतकी उपमा देना योग्य होता था; जिसकी गांठोंपर महासमर्थ लोकपाल वसते थे ॥ ६५ ॥ उस (बाण का शरीर देदीप्यमान होनेसे तेज सूर्यके समान था श्रीरामचंद्रजीने लोकोंका भय दूर करनेवाला विलक्षण उग्र अस्त्र उस प्रचंड बाणपर वेदोक्त विधिसे अभिमंत्रित करकै वह बाण धनुषपर चढाया; रामचंद्रजीकी भुजा पुष्ट व शक्तिसम्पन्न थीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीने वह उत्तम बाण धनुषपर चढाया; तिस समय सब प्राणी भयभीत हुए और पृथ्वी कम्पायमान होने लगी ॥ ६८ ॥ रामजीका रावणपर अतिशय क्रोध आरहाथा; उन्होंने भली भांतिसे धनुषकी डोरीको कानतक खैंचा और वह मर्मभेदी बाण शत्रुपर छोडा ॥ ६९ ॥ उस बाणका मुख

जाज्वल्यमानंवपुषाभांतंभास्करवर्चसा ॥ तमुग्रमस्त्रंलोकानांभयनाशनमद्भुतम् ॥ ६६ ॥ अभिमंत्र्यततोरामस्तंमहेषुंमहाभुजः ॥ वेदप्रोक्तेनाविधिनासंदधेकार्मुकेवली ॥ ६७ ॥ तस्मिन्संधीयमानेतुराघवेणशरोत्तमे ॥ सर्वभूतानिवित्रेसुश्चचालचवसुंधरा ॥ ६८ ॥ स रावणायसंक्रुद्धोभृशमानम्यकार्मुकम् ॥ चिक्षेपपरमायत्तस्तमस्त्रंमर्मघातिनम् ॥ ६९ ॥ सवज्रइवदुर्धर्षोवज्रपाणिविसर्जितः ॥ कृतांतइव घोरास्योन्यपतद्रावणोरसि ॥ ७० ॥ सनिमग्नोमहाघोरःशरीरांतकरःपरः ॥ बिभेदहृदयंतूर्णंरावणस्यमहात्मनः ॥ ७१ ॥ रावणस्या हरत्प्राणान्विवेशधरणीतले ॥ सशरोरावणंहत्वारामतूणीरमाविशत् ॥ ७२ ॥ तस्यहस्तात्पपाताशुसशरंकार्मुकंमहत् ॥ गतासुर्भ्रमिवेगे नराक्षसेंद्रोऽपतद्भुवि ॥ ७३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौहतशेषाश्वराक्षसाः ॥ हतनाथाभयत्रस्ताद्रुद्रुवुःसर्वतोदिशम् ॥ ७४ ॥

कालके समान भयंकर था। वज्रपाणिके (इन्द्रके) हाथसे छूटे हुए वज्रके समान वह असह्य बाण रावणकी छातीपर लगा ॥ ७० ॥ और उसमें प्रवेश करगया। शरीरका नाश करनेवाले उस अति भयंकर उत्तम बाणने उस महासमर्थ रावणके वक्षस्थलको तत्काल आरपार भेदडा ला ॥ ७१ ॥ व रावणका प्राणलेकर पृथ्वीमें प्रवेश करगया। रावणका वध करके फिर वही बाण रामजीके तरकसमें आगया ॥ ७२ ॥ शीघ्र ही रावणके हाथमेंका बाणसहित प्रचंड धनुष नीचे गिर पड़ा और वह राक्षसाधिपति बाणके उत्पन्न किये हुए भ्रमणके वेगसे प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ७३ ॥ उसे पृथ्वीपर पडा हुआ देखकर मरणसे बचे हुए राक्षस भयभीत होते हुए दशों दिशाओंको भागने लगे, मालिकके

मरतेही आश्रितोंकी दुर्दशा होजातीहै ॥ ७४ ॥ रावणका वध और रामचंद्रजीकी जीत होनेसे विजयशाली वानर आनंदित होते हुए गर्जने लगे ॥ ७५ ॥ कोई २ रामचंद्रजीकी जीत हुई कहते, कोई यह कहते कि, रावण मारागया" ऐसे कह गर्जने लगे फिर आकाशमें देवदुन्दुभीकी गंभीर ध्वनि सुनाई आने लगी ॥ ७६ ॥ श्रीरामचंद्रजीपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । मुनि, सिद्ध, चारण देवता स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥ अप्सराओंने आनंदमें भरकर आकाशमार्गमें जिधर तिधर नाचना आरंभ किया । रावणके शरीरमेंसे सूर्यके समान देदीप्यमान एक तेज निकलकर ॥ ७८ ॥ देवताओंके सन्मुख रामजीके रूपमें मिलगया; तत्काल देवता लोग बोले कि;—"अहो ! रावणका बड़ा भाग्य है

दशग्रीवस्यनिधनंविजयंराघवस्यच ॥ ततोविनेदुःसंहृष्टावानराजितकाशिनः ॥ ७५ ॥ वदंतोरामविजयंरावणस्यचतद्वधम् ॥ अथांत रिक्षेव्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुंदुभिः ॥ ७६ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्चसमंताद्राघवोपरि ॥ तुष्टुवुर्मुनयःसिद्धाश्चारणाश्चदिवौकसः ॥ ७७ ॥ अथांत रिक्षेननृतुःसर्वतोप्सरसोमुदा ॥ रावणस्यचदेहोत्थंज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥ ७८ ॥ प्रविवेशरघुश्रेष्ठंदेवानांपश्यतांसताम् ॥ देवाऊचु रहोभाग्यंरावणस्यमहात्मनः ॥ ७९ ॥ वयंतुसात्विकादेवाविष्णोःकारुण्यभाजनाः ॥ भयदुःखादिभिर्व्याताःसंसारेपरिवर्तिनः ॥ ८० ॥ अयंतुराक्षसःक्रूरोब्रह्महातीवतामसः ॥ परदाररतोविष्णुद्वेषीतापसहिंसकः ॥ ८१ ॥ पश्यत्सुसर्वभूतेषुराममेवप्रविष्टवान्॥ एवंब्रुवत्सुदेवे षुनारदःप्राहसुस्मितः ॥ ८२ ॥ शृणुतात्रसुरायूयंधर्मतत्त्वविचक्षणाः ॥ रावणोराघवद्वेषादनिशंहृदिभावयन् ॥ ८३ ॥ भृत्यैःसहसदारा मचारित्रंद्वेषसंयुतः ॥ श्रुत्वारामात्स्वनिधनंभयात्सर्वत्रराघवम् ॥ ८४ ॥

इसके महात्मा होनेमें कोई संशय नहीं ॥ ७९ ॥ हम सत्त्वगुणमय देवता हैं, हमपर विष्णुजीकी कृपा है; परन्तु हमभी सुख दुःखादिसे व्याप्त होकर संसारमें भ्रमण करते रहतेहैं ॥ ८० ॥ और यह रावण जातिका राक्षस, क्रूर, ब्रह्महत्या करनेवाला, अत्यन्त तामसी, पराई स्त्रियोंमें रत, विष्णुजीका शत्रु व तपस्वियोंको मारनेवाला था ॥ ८१ ॥ इतने दुर्गुणवाला होनेपरभी यह सर्व प्राणियोंके सामने रामजीके रूपमें प्रवेश करगया इसको धन्य है !" देवताओंके वचन सुनकर नारदजीको हँसी आई, वे बोले ॥ ८२ ॥ "हे देवगण ! तुम लोग धर्मके तत्त्वको भलीभाँ ति जानतेहो इस विषयमे एक बात सुनो—रामचंद्रजीसे रावणका वैरभाव पड़गयाथा इसकारणसे वह द्वेष करके अपने सेवकोंके सहित राम

जीका चारित्र सुनकर सर्वकाल उनका चिन्तन करता रहता ॥ रामजीके हाथसे मेरी मृत्यु होगी, यह कानमें पड़तेही उसको सदा जिधर तिधर ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ रामजीही दीखतेथे स्वप्नमेंभी उसको रामही दीखैं । उसके मनमें रामजीके विषयमें क्रोध था, परन्तु वह (क्रोध) भी गुरुके उपदेशसे अधिक योग्यताका हुआ ॥ ८५ ॥ अन्तको रामजीके हाथसे मृत्यु हुई; तब उसके समस्त पाप दूर होगये और बंधन छुटगये इस कारण उसको रामरूपी सायुज्य मुक्ति प्राप्त होगई" ॥ ८६ ॥ पापी होय, दुरात्मा होय, परधन और परस्त्रीमें लंपट होय, परन्तु निरंतर स्नेहसे अथवा भयसे रघुकुलतिलकरूप रामचंद्रजीका चिंतन करताहुआ मरजाय, तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाताहै और संसारमें शत २ जन्म देनेवाले दोषसे छूटकर बडे २ देवता लोग जिसको प्रणाम करते हैं ऐसे विष्णुजीके वैकुंठ धाममें चला जाताहै ॥ ८७ ॥ "रावण त्रिलोकी

पश्यन्ननुदिनंस्वप्नेराममेवानुपश्यति ॥ क्रोधोऽपिरावणस्याशुगुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥८५॥ रामेणनिहतश्चांतेनिर्धूताशेषकल्मषः ॥ रामसायुज्यमेवापरावणोमुक्तबंधनः ॥८६॥ पापिष्ठोवादुरात्मापरधनपरदारेषुसक्तोयादिस्यान्नित्यंस्नेहाद्भयाद्वारघुकुलतिलकंभावयन्संपरेतः॥ भूत्वाशुद्धांतरंगोभवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तःसद्योरामस्यविष्णोःसुरवरविनुतंयातिवैकुंठमाद्यम् ॥ ८७ ॥ हत्वायुद्धेदशास्यंत्रिभुवनविषमंवामहस्तेनचापंभूमौविष्टभ्यतिष्ठन्नितरकरधृतंभ्रामयन्बाणमेकम् ॥ आरक्तोपांतनेत्रःशरदलितवपुःसूर्यकोटिप्रकाशोवीरश्रीबंधुरांगस्त्रिदशपतिनुतःपातुमांवीररामः ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेरावणवधोनामैकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

को त्रास देताथा, रामचंद्रजीने दाहिने हाँथसे धनुष पृथ्वीमें रखकर दूसरे हाथमें लिया हुआ एक बाण घुमाते हुए खड़ेथे, उनके नेत्र कुछेक ललाई लिये हुएथे, शरीर बाणोंसे विदीर्ण होरहाथा; उनके अंगकी कांति कोटि सूर्यके समान तेजःपुंज दीखतीथी; उनकी योग्यताके समान निम्नोन्नत शरीरपर वीरश्री शोभायमान थी; देवतालोग उनकी स्तुतिकर रहेथे । ऐसे वह वीर रामजी हमारी रक्षा करें । " ८८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे कात्यायनगोत्रोद्भव पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतायां भाषाटीकायामेकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

१ ऊंचे शरीरपर वीरश्री शोभायमान थी ।

विभीषणका शोक लक्ष्मणजीके द्वारा दूर होना फिर जानकीजीका आना और अग्निसे परीक्षा ॥ श्रीमहादेवजी बोले; हे पार्वति ! रामचंद्रजी, विभीषण, हनुमान्, अंगद, लक्ष्मण, वानरराज, (सुग्रीव) जांबवान् और तैसेही दूसरे वीरोंको देख ॥ १ ॥ मनमें प्रसन्न हो सबसे बोले कि " तुम लोगोंके बाहुबलसे मैंने रावणको मारा ॥ २ ॥ जगमें जबतक चंद्रमा सूर्य हैं तबतक तुम्हारी पवित्र कीर्ति रहेगी, लोक तुम्हारा चारित्र वर्णन करेंगे व यह कथा त्रिलोकीको पवित्र कर सकती है ॥ ३ ॥ तुम्हारी कीर्तिका वर्णन करनेवाले लोग कलिके दोषोंसे छूटतेहुए अत्युत्तम गतिको जाते (मोक्ष पाते) हैं " । रामजी इतना कह रहेथे कि, इतनेमें मन्दोदरी आई, रावणकी सब आश्रित स्त्रियाँ शोक करतीहुई वहां आईं व रावणको

श्रीमहादेवउवाच॥रामोविभीषणंदृष्ट्वाहनूमंतंतथांगदम् ॥लक्ष्मणंकपिराजंचजांबवंतंतथापरान् ॥ १॥परितुष्टेनमनसासर्वानेवाब्रवीद्वचः ॥ भवतांबाहुवीर्येणनिहतोरावणोमया ॥ २ ॥ कीर्तिःस्थास्यतिवःपुण्यायावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ कीर्तयिष्यंतिभवतांकथांत्रैलोक्यपावनीम् ॥ ३ ॥ ययोपेतांकलिहरांयास्यंतिपरमांगतिम् ॥ एतस्मिन्नंतरेदृष्ट्वारावणंपतितंभुवि ॥४॥ मंदोदरीमुखाःसर्वाःस्त्रियोरावणपालिताः ॥ पतितारावणस्याग्रेशोचंत्यःपर्यदेवयन् ॥ ५ ॥ विभीषणःशुशोचार्तःशोकेनमहतावृतः ॥ पतितोरावणस्याग्रेबहुधापर्यदेवयत् ॥ ६ ॥ रामस्तुलक्ष्मणंप्राहबोधयस्वविभीषणम् ॥ करोतुभ्रातृसंस्कारंकिंविलंबेनमानद ॥ ७ ॥ स्त्रियोमंदोदरीमुख्याःपतिताविलपंतिच ॥ निवारयतुताःसर्वाराक्षसीरावणप्रियाः ॥ ८ ॥ एवमुक्तोऽथरामेणलक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ॥ उवाचमृतकोपांतेपतितंमृतकोपमम् ॥ ९ ॥ शोकेनमहताविष्टंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ यंशोचसित्वंदुःखेनकोऽयंतवविभीषण ॥ १० ॥

पृथ्वीपर पड़ाहुआ देखकर उसके आगे विलाप करनेलगीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ विभीषणकोभी बड़ा दुःख हुआ वह विह्वल होकर शोक करनेलगे; रावणके आगे गिरकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ यह देखकर रामजीने लक्ष्मणजीसे कहा, हे मानद ! विभीषणको समझाओ, विभीषण अपने भ्राताका संस्कार करें; विलम्बसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ७ ॥ मन्दोदरीआदि रावणकी प्रिय स्त्रियाँ भूमिपर पडी हुई विलाप कर रही हैं. विभीषणसे कहो कि, वह सर्व राक्षसियोंको निवारण करें " ॥ ८ ॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी विभीषणके निकट गये और उन्हें उपदेश देनेलगे रावणके मृतक शरीरके धोरे विभीषण प्रेततुल्य होकर पड़ेथे ॥ ९ ॥ वे शोकके मारे अतिशय विह्वल हो रहेथे, यह देखकर लक्ष्मणजीने

उनसे कहा;—" हे विभीषण ! तुम जिसके लिये दुःखसहित शोक करते हो, वह तेरा कौन है ? ॥ १० ॥ तैसेही तू उसका कौन है ? अर्थात् जगत्की आदिमें तुम्हारा उस (देह) के साथ किंचित् भी सम्बन्ध न था और जगत्की प्रलयमेंभी उसके साथ किंचित्भी सम्बन्ध नहीं रहता ? तो फिर मध्यम भागमें वह सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता । दृष्टान्त—"जैसे पानीके समूहमें रेती बही हुई चली आती है ॥ ११ ॥ कुछ आगे चली जाती है कितनी एक भारी होनेसे नीचे रह जाती है । किसी समय उसके कण एकत्र मिल जाते हैं और किसी समय फिर विमुक्त हो जाते हैं; तैसेही कालगति करके इस प्राणीका एक दूसरेके साथ समागम और वियोग होताहै " । दूसरा उदाहरण देखो

त्वंवास्यकतमःसृष्टेःपुरेदानीमतःपरम् ॥ यद्वत्तोयौघपतिताःसिकतायांतितद्वशाः ॥ ११ ॥ संयुज्यंतेवियुज्यंतेतथाकालेनदेहिनः ॥ यथाधानासुवैधानाभवंतिनभवंतिच ॥ १२ ॥ एवंभूतेषुभूतानिप्रेरितानीशमायया ॥ त्वंचेमेवयमन्येचतुल्याकालवशोद्भवाः ॥ १३ ॥ जन्ममृत्यूयदायस्मात्तदातस्माद्भविष्यतः ॥ ईश्वरःसर्वभूतानिभूतैःसृजतिहंत्यजः ॥ १४ ॥

नाज भूननेके भाडमें जब धान्य (जौ, सत्तु) डाला गया, व नीचेसे आँच लगाई तो उसमेंके दाने किसी समय एक जगह रहते हैं और किसी समय उड़कर ऊपर नीचे गिरते हैं ॥ १२ ॥ तैसेही प्राणी कालरूपी ईश्वरकी माया करके प्रेरित होनेपर प्राणीसे ऐक्यता और वियोगता पाते हैं; अर्थात् प्राणियोंके लिये जनकभावभी केवल जीवहीके समान है, संयोग वियोगभी मायाका किया हुआ है, इसलिये शोक करना अनुचित है 'तुम' 'यह लोग' 'हम लोग' व और दूसरे सबही कोई समान हैं; कालके वशसे सबहीका संयोग वियोग होता है ॥ १३ ॥ ईश्वरने जिस कालमें जिस करके जन्म और मृत्यु निर्माण किया है, तिसी समय उससे जन्म और मरण अवश्य होता है, इसमें जराभी फेर नहीं पड़ता । ईश्वरका जन्म नहीं है; उसने प्रथम स्वयं प्राणियोंको उत्पन्न किया; फिर उन प्राणियोंसे स्त्री पुरुष संयोग द्वारा नई सृष्टि करता है; संहार करनेवालाभी वहीहै ॥ १४ ॥

१ श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध १५ अध्यायका चौथा श्लोकभी बिलकुल ऐसाही है ।

जैसे छोटे २ बालक खेल देखनेकेलिये आपही मट्टीकी मूर्तियें तैयार कर यह ठहरा लेते हैं कि, इनमें एक स्त्री और एक पुरुष है, फिर तीसरी एक मूर्तिको बनाकर यह व्यवहार करते हैं कि, यह पहले जोड़के लड़का हुआ है; इस क्रीडाके करनेसे उनको कुछ पानेकी इच्छा नहीं होती; तैसेही ईश्वर विना इच्छाके सृष्टि और प्रलय करके लीला करता है; देहके सम्बन्धसे जीव देह बनाहुआ है (जीव देहरूपी नहीं है) जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होता है; जीव देहसे अलगके समान (पृथक्‌ही) नित्य है देही (जीव) और देह यह विभाग होनेके कारण प्रथम अविवेक करके कल्पित (मिथ्या) है; अंतःकरण करके देहमें अहंता ममता होनेसे देहका सम्बन्ध हुआ; वह सबन्ध वास्तविक नहीं है ! जब देहीका ' मेरा कहना वास्तविक नहीं तब भावोंको वैसा किस प्रकारसे कहा जासकता है ? इस कारण भ्राता पुत्रादिमें ममता नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ जैसे काठके सीधे टेढे आदि विकारोंके वशसे आगभी टेढी सीधी अनेक भाँतिकी जानी जाती हैं; तैसे मिथ्याभूत देहमें नानात्व

आत्मसृष्टैरस्वतंत्रैरनपेक्षोऽपिबालवत् ॥ देहेनदेहिनोजीवादेहादेहोऽभिजायते ॥ १५ ॥ बीजादेवयथाबीजंदेहान्यइवशाश्वतः ॥ देहिदेह विभागोऽयमविवेककृतःपुरा ॥ १६ ॥ नानात्वंजन्मनाशश्चक्षयोवृद्धिःक्रियाफलम् ॥ द्रष्टुराभांत्यतद्धर्मायथाऽग्नेर्दारुविक्रियाः ॥१७॥ तइमेदेहसंयोगादात्मनाभांत्यसद्ग्रहात् ॥ प्रथायथातथाचान्यद्धचायतोसत्सदाग्रहात् ॥ १८ ॥ प्रसुप्तस्यानहंभावात्तदाभातिनसंसृतिः ॥ जीवतोऽपितथातद्वद्विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥ १९ ॥

जन्म, नाश, ह्रास; वृद्धिकर्मोंके सुख दुःखरूप फलोंका यह धर्म उस देहके द्रष्टा जीवपर भासता है ॥ १७ ॥ देहका व अंतःकरणका समागम होनेसे जीवको अहंता–ममतारूपी अवास्तव ग्रह उत्पन्न होता है; इस कारण देहका नानात्वादि धर्म जीवपर दिखाई देता है,–भृङ्ग एक कीड़ा भमरोंकी जातिका होता है; वह किसी कीडेको पकड़कर अपने घरमें ले जाता है और जाते आतेमें वह शब्दभी करता है,–मारे डरके विचारे कीडेके मनमें भृङ्गीका रूप बसा रहता है, अंतमें उसका ध्यान करते २ वह भृङ्गके रूपको प्राप्त हो जाता है तैसेही सत्य, मिथ्या या और किसी वस्तुकाभी जीव सदा ध्यान करता रहता है, उस २ वस्तुके सत्यत्व मिथ्यात्व इत्यादि धर्म उसपर दिखाई देते हैं ॥ १८ ॥ गाढ़ी नींद होनेके समय अहंकार नहीं होता; इसलिये जीवको संसारका पसार नहीं जानपडता; तैसेही जीवतपनमेंभी जो प्राणी अहंकारको छोड़े रहता है, वह

मुक्तही है, उसको संसार नहीं भोगना पड़ता ॥ १९ ॥ इस कारण हे विभीषण ! अहंता व ममता "मैं" "मेरा" यह ज्ञान भ्रममूलक मायाका धर्म, जो तेरेमनपर आगया है उसको छोड दे और सब शक्तिमान् षड्गुणैश्वर्यसंपन्न जो रामचंद्रजी हैं, उनपर मन लगाओ ॥ २० ॥ रामजी सर्व प्राणियोंके अंतर्यामी हैं उन परिपूर्ण ईश्वरने माया करके मनुष्यरूप धारण किया है, तुम अपने मनसे बाह्य विषयोंके सम्बन्धको धीरे २ छोड दो ॥ २१ ॥ उन विषयोंमें दोष भरेहुए हैं ऐसी दृष्टि रक्खो । व मन आनंदरूपी श्रीरामचंद्रजीपर लाओ ! भाई, पिता, माता, मित्र, प्रिय यह सब देहकी ओर देखनेसे तो हैं ॥ २२ ॥ परन्तु जहांपर ज्ञान हुआ कि, आत्मा देहसे अलग है, फिर कौन बंधु ? कौन भ्राता ? अथवा

तस्मान्मायामनोधर्मंजह्यहंममताभ्रमम् ॥ रामभद्रेभगवतिमनोधेह्यात्मनीश्वरे ॥ २० ॥ सर्वभूतात्मनिपरेमायामानुषरूपिणि ॥ बाह्येंद्रियार्थसंबंधात्त्याजयित्वामनःशनैः ॥ २१ ॥ तत्रदोषान्दर्शयित्वारामानंदेनियोजय ॥ देहबुद्ध्याभवेद्भ्रातापितामातासुहृत्प्रियः ॥ २२ ॥ विलक्षणंयदादेहाज्जानात्यात्मानमात्मना॥ तदाकःकस्यवाबंधुर्भ्रातामातापितासुहृत् ॥२३॥ मिथ्याज्ञानवशाज्जातादारागारादयःसदा॥ शब्दादयश्चविषयाविविधाश्चैवसंपदः ॥ २४ ॥ बलंकोशोभृत्यवर्गोराज्यंभूमिःसुतादयः॥ अज्ञानजत्वात्सर्वेतेक्षणसंगमभंगुराः ॥ २५ ॥ अतोत्तिष्ठहृदारामंभावयन्भक्तिभावितम् ॥ अनुवर्तस्वराज्यादिभुंजन्प्रारब्धमन्वहम् ॥ २६ ॥ भूतंभविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् ॥ विहरस्वयथान्यायंभवदोषैर्नलिप्यसे ॥ २७ ॥

माता पिता और मित्र कैसे ? ॥ २३ ॥ स्त्री घर इत्यादि पदार्थ शब्दादिक विषय व अनेक प्रकारकी सम्पत्ति यह सब पसारा मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है ॥ २४ ॥ सैन्य, द्रव्य, भंडार, सेवकसमूह, राज्य, भूमि, पुत्र इत्यादि सारी वस्तुयें अज्ञानसे उत्पन्न हुई हैं, अज्ञानकार्यका ऐसा स्वभाव है कि, वह बराबर रूप बदलता रहता है । अर्थात् वे सब वस्तु क्षणमात्रके समागमसे नाशको प्राप्त होजाती हैं; यह सिद्ध है ॥२५॥ इसकारण उठ कर हृदयमें रामजीका ध्यान करो, वे प्रभु भक्ति करके जानते हैं, प्रारब्ध कर्म भोग करकेही क्षीण करनेचाहियें । हे विभीषण ! इसकारण तुम राज्यादिका उपभोग करो और नित्य प्रजापालन करनेमें सावधान रहो ॥ २६ ॥ पीछे क्या हुआ, आगेको क्या होगा, अब क्या हो रहा है, इसका कुछ

विचार न करो और आसक्त न होवे हुए नीतिशास्त्रके अनुसार व्यवहार चलाओ । तब तुम्हें संसारी दोष नहीं लगेंगे ॥ २७ ॥ रामजीने तुमको आज्ञा दी है कि, भ्राता (रावणका) जो कुछ मृतक कर्म करने योग्य है वह शास्त्रकी विधिसे करो, स्त्रियें विलाप करती हैं उनको ॥ २८ ॥ समझाय बुझाय झटपट लंकामें पठाय दो । लक्ष्मणजीके कहे हुए समस्त वचन विभीषणजीने सुनलिये ॥ २९ ॥ विभीषणजीको धर्मका भलीभाँति ज्ञान था । लक्ष्मणजीके वचनोंमें धर्म व अर्थ दोनोंकी व्यवस्था सुन्दर रीतिसे प्रतिपादन हुईथी । यह वचन सुनकर निर्मल विचारवाले विभीषणजीको समझ आई और उनका शोक व मोह दूर होगया; वह शीघ्र रामचंद्रजीके निकट आये ॥ ३० ॥ रामचंद्रजीकी सेवा करनेका और उनके कहे

आज्ञापयतिरामस्त्वांयद्भ्रातुःसांपरायिकम् ॥ तत्कुरुष्वयथाशास्त्रंरुदतीश्चापियोषितः ॥२८॥ निवारयमहाबुद्धेलंकांगच्छंतुमाचिरम् ॥ श्रुत्वायथावद्वचनंलक्ष्मणस्याविभीषणः॥२९॥त्यक्त्वाशोकंचमोहंचरामपार्श्वमुपागमत्॥विमृश्यबुद्ध्याधर्मज्ञोधर्मार्थसहितंवचः ॥३०॥ रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरंपर्यभाषत ॥ नृशंसमनृतंक्रूरंत्यक्तधर्मव्रतंप्रभो ॥ ३१ ॥ नार्होऽस्मिदेवसंस्कर्तुंपरदाराभिमर्शिनम् ॥ श्रुत्वातद्वचनंप्रीतोरामोवचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ मरणांतानिवैराणिनिर्वृत्तंनःप्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्यसंस्कारोममाप्येषयथातव ॥३३॥ रामाज्ञांशिरसाधृत्वाशीघ्रमेवाविभीषणः ॥ सांत्ववाक्यैर्महाबुद्धिराज्ञींमंदोदरींतदा ॥ ३४ ॥ सांत्वयामासधर्मात्माधर्मबुद्धिर्विभीषणः ॥ त्वरयामासधर्मज्ञःसंस्कारार्थंस्वबांधवान् ॥ ३५ ॥

अनुसार चलनेका विभीषणजीने दृढ़ निश्चय करलिया था । उन्होंने रामजीसे कहा; " हे प्रभो ! रावण घातकी, असत्य बोलनेवाला व क्रूर था, जिसने धर्माचरण व नियम छोड़कर ॥ ३१ ॥ पराई स्त्रियोंके दूषित करनेका यत्न किया; मुझको यह बात योग्य नहीं मालूम होती कि, मैं ऐसे पुरुषका उत्तरकार्य करूं " यह वचन सुन विभीषणका सरलभाव देख रामचंद्रजीके मनको सन्तोष हुआ, उन्होंने विभीषणसे कहा ॥ ३२ ॥ विभीषण ! वैर कहांतक करना चाहिये ? मरणतक । अब अपना कार्य सिद्ध होगया तुम इनका संस्कार करो । यह रावण जैसा तुमको वैसाही मुझको है । (जब जीवित था, तब दोनोंका शत्रु था अब दोनोंमेंसे किसीका नहीं) ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा शिरपर चढ़ाय विभीषण शीघ्रही मन्दोदरी रानीके निकट गये, यह रानी बड़ी विचारवान् थी, विभीषणने उसको समझानेकी बातें कहकर ॥ ३४ ॥ समझाया धर्मात्मा

विभीषणजीकी बुद्धि नित्य धर्ममें प्रवृत्त रहती थी, उन पूर्ण ज्ञानीने अपने भ्राताका उत्तर कार्य करनेके लिये अपने बन्धुजनोंको शीघ्रता कराई ॥ ३५ ॥ रावणके शवको विभीषणजीने चितापर चढ़ाया व पितृमेधकी विधिके अनुसार शास्त्रोक्त पद्धतिसे जिसप्रकार अग्निहोत्रीके मृतकका कर्म किया जाता है ॥ ३६ ॥ तैसेही बन्धुजन व मंत्री लोगोंके सहित उसका उत्तर कार्य किया । विभीषणजीने विधिके अनुसार उसको अग्नि लगाई ॥ ३७ ॥ स्नान करके भीगाही वस्त्र पहरे हुए दर्भयुक्त तिलोदक विधिपूर्वक अर्पण किया ॥ ३८ ॥ उसको जलांजलि दी, शिरसे प्रणाम किया, फिर उन्होंने सांत्वनाके वचन कहकर स्त्रियोंका शोक दूर किया ॥ ३९ ॥ व उनसे लौट जानेको कहा, तब सब स्त्रियोंने नगरमें प्रवेश किया । सारी राक्षसियोंके लंकामें चले

चित्यांनिवेश्यविधिवत्पितृमेधविधानतः ॥ आहिताग्नेर्यथाकार्यंरावणस्यविभीषणः ॥३६ ॥ तथैवसर्वमकरोद्बंधुभिःसहमंत्रिभिः ॥ ददौचपावकंतस्यविधियुक्तंविभीषणः ॥ ३७ ॥ स्नात्वाचैवार्द्रवस्त्रेणतिलान्दर्भाभिमिश्रितान् ॥ उदकेनचसंमिश्रान्प्रदायविधिपूर्वकम् ॥ ॥ ३८ ॥ प्रदायचोदकंतस्मैमूर्ध्नाचैनंप्रणम्यच ॥ ताःस्त्रियोऽनुनयामाससांत्वमुक्त्वापुनःपुनः ॥ ३९ ॥ गम्यतामितिताःसर्वाविविशुर्नगरंतदा ॥ प्रविष्टासुचसर्वासुराक्षसीषुविभीषणः ॥ ४० ॥ रामपार्श्वमुपागत्यतदातिष्ठद्विनीतवत् ॥ रामोऽपिसहसैन्येनससुग्रीवःसलक्ष्मणः ॥ ४१ ॥ हर्षंलेभेरिपून्हत्वायथावृत्रंशतक्रतुः ॥ मातलिश्चतदारामंपरिक्रम्याभिवंद्यच ॥४२॥ अनुज्ञातश्चरामेणययौस्वर्गंविहायसा ॥ ततोहृष्टमनारामोलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ विभीषणायमेलंकाराज्यंदत्तंपुरैवहि ॥ इदानीमपिगत्वात्वंलंकामध्येविभीषणम् ॥ ॥ ४४ ॥ अभिषेचयविप्रैश्चमंत्रवद्विधिपूर्वकम् ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तूर्णंजगामसहवानरैः ॥ ४५ ॥

जानेपर विभीषण ॥ ४० ॥ रामचंद्रजीके निकट जाय नम्रतासे खड़े रहे; जिस प्रकार पहले इन्द्रको वृत्रासुरके मारनेपर हर्ष हुआ था तैसेही अब शत्रुका वध हो जानेसे रामजी, उनकी सेना, सुग्रीव; लक्ष्मण इन सबको आनन्द हुआ । तिससमय मातलिभी प्रदक्षिणा करके रामचंद्रजीको नमस्कार कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उनकी आज्ञा पाय आकाशमार्गसे स्वर्गको गया । इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी आनंदित अंतःकरणसे युक्त होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४३ ॥ " हे लक्ष्मण ! हमने पहलेही विभीषणजीको लंकाका राज्य दे दियाहै; परन्तु तुम अभी जायकर लंकामें विभीषणका ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक वेद पढ़वाय अभिषेक कराओ " रामजीकी ऐसी आज्ञा पाय लक्ष्मणजी वानरोंको साथ लेकर ॥ ४५ ॥

उन्होंने लंकामें पहुँच सुवर्णके कलशोंमें समुद्रका जल भरवाकर मँगाया । तिससे बुद्धिमान् राक्षसेन्द्रका (विभीषणका) बड़ी धूमधामके साथ अभिषेक किया ॥ ४६ ॥ फिर लक्ष्मणजीके साथ विभीषणजी भेंट करके आगे रामचंद्रजीके पास चले, उनके साथ नगरवासीभी भेंटके लिये अनेक प्रकारकी वस्तु हाथमें लेकर चलते हुए ॥ ४७ ॥ सब रामचंद्रजीके निकट आय पहुँचे—रामचंद्रजीने अपना कार्य सरलतासे पूरा करालियाथा । विभीषणजीने उनको दंडवत् प्रणाम किया, विभीषणके शरीरपर राजचिह्न देखकर रामचंद्रजीको आनंद हुआ ॥ ४८ ॥ वह अपनेको कृतकृत्य मानने लगे; लक्ष्मणजीकोभी वैसेही धन्यता मालूम हुई; इसके उपरान्त रामचंद्रजी सुग्रीवको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ४९ ॥ हे वीर ! हे पापरहित !

लंकांसुवर्णकलशैःसमुद्रजलसंयुतैः ॥ अभिषेकंशुभंचक्रेराक्षसेंद्रस्यधीमतः ॥ ४६ ॥ ततःपौरजनैःसार्धंनानोपायनपाणिभिः ॥ विभीषणःससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥ दंडप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ रामोविभीषणंदृष्ट्वाप्राप्तराज्यंमुदान्वितः ॥ ४८ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यतसहानुजः सुग्रीवंचसमालिंग्यरामोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥ सहायेनत्वयावीरजितोमेरावणोमहान् ॥ विभीषणोऽपिलंकायामभिषिक्तोमयानघ ॥ ५० ॥ ततःप्राहहनूमंतंपार्श्वस्थंविनयान्वितम् ॥ विभीषणस्यानुमतेगच्छत्वंरावणालयम् ॥ ५१ ॥ जानक्यैसर्वमाख्याहिरावणस्यवधादिकम् ॥ जानक्याःप्रतिवाक्यंमेशीघ्रमेवनिवेदय ॥ ५२ ॥ एवमाज्ञापितोधीमान्रामेणपवनात्मजः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांपूज्यमानोनिशाचरैः ॥ ५३ ॥ प्रविश्यरावणगृहंशिंशपामूलमाश्रिताम् ॥ ददर्शजानकींतत्रकृशांदीनामनिंदिताम् ॥ ५४ ॥

महाप्रतापी रावणका जीतना और विभीषणका लंकामें राज्याभिषेक इन दोनों कार्योंके मेरे हाथसे होजानेका कारण केवल तुम्हारी सहायताका मिलनाही है ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त विनीतभावसे बगलमें खडे हुए हनुमान्जीसे रामजीने कहा;—" हे हनुमंत ! विभीषणकी आज्ञा लेकर (क्योंकि अब यह लंकाके राजा होगये) तुम शीघ्र रावणके मंदिरमें जाओ ॥ ५१ ॥ रावणके वधादिका सर्व वृत्तान्त जानकीको सुनाओ; जानकीजी जो कुछ उत्तर दें वह तत्काल आयकर मुझसे निवेदन करो । " ॥ ५२ ॥ रामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय महाबुद्धिमान् हनुमानूजी लंकामें प्रवेश करतेहुए । अब राक्षस लोग उनका सत्कार करनेलगे ! " यथा राजा तथा प्रजाः " ॥ ५३ ॥ रावणके मंदिरमें प्रवेश करनेपर

शिंशपा वृक्षकी जडमें बैठीहुई साध्वी जानकीजी उनको दिखाईदी । उनका शरीर कृश व दीन दिखाईदेताथा ॥ ५४ ॥ राक्षसियोंके बीचमें बैठीहुई वह रामचंद्रजीका ध्यान करतीथी । हनुमानूजीने उनको झुककर प्रणाम किया ॥ ५५ ॥ फिर वह वानरेश्वर भक्तिसहित हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े रहे, तिनको देखकर जानकीजी क्षणभरलों चुप रहीं । इतनेहीमें उनको पहली याद आई ॥ ५६ ॥ हनुमानूजीको रामचंद्रजीका दूत पहँचानकर आनंदके मारे उनका मुख प्रसन्न होगया । उनका सुन्दर व गंभीर मुख देख हनुमानूजीने रामचंद्रजीका संदेशा उनसे कहना आरंभ किया ॥ ५७ ॥ "हे देवि ! सुग्रीव, सहायकर्ता विभीषण, वानर सेना और लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रजी कुशलसे हैं । उन्होंने ॥ ५८ ॥

राक्षसीभिःपरिवृतांध्यायंतींराममेवहि ॥ विनयावनतोभूत्वाप्रणम्यपवनात्मजः ॥ ५५ ॥ कृतांजलिपुटोभूत्वाप्रह्वोभक्त्यागतःस्थितः ॥ तंदृष्ट्वाजानकीतूष्णींस्थित्वापूर्वंस्मृतिंययौ ॥ ५६ ॥ ज्ञात्वातंरामदूतंसाहर्षात्सौम्यमुखीभवत् ॥ सतांसौम्यमुखींदृष्ट्वातस्यैपवननंदनः ॥ रामस्यभाषितंसर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५७ ॥ देविरामःससुग्रीवोविभीषणसहायवान् ॥ कुशलीवानराणांचसैन्यैश्चसहलक्ष्मणः ॥५८॥ रावणंससुतंहत्वासबलंसहमंत्रिभिः ॥ त्वामाहकुशलंरामोराज्येकृत्वाविभीषणम् ॥५९॥श्रुत्वाभर्तुःप्रियंवाक्यंहर्षगद्गदयागिरा ॥ किंतेप्रियं करोम्यद्यनपश्यामिजगत्त्रये ॥ ६० ॥ समंतेप्रियवाक्यस्यरत्नान्याभरणानिच ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्याप्रत्युवाचप्लवंगमः ॥ ६१ ॥ रत्नौघाद्विविधाद्वापिदेवराज्याद्विशिष्यते ॥ हतशत्रुंविजयिनंरामंपश्यामिसुस्थिरम् ॥ ६२ ॥

पुत्र व मंत्रियोंके सहित रावणका वध किया, राज्यपर विभीषणको स्थापित किया । और कुशल कहनेके लिये तुम्हारे पास मुझे भेजा है" ॥ ५९ ॥ अपने प्यारे पतिका प्रेम संदेश सुनकर जानकीजी अतिशय आनंदित हुई; उन्होंने गद्गदवाणीसे हनुमानूजीसे कहा—"आज मैं तुम्हारा क्या प्रियकार्य करूं ? तुमने जो हमें प्रिय समाचार सुनायाहै; त्रिलोकीमें ॥ ६० ॥ जो अनेक रत्न और भूषण हैं, उनमेंसे एक भी इस प्रिय वचनकी बरोबरी करनेवाला नहीं" (कोईभी रत्न या भूषण देदूं; पर तुमने जो यह संदेश सुनाकर मुझे आनंद दियाहै उसका बदला नहीं हो सकता) जानकीजीके ऐसा कहनेपर वानरने प्रत्युत्तर दिया ॥ ६१ ॥ "हे देवि ! विविध रत्नोंके समूह तो एक ओर रहे, बहुत तो क्या देवता

ओंके राज्यसेभी मुझे रामजीके दर्शनकी योग्यता अधिक दिखाई देतीहै वह प्रभु इस समय शत्रुको मारकर और जीतकर पूर्णपनसे स्थिर हुए हैं मुझे उनका दर्शन मिलगया (इससेही मुझे सब कुछ मिलगया) ॥ ६२ ॥ हनुमान्‌जीके वचन सुनकर जानकीजीने उनसे कहा;– "हे हनुमंत ! तुम्हारा दर्शन मुझे चंद्रमाके समान शीतल व सुखकर मालूम होताहै। संसारमें जो सुखदायक गुण हैं वे सब तुममें पूर्ण हैं ॥ ६३ ॥ अब मेरी इच्छा है कि मुझे रामजीका दर्शन मिले । रामजीसे तुम हमारी शीघ्र भेंट कराओ" (अर्थात् तुम रामजीके पास जायकर कहो कि वे मुझे आनेकी आज्ञा दें) हनुमान्‌जी 'अच्छा' कह उनका वंदनकर रामचंद्रजीके दर्शनको चले ॥ ६४ ॥ उन्होंने जानकीजीके समस्त वचन रामजीके

तस्यतद्वचनंश्रुत्वामैथिलीप्राहमारुतिम् ॥ सर्वेसौम्यगुणाःसौम्यत्वय्येवपरिनिष्ठिताः ॥ ६३ ॥ रामंद्रक्ष्यामिशीघ्रंमामाज्ञापयतुराघवः ॥ तथेतितांनमस्कृत्यययौद्रष्टुंरघूत्तमम् ॥६४॥ जानक्याभाषितंसर्वंरामस्याग्रेन्यवेदयत् ॥ यन्निमित्तोऽयमारंभःकर्मणांचफलोदयः ॥६५॥ तांदेवींशोकसंतप्तांद्रष्टुमर्हसिमैथिलीम् ॥ एवमुक्तोहनुमतारामोज्ञानवतांवरः ॥ ६६ ॥ मायासीतांपरित्यक्तुंजानकीमनलेस्थिताम् ॥ आदातुंमनसाध्यात्वारामःप्राहविभीषणम् ॥ ६७ ॥ गच्छराजञ्जनकजामानयाशुममांतिकम् ॥ स्नातांविरजवस्त्राढ्यांसर्वाभरणभूषिताम् ॥ ६८ ॥ विभीषणोऽपितच्छ्रुत्वाजगामसहमारुतिः ॥ राक्षसीभिःसुवृद्धाभिःस्नापयित्वातुमैथिलीम् ॥ ६९ ॥ सर्वाभरणसंपन्नामारोप्यशिविकोत्तमे ॥ याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्तांकंचुकोष्णीषिभिःशुभाम् ॥ ७० ॥

आगे निवेदन किये;–" जिस लिये आपने यह धूम धाम की, व जो युद्धादि कर्मका फल है ॥ ६५ ॥ उन देवी जानकीजीको आप अवलोकन करें वह मारे शोकके बहुत संतप्त होगईहै । " हनुमान्‌जीने ज्ञानवान्‌पुरुषोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीकी इस प्रकारसे प्रार्थना की ॥ ६६ ॥ तब रामचंद्रजीने अपने मनमें, मायाकी सीताको त्याग करने और अग्निमें रक्खीहुई जानकीजीको निकालनेका निश्चय करके विभीषणसे कहा;– ॥ ६७ ॥ हेराजन् ! जानकीजीको जायकर शीघ्र मेरे पास लेआओ; उनको स्नान कराय निर्मल वस्त्र पहराय सर्व अलंकार धारण कराओ ॥ ६८ ॥ विभीषणभी वह आज्ञा सुनकर हनुमान्‌जीको साथ ले वहां गये । उन्होंने वृद्ध २ राक्षसियोंसे जानकीजीको मंगल स्नान करवाया ॥ ६९ ॥ सर्व गहने

पहराये व उत्तम पालकीमें बैठाया। बहुतसे वेतधारी पुरुष उस सुन्दरीकी रक्षा कररहेथे; उनके अंगमें जामा और मस्तकोंपर पगड़ियाँ थीं इस प्रकारसे सीताजी रामजीके पासको चलीं ॥ ७० ॥ समस्त वानर जानकीजीको देखनेके लिये आगे २ जानेलगे। वेतधारी पुरुष चारों ओरसें उनको निवारण करनेलगे ॥ ७१ ॥ 'हटो, बचो!' करतेहुए सब जन श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय पहुँचे। उन (सीताजी) को पालकीमें बैठी हुई देखकर दूरसेही श्रीरामचंद्रजी बोलेः– ॥ ७२ ॥ "हे विभीषण! कंचुकी लोग वानरोंको क्यों रोकते हैं? सर्व वानर सीताको माताके समान देखेंगे (उनको सीताके दर्शन कराओ) ॥ ७३ ॥ सीता पांव पयादे मेरे पास आवें (पालकीमें कैसे बैठी है? रामजीके यह वचन

तांद्रष्टुमागताःसर्वेवानराजनकात्मजाम् ॥ तान्वारयंतोबहवःसर्वतोवेत्रपाणयः ॥७१॥ कोलाहलंप्रकुर्वंतोरामपार्श्वमुपाययुः ॥ दृष्ट्वातां शिविकारूढांदूरादथरघूत्तमः ॥ ७२ ॥ विभीषणकिमर्थंतेवानरान्वारयंतिहि ॥ पश्यंतुवानराःसर्वेमैथिलींमातरंयथा ॥ ७३ ॥ पादचारेणसाऽऽयातुजानकीममसान्निधिम् ॥ श्रुत्वातद्रामवचनंशिविकादवरुह्यसा ॥ ७४ ॥ पादचारेणशनैकरागतारामसन्निधिम् ॥ रामोऽपि दृष्ट्वातांमायासीतांकार्यार्थेनिर्मिताम् ॥ ७५ ॥ अवाच्यवादान्बहुशःप्राहतांरघुनंदनः ॥ अमृष्यमाणासासीतावचनंराघवोदितम् ॥७६॥ लक्ष्मणंप्राहमेशीघ्रंप्रज्वालयहुताशनम् ॥ विश्वासार्थंहिरामस्यलोकानांप्रत्ययायच ॥ ७७ ॥ राघवस्यमतंज्ञात्वालक्ष्मणोऽपितदैवहि ॥ महाकाष्ठचयंकृत्वाज्वालयित्वाहुताशनम् ॥ ७८ ॥

सुनतेही जानकीजी पालकीसे नीचे उतरी व ॥ ७४ ॥ पाँव २ चलतीहुई हौले २ रामजीके निकट आई! रामजी जानतेथे कि यह यथार्थ सीता नहीं बरन किसीकार्यके लिये मायासे एक नवीन बनाई गई हैं, तौ भी उनको देखतेही ॥ ७५ ॥ रामजी "तुम परपुरुषके घर रहीहो, तुमको धिक्कारहै!" इत्यादि अनेक दुर्वचन कहतेहुए। रामचंद्रजीके उच्चारण कियेहुए शब्द जानकीजीसे सहन नहीं होसके वह ॥ ७६ ॥ लक्ष्मण जीसे बोलीं; मेरे लिये अग्निकी चिता तैयार कराओ, मैं रामचंद्रजीके विश्वासके अर्थ, और लोगोंको यह बतानेकेलिये कि मेरा पतिव्रत सचा है अग्निमें स्नानकरके शुद्ध होउंगी" ॥ ७७ ॥ रामचंद्रजीके मनकी भी यही इच्छा जान शीघ्र ही लक्ष्मणजीने एक काठकी बड़ी राशि एकत्रकर

उसमें आग लगादी ॥ ७८ ॥ इतना कार्य करके वह शत्रुओंके दमन करनेवाले वीर (लक्ष्मणजी) रामचंद्रजीके निकट जाय सावधान हो खडे रहे; सब लोग देवता और राक्षसोंकी स्त्रियां यह अद्भुत बात देखनेको वहां आईथीं; फिर सीताजीने भक्ति सहित रामचंद्रजीकी परिक्रमा कर ॥ ७९ ॥ देवता और ब्राह्मणोंको नमस्कार किया; व अग्निके निकट जाय हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा की ॥ " जो मेरा अन्तःकरण कभी रामचंद्रजीसे अलग नहीं हुआहो तौ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ सर्व लोकोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले भगवान् अग्नि सदा मेरी रक्षाकरें (शीतल होवें) " तिस समय इतना कहकर सीताजीने अग्निकी प्रदक्षिणा की ॥ ८२ ॥ और उस भडकतीहुई अग्निमें प्रवेश किया । इस साध्वीके मनमें अपनी पवित्रताका पूर्ण भरोसा था; इसकारण

रामपार्श्वमुपागम्यतस्थौतूष्णीमरिंदमः ॥ ततःसीतापरिक्रम्यराघवंभक्तिसंयुता ॥ ७९ ॥ पश्यतांसर्वलोकानांदेवराक्षसयोषिताम् ॥ प्रणम्यदेवताभ्यश्चब्राह्मणेभ्यश्चमैथिली ॥ ८० ॥ बद्धांजलिपुटाचेदमुवाचाग्निसमीपगा ॥ यथामेहृदयंनित्यंनापसर्पतिराघवात् ॥८१॥ तथालोकस्यसाक्षीमांसर्वतःपातुपावकः ॥ एवमुक्त्वातदासीतापरिक्रम्यहुताशनम् ॥८२॥ विवेशज्वलनंदीप्तंनिर्भयेनहृदासती ॥८३॥ दृष्ट्वाततोभूतगणाःससिद्धाःसीतांमहावह्निगतांभृशार्ताः ॥ परस्परंप्राहुरहोससीतांरामःश्रियंस्वांकथमत्यजज्ज्ञः ॥८४ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेद्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततःशक्रःसहस्राक्षोयमश्चवरुणस्तथा ॥ कुबेरश्चमहातेजाःपिनाकीवृषवाहनः ॥ १ ॥ ब्रह्माब्रह्मविदांश्रेष्ठोमुनिभिःसिद्धचारणैः ॥ पितरोऋषयःसाध्यागंधर्वाप्सरसोरगाः ॥ २ ॥ एतेचान्येविमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्रराघवः ॥ अब्रुवन्परमात्मानंरामंप्रांजलयश्चते ॥ ३ ॥

उसको भय नहीं लगा ॥ ८३ ॥ सिद्ध लोगोंके साथ सर्वप्राणी सीताजीको प्रचंड अग्निमें प्रवेश करता हुआ देख परस्पर हौले २ कहने लगे । अरे राम ! यह तौ सर्वकालके जाननेवाले हैं; फिर उन्होंनें अपनी लक्ष्मीरूप सीताका कैसे त्यागकरा ? अर्थात् उनको अग्निमें प्रवेशकरनेकी आज्ञा कैसे दीहै ? ॥ ८४ ॥ इत्यार्षे श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ रामचंद्रजीका सीताजीके साथ अयोध्याको लौटना ॥ महादेवजी बोले कि—हे पार्वती ! फिर भगवान् सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, यम, वरुण महातेजस्वी कुबेर, नन्दिवाहन पिनाकपाणि (महादेवजी) ॥ १ ॥ मुनि, सिद्ध, चारण, इनके साथ ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी, पितर, ऋषि, साध्य, गंधर्व, अप्सरा, सर्प ॥ २ ॥ व और भी दूसरे देवता

लोग उत्तम विमानोंमें बैठकर वहां आये जहां रामचंद्रजी थे; वे हाथ जोड़कर उनसे बोले ॥ ३ ॥ हे रघुवीर ! आप ज्ञानरूप हैं; आप सर्व लोक उत्पन्न करके उनके कर्मोंको प्रत्यक्ष देखतेहैं आप वसुलोगोंमेंसे आठवें वसु हैं, रुद्रगणमें आप शंकर हैं ॥ ४ ॥ आप चतुर्मुख ब्रह्माजीके रूपसे सर्व लोकोंकी उत्पत्ति करतेहैं; अश्विनीकुमार आपकी नाकके छिद्र हैं, चंद्रमा सूर्य आपके नेत्र हैं, ॥ ५ ॥ आपसंसारके उत्पन्न करने और नाश करनेवाले होनेसे नित्य हैं, तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है ! आपका उदय सर्वकाल होता रहताहै (आपमें रातदिनका भेद नहींहै) आपका स्वरूप नित्य शुद्ध, नित्य ज्ञानरूप, नित्य मुक्त व भेदभावरहित है; जो लोग आपकी मायासे घिरे हुए हैं उनको आप मनुष्यरूपी भासते हैं ! हे राम ! अपना नाम

कर्तात्वंसर्वलोकानांसाक्षीविज्ञानविग्रहः ॥ वसूनामष्टमोऽसित्वंरुद्राणांशंकरोभवान् ॥ ४ ॥ आदिकर्तासिलोकानांब्रह्मात्वंचतुराननः ॥ अश्विनौघ्राणभूतौतेचक्षुषीचंद्रभास्करौ ॥५॥ लोकानामादिरंतोऽसिनित्यएकःसदोदितः॥सदाशुद्धःसदाबुद्धःसदामुक्तोऽगुणोऽद्वयः॥६॥ त्वन्मायासंवृतानांत्वंभासिमानुषविग्रहः ॥ त्वन्नामस्मरतांरामसदाभासिचिदात्मकः ॥७॥ रावणेनहृतंस्थानमस्माकंतेजसासह॥त्वया द्यनिहतोदुष्टःपुनःप्राप्तंपदंस्वकम् ॥८॥ एवंस्तुवत्सुदेवेषुब्रह्मासाक्षात्पितामहः ॥ अब्रवीत्प्रणतोभूत्वारामंसत्यपथेस्थितम् ॥९॥ब्रह्मोवाच वंदेदेवंविष्णुमशेषस्थितिहेतुंत्वामध्यात्मज्ञानिभिरंतर्हृदिभाव्यम् ॥ हेयाहेयद्वंद्वविहीनंपरमेकंसत्तामात्रंसर्वहृदिस्थंदृशिरूपम् ॥१०॥ प्राणापानौनिश्चयबुद्ध्याहृदिरुद्ध्वाछित्त्वासर्वसंशयबंधंविषयौघान्॥पश्यंतीशंयंगतमोहायतयस्तंवंदेरामंरत्नकिरीटंरविभासम् ॥ ११ ॥

स्मरण करनेवालोंको आप नित्य चैतन्यरूपी ज्ञात होतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ रावणने हम लोगोंका स्थान और तेजभी हर लियाथा परन्तु आज आपने उस दुष्ट का वध कर डाला; इसलिये हमको अपना पद फिर प्राप्त होगया ॥ ८ ॥ (महादेवजी बोले, हे पार्वति !) रामजी सत्यमार्गका अवलंबन कियेहुए हैं। देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर, साक्षात पितामह ब्रह्माजी नम्र होकर रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोलेः—हे देव विष्णुरूपी रघुवीर ! मैं तुम्हें वंदन करताहूं; आप सब जगत्के पालन करनेवाले हैं. ब्रह्मज्ञानी लोग हृदयमें आपका ध्यान किया करते हैं । आपमें त्याज्य (दुःखसाधन) भेद नहीं है । आप परिपूर्ण, एक सत्तारूपी, सर्वके हृदयमें रहनेवाले व ज्ञानमय हैं ॥ १० ॥ जिनके तमोगुणका नाश हो

गया है वह यती किसी प्रकारसे भी हो भगवान्‌का दर्शन करना चाहिये। ऐसा निश्चय कर प्राण व अपान वायुको हृदयमें रोक सारे संशय बंधनका व विषय समूहोंका भेद करते हैं, तब उनको जिनका दर्शन मिलता है; उन परमेश्वरने रामरूपसे यहां अवतार लिया है। उनके मस्तकपर रत्न जटित मुकुट है, व उनकी अंगकांति सूर्यके समान है; मैं उनका वंदन करताहूं ॥ ११ ॥ उन प्रभुको मायाका गुण स्पर्श नहीं कर सकता; वह लक्ष्मीके पति हैं; सर्वके आदि कहिये जगत्‌के आदिकारण आपही हैं; उनके स्वरूपका देशतः किंवा कालतः परिमाण नहीं है (वह सर्वव्यापी और त्रिकालमें समान रहनेवाले) वह मोहका नाश करते हैं; इसलिये मुनि उनका वंदन करते हैं, योगी पुरुषोंके ज्ञानके विषय वही हैं; योगमार्ग उन्होंनेही प्रवृत्त किया है; वह परिपूर्ण ईश्वर स्वयं रमणीय होनेसे सब लोकोंमें रमण करते हैं; मैं उन रामचंद्रजीको नमस्कार करताहूं ॥ १२ ॥

मायातीतंमाधवमाद्यंजगदादिंमानातीतंमोहविनाशंमुनिवंद्यम् ॥ योगिध्येयंयोगविधानंपरिपूर्णंवंदेरामंरंजितलोकंरमणीयम् ॥ १२ ॥ भावाभावप्रत्ययहीनंभवमुख्यैर्भोगासक्तैरर्चितपादांबुजयुग्मम् ॥ नित्यंशुद्धंबुद्धमनंतंप्रणवाख्यंवंदेरामंवीतमशेषासुरदावम् ॥ १३ ॥ त्वंमेनाथोनाथितकार्याखिलकारीमानातीतोमाधवरूपोऽखिलधारी ॥ भक्त्यागम्योभावितरूपोभवहारीयोगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी॥१४॥

भाव और अभाव वस्तुसे रहित हो इससे अनिर्वचनीय ज्ञानके विषय हो; अर्थात् भाव कहिये दिखाते हुए पदार्थ और अभाव कहिये न दीखने वाले पदार्थोंसे रहित, भोगमें प्रीति न करनेवाले महादेवादि मुख्य देवता आपके चरणकमलकी पूजा करते हैं। आपको तीनकाल बाधा नहीं कर सकते, शुद्ध हो मायाके गुण आपको नहीं छू सकते, ज्ञानमूर्ति हो, देशकालादि परिमाणरहित हो, प्रणव[1] आपका नाम है,—आप सर्व असुरोंका नाश करते हैं तथापि आपमें राग द्वेष नहीं हैं, ऐसे श्रीरामचंद्रजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १३ ॥ हे राम! आप हमारे स्वामी हैं, क्योंकि मैंने जिस अर्थ आपकी प्रार्थनाकीथी वह सब कार्य आपने पूरा कर दिया;आपके स्वरूपका परिणाम नहीं। लक्ष्मीपति विष्णुजी आपहीके रूप हैं, आप सब जगत्‌का पोषण करते हैं, वा अनन्यभावसे शरण जानेवालोंको प्राप्त होते हैं; जो लोग आपके स्वरूपका ध्यान करते हैं; उनके संसारी बंधन आप दूर

१ "तस्य वाचकः" प्रणवः उसका नाम प्रणव है। पातंजल योगसूत्रमें समाधि पादका यह सत्ताईसवां सूत्र है।

करते हैं; योगाभ्यास करकै जिनके अंतःकरण पवित्र हुए हैं; उनमें आप संचार करते हैं (उनकी वृत्तिको जानते हैं) ॥ १४ ॥ लोक समूहके उत्पन्न करनेवाले और अंतमें प्रलय करनेवाले लोकके परम ईश्वरहो। लौकिक प्रमाणसे अपनापनमें नहीं आते, ऐसे भक्तिमान् और श्रद्धालु जनों करके भजनेके लायक कमलके समान श्यामसुन्दर श्रीरामचंद्रजीको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मीपते ! आपका स्वरूप यच्चयावत परिमाणोंसे परे है; इसकारण आप किसी परिमाणमें नहीं आसक्ते, संसारमें सर्व लोक इन्द्रियादि प्रमाणपर आसक्त रहते हैं उनमेंसे कोई पुरुष आपको नहीं जान सकता; मुनिजन आपको बड़ा मान देते हैं, आप कृष्णावतार लेकर वृन्दावनमें घूमें। व तिस वेलाभी सब देवताओंने आप का वन्दन किया। वास्तवमें आप महादेवादि देवताओंके वंदनीय हैं, कारण परमसुखके कंद (उत्पादक) आपको मैं प्रणाम करताहूं ॥१६॥ पृथक् २

त्वामाद्यंतंलोकततीनांपरमीशंलोकानांनोलौकिकमानैरधिगम्यम् ॥ भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयंवंदेरामंसुंदरमिंदीवरनीलम् ॥ १५ ॥
कोवाज्ञातुंत्वामतिमानंगतमानंमानासक्तोमाधवशक्तोमुनिमान्यम् ॥ वृंदारण्येवंदितवृंदारकवृंदंवंदेरामंभवसुखवंद्यंसुखकंदम्॥१६॥नाना
शास्त्रैर्वेदकदंबैःप्रतिपाद्यंनित्यानंदंनिर्विषयज्ञानमनादिम् ॥ मत्सेवार्थंमानुषभावंप्रतिपन्नंवंदेरामंमरकतवर्णंमथुरेशम् ॥१७॥ श्रद्धायुक्तोयः
पठतीमंस्तवमाद्यंब्राह्मंब्रह्मज्ञानविधानंभुविमर्त्यः ॥ रामंश्यामंकामितकामप्रदमीशंध्यात्वाध्यातापातकजालैर्विगतःस्यात् ॥ १८ ॥
श्रुत्वास्तुतिंलोकगुरोर्विभावसुःस्वांकेसमादायविदेहपुत्रिकाम् ॥ विभ्राजमानांविमलारुणद्युतिंरक्तांबरांदिव्यविभूषणान्विताम् ॥ १९ ॥

शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादन करनेके लायक नित्य आनंदमूर्ति बाह्य विषयके ज्ञानसे आप नहीं जाने जाते, आप अनादि हैं; हमारे रावणादि शत्रुका नाश करनेके लिये आपने अवतार लिया है; आपका रंग मरकत मणिके समान है मथुराके ईश्वर (कृष्ण) हो, ऐसे आपकी राममूर्तिको मैं नमस्कार करताहूं" ॥ १७ ॥ (महादेवजी बोले कि हे पार्वति !) जो मनुष्य श्रद्धासे, श्यामवर्ण, इच्छावर देनेवाले, समर्थ श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके; मुख्य ब्रह्मज्ञानके देनेवाले ब्रह्माजीके कहेहुए आदिस्तवको पृथ्वीपर पढें; उस ध्यान करनेवालेके पातक दूर हो जाते हैं ॥ १८ ॥ लोक पितामह (ब्रह्माजी) की यह स्तुति अग्निने सुनी। और शीघ्र वह अग्नि जानकीजीको गोदमें लेकर प्रगट हुए; जानकीजीका रूप तेजःपुंज दिखाई

देताथा; उनकी प्रभा निर्मल व किंचित् रक्तवर्णथी; उन्होंने लाल २ वस्त्र पहर रक्खेथे; व शरीरपर अनेक दिव्य गहनेथे ॥ १९ ॥ सर्व संसारके साक्षी शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले अग्निने श्रीरामचंद्रजीसे कहा " हे रामचंद्र ! आपने पहले वनमें देवी जानकीजीको मुझे सौंपाथा, वह यही है इनको अंगीकार करो ॥ २० ॥ हे राम ! शरणागतोंके दुःख दूर करनेका आपका व्रत है । हे प्रभो ! आपने माया करके दूसरी जानकी निर्माणकी व पुत्र बांधवोंके सहित रावणका संहारकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २१ ॥ प्रतिबिंबरूप सीता जिस कार्यके लिये बनीथीं, वह काम पूरा होगया, इस कारण वह कृतकृत्य होकर अंतर्धान होगई । " अग्निके यह वचन सुनकर रामजीके अंतःकरणमें परमसंतोष हुआ, जानकीजीभी अत्यन्त हर्षित

प्रोवाचसाक्षीजगतांरघूत्तमंप्रपन्नसर्वार्तिहरंहुताशनः ॥ गृहाणदेवींरघुनाथजानकींपुरात्वयामय्यवरोपितांवने ॥ २० ॥ विधायमायाजनकात्मजांहरेदशाननप्राणविनाशनायच ॥ हतोदशास्यःसहपुत्रबांधवैर्निराकृतोऽनेनभरोप्रभोभुवः ॥ २१॥ तिरोहितासाप्रतिबिंबरूपिणीकृतायदर्थंकृतकृत्यतांगता ॥ ततोऽतिहृष्टांपरिगृह्यजानकींरामःप्रहृष्टःप्रतिपूज्यपावकम् ॥२२॥ स्वांकेसमावेश्यसदानपायिनींश्रियंत्रिलोकीजननींश्रियःपतिः ॥ दृष्ट्वाथरामंजनकात्मजायुतंश्रियास्फुरंतंसुरनायकोमुदा ॥ २३ ॥ भक्त्यागिरागद्गदयासमेत्यकृतांजलिःस्तोतुमथोपचक्रमे ॥इंद्रउवाच ॥ भजेऽहंसदारामर्मिदीवराभंभवारण्यदावानलाभाभिधानम् ॥ भवानीहृदाभावितानंदरूपंभवाभावहेतुंभवादिप्रपन्नम्॥२४॥सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुंनराकारदेहंनिराकारमीडचम् ॥ परेशंपरानंदरूपंवरेण्यंहरिंराममीशंभजेभारनाशम्॥२५॥

हुई । फिर रामजीने अग्निकी पूजा करके सीताजीको अंगिकार किया (अंगीकार करके) श्रीपतिजीने उन सदा साथ रहनेवाली जानकीजीको अपने अंकमें स्थापित किया ॥ २२ ॥ तिसकाल आनंद सहित सुरपति इन्द्र श्रीरामजीको श्रीजानकीजीके साथ मिलनेसे अपूर्व शोभायमान देखकर भक्तिके सहित हाथ जोडकर गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ इन्द्रबोला—" मैं रामचंद्रजीकी सेवा करनेको तैयारहूं; उन प्रभुके शरीरकी कांति नीले कमलके समान तेजःपुंज श्यामल दिखाई देती है, उनका नामभी संसाररूपी वनके लिये दावानलके समान है (संसारसागरका नाशकरनेवाला है) भवानी (पार्वती) अपने हृदयमें, उनके आनंदरूपका चिंतन करती रहती हैं।संसारके नाश करनेका कारण वही है । महादेवादिदेवता उनकी सेवाकरते

रहते हैं रामचंद्रजी एक देवताओंके दुःखपरंपराका नाश करनेवाले हैं उनका शरीर मनुष्यके समान दीखता तो है परन्तु वास्तवमें उनका कोई आकार नहीं है। वही स्तुति करनेके योग्य हैं; वह परम समर्थ परमानंदरूप श्रेष्ठ प्रभु भक्तोंका दुःख दूर करते हैं; उन्होंने भूमिका भार उतारा; मैं उन रामचंद्रजीकी सेवा करताहूं ॥२४॥२५॥ वह रामजी शरणागतोंको सर्व प्रकारसे आनंद देते हैं, अनेक भक्त उनकी शरण जाते हैं, उनका केवल नामही शरणागतोंके दुःखोंका नाश कर डालता है। शम दमादि तपश्चर्याके द्वारा योगाभ्यास करनेवाले महान् २ योगी उसका सत्यरूपसे ध्यान करते हैं मैं उन रामरूपी सूर्यकी उपासना करताहूं॥२६॥ जो लोग नित्यभोगमें लग रहे हैं; उनसे रामजी बहुत दूर रहते हैं परन्तु जो जन नित्ययोगाभ्यास करते हैं उनके वह अतिशय निकट (अंतर्यामी) हैं; ऐसा अनुभव होता है; वह ब्रह्मानंद होने से सब प्राणियोंके आनंदकंद (उत्पत्तिके स्थान) हैं; उनका रूप

प्रपन्नाखिलानंददोहंप्रपन्नंप्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ॥ तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यंकपीशादिमित्रंभजेराममित्रम् ॥ २६ ॥ सदा भोगभाजांसुदूरेविभांतंसदायोगभाजामदूरेविभांतम् ॥ चिदानंदकंदंसदाराघवेशंविदेहात्मजानंदरूपंप्रपद्ये॥२७॥महायोगमायाविशेषानुयुक्तोविभासीशलीलानराकारवृत्तिः ॥ त्वदानंदलीलाकथापूर्णकर्णाःसदानंदरूपाभवंतीहलोके ॥ २८ ॥ अहंमानपानाभिमत्तप्रमत्तोनवेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ॥ इदानींभवत्पादपद्मप्रसादात्त्रिलोकाधिपत्याभिमानोविनष्टः ॥ २९ ॥

जनककी कन्याको आनंदका देनेवाला है; उन रघुवीरकी मैं शरणहूं ॥ २७ ॥ हे ईश्वर ! आप योगमायाके सत्व आदि गुणोंके साथ मिलकर जैसे लाल पुष्पके सम्बन्धसे स्फटिक मणि लाल दिखाई देता है; तैसेही आप लीला करके मनुष्यके आकारमें चेष्टा करते हो। ऐसा ज्ञात होता है, वास्तवमें आप निराकार हैं; वैसेही अवतारमें आप आनंदसे अनेक चरित्र करते हैं; उन बातोंसे इस लोकमें जिस पुरुषके कान भरजाते हैं जो पुरुष इस कथाको सुनते हैं वे नित्य आनंदमय बनते हैं ॥ २८ ॥ हे ईश्वर ! 'मैं स्वर्गका राजाहूं' इस अभिमानकी मद पीनेसे मैं अत्यन्त उन्मत्त होगयाथा; पृथ्वीपर साधारण राजाओंको 'हम राजा हैं' यह अभिमान होता है; तैसेही गर्व मुझे हुआ, उसका परिणाम यही हुआ कि, मुझे आपके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, अब तुम्हारे चरणकमलके अनुग्रहसे मेरा यह गर्व कि, 'मैं त्रिलोकीका राजाहूं' नाश हुआ ॥ २९ ॥

हे राम ! आपके पहरेहुए बाजुओं जडीहुई मणियोंसे व हारमें गुँथेहुए रत्नों के चमकनेसे आपका रूप लोगोंको मनोहर लगता है; पृथ्वीपर भाररूप जो दैत्योंकी सेना है, उसका आप नाश करनेवाले हैं; आपका मुख शरद् ऋतुके चंद्रमाके समान शांत व निर्मल दिखाई देता है; नेत्रभी कमलके समान शोभायमान हैं; आपके माहात्म्यका आदि अंत मालूम होना अत्यन्त कठिन है मैं आपकी सेवा करताहूं ॥ ३० ॥ आपके अंगकी कान्ति इन्द्र नील मणिके समान व मेघके समान श्यामल है ! आपने विराधादि राक्षसोंको मारकर लोकमें जिधर तिधर शांतता पसारी है । किरीट कुंडलादि गहना करके आपका स्वरूप शोभायमान दिखाई देताहै । महादेवजीको भी आप अलभ्यलाभ दिखाई देते हैं । हे रघुपते रामचंद्र ! मैं आपकी उपासना करता रहताहूं ॥ ३१ ॥ हे राम ! करोड़ चंद्रमाके एक साथ उदयहोनेसे जितना प्रकाश दिखाई देता है, तैसेही आपके इस उत्तम सिंहासन

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामंधराभारभूतासुरानीकदावम् ॥ शरच्चंद्रवक्त्रंलसत्पद्मनेत्रंदुरावारपारंभजेराघवेशम् ॥ ३० ॥ सुराधीशनीलाभ्रनीलांगकांतिंविराधादिरक्षोवधाल्लोकशांतिम् ॥ किरीटादिशोभंपुरारातिलाभंभजेरामचंद्रंरघूणामधीशम् ॥ ३१ ॥ लसच्चंद्रकोटिप्रकाशादिपीठेसमासीनमंकेसमाधायसीताम् ॥ स्फुरद्धेमवर्णांतडित्पुंजभासांभजेरामचंद्रंनिवृत्तार्तितंद्रम् ॥ ३२ ॥ ततःप्रोवाचभगवान्भवान्यासहितोभवः ॥ रामंकमलपत्राक्षंविमानस्थोनभःस्थले ॥ ३३ ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायांद्रष्टुंत्वांराज्यसत्कृतम् ॥ इदानींपश्यपितरमस्यदेहस्यराघव ॥ ३४ ॥ ततोऽपश्यद्विमानस्थंरामोदशरथंपुरः ॥ ननामशिरसापादौमुदाभक्त्यासहानुजः ॥ ३५ ॥

का तेज दिखाई देता है । आप इस सिंहासनपर अंकमें सीताजीको लिये बैठे हैं; सीताजीका वर्ण सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखाई देता है; उनकी ओर देखनेंसे यह भास होता है कि, वे बिजलीकी शक्ति हैं । हे राम ! दुःख व आलस्य आपसे निरन्तर दूर रहते हैं (आप नित्य प्रकाशरूपी हैं) मैं आपकी सेवामें तत्परहूं । ॥ ३२ ॥ पार्वतीजीके सहित भगवान् महादेवजी विमानमें बैठकर आकाश मार्गमें आयेथे; इन्द्रकी स्तुति हो जानेपर, वे (शंकर) कमलदलनयन रामचंद्रजीसे बोले;—॥ ३३ ॥ "हे महाराज ! जब आप राजगद्दीपर बैठेंगे; तब अयोध्यामें आपके पास आपका दर्शन करनेके लिये आऊंगा; अब आप अपने पिता दशरथजीके दर्शन कर लें " ॥ ३४ ॥ इतनेहीमें आगे विमानमें बैठकर आयेहुए महाराज

दशरथजी रामचंद्रजीको दिखाई दिये, रामचंद्रजीने बड़े आनंदसहित भक्तिपूर्वक छोटे भ्राताके साथ पिताजीके चरणोंका शिरसे वंदन किया ॥ ३५ ॥ दशरथजीने रामजीको हृदयसे लगाय मस्तक सूंघकर कहा;—"हे वत्स! तुमने मुझे संसाररूप दुःख समुद्रके पार करदिया" ॥ ३६ ॥ यह कह दशरथजीने फिर रामजीको हृदयसे लगाया; रामजीने उनकी पूजाकी; दशरथजी चले गये इधर हाथ जोड़कर आगे खड़ेहुए इन्द्रसे रामचंद्रजीने कहा ॥ ३७ ॥ हे सहस्राक्ष! संग्राममें मेरेलिये अनेक वानर मरण प्राय पृथ्वीपर पड़े हैं! तुम मेरी आज्ञासे अमृत वर्षाय शीघ्र उनको जिलाओ ॥ ३८ ॥ इन्द्रने 'जो आज्ञा' कह अमृत वर्षाय उन वानरोंको जिलाया; पहले युद्धमें जो वानर मर गयेथे, नींदसे उठनेके समान उठकर पहले

आलिंग्यमूर्ध्न्यवघ्रायरामंदशरथोऽब्रवीत्॥तारितोऽस्मित्वयावत्ससंसाराद्दुःखसागरात्॥३६॥इत्युक्त्वापुनरालिंग्यययौरामेणपूजितः॥ रामोपिदेवराजंतंदृष्ट्वाप्राहकृतांजलिम् ॥३७॥ मत्कृतेनिहतान्संख्येवानरान्पतितान्भुवि ॥जीवयाशुसुधावृष्ट्यासहस्राक्षममाज्ञया॥३८॥ तथेत्यमृतवृष्ट्याताञ्जीवयामासवानरान् ॥ येयेमृतामृधेपूर्वंतेतेसुप्तोत्थिताइव ॥ पूर्ववद्बलिनोहृष्टारामपार्श्वमुपाययुः ॥३९॥ नोत्थितारा क्षसास्तत्रपीयूषस्पर्शनादपि ॥ विभीषणस्तुसाष्टांगंप्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ देवमामनुगृह्णीष्वमयिभक्तिर्यदातव ॥ मंगलस्नानमद्य त्वंकुरुसीतासमन्वितः ॥ ४१ ॥ अलंकृत्यसहभ्रात्राश्वोगमिष्यामहेवयम् ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचरघूत्तमः ॥ ४२ ॥ सुकुमारोऽ तिभक्तोमेभरतोमामवेक्षते ॥ जटावल्कलधारीसशब्दब्रह्मसमाहितः ॥ ४३ ॥

के समान बलवान् होते हुए आनंदसे रामजीके निकट आये ॥ ३९ ॥ वहांपर केवल राक्षसगण अमृतके स्पर्शसे नहीं उठे, कारण कि भगवान्का बाण जिनके लगा है वे फिर नहीं उठ सकते; फिर विभीषणजीने रामचंद्रजीको साष्टांग दंडवत् प्रणाम करके कहा ॥४०॥ "हे देव! आपसे एक मेरी विनती है, आप मुझपर बड़ा अनुग्रह करते हैं; इससे आप मेरी विनती मानें आज आप सीताजीके साथ मंगलस्नान करें ॥ ४१ ॥ अंगपर वस्त्र भूषण पहिरें; लक्ष्मणजीकोभी तैसाही करनेकी आज्ञा दें; फिर कल आप सब अयोध्याको जांय!" विभीषणजीकी विनती सुनकर रामचंद्रजीने उत्तर दिया ॥ ४२ ॥ हे विभीषण! हमारे परमभक्त सुकुमार भरतजी हमारी बाट देखते होंगे वह जटा वल्कल धारणकर शब्दब्रह्मका (ओंकारका) जप

व ध्यान करनेमें निमग्न रहते हैं ॥ ४३ ॥ उनको साथ लिये विना मैं मंगलस्नान करने या अलंकारादि पहरने योग्य कैसे हो सकताहूं; इस कारण मैं तुमसे कहताहूं कि, तुम सुग्रीवादि वानरोंका भलीभाँति सत्कार करो ॥ ४४ ॥ वानरवीरोंकी पूजा करनेसे मेराही सत्कार होगा इसमें कोई संशय नहीं रामजीके ऐसा कहनेपर विभीषणजीने, सुवर्ण रत्न व वस्त्रोंकी वानरोंपर वर्षा करदी. जिसको जितने चाहिये तितने, व जैसे मन भाये वैसे रत्न भूषण और वस्त्र दिये ॥ ४५ ॥ सर्व वानरयूथप लोकोंका रत्न भूषणोंसे सत्कार किया। यह देखकर रामजीने व्यवहारके अनुसार प्रत्येकका गौरव किया

कथंतेनविनास्नानमलंकारादिकंमम ॥ अतःसुग्रीवमुख्यांस्त्वंपूजयाशुविशेषतः ॥ ४४ ॥ पूजितेषुकपींद्रेषुपूजितोऽहंनसंशयः॥ इत्युक्तो राघवेणाशुस्वर्णरत्नांवराणिच ॥ ४५ ॥ ववर्षराक्षसश्रेष्ठोयथाकामंयथारुचि ॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वारामोरत्नैश्चयूथपान् ॥ ४६ ॥ अभिनंद्ययथान्यायंविससर्जहरीश्वरान् ॥ विभीषणसमानीतंपुष्पकंसूर्यवर्चसम् ॥ ४७ ॥ आरुरोहततोरामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ अंके निधायवैदेहींलज्जमानांयशस्विनीम् ॥ ४८ ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राविक्रांतेनधनुष्मता ॥ अब्रवीच्चविमानस्थःश्रीरामःसर्ववानरान्॥४९॥ सुग्रीवंहारिराजंचअंगदंचविभीषणम् ॥ मित्रकार्यंकृतंसर्वंभवद्भिःसहवानरैः ॥ ५० ॥ अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ सुग्रीवप्रतियाह्याशुकिष्किंधांसर्वसैनिकैः ॥ ५१ ॥ स्वराज्येवसलंकायांममभक्तोविभिषण ॥ नत्वांधर्षयितुंशक्ताःसेंद्राअपिदिवौकसः ॥ ५२ ॥

(उनके किये हुए पराक्रमके बदलेमें प्रत्येककी अलग २ प्रशंसा की) और वानर वीरोंको बिदादी। विभीषणजीने सूर्यके समान तेजःपुंज पुष्पक विमान मँगवाया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ रामचंद्रजीने उस अत्युत्तम विमानमें बैठकर जानकीजीको अपने अंकमें बैठाला; इस समय वानरादिके सामने पतिके निकट बैठनेसे स्त्रीस्वभावके अनुसार सीताजी लजाई ॥ ४८ ॥ निकटही पराक्रमकारी धनुषधारी लक्ष्मणजी बैठे, बाकी सब वानर पृथ्वीपर खड़े रहे; विमानमें सवार होकर रामजीने वानर, वानरोंके राजा सुग्रीव, अंगद, विभीषण सबहीसे कहा, "हे वीरगण ! तुम वानरोंकी सहायताने मित्रका मेरा कार्य पूरा किया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब मैं तुम्हें आज्ञा देताहूं कि, तुम इच्छानुसार अपने २ स्थानोंको चले जाओ; हे सुग्रीव ! तुम अपनी सेनाको साथ ले शीघ्र किष्किन्धाको जाओ ॥ ५१ ॥ हे विभीषण ! तुम अपने राज्यको भोगते हुए सुखसे लंकामें रहो तुम्हारी मुझपर भक्ति है; इस कारण देवता

ओंके साथ इन्द्रभी तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर सकेंगे ॥ ५२ ॥ अब मेरे मनमें अपने पिताकी राजधानी अयोध्यामें जानेकी इच्छा है; " रामचंद्र जीके ऐसा कहनेपर वे पराक्रमी वानर ॥ ५३ ॥ और राक्षस विभीषण सबहीजने हाथ जोड़कर बोले; हे रघुवीर ! हम लोगोंके मनमें आपके साथ अयोध्या चलनेकी इच्छा है ॥ ५४ ॥ आपका राज्याभिषेक हुआ देख कौसल्याजीका वंदन कर फिर हम अपने २ राज्योंमें चले जायँगे । हे प्रभो ! ऐसा करनेकी हमें आज्ञा दीजिये" ॥ ५५ ॥ रामचंद्रजीने 'ऐसाही हो' कहकर सुग्रीवसे कहा;—" तुम वानर मंडली, विभीषण व हनुमान् इस प्रकार सबको साथ लेकर पुष्पक विमानमें बैठें ॥ ५६ ॥ तब सेना सहित सुग्रीव व प्रधानोंके साथ विभीषण इसप्रकार सबही कोई शीघ्र उस दिव्य पुष्पक

अयोध्यांगंतुमिच्छामिराजधानींपितुर्मम ॥ एवमुक्तास्तुरामेणवानरास्तेमहाबलाः ॥ ५३ ॥ ऊचुःप्रांजलयःसर्वेराक्षसश्चविभीषणः ॥
अयोध्यांगंतुमिच्छामस्त्वयासहरघूत्तम ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वात्वामभिषिक्तंतुकौसल्यामभिवाद्यच ॥ पश्चाद्वृणीमहेराज्यमनुज्ञांदेहिनःप्रभो ॥
॥ ५५ ॥ रामस्तथेतिसुग्रीववानरैःसविभीषणः ॥ पुष्पकंसहनूमांश्चशीघ्रमारोहसांप्रतम् ॥५६॥ ततस्तुपुष्पकंदिव्यंसुग्रीवःसहसेनया ॥
विभीषणश्चसामात्यःसर्वेचारुरुहुर्द्रुतम् ॥५७॥ तेष्वारूढेषुसर्वेषुकौबेरंपरमासनम् ॥ राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपातविहायसा ॥ ५८ ॥
बभौतेनविमानेनहंसयुक्तेनभास्वता ॥ प्रहृष्टश्चतदारामश्चतुर्मुखइवापरः ॥ ५९ ॥ ततोवभौभास्करबिंबतुल्यंकुबेरयानंतपसानुलब्धम् ॥
रामेणशोभांनितरांप्रपेदेसीतासमेतेनसहानुजेन ॥ ६० ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्ध० त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

विमानमें चढ़े ॥ ५७ ॥ सर्व वानरोंके चढ़ लेनेपर रामचंद्रजीने कुबेरके उस उत्तम विमानको चलनेकी आज्ञा दी । तत्काल वह विमान आकाश मार्गमें चलने लगा ॥ ५८ ॥ उस तेजस्वी विमानमें ब्रह्माजीके विमानके समान आगे हंस जुडे हुए थे; इसकारण उसमें बैठे हुए आनंदमूर्ति रामचंद्रजी इस समय दूसरे ब्रह्माजी दिखाई देने लगे ॥ ५९ ॥ कुबेरजीको तीव्र तपस्याके द्वारा मिलाहुआ यह विमान उस समय सूर्यके बिंबके समान शोभायमान होताथा । सीता लक्ष्मणजीके साथ रामचंद्रजीके बैठनेसे उस (विमान) की ऐसी शोभा हो रहीथी कि, जिसका वर्णन नहीं किया जाता ॥ ६० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा० सं० युद्धकाण्डे भाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

जानकीजीको युद्धस्थल दिखाय, भरद्वाजाश्रममें जाय, फिर रामचंद्रजीका भरतजीसे भेट करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वति ! सीताजीका मुख चंद्रमाके समान सुन्दर शान्त व रमणीय दिखाई देता था; विमान चलनेपर रामजी चारों ओर दृष्टि फिराय जानकीजीसे बोले ॥ १ ॥ "हे प्यारी ! वह देखो त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसीहुई बहुत प्रकाशमान लंकानगरी दिखाई देती है, इधर यह रणभूमि देखो; इसमें मांसकी कीचड भरी हुई है ॥ २ ॥ यहींपर वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ है, व यहीं मैंने राक्षसोंके राजा रावणको मारा है ॥ ३ ॥ कुंभकर्ण, इन्द्रजित, इत्यादि सारे राक्षसोंका इसी स्थानमें वध हुआ;—हे प्रिये ! तुम्हारे लिये मैंने अपार जलकी राशि, महासागरपर यह सेतु बांधाहै ॥ ४ ॥ यह देखो ! महासागरमें सेतुबंध

॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ पातयित्वाततश्चक्षुःसर्वतोरघुनंदनः ॥ अब्रवीन्मैथिलींसीतांरामःशशिनिभाननाम् ॥ १ ॥ त्रिकूटशिखराग्रस्थां पश्यलंकांमहाप्रभाम् ॥ एतांरणभुवंपश्यमांसकर्दमपंकिलाम् ॥ २ ॥ असुराणांप्लवंगानामत्रवैशसनंमहत् ॥ अत्रमेनिहतःशेतेरावणो राक्षसेश्वरः ॥३॥ कुंभकर्णेंद्रजिन्मुख्याःसर्वेचात्रनिपातिताः ॥ एषसेतुर्मयाबद्धःसागरेसलिलाशये ॥४॥ एतच्चदृश्यतेतीर्थंसागरस्यम हात्मनः॥ सेतुबंधमितिख्यातंत्रैलोक्येनचपूजितम् ॥५॥ एतत्पवित्रंपरमंदर्शनात्पातकापहम् ॥ अत्ररामेश्वरोदेवोमयाशंभुःप्रतिष्ठितः॥६॥ अत्रमांशरणंप्राप्तोमंत्रिभिश्चविभीषणः ॥ एषासुग्रीवनगरीकिष्किंधाचित्रकानना ॥ ७ ॥ तत्ररामाज्ञयाताराप्रमुखाहारियोषितः ॥ आन यामाससुग्रीवःसीतायाःप्रियकाम्यया ॥ ८ ॥ ताभिःसहोत्थितंशीघ्रंविमानंप्रेक्ष्यराघवः ॥ प्राहचाद्रिमृष्यमूकंपश्यवाल्यत्रमेहतः ॥९॥

नामक तीर्थ दाखने लगा । सारा त्रिलोकी इसका वंदन करती है ॥ ५ ॥ यह पवित्र तीर्थ दर्शन करलेनेसे सर्व पातकोंका नाश करता है । यहांपर मैंने रामेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापनाकी है ॥ ६ ॥ यहाँपर मंत्रियोंको साथले विभीषण मेरी शरणमें आये, यह देखो सुग्रीवकी राजधानी किष्किन्धा है; उसके आसपास चित्रविचित्र वृक्षोंका वन कैसा सुन्दर दिखाई देताहै ? ॥ ७ ॥ (महादेवजी बोले हे पार्वति !) तहांपर पहुँचकर सुग्रीवने रामचंद्रजीकी आज्ञासे सीताजीकी इच्छा पूर्ण करनेको तारा आदि स्त्रियोंको बुलाया ॥ ८ ॥ उन स्त्रियोंको लेकर वह विमान आकाशमार्गमें शीघ्रतासे चलने लगा, यह देखकर रामजी फिर सीताजीसे कहने लगे; हे सीते ! देखो यह ऋष्यमूक पर्वत है ! यहांपर मैंने वालिका वध किया ॥ ९ ॥

यह पंचवटी स्थान है यहांपर मैंने अनेक राक्षस मारे ॥ यह देखो यहांपर दो सुन्दर आश्रम दिखाई देते हैं; यह अगस्त्यमुनिका व दूसरा सुतीक्ष्ण ऋषिका ॥ १० ॥ सुंदरि ! यह देखो ! सब जातेहुए ऋषि दिखाई देने लगे ! हे देवि ! यह चित्रकूट पर्वत स्पष्ट दीखता है ॥ ११ ॥ यहींपर कैकेयीके पुत्र (भरत) हमको प्रसन्न करनेके लिये आयेथे । हे सीते ! यह देखो ! यमुनाके तीरपर भरद्वाज मुनिका आश्रम दिखाई देनेलगा ॥ १२ ॥ यह सब जगको पवित्र करनेवाली भागीरथी गंगाजी दीखने लगीं; हे सीते ! वह देखो ! यह अपनी सरयूनदी दीखती है; यह यज्ञके स्तंभोंकी श्रेणी दिखाई देती है ॥ १३ ॥ यह अपनी अयोध्या नगरी दिखाई देनेलगी ! हे भामिनि ! (जानकी !) इसको नमस्कार करो ” । (महादेवजी बोले हे

एषापंचवटीनामराक्षसायत्रमेहताः ॥ अगस्त्यस्यसुतीक्ष्णस्यपश्याश्रमपदेशुभे ॥ १० ॥ एतेतेतापसाःसर्वेदृश्यंतेवरवर्णिनि ॥ असौशैलवरोदेविचित्रकूटःप्रकाशते ॥ ११ ॥ अत्रमांकैकयीपुत्रःप्रसादयितुमागतः ॥ भरद्वाजाश्रमंपश्यदृश्यतेयमुनातटे ॥ १२ ॥ एषाभागीरथीगंगादृश्यतेलोकपावनी ॥ एषासादृश्यतेसीतेसरयूर्यूपमालिनी ॥ १३ ॥ एषासादृश्यतेऽयोध्याप्रणामंकुरुभामिनि ॥ एवंक्रमेणसप्राप्तोभरद्वाजाश्रमंहरिः ॥ १४ ॥ पूर्णेचतुर्दशेवर्षेपंचम्यांरघुनंदनः ॥ भरद्वाजंमुनिंदृष्ट्वाववंदेसानुजःप्रभुः ॥ १५ ॥ पप्रच्छमुनिमासीनंविनयेनरघूत्तमः ॥ शृणोषिकच्चिद्भरतःकुशल्यास्तेसहानुजः ॥ १६ ॥ सुभिक्षावर्ततेऽयोध्याजीवंतिचहिमातरः ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंभरद्वाजःप्रहृष्टधीः ॥ १७ ॥ प्राहसर्वेकुशलिनोभरतस्तुमहामनाः ॥ फलमूलकृताहारोजटावल्कलधारकः ॥ १८ ॥

पार्वति !) इस क्रमसे परमात्मा रामचंद्रजी भरद्वाजजीके आश्रममें जाय पहुँचे ॥ १४ ॥ चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर तिसदिन पंचमी तिथिको छोटे भ्राताके सहित प्रभु रघुवीरने भरद्वाज मुनिका दर्शन करके उनका वंदन किया ॥ १५ ॥ सावधान होकर आश्रममें बैठेहुए मुनिसे रामचंद्रजीने नम्रतासे कहा “ महाराज ! भरतजीका कुछ समाचार सुनाहै ? वह भ्राता शत्रुघ्नके साथ कुशलसे तो हैं ॥ १६ ॥ अयोध्यामें सर्व प्रकारसे समृद्धि और शांति है ? हमारी मातासे तो कुशल है ? ॥ ” रामचंद्रजीके वचन सुनकर भरद्वाजजीके अंतःकरणमें आनंद हुआ, उन्होंने ॥ १७ ॥ उत्तर दिया;–“ हे राम ! सब कुशलसे हैं; वास्तवमें भरतजीका अंतःकरण उदार है; वह केवल फल मूल भक्षण करके अपना निर्वाह करते जटा वल्कल

धारण करके ॥ १८ ॥ और पादुका (खडाऊँ) पर सब राज्यभार रखकर (सारे राज्यकार्य पादुकाओंसे निवेदन कर) तुम्हारी वाट देख रहे हैं हे रघुनंदन ! आपने दण्डकारण्यमें जो २ चरित्र किये ॥ १९ ॥ प्रथम सीताजीका रावणसे हराजाना; फिर राक्षसोंका वध करना, वे सब मैंने तपश्चर्याके प्रभाव और आपके अनुग्रहसे जानलिये हैं । हे राम ! आप साक्षात् परब्रह्मरूप हैं, आपका आदि, मध्य, किंवा अंत नहीं है ॥ आप सृष्टिके आरम्भमें जल उत्पन्न करके उसमें रहे इसलिये आपको 'नारायण' कहते हैं । सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले आपही हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ हे विश्वरूप ! आप नरोंके अन्तरकी बात जानते हैं इसलिये आपको 'नारायण' कहते हैं; सर्व लोकोंके पितामह (दादा) ब्रह्माजी तुम्हारे नाभि

पादुकेसकलंन्यस्यराज्यंत्वांसुप्रतीक्षते ॥ यद्यत्कृतंत्वयाकर्मदंडकेरघुनंदन ॥ १९ ॥ राक्षसानांविनाशंचसीताहरणपूर्वकम् ॥ सर्वंज्ञातं मयारामतपसातेप्रसादतः ॥२०॥ त्वंब्रह्मपरमंसाक्षादादिमध्यांतवर्जितः ॥ त्वमग्रेसलिलंसृष्ट्वातत्रसुप्तोऽसिभूतकृत् ॥२१॥ नारायणोऽसिविश्वात्मन्नराणामंतरात्मकः ॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ अतस्त्वंजगतामीशःसर्वलोकनमस्कृतः ॥ त्वंविष्णुर्जानकीलक्ष्मीःशेषोऽयंलक्ष्मणाभिधः ॥२३॥ आत्मनासृजसीदंत्वमात्मन्येवात्ममायया ॥ नसज्जसेनभोवत्त्वंचिच्छक्त्यासर्वसाक्षिकः ॥ २४ ॥ वहिरंतश्चभूतानांत्वमेवरघुनंदन ॥ पूर्णोऽपिमूढदृष्टीनांविच्छिन्नइवलक्ष्यसे ॥ २५ ॥ जगत्त्वंजगदाधारस्त्वमेव परिपालकः ॥ त्वमेवसर्वभूतानांभोक्ताभोज्यंजगत्पते ॥ २६ ॥

कमलसे उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ इसलिये आप चतुर्दश भुवनके नियामक हैं, सर्व लोक आपको नमस्कार करतेहैं आप विष्णुजीके अवतारहैं; जानकीजी लक्ष्मीहैं और शेषजीने लक्ष्मणजीके नामसे अवतार लियाहै ॥ २३ ॥ आप आत्माके योगसे व आत्माके आश्रयसेही अपनी माया के द्वारा इस सृष्टिको उत्पन्न करतेहो; जैसे आकाश सर्वव्यापी होनेपर भी कहीं लगा लिपटा हुआ नहीं है; वैसेही आपभी कहीं आसक्त नहीं हैं. आप अपनी ज्ञानशक्तिके द्वारा संसारके सर्वकाम देखतेहैं ॥ २४ ॥ हे रघुनन्दन ! आप प्राणियोंके अंतर और बाहरमें विराजमान हैं । तथापि जिनकी दृष्टिमें अज्ञान है उन लोगोंको आप नियमित आकार (साढे तीन हाथ) के जान पड़तेहो ॥ २५ ॥ संसार तुम्हीं हो; संसारके आधार

तुम्हीं हो। जगके पालनकर्ता तुम्हीं हो। हे जगन्नियंता! सर्व जगत्के भोक्ता (भोगनेवाले) और भोग (विषय) रूप हो ॥ २६ ॥ हे रघुकुलोत्तम! जो कुछ दिखलाई देता है, स्मरणमें आता है, सुना जाता है, वह सर्व आप हैं; आपके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ वास्तविक देखनेसे आपमें सृष्टिकर्तृत्वादि गुण नहीं हैं; कारण माया अपने अलंकारादि गुणोंकरके लोकोंको उत्पन्न करती है। परन्तु हे राम! उस मायाको आपहीकी शक्तिसे प्रेरणा मिलती है; इसलिये स्रष्टृत्वादि गुण आपमें आरोपित किये जाते हैं ॥ २८ ॥ माया मूलकी जड़ है (वह स्वतंत्र होकर कोई कार्य नहीं कर सकती;) परन्तु जैसे लोहचुंबकके निकट आनेपर लोहेका टुकड़ा चलायमान होजाताहै, तैसेही मायापर आपकी दृष्टि पड़तेही वह

दृश्यतेश्रूयतेयद्यत्स्मर्यतेवारघूत्तम ॥ त्वमेवसर्वमखिलंत्वद्विनान्यन्नकिंचन ॥ २७ ॥ मायासृजतिलोकांश्चस्वगुणैरहमादिभिः ॥ त्वच्छक्तिप्रेरितारामतस्मात्त्वय्युपचर्यते ॥ २८ ॥ यथाचुंबकसान्निध्याच्चलंत्येवायआदयः ॥ जडातथात्वयादृष्टामायासृजतिवैजगत् ॥२९॥ देहद्वयमदेहस्यतवविश्वंरिरक्षिषोः ॥ विराट्स्थूलंशरीरंतेसूत्रंसूक्ष्ममुदाहृतम् ॥ ३० ॥ विराजःसंभवंत्येतेअवताराःसहस्रशः ॥ कार्यांते प्रविशंत्येवविराजंरघुनंदन ॥ ३१ ॥ अवतारकथांलोकेयेगायंतिगृणंतिच ॥ अनन्यमनसोमुक्तिस्तेषामेवरघूत्तम ॥ ३२ ॥ त्वंब्रह्मणापुराभूमेर्भारहारायराघव ॥ प्रार्थितस्तपसातुष्टस्त्वंजातोऽसिरघोःकुले ॥ ३३ ॥ देवकार्यमशेषेणकृतंतेरामदुष्करम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिमानुषंदेहमाश्रितः ॥ ३४ ॥

जगत्को उत्पन्न कर सकतीहै ॥ २९ ॥ वास्तवमें आप शरीररहित हैं परन्तु संसारकी रक्षाके लिये आपके दो शरीर हैं;—विराट् आपका स्थूल शरीर व हिरण्यगर्भ सूक्ष्मशरीर कहा जाता है ॥ ३० ॥ हे राम! आपके विराट्रूपमेंसे सहस्रों अवतार कार्य करनेके लिये उत्पन्न होतेहैं और कार्य होजानेपर वह विराट्रूपमेंही प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे रघुकुलोत्तम! संसारमें जो लोक केवल तुममें मनलगाय आपकी अवतार कथा गाते या वर्णन करतेहैं; उन्हींको मोक्ष मिलता है ॥ ३२ ॥ हे राघव! ब्रह्माजीने तपश्चर्याके द्वारा आपको संतुष्टकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आपकी प्रार्थना की; इसकारण आपने रघुकुलमें अवतार लिया ॥ ३३ ॥ हे राम! रावणके वधकरनेका कार्य देवताओंकोभी बहु

त कठिन था; परन्तु आपने सिद्ध किया। अब आगेको भी आप अनेक सहस्र वर्षतक मनुष्यदेह धारणकरकै ॥ ३४ ॥ स्वर्ग, व मृत्यु दोनों लोकका कल्याण करनेके लिये दुर्घट कार्य करते रहैंगे। आपकी कीर्ति सारे संसारमें फैल जायगी आपके चरित्र लोगोंका पाप दूर करैंगे ॥ ॥ ३५ ॥ हे जगन्नाथ! मेरी आपसे यही प्रार्थनाहै कि, आप मेरे आश्रमको पवित्र करैं। आजके दिन सेनासहित यहीं रहकर भोजन करो कल नगरको जइयो ॥ ३६ ॥ रामजी 'तथास्तु' कहकर तिसदिन उस उत्तम आश्रममें रहे; भरद्वाज मुनिजीने, सीता, लक्ष्मण और सेनाके सहित श्रीरामचंद्रजीका सत्कार किया ॥ ३७ ॥ फिर रामचंद्रजीने क्षणभर विचारकर हनुमान्‌जीसे कहा;—" हे हनुमंत! यहांसे शीघ्र अयोध्याको जाओ ॥ ३८ ॥

कुर्वन्दुष्करकर्माणिलोकद्वयहितायच ॥ पापहारीणिभुवनंयशसापूरयिष्यसि ॥ ३५ ॥ प्रार्थयामिजगन्नाथपवित्रंकुरुमेगृहम् ॥ स्थित्वाद्यभुक्त्वासबलःश्वोगमिष्यसिपत्तनम् ॥ ३६ ॥ तथेतिराघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रमउत्तमे ॥ ससैन्यःपूजितस्तेनसीतयालक्ष्मणेनच ॥ ३७ ॥ ततोरामश्चिंतयित्वामुहूर्तंप्राहमारुतिम् ॥ इतोगच्छहनूमंस्त्वमयोध्यांप्रतिसत्वरः ॥३८॥ जानीहिकुशलीकच्चिज्जनोनृपतिमंदिरे ॥ शृंगवेरपुरंगत्वाब्रूहिमित्रंगुहंमम ॥३९॥ जानकीलक्ष्मणोपेतमागतंमांनिवेदय ॥ नंदिग्रामंततोगत्वाभ्रातरंभरतंमम ॥ ४० ॥ दृष्ट्वाब्रूहिसभार्यस्यसभ्रातुःकुशलंमम ॥ सीतापहरणादीनिरावणस्यवधादिकम् ॥ ४१ ॥ ब्रूहिक्रमेणमेभ्रातुःसर्वंतत्रविचेष्टितम् ॥ हत्वाशत्रुगणान्सर्वान्सभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ४२ ॥ उपयातिसमृद्धार्थःसहऋक्षहरीश्वरैः ॥ इत्युक्त्वातत्रवृत्तांतंभरतस्यविचेष्टितम् ॥४३॥ सर्वंज्ञात्वापुनःशीघ्रमागच्छममसान्निधिम् ॥ तथेतिहनुमांस्तत्रमानुषंवपुरास्थितः ॥ ४४ ॥

राजमंदिरमें सबकी कुशलका समाचार ले, शृंगवेरपुरमें हमारा मित्र गुह रहताहै, उससे जायकर कहो ॥ ३९ ॥ कि, जानकी व लक्ष्मण दोनोंके साथ मैं (राम) आयाहूं; यह सन्देशा जतायकर तहांसे नंदिग्राममें जाओ, वहां हमारे भ्राता भरत हैं ॥ ४० ॥ उनसे भेंट कर कहो कि, मैं स्त्री व भ्राताके सहित कुशलसेहूं सीताको रावणने चुरालियाथा, फिर मैंने उसका वध किया इत्यादि ॥ ४१ ॥ समस्त मेरा व भ्राताका चरित्र क्रमानुसार उनसे निवेदनकर सबसे पीछे कहो कि, राम समस्त शत्रुओंका संहारकर भार्या व बन्धुजनोंको साथले ॥ ४२ ॥ और अपने कार्यको सिद्ध कर ऋक्षराज जाम्बवान् और कपिराज सुग्रीवके साथ यहाँ आते हैं, ऐसा वृत्तान्त वहाँ कह भरतजीके चरित्रको ॥ ४३ ॥ समझकर फिर यहाँ

शीघ्र लौट आओ "। हनुमान्‌जीने 'बहुत अच्छा' कह शीघ्र वहाँही मनुष्यके समान रूप धारण किया ॥ ४४ ॥ जैसे गरुड़ बड़े सर्पकी पकड़नेके लिये वेगसे दौड़ता है, तैसेही हनुमान्‌जी पवनके समान वेगसे नंदिग्रामकी ओर चले ॥ ४५ ॥ हनुमान्‌जीने प्रथम शृंगवेरपुरमें जायकर गुहसे भेंट की; व आनंदित अंतःकरणसे उसको भला लगनेवाला संदेशा कहा ॥ ४६ ॥ "हे गुह ! तुम्हारे मित्र धर्मात्मा श्रीमान् दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी कुशल हैं उन्होंने तुमसे कुशलवार्ता कहनेके लिये मुझको यहाँ भेजाहै ॥ ४७ ॥ रघुवीर आज भरद्वाज मुनिकी आज्ञा पाय इधर आवेंगे; तब तुम्हैं उन रघुकुलोत्तम देवताका दर्शन मिलैगा" ॥ ४८ ॥ महातेजस्वी हनुमान्‌जीके वचन सुनतेही मारे आनंदके गुहके रोम खड़े

नंदिग्रामंययौतूर्णंवायुवेगेनमारुतिः ॥ गरुत्मानिववेगेनजिघृक्षन्भुजगोत्तमम् ॥ ४५ ॥ शृंगवेरपुरंप्राप्यगुहमासाद्यमारुतिः ॥ उवाचमधुरंवाक्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४६ ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्सखातेसहसीतया ॥ सलक्ष्मणस्त्वांधर्मात्माक्षेमीकुशलमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ अनुज्ञातोऽद्यमुनिनाभरद्वाजेनराघवः ॥ आगमिष्यतितंदेवंद्रक्ष्यासित्वंरघूत्तमम् ॥४८॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसंप्रहृष्टतनूरुहम् ॥ उत्पपातमहावेगोवायुवेगेनमारुतिः ॥ ४९ ॥ सोऽपश्यद्रामतीर्थंचसरयूंचमहानदीम् ॥ तामतिक्रम्यहनुमान्नंदिग्रामंययौमुदा ॥ ५० ॥ क्रोशमात्रेत्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनांवरम् ॥ ददर्शभरतंदीनंकृशमाश्रमवासिनम् ॥ ५१ ॥ मलपंकविदिग्धांगंजटिलंवल्कलांवरम् ॥ फलमूलकृताहारंरामचिंतापरायणम् ॥ ५२ ॥ पादुकेतेपुरस्कृत्यशासयंतंवसुंधराम् ॥ मंत्रिभिःपौरमुख्यैश्चकाषायांबरधारिभिः ॥ ५३ ॥

होगये; महवेगवान् हनुमान्‌जी वायुवेगसे वहाँसे उडे ॥ ४९ ॥ रस्तेमें रामतीर्थ और सरयू नदी दिखाई दी; उसको लांघकर हनुमान्‌जी आनंदसे नंदिग्राममें आये ॥ ५० ॥ यह ग्राम अयोध्याके निकट एक कोशपरहै; वहांपर वल्कल व हरिणके चर्मका वस्त्र धारण करनेवाले, दीन व कृश हुए आश्रमवासी भरतजी हनुमान्‌जीको दिखाई दिये ॥ ५१ ॥ भरतजीका शरीर मैलकी पंकसे मलिन होरहाथा; मस्तकपर जटा और अंगपर वल्करूप वस्त्रथे । वह निर्वाहके लिये फल व मूल खायकर रामचंद्रजीका ध्यान करनेमें निमग्नहो ॥ ५२ ॥ और उन (पहले जो रामचंद्रजीने दीथीं) खड़ाऊंओंकी पूजा करकै उनके आश्रयसे पृथ्वीका राज्य चलातेथे— जैसे राजा चलावै वैसे मंत्री चलै—इस धर्मके अनुसार

उनके मंत्री व नगरके मुख्य लोग काषाय (गेरुआ) वस्त्र पहरकर ॥ ५३ ॥ निकट बैठे थे—उनको देखतेही देखनेवाला जानले कि, क्या यह धर्म प्रत्यक्ष शरीर धारण करकै यहां बैठा है । पवनकुमार हनुमान्‌जीने हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥ ५४ ॥ " हे भरत ! आप जिन रामचंद्रजीका ध्यान करतेहैं; व जिनका तापस व्रत अंगीकार करकै—दण्डकारण्यमें रहना आपको बुरा लगता है; उन रामजीने अपनी कुशल बतलानेको तुम्हारे पास मुझे भेजा है; ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! मैं आपसे प्रियवार्ता कहताहूं; आप इस भयंकर शोकको छोड़दें । इसी घडीमें तुमसे और तुम्हारे भ्राता रामचंद्रसे भेंट होगी ॥ ५६ ॥ रामचंद्रजीने युद्धमें रावणका वध किया । अब वह अपना कार्य सिद्ध करकै सीता और लक्ष्मण इन दोनोंके साथ निकट आय पहुँ

वृत्तदेहंमूर्तिमंतंसाक्षाद्धर्ममिवस्थितम् ॥ उवाचप्रांजलिर्वाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ५४ ॥ यंत्वंचिंतयसेरामंतापसंदंडकेस्थितम् ॥ अनुशोचसिकाकुत्स्थःसत्वांकुशलमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ प्रियमाख्यामितेदेवशोकंत्यजसुदारुणम् ॥ अस्मिन्मुहूर्तेभ्राताात्वंरामेणसहसंगतः ॥ ५६ ॥ समरेरावणंहत्वारामःसीतामवाप्यच ॥ उपयातिसमृद्धार्थःससीतःसहलक्ष्मणः ॥५७ ॥ एवमुक्तोमहातेजाभरतोहर्षमूर्छितः ॥ पपातभुविचास्वस्थःकैकेयीप्रियनंदनः॥५८॥आलिंग्यभरतःशीघ्रंमारुतिंप्रियवादिनम् ॥ आनंदजैरश्रुजलैःसिषेचभरतःकपिम् ॥५९॥ देवोवामानुषोवात्वमनुक्रोशादिहागतः ॥ प्रियाख्यानस्यतेसौम्यददामिब्रुवतःप्रियम् ॥ ६० ॥ गवांशतसहस्रंचग्रामाणांचशतंवरम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नामुग्धाःकन्यास्तुषोडश ॥ ६१ ॥

चे हैं " ॥ ५७ ॥ ऐसी वार्ता सुनतेही उन महातेजस्वी भरतजीको अधिक आनंदके होनेसे मूर्च्छा आगई; वे पृथ्वीपर गिर पड़े कैकेयीके उन प्रिय पुत्रको देहका भान नहीं रहा ॥ ५८ ॥ कुछ देरमें चैतन्य हो भरतजीने शीघ्रही प्रियवार्ता कहनेवाले हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया । इससमय भरतजीके नेत्रोंसे इतने आनंदके आंसू बहते थे ।कि; जिससे वानर (हनुमान्‌जी) का सब अंग भीग गया । ॥५९ ॥ फिर भरतजी बोले, "मुझपर कृपा करकै जो तुम यहां आये हो तौ कोई देवता हो; या कोई मनुष्य हो, तुम्हारा दर्शन मुझे चंद्रमाके समान सुखदाई ज्ञात होता है । तुमने मुझे प्रिय समाचार सुनाया है, इसलिये मैं तुम्हैं कुछ प्रियदान देताहूं ॥ ६० ॥ लाख गाय उत्तम शत ग्राम व सर्व अलंकारोंसे सजी सजाई सुन्दर सौ

कन्या लो " ॥ ६१ ॥ इतना कहकर फिर भरतजीने हनुमानजीसे कहाः—" रामचंद्रजीको महाघोर वनमें गये हुए बहुत वर्ष हुए ॥ ६२ ॥ मेरे मनको संतोष देनेवाली स्वामिकी कुशलवार्ता बहुत वर्षोंमें आज हमने सुनी ! संसारमें जो एक कहावत है, उसके यथार्थ होनेका आज मुझे विश्वास हुआ कि ॥ ६३ ॥ 'मनुष्य जीवित रहै तो एक शत वर्ष पीछे भी उसके आनंदका दिन आता है।' परस्पर वानरोंमें श्रीरामचंद्रजीका मिलना किसप्रकार हुआ ॥ ६४ ॥ सत्य कहो, तुम्हारा मंगलहो ! तुम्हारी बातका मैं विश्वास करूंगा " । महासमर्थ भरतजीने ऐसे प्रश्न किया तब हनुमानजीने ॥ ६५ ॥ उनको क्रमानुसार समस्त रामचरित्र निवेदन किया, हनुमानजीके मुखसे यह वचन सुनकर भरतजीको परमा

एवमुक्त्वापुनःप्राहभरतोमारुतात्मजम् ॥ बहूनीमानिवर्षाणिगतस्यसुमहद्वनम् ॥ ६२ ॥ शृणोम्यहंप्रीतिकरंममनाथस्यकीर्तनम् ॥ कल्याणीवतगाथेयंलौकिकीप्रतिभातिमे ॥ ६३ ॥ एतिजीवंतमानंदोनरंवर्षशतादपि ॥ राघवस्यहरीणांचकथमासीत्समागमः ॥ ६४ ॥ तत्त्वमाख्याहिभद्रंतेविश्वसेयंवचस्तव ॥ एवमुक्तोऽथहनुमान्भरतेनमहात्मना ॥ ६५ ॥ आचचक्षेऽथरामस्यचरितंकृत्स्नशःक्रमात् ॥ श्रुत्वातुपरमानंदंभरतोमारुतात्मजात् ॥ ६६ ॥ आज्ञापयच्छत्रुहणंमुदायुक्तंमुदान्वितः ॥ दैवतानिचयावंतिनगरेरघुनंदन ॥ ६७ ॥ नानोपहारबलिभिःपूजयंतुमहाधियः ॥ सूतावैतालिकाश्चैववंदिनःस्तुतिपाठकाः ॥ ६८ ॥ वारमुख्याश्चशतशोनिर्यांत्वद्यैवसंघशः ॥ राजदारास्तथाऽमात्याःसेनाहस्त्यश्वपत्तयः ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणाश्चतथापौराराजानोयेसमागताः ॥ निर्यांतुराघवस्याद्यद्रष्टुंशशिनिभाननम् ॥ ७० ॥ भरतस्यवचःश्रुत्वाशत्रुघ्नपरिचोदिताः ॥ अलंचक्रुश्चनगरींमुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ॥ ७१ ॥

नंद हुआ ॥ ६६ ॥ शत्रुघ्नजी भी यह वार्ता सुनकर हर्षित हुए, भरतजीने आनंदित होकर शत्रुघ्नजीको आज्ञा दी कि 'हे रघुकुमार ! नगरमें जितने देवालय हैं, उन सबमें ॥ ६७ ॥ उत्तम बुद्धिमान् पुरुष अनेक भांतिकी सामग्री और बलि देकर पूजा करें, सूत, वैतालिक, बंदी, स्तुतिपाठक ॥ ६८ ॥ मुख्य २ वाराङ्गनाओंके सैंकड़ों झुंड अभी जांय, राजरानियें प्रधानमंडल, हाथी, घोडे, रथ, पयदलकी सेना ॥ ६९ ॥ ब्राह्मण, नागरीक जन, देश २ के आये हुए राजा, इन सबको रामचंद्रजीका चंद्रमाके समान मुख अवलोकन करनेके लिये अभी भेजो ' ॥ ७० ॥ भरतजीकी आज्ञा सुनकर

शत्रुघ्नजीने नगरमें दुहाई फेर दी, तिसके अनुसार लोगोंने मोतियोंकी व रत्नोंकी तेजःपुंज तोरण लायकर नगरको सजाया, जगह २ चित्र विचित्र पताका लगाई गईं; व अनेक कलाकुशल लोगोंने अपने २ घरोंको शोभायमान किया ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ प्रत्येकको रामजीके दर्शन करनेकी उत्कंठा थी। इसकारण लोगोंके झुंडके झुंड बाहर निकले; एक लाख घोड़े दशहजार हाथी ॥ ७३ ॥ व सुवर्णसूत्र (सच्चाकलाबत्तू) से सजे हुए दशहजार हाथी बाहर निकले। लोगोंने परमात्मा रामचंद्रजीके अर्पण करने योग्य बड़ी छोटी वस्तु भेंटके लिये साथ ले लीं ॥ ७४ ॥ उनके पीछे राजमन्दिरकी स्त्रियां पालकियोंमें बैठकर चलीं। भरतजीभी पादुका मस्तकपर रख हाथ जोड़ ॥ ७५ ॥ शत्रुघ्नजीके सहित पैदल चलते हुए रामजीके

तोरणैश्चपताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ॥ अलंकुर्वंतिवेश्मानिनानावलिविचक्षणाः ॥ ७२ ॥ निर्यातिवृंदशःसर्वैरामदर्शनलालसाः ॥ हयानांशतसाहस्रंगजानामयुतंतथा ॥ ७३॥ रथानांदशसाहस्रंस्वर्णसूत्रविभूषितम् ॥ पारमेष्ठीन्युपादायद्रव्याण्युच्चावचानिच ॥ ७४ ॥ ततस्तुशिविकारूढानिर्ययूराजयोषितः ॥ भरतःपादुकेन्यस्यशिरस्येवकृतांजलिः ॥ ७५ ॥ शत्रुघ्नसहितोरामंपादचारेणनिर्ययौ ॥ तदै वदृश्यतेदूराद्विमानंचंद्रसन्निभम् ॥ ७६ ॥ पुष्पकंसूर्यसंकाशंमनसाब्रह्मनिर्मितम् ॥ एतस्मिन्भ्रातरौवीरौवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ ७७ ॥ सुग्रीवश्चकपिश्रेष्ठोमंत्रिभिश्चविभीषणः॥दृश्यतेपश्यतजनाइत्याहपवनात्मजः॥७८॥ततोहर्षसमुद्भूतोनिःस्वनोदिवमस्पृशत् ॥ स्त्रीबाल युववृद्धानांरामोऽयमितिकीर्तनात् ॥७९॥ रथकुंजरवाजिस्थाअवतीर्यमहींगताः ॥ ददृशुस्तेविमानस्थंजनाःसोमामिवांबरे ॥ ८० ॥

सन्मुखको चले। जब यह समाज बाहर निकला; तब दूर अंतरपर रामचंद्रजीका चंद्रमाके समान शुभ्र विमान दिखाई देने लगा ॥ ७६ ॥ तत् काल हनुमान्‌जीने लोगोंसे कहा हे मनुष्यो! यह देखो सूर्यके समान तेजःपुंज पुष्पक विमान दिखाई देता है। इस विमानको ब्रह्माजीने संकल्पसे उत्पन्न किया है, इसमें जानकीजीके सहित दोनों शूर बंधु राम लक्ष्मण, वानरोंके राजा सकुटुम्ब सपरिवार सुग्रीव व मंत्रियोंके सहित विभीषण जीभी बैठे हैं" ॥ ७७ ॥ ७८ तिस समय, स्त्रियां लड़के, तरुण और वृद्ध सब लोग जिधर तिधरसे आनंदमें भरकर, 'यह देखो राम आये! यह राम आये!' ऐसे कहने लगे। तब यह कलकल स्वर्गतक जाय पहुँची ॥७९॥ हाथी और घोड़ोंपर बैठे हुए लोग नीचे उतरकर पृथ्वीपर खड़े रहे, तो

आकाशमें उगे हुए चंद्रमाके समान विमानमें बैठे हुए रामचंद्रजी उनको दिखाई दिये ॥ ८० ॥ भरतजीको महाहर्ष हुआ, वह हाथ जोड़कर रामचंद्रजीके देखनेकी उत्कंठासे उनके आगे २ चले । विमानके ऊँचे स्थानमें बैठे हुए श्रीरामचंद्रजी उनको दिखाई दिये । तिस समय भरतजीने उनको आनंदसे ॥ ८१ ॥ लोग जिस प्रकार मेरुपर्वतपर उठे हुए सूर्यका वंदन करते हैं तैसेही नम्र होकर प्रणाम किया, फिर रामचंद्रजीकी आज्ञासे विमान भूमिपर उतरा ॥ ८२ ॥ तिस समय भरतजीको अपने छोटे भ्राता (शत्रुघ्न) के साथ विमानमें चढ़ाया । रामचंद्रजीके भेंट होनेसे भरतजीने आनंदित होकर फिर वंदन किया ॥ ८३ ॥ भ्राता भरतजीके बहुत दिनोंमें भेंटनेके कारण रामचंद्रजीने उनको उठायकर अपनी गोदीमें बैठाय

प्रांजलिर्भरतोभूत्वाप्रहृष्टोराघवोन्मुखः ॥ ततोविमानाग्रगतंभरतोराघवंमुदा॥८१॥ ववंदेप्रणतोरामंमेरुस्थमिवभास्करम्॥ततोरामाभ्यनुज्ञातंविमानमपतद्भुवि॥८२॥आरोपितोविमानंतद्भरतःसानुजस्तदा ॥ राममासाद्यमुदितःपुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ८३॥ समुत्थाप्यचिराद्दृष्टंभरतंरघुनंदनः ॥ भ्रातरंस्वांकमारोप्यमुदातंपरिषस्वजे ॥ ८४ ॥ ततोलक्ष्मणमासाद्यवैदेहींनामकीर्तयन् ॥ अभ्यवादयतप्रीतोभरतःप्रेमविह्वलः ॥ ८५ ॥ सुग्रीवंजांबवंतंचयुवराजंतथांगदम्॥ मैंदद्विविदनीलांश्चऋषभंचैवसस्वजे ॥ ॥ ८६ ॥ सुषेणंचनलंचैवगवाक्षंगंधमादनम् ॥ शरभंपनसंचैवभरतःपरिषस्वजे ॥ ८७ ॥ सर्वेतेमानुषंरूपंकृत्वाभरतमादृताः ॥ पप्रच्छुःकुशलंसौम्याःप्रहृष्टाश्चप्लवंगमाः ॥ ८८ ॥ ततःसुग्रीवमालिंग्यभरतःप्राहभक्तितः ॥ त्वत्सहायेनरामस्यजयोऽभूद्रावणोहतः ॥ ८९ ॥ त्वमस्माकंचतुर्णांतुभ्रातासुग्रीवपंचमः ॥ शत्रुघ्नश्चतदाराममभिवाद्यसलक्ष्मणम् ॥ ९० ॥

आनंद पूर्वक हृदयसे लगाया ॥ ८४ ॥ फिर भरतजीने लक्ष्मणजीको भेंटकर फिर उन्होंने सीताजीसे ' मैं भरत वंदन करताहूं ' ऐसा कहकर प्रणाम किया, इससमय प्रेमके मारे उनका कंठ भर आया ॥ ८५ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अगंद, द्विविद, नील इन वीरोंको आलिंगन दिया ॥ ८६ ॥ तैसेही भरतजी सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, पनसको भी मिले ॥ ८७ ॥ वानरोंने मनुष्योंके समान शांतरूप धारण कियाथा । इन सबने आनंदित होकर कुशल प्रश्न किया ॥ ८८ ॥ अनन्तर भरतजीने सुग्रीवको फिर हृदयसे लगायकर उनसे प्रेम सहित कहा " हे राजन् ! तुम्हारी सहायतासे रामचंद्रजीको जय मिली और रावणका नाश हुआ ॥ ८९ ॥ हे सुग्रीव ! तुम हमारे चार भ्राताओंमें

पाँचवें भ्राता हो ”। तिस समय शत्रुघ्नजीने भी नम्रपनसे राम व लक्ष्मणजीको वंदनकर फिर सीताजीके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर रामचंद्रजी अपनी माताको भेटने गये । वह चौदह वर्षतक नित्य शोक करनेसे विह्वल होगईथीं, पहलेका तेज अब उनमें नहीं रहाथा ॥ ९० ॥ ९१ ॥ रामचंद्रजीने माताको प्रसन्न करनेके लिये नमस्कार करके उनके चरणोंको पकड़ लिया, फिर उन्होंने कैकेयी, सुमित्रा और दूसरी माताओंको नमस्कार किया ॥ ९२ ॥ भरतजीने भक्तिपूर्वक आजतक पूजाकरके रक्खी हुई उन खड़ाऊँओंको रामचंद्रजीके पाँवमें पहराया ॥ ९३ ॥ व कहा “ हे राम ! मैंने धरोहरकी भाँति आजतक यह तुम्हारा राज्य चलाया, आज मेरा जन्म सार्थक हो गया व मेरे मनोरथ सिद्ध होगये ॥ ९४ ॥

सीतायाश्चरणौपश्चाद्ववंदेविनयान्वितः ॥ रामोमातरमासाद्यविवर्णांशोकविह्वलाम् ॥ ९१ ॥ जग्राहप्रणतःपादौमनोमातुःप्रसादयन् ॥ कैकेयींचसुमित्रांचननामेतरमातरः ॥ ९२ ॥ भरतःपादुकेतेतुराघवस्यसुपूजिते ॥ योजयामासरामस्यपादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ ९३ ॥ राज्यमेतन्न्यासभूतंमयानिर्यातितंतव ॥ अद्यमेसफलंजन्मफलितोमेमनोरथः ॥ ९४ ॥ यत्पश्यामिसमायातमयोध्यांत्वामहंप्रभो ॥ कोष्ठागारंवलंकोशंकृतंदशगुणंमया ॥ ९५ ॥ त्वत्तेजसाजगन्नाथपालयस्वपुरंस्वकम् ॥ इतिब्रुवाणंभरतंदृष्ट्वासर्वेकपीश्वराः॥९६॥ मुमुचुर्नेत्रजंतोयंप्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ततोरामःप्रहृष्टात्माभरतंस्वांकगंमुदा ॥ ९७ ॥ ययौतेनविमानेनभरतस्याश्रमंतदा ॥ अवरुह्यतदारामोविमानाग्र्यान्महीतलम् ॥ ९८ ॥ अब्रवीत्पुष्पकंदेवोगच्छवैश्रवणंवह ॥ अनुगच्छानुजानामिकुवेरंधनपालकम् ॥ ९९ ॥

कारण; प्रभो तुमको अयोध्यामें आया हुआ मैंने देखा. हे प्रभो ! नाजके कोठे सैन्य द्रव्य भण्डार (खजाना) यह सब मेरे हाथसे पहलेसे दशगुण बढे हैं; परंतु ॥ ९५ ॥ यह सब आपहीका प्रभाव है । हे जगत्पते ! अब अपनी नगरीका पालन करो ! भरतको इस प्रकार कहकर सर्वस्व निवेदन करता हुआ देख सर्व वानरवीरोंके ॥ ९६ ॥ नेत्रोंसे आनंदके आंसू बहने लगे; उन्होंने संतुष्ट होकर भरतजीका बखान किया । सारे इष्ट जनोंको भेंटनेसे रामचंद्रजीके मनको संतोष हुआ; वह भरतजीको गोदमें ले आनंदसे ॥ ९७ ॥ उसी विमानमें बैठ शीघ्र उनके आश्रममें गये तहां रामचंद्रजी उस श्रेष्ठ विमानपरसे पृथ्वीपर उतरे ॥ ९८ ॥ फिर प्रभुने पुष्पकसे कहा,—“ हे विमान ! तुम कुबेरके पास जाओ और उनको ले चला करो । मैं

तुमको आज्ञा देताहूं तुम धनपालक कुबेरकी आज्ञामें रहो" ॥ ९९ ॥ फिर जिस प्रकार इन्द्रजी बृहस्पतिजीको प्रमाण करते हैं, वैसेही राम गुरुजीके चरणोंकी वंदना करके व उनके बैठनेको महामोलका उत्तम आसन देकर स्वयं उनके समीप बैठे ॥ १०० ॥ इ० श्रीम० भा० चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीका नगरमें प्रवेश करना, वसिष्ठजीका उनको राज्याभिषेक करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि–हे पार्वति ! फिर कैकेयीके पुत्र भरतने भक्तिसे अपने हात शिरसे जोड रामजीसे कहा; "माताका सत्कार करके मुझे राज्य दिया; जैसे आपने मुझे राज्य दिया; तैसेही आज मैं फिर आपको लौटाये देताहूं " ॥ १ ॥ २ ॥ इतना कहकर भक्तिपूर्वक रामचंद्रजीके चरणोंमेंभी साष्टांग नमस्कार किया, व अनेक प्रकारसे उनकी प्रार्थना की; उनके साथ

रामोवसिष्ठस्यगुरोःपदांबुजंनत्वायथादेवगुरोःशतक्रतुः ॥ दत्त्वामहार्हासनमुत्तमंगुरोरुपाविवेशाथगुरोःसमीपतः ॥ १०० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ ततस्तुकैकयीपुत्रोभरतोभक्तिसंयुतः ॥ शिरस्यंजलिमाधायज्येष्ठंभ्रातरमब्रवीत् ॥ १ ॥ मातामेसत्कृतारामदत्तंराज्यंत्वयामम ॥ ददामितत्तेचपुनर्यथात्वमददामम ॥ २ ॥ इत्युक्त्वापादयोर्भक्त्यासाष्टांगंप्रणिपत्यच ॥ बहुधाप्रार्थयामासकैकेय्यागुरुणासह ॥३॥ तथेतिप्रतिजग्राहभरताद्राज्यमीश्वरः ॥ माया माश्रित्यसकलांनरचेष्टामुपागतः ॥ ४ ॥ स्वाराज्यानुभवोयस्यसुखज्ञानैकरूपिणः ॥ निरस्तातिशयानंदरूपिणःपरमात्मनः ॥ ५ ॥ मानुषेणतुराज्येनकिंतस्यजगदीशितुः ॥ यस्यभ्रूभंजमात्रेणत्रिलोकीनश्यतिक्षणात् ॥ ६ ॥ यस्यानुग्रहमात्रेणभवंत्याखंडलश्रियः ॥ ली लासृष्टमहासृष्टेःकियदेतद्रमापतेः ॥ ७ ॥

ही माता कैकेयीने रामचंद्रजीसे कहा,–" हे राम ! तुमने हमारे वचन पाले इससे मैं संतुष्ट हुई । अब मैं संतोषसे यह राज्य तुम्हें देतीहूं मनमें कुछ विकल्प न करके इसको अंगीकार करो " ॥ ३ ॥ रामजीने 'अच्छा कहकर, भरतजीसे राजसूत्र ले लिया । राम अर्थात् साक्षात् परमेश्वर,–अपने स्वरूपमें मायाका अंगीकार कर मनुष्यके समान सर्व लीला कर रहेथे ॥ ४ ॥ तिनको नित्य स्वात्मानंद सुखका अनुभव मिलता, सुखमय ज्ञानही एक जिनका रूप है व जिनके आनंदरूपी अपेक्षा दूसरी और कोई आनंद रहाही नहीं उन परमात्माको ॥ ५ ॥ मनुष्यलोकके (क्षुद्र) राज्यका क्या प्रयोजन है ? उस जगन्नियंताके एक भ्रुकुटी बाँकी करतेही क्षणमात्रमें त्रिलोकीका नाश होजाताहै ॥ ६ ॥ केवल जिनकी

कृपादृष्टि फिरतेही मनुष्यको इन्द्रका ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है, व जिसने लीलासेही महासृष्टि उत्पन्न की है उन लक्ष्मीपतिके आगे इस राज्यकी कितनी प्रतिष्ठा !!! ॥ ७ ॥ तथापि, वह प्रभु अपने भक्तजनोंकी विविध इच्छा पूर्ण करनेके लिये लीलाके द्वारा मनुष्यदेह धारणकर लोकशिक्षा करनेको प्रत्येक प्रसंगके अनुरूप बर्ताव करते हैं ॥ ८ ॥ फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे एक चतुर नापित (नाई) आया, रामचंद्रजीके अभिषेक करनेकी सामग्री आई ॥ ९ ॥ प्रथम भरतजीका क्षौरकर्म करके मंगलस्नान कराया, फिर महात्मा लक्ष्मण, इनके पीछे वानरराज सुग्रीव अनंतर राक्षसराज विभीषण सबको ही स्नान कराया गया ॥ १० ॥ फिर रामचंद्रजीने अपनी जटाओंको शुद्धकर (श्मश्रुकर) के अभ्यंगस्नान

तथापिभजतांनित्यंकामपूरविधित्सया ॥ लीलामानुषदेहेनसर्वमप्यनुवर्तते ॥ ८ ॥ ततःशत्रुघ्नवचनान्निपुणःश्मश्रुकृंतकः ॥ संभाराश्चाभिषेकार्थमानीताराघवस्यहि ॥ ९ ॥ पूर्वंतुभरतेस्नातेलक्ष्मणेचमहात्मनि ॥ सुग्रीवेवानरेंद्रेचराक्षसेंद्रेविभीषणे ॥ १० ॥ विशोधितजटःस्नाताश्चित्रमाल्यानुलेपनः ॥ महार्हवसनोपेतस्तस्थौतत्रश्रियाज्वलन् ॥ ११ ॥ प्रतिकर्मचरामस्यलक्ष्मणश्चमहामतिः ॥ कारयामास भरतःसीतायाराजयोषितः ॥ १२ ॥ महार्हवस्त्राभरणैरलंचक्रुःसुमध्यमाम् ॥ ततोवानरपत्नीनांसर्वासामेवशोभना ॥ १३ ॥ अकारयतकौसल्याप्रहृष्टापुत्रवत्सला ॥ ततःस्यंदनमादायशत्रुघ्नवचनात्सुधीः ॥ १४ ॥ सुमंत्रःसूर्यसंकाशंयोजयित्वाग्रतःस्थितः ॥ आरुरोहरथंरामःसत्यधर्मपरायणः ॥ १५ ॥

किया, विविध फूलोंकी माला पहरीं, अनुलेपन लगाया, महामोलके वस्त्र पहरे, इस समय वह राममूर्ति कांतिमान् होकर अतिशय उज्ज्वल दिखाई देने लगी ॥ ११ ॥ रामजीका अंगोद्वर्तन—(अंगमें सुगंधि द्रव्य मलकर रगड़ना) इत्यादि संस्कार लक्ष्मणजीने व महाबुद्धिमान् भरतजीने कराया । और सीताका, राजपत्नियोंने कराया ॥ १२ ॥ सीताजी स्वभावसेही सुन्दर (सिंहकटी) थीं उनको बड़े मोलके वस्त्राभूषण पहरायकर विशेष शोभायमान किया । कौशल्याजीका स्वभाव बड़ा उत्तमथा । पुत्रपर प्रेम होनेसे इस उत्सवमें महाआनंद प्राप्त हुआ । उन्होंने अपने हाथसे वानरोंकी सब स्त्रियोंको स्नान कराया ॥ १३ ॥ इसके उपरांत शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे श्रेष्ठ बुद्धिमान् सुमंत्र एक सूर्यके समान तेजःपुंजसम रथ जोड़कर

लेआया । और रामचंद्रजीके आगे खड़ा रहा, सत्यधर्माचरणमें तत्पर श्रीरामचंद्रजी उस रथमें बैठे ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुग्रीव युवराज (अंगद) हनुमान्, विभीषण, सब जने स्नान कर उत्तम वस्त्र पहर, दिव्य आभूषणोंसे शरीरको शोभायमान करके तैयार थे ॥ १६ ॥ रथोंमें, घोड़ोंपर, हाथियों पर बैठकर कोई रामचंद्रजीके आगे और कोई पीछे चलने लगे, सुग्रीवकी स्त्री और सीताजी पालखीमें बैठकर विस्तीर्ण राजधानीकी ओर चलीं ॥१७॥ इन्द्रजी हरितवर्ण घोड़े जुते हुए रथमें बैठकर देवताओंके साथ चले, वैसेही रामचंद्रजी रथमें बैठकर अपनी विशाल राजधानीको चले ॥ १८ ॥ भरतजीने सारथिका कार्य अंगीकार किया, महातेजस्वी शत्रुघ्नजीने शुभ्र छत्र धारण किया, लक्ष्मणजीने पंखा लिया, निकटही खड़े हुए शत्रुओंको

सुग्रीवोयुवराजश्चहनुमांश्चविभीषणः ॥ स्नात्वादिव्यांबरधरादिव्याभरणभूषिताः ॥ १६ ॥ राममन्वीयुरग्रेचरथाश्वगजवाहनाः ॥ सुग्रीवप त्न्यःसीताचययुर्यानैःपुरंमहत् ॥ १७ ॥ वज्रपाणिर्यथादेवैर्हरिताश्वरथेस्थितः ॥ प्रययौरथमास्थायतथारामोमहत्पुरम् ॥ १८ ॥ सारथ्यं भरतश्चक्रेरत्नदंडंमहाद्युतिः ॥ श्वेतातपत्रंशत्रुघ्नोलक्ष्मणोव्यजनंदधे ॥ १९ ॥ चामरंचसमीपस्थोन्यवीजयदरिंदमः ॥ शशिप्रकाशंत्वपरं जग्राहासुरनायकः ॥ २० ॥ दिविजैःसिद्धसंघैश्चऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः ॥ स्तूयमानस्यरामस्यशुश्रुवेमधुरध्वनिः ॥ २१ ॥ मानुषंरूपमा स्थायवानरागजवाहनाः ॥ भेरीशंखनिनादैश्चमृदंगपणवानकैः ॥ २२ ॥ प्रययौराघवश्रेष्ठस्तांपुरींसमलंकृताम् ॥ ददृशुस्तेसमायांतंराघ वंपुरवासिनः ॥२३॥ दूर्वादलश्यामतनुंमहार्हकिरीटरत्नाभरणाचितांगम् ॥ आरक्तकंजायतलोचनांतंदृष्ट्वाययुर्मोदमतीवपुण्याः ॥२४॥

जर्जर करनेवाले सुग्रीवजी एक चँवर लेकर बयार करने लगे । राक्षसोंके राजा विभीषणने दूसरा चँवर लिया । छत्र, पंखा, व चँवरोंकी डंडियां रत्नजटित थीं, और चँवर चंद्रमाके समान शुभ्र व तेजस्वी दिखाई देते थे, देवता सिद्धोंका समुदाय और जिनका दर्शन अपूर्व पुण्यकारक समझा जाता है, वे ऋषि रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे । जिधर तिधरसे स्तुतिकी मधुर वाणी कानोंमें सुनाई आने लगी ॥ १९ ॥२०॥२१॥ वानरलोग मनुष्योंके समान रूप बनायकर हाथियोंपर सवार हुए और नगारे, शंख, बजाते, मृदंग ढोल, आदि बाजोंको खटकाते हुए चले ॥ २२ ॥ इस धूमधामसे श्रीरामचंद्रजी अपने सजे हुए नगरमें जाय पहुंचे । मार्गमें चलती हुई राममूर्तिको नगरवासियोंने देखा ॥ २३ ॥ उनकी अंगकी कांति दूबके नालोंके समान

श्यामल थी, उनके मस्तकपर महामोलका मुकुट और सर्व शरीरपर उत्तम रत्नोंके गहने विराजमानथे; उनके नेत्रप्रान्त किंचित् रक्तवर्ण और कमलके समान बडेथे; इस प्रकार रामरूपको देखकर अयोध्याके लोगोंको परमानंद हुआ; वास्तवमें वे अत्यन्त पुण्यवान्थे ॥ २४ ॥ रामचंद्रजी अत्युत्तम पीताम्बर पहर रहेथे तिनपर चित्रविचित्र रत्नोंसे खचित कमरपट्टा पडाथा । उनका वक्षःस्थल विशाल व पुष्ट था । कंठमें महामोलके मोतियोंके हार पडनेसे बहुत शोभा हो रहीथी, सुग्रीवादि धीर शांत स्वभावके वानर उनकी सेवा कररहेथे उनका तेज सूर्यके समान दिखाई देताथा; उनके अंगमें कस्तूरीसे मिले हुए चंदनका उबटन लग रहाथा; कंठमें कल्पवृक्षके फूलोंकी माला लंबमानथी । इस प्रकारकी राममूर्तिको प्रजाने देखा ॥ २५ ॥ २६ ॥ रामचंद्रजीकी सवारीके मार्गमें आनेका समाचार सुनतेही महानंद प्राप्त होनेसे अयोध्याकी

विचित्ररत्नांचितसूत्रनद्धपीतांबरंपीनभुजांतरालम् ॥ अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैर्विरोचमानंरघुनंदनंप्रजाः ॥ २५ ॥ सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशांतैर्निषेव्यमाणंरवितुल्यभासम् ॥ कस्तूरिकाचंदनालिप्तगात्रंनिवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वास्त्रियोराममुपागतंमुदाप्रहर्षवेगोत्कलिताननाश्रियः ॥ अपास्यसर्वंगृहकार्यमाहितंहर्म्याणिचैवारुरुहुःस्वलंकृताः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाहरिंसर्वदृगुत्सवाकृतिंपुष्पैःकिरंत्यः स्मितशोभिताननाः ॥ दृग्भिःपुनर्नेत्रमनोरसायनंस्वानंदमूर्तिंमनसाभिरेभिरे ॥ २८ ॥ रामःस्मितस्निग्धदृशाप्रजास्तथापश्यन्प्रजानाथइवापरःप्रभुः ॥ शनैर्जगामाथपितुःस्वलंकृतंगृहंमहेंद्रालयसन्निभंहरिः ॥ २९ ॥

स्त्रियोंके मुखपर अतिशय दमक आई । वे हाथ आये घरके काम ज्योंके त्यों छोड़कर भरभराय भूषणोंको डालडूल रामचंद्रजीके देखनेको हवेलियोंके ऊपर चढीं ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीका आकार सबकी दृष्टिको आनंद देनेवालाथा; उनको देखतेही स्त्रियोंके मुख विकसित व सुन्दर दिखाई देने लगे । आनंदमूर्ति रामचंद्रजी दर्शन करनेवालेके नेत्र व मनके प्रेम करने योग्य विषय हैं । स्त्रियोंने उनपर फूल वर्षाये; नेत्रोंकेद्वारा उनका रूप भलीभाँतिसे देखा और मनसे उनको भेंटा ॥ २८ ॥ इधर प्रभु भक्तसंकटनाशन रामचंद्रजीभी हास्ययुक्त व प्रेमकी दृष्टिसे प्रजाजनोंको देखते हुए हौले २ पिताजीके मंदिरके निकट जाय पहुँचे । इससमय रामचंद्रजी लोगोंको सबके पितामह दूसरे ब्रह्माजीके समान जानपड़े (दादा अपने

पोतेको जिस दृष्टिसे देखता है; तैसेही प्रेमकी दृष्टिसे रामचंद्रजी प्रजाको देखतेथे) इस उत्सवके प्रसंगसे राजभवन इन्द्रभुवनके समान सजाया गया था ॥ २९ ॥ वह रघुकुलदीपक रामचंद्रजीके राजमंदिरमें प्रवेश करनेपर एक भीतरके गृहमें उतरे। तहांपर उन्होंने आनंदित होकर प्रथम अपनी माताके चरणोंकी वंदना की, और फिर सीताने सब स्त्रियोंको क्रमानुसार भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ३० ॥ फिर सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजीने भरतजीसे कहाः—" हे भरत ! सर्व संपत्तिसे भरा हुआ मेरा उत्तम मंदिर ॥ ३१ ॥ मेरे मित्र वानरोंके राजा सुग्रीवको रहनेके लिये दो और दूसरे घरोंमें विभीषणादि वानरोंको—जहांपर सर्व प्रकारसे आराम हो उतारो। " ॥ ३२ ॥ रामचंद्रजीकी आज्ञा पायकर भरतजीने उसके अनुसार

प्रविश्यवेश्मांतरसंस्थितोमुदारामोववंदेचरणौस्वमातुः ॥ क्रमेणसर्वाःपितृयोषितःप्रभुर्ननामभक्त्यारघुवंशकेतुः ॥३०॥ ततोभरतमाहेदं रामःसत्यपराक्रमः ॥ सर्वसंपत्समायुक्तंममंदिरसुत्तमम् ॥३१॥ मित्रायवानरेंद्रायसुग्रीवायप्रदीयताम् ॥ सर्वेभ्यःसुखवासार्थमंदिराणि प्रकल्पय ॥३२॥ रामेणैवंसमादिष्टोभरतश्चतथाकरोत् ॥ उवाचचमहातेजाःसुग्रीवंराघवानुजः ॥३३॥ राघवस्याभिषेकार्थंचतुःसिंधुजलं शुभम् ॥ आनेतुंप्रेषयस्वाशुदूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥ प्रेषयामाससुग्रीवोजांबवंतंमरुत्सुतम् ॥ अंगदंचसुषेणंचतेगत्वावायुवेगतः ॥ ॥३५॥ जलपूर्णान्छातकुंभकलशांश्चसमानयन् ॥ आनीतंतीर्थसलिलंशत्रुघ्नोमंत्रिभिःसह ॥३६॥ राघवस्याभिषेकार्थंवसिष्ठायन्यवेदय त् ॥ ततस्तुप्रयतोवृद्धोवसिष्ठोब्राह्मणैःसह ॥३७॥ रामंरत्नमयेपीठेससीतंसंन्यवेशयत् ॥ वसिष्ठोवामदेवश्चजाबालिर्गौतमस्तथा ॥३८॥

कार्य किया। इसके उपरान्त महातेजस्वी वह रामजीके छोटे भ्राता सुग्रीवसे बोले॥३३॥ " हे राजन् ! रामचंद्रजीके अभिषेकको चार समुद्रोंका पवित्र जल मँगवाना चाहिये; तुम्हारे दूत शीघ्र जानेवाले हैं, उनको शीघ्र इस कार्यके लिये भेजदो। " ॥३४॥ सुग्रीवजीने शीघ्रही जांबवान्, हनुमान् अंगद और सुषेण इन चारोंको पठाया ! वह वीर पवनके समान वेगसे जायकर ॥ ३५ ॥ जलसे भरे हुए सुवर्णके कलश ले आये। तीर्थोंका जल आजानेपर मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजीने ॥ ३६ ॥ उन रामचंद्रजीका अभिषेक करनेकें लिये वसिष्ठमुनिसे कहा। वसिष्ठमुनि वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, व आचरणसे पवित्रथे उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको बुलायकर उनकी सहायतासे ॥ ३७ ॥ सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजीको रत्नसिंहासनपर बैठाया

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम ॥ ३८ ॥ और वाल्मीकि इन सबने मिलकर परमानंदसे कुश तुलसीके मिलेहुए पवित्र और सुगंधित जलसे रामचंद्रजीका अभिषेक किया ॥ ३९ ॥ जैसे वसु इन्द्रका अभिषेक करते हैं वैसेही उन ऋषिलोगोंने ऋत्विज, उत्तम ब्राह्मण, कन्या, मंत्रिगण, आकाशमें खड़े हुए देवता व पार्षदोंके साथ स्तुति करते हुए चार लोकपालोंके साथ सर्व औषधियोंके रससे रामचंद्रजीका अभिषेक किया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ शत्रुघ्नजीने रामचंद्रजीके मस्तकपर शुभ छत्र धारण किया । सुग्रीव और विभीषण दोनोंजने स्वच्छ चमरसे बयार करते खड़े रहे ॥ ४२ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे पवनने रामचंद्रजीको सुवर्णकी एक माला दी । स्वयं इन्द्रने राजा (राम) को भक्तिपूर्वक सर्व जातिके रत्नोंसे गूँथा हुआ, व सुवर्णसे शोभा

वाल्मीकिश्चतथाचक्रुःसर्वेरामाभिषेचनम् ॥ कुशाग्रतुलसीयुक्तपुण्यगंधजलैर्मुदा ॥ ३९ ॥ अभ्यषिंचन्रघुश्रेष्ठंवासवंवसवोयथा ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैःश्रेष्ठैःकन्याभिःसहमंत्रिभिः ॥४०॥ सर्वौषधीरसैश्चैवदैवतैर्नभसिस्थितैः ॥ चतुर्भिर्लोकपालैश्चस्तुवद्भिःसगणैस्तथा ॥४१॥ छत्रंचतस्यजग्राहशत्रुघ्नःपांडुरंशुभम् ॥ सुग्रीवराक्षसेंद्रौतौदधतुःश्वेतचामरे ॥ ४२ ॥ मालांचकांचनींवायुर्ददौवासवचोदितः ॥ सर्वरत्नसमायुक्तंमणिकांचनभूषितम् ॥ ४३ ॥ ददौहारंनरेंद्रायस्वयंशक्रस्तुभक्तितः ॥ प्रजगुर्देवगंधर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ देवदुंदुभयोनेदुः पुष्पवृष्टिःपपातखात् ॥ नवदूर्वादलश्यामंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४५ ॥ रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेनविराजितम् ॥ कोटिकंदर्पलावण्यंपीतांबरसमावृतम् ॥ ४६ ॥ दिव्याभरणसंपन्नंदिव्यचंदनलेपनम् ॥ अयुतादित्यसंकाशंद्विभुजंरघुनंदनम् ॥ ४७ ॥

यमान एक हीरोंका हार दिया । देवलोकमें गंधर्व गाने लगे । अप्सराओंके झुंडने नाचना आरंभ किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ देवताओंके नगाड़े बजे । आकाशमेंसे फूलोंकी वर्षा होनेलगी, श्रीरामचंद्रजीका शरीर नये दूर्वांकुरके समान साँवराथा, नेत्र कमलदलके समान लंबे दिखाई देतेथे ॥ ४५ ॥ मस्तकपर कोटि सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट धारण करनेसे वे अत्यन्त शोभायमान होरहेथे; उनकी सुन्दरताई कामदेवकी सुन्दरताईसे करोड़ गुण अधिक थी; उन्होंने पीताम्बर पहर रक्खाथा ॥ ४६ ॥ अंगपर सर्वत्र दिव्य अलंकार पहरे व दिव्य चंदनका उबटन लगाये हुए वह रघुकुमार दशसहस्र सूर्यके समान तेज पुंज दीखतेथे; उनका आकार महाविष्णुजीके समान था; भेद केवल इतनाही कि—इनके केवल दो भुजाएँ थीं ॥ ४७ ॥

इनके दाईं ओर सीताजी बैठीथीं उनके अंगकी कांति सुवर्णके समान थी; वह अपने शरीरपर सर्व गहने पहने रामचंद्रजीके वामभागमें बैठीथीं ॥ ४८ ॥ उन्होंने अपने कमलके समान हाथमें एक लालकमल ले रक्खाथा; रामचंद्रजी उनको दायें हाथसे आलिंगनकर बैठे हुएथे । इसप्रकार संसारमें सबसे अत्यन्त शोभायमान रामचंद्रजी दिखलाई देतेथे । पार्वतीजीके सहित महादेवजीके मनमें उनकी पूर्ण भक्ति नित्य रहती है । इससमयका रूप देख महादेवजीको स्तुति करनेकी उत्सुकता जान पडने लगी । इसकारण वे देव (महादेव) सब देवताओंको साथ ले रामचंद्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ महादेवजी बोले;—नीलकमलके समान श्याम, कोमल मुकुट, हार और बाजूबंदादि भूषणोंके धारण करनेवाले सिंहासनके ऊपर बैठे हुए महाकांतिवाले सीतारूप शक्तिके साथ विराजमान श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार हो ॥ ५१ ॥ आप आदि, मध्य और

वामभागेसमासीनांसीतांकांचनसन्निभाम् ॥ सर्वाभरणसंपन्नांवामांकेसमुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥ रक्तोत्पलकरांभोजांवामेनालिंग्यसं स्थितम् ॥ सर्वातिशयशोभाढ्यंदृष्ट्वाभक्तिसमन्वितः ॥ ४९ ॥ उमयासहितोदेवःशंकरोरघुनंदनम् ॥ सर्वदेवगणैर्युक्तःस्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ ५० ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ नमोऽस्तुरामायसशक्तिकायनीलोत्पलश्यामलकोमलाय ॥ किरीटहारांगदभूषणायसिंहासनस्थायमहा प्रभाय ॥ ५१ ॥ त्वमादिमध्यांतविहीनएकःसृजस्यवस्यत्सिचलोकजातम् ॥ स्वमाययातेननलिप्यसेत्वंयत्स्वेसुखेऽजस्ररतोऽनवद्यः ॥ ५२ ॥ लीलांविधत्सेगुणसंवृतस्त्वंप्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ॥ नानावतारैःसुरमानुषाद्यैःप्रतीयसेज्ञानिभिरेवनित्यम् ॥ ५३ ॥स्वांशे नलोकंसकलंविधायतंबिभर्षिचत्वंतदधःफणीश्वरः ॥ उपर्यथोभान्वनिलोडुपौषधीप्रवर्षरूपोऽवसिनैकधाजगत् ॥ ५४ ॥

अंत रहित हैं, एक हैं परन्तु अपनी मायासे आप संसारको उत्पन्न करते हो और उसका संहार करतेहो, उसमें लिप्त नहीं होते । अर्थात इस जगतके वध करनेसे आपको वधादिका दोष नहीं लगता; कारण कि दोषरहित आप निरन्तर आत्मसुखमें मग्न रहतेहो ॥ ५२ ॥ आप अपनी शरणमें आये हुए भक्तोंको मोक्ष देनेके लिये गुणोंसे आवृत होकर देव मनुष्य इत्यादि अनेक अवतार धारण करके लीला करते हो (आपके अवतार लेनेका कारण यही है कि, अवतारचरित्र गायकर व सुनकर भक्तोंके पाप क्षीण होजावें तिससे उन्हें मोक्ष मिले) आपका यथार्थ रूप (ईश्वर होना) केवल ज्ञानी लोग जानते हैं—इतर (अज्ञानी) लोग आपको साधारण मनुष्य समझते हैं ॥ ५३ ॥ आपने प्रथम अपने

रूपके एक अंशसे यह सारा संसार उत्पन्न किया। वैसेही सूर्य, पवन, चंद्र, औषधि (धान्य), मेघ इन सबका रूप धारण करके अनेक प्रकारसे संसारकी रक्षा करते हो ॥ ५४ ॥ आप अग्निरूप होकर जगत्में प्राणियोंका खाया हुआ अन्न निरन्तर पचाते हो। जठराग्निका पचनकारी कार्य पंच प्राणरूपी प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान वायुकी सहायतासे होता है आप अपने अखंड संतत रूपसे जगत् का पालन करते हो ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! चन्द्रमामें, सूर्यमें व अग्निमें जो तेज है; सर्व प्राणियोंमें जो चैतन्यांश है; और जीवोंका धैर्य, शौर्य, आयुष्य जो कुछ है वह सर्व आपकी सत्ता है (यह सब आपके रूपसे उत्पन्न होते हैं) ॥ ५६ ॥ लोगोंको तुम्हारे रूपके ब्रह्मदेव, शिव, विष्णु, यह भेद, व काल, कर्म, चंद्र, सूर्य, महावि

त्वमिहदेहभृतांशिखिरूपःपचासिभुक्तमशेषमजस्रम् ॥ पवनपंचकरूपसहायोजगदखंडमनेनविभर्षि ॥ ९५ ॥ चंद्रसूर्यशिखिमध्यगतंयत्तेजईशचिदशेषतनूनाम् ॥ प्राभवत्तनुभृतामिहधैर्यशौर्यमायुरखिलंतवसत्त्वम् ॥ ९६ ॥ त्वंविरिंचिशिवविष्णुविभेदात्कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ॥ वादिनांपृथगिवेशविभासिब्रह्मनिश्चितमनन्यदिहैकम् ॥ ९७ ॥ मत्स्यादिरूपेणयथात्वमेकःश्रुतौपुराणेषुचलोकसिद्धः ॥ तथैवसर्वंसदसद्विभागस्त्वमेवनान्यद्भवतोविभाति ॥९८ ॥ यद्यत्समुत्पन्नमनंतसृष्टावुत्पत्स्यतेयच्चभवच्चयच्च ॥ नदृश्यतेस्थावरजंगमादौत्वयाविनातःपरतःपरस्त्वम् ॥ ९९ ॥

भाग दिखलाई देते हैं—वे इनमेंसे किसी एक रूपकी उपासना करते हैं; उनको अपना आराध्य रूपही परमश्रेष्ठ लगताहै, शेषरूप उनसे भिन्न है; ऐसा भास होताहै, इसकारण वे दूसरे रूपकी आराधना करनेवाली संप्रदायके लोगोंसे वाद करने लगते हैं। परन्तु परमेश्वर ! वास्तवमें आप परब्रह्मरूप हैं; ब्रह्मदेवादि आपसे भिन्न नहीं हैं, यही सिद्धान्त है ॥ ५७ ॥ मत्स्यादिरूप ग्रहण करनेसे आप श्रुति और पुराणोंमें प्रसिद्ध हो। वैसेही सद्रूप ब्रह्म और उनसे पृथक् असत् विश्व, यह विभाग आपहीके हैं, आपके सिवाय कुछभी नहीं है ॥ ५८ ॥ अपार सृष्टिमें जो कुछ उत्पन्न हुआ

१ भगवान्ने गीतामें कहाहै कि " अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ " अर्थ मैं वैश्वानर (अग्नि) होकर प्राणियोंकी देहमें रहताहूं और प्राण अपानादि पांच प्राणमय होकर प्राणियों करके खाया हुआ चार प्रकारका अन्न पचा देताहूं ॥

था, उत्पन्न होता है; और जो कुछ उत्पन्न होगा, यह सब आप हो आपके शिवाय स्थावर (स्थिर रहनेवाला) और जंगम (चलनेवाला) रूप इस जगत्‌में दूसरा कोई दिखाई नहीं देता; इसकारण आप सर्वमें उत्तम ऐसे ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ हो। सर्व मनुष्य आप परमात्माकी मायासे घिरे रहनेके कारण आपकी महिमाको नहीं जान सक्ते हैं; और तुम्हारे भक्तोंकी सेवासे निर्मल मनवाले मनुष्य आपको ईश्वरीय तत्त्वसे जानते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ब्रह्मादि देवताओंकाभी चित्त बाह्य विषयोंमें ही लगा रहताहै इसलिये उनको आपके ज्ञानमय आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता; फिर साधारण लोगोंकी तो वार्ताही क्या है ? इसकारण जब अज्ञानी (ज्ञान पानेको असमर्थ) जीव, ज्ञानप्राप्तिकी खटपटमें न पड़के तुम्हारे इस रूपका भजन करते हैं, तो उनके दुःख नाश होजाते हैं, व उनको मुक्ति मिलती है ॥ ६१ ॥ मैं तुम्हारे नामका जप करताहूं, व तिससे ही कृतार्थता मानकर पार्वतीके

तत्त्वंनजानंतिपरात्मनस्तेजनाःसमस्तास्तवमाययाऽतः ॥ त्वद्भक्तसेवामलमानसानांविभांतितत्त्वंपरमेकमैशम् ॥ ६० ॥ ब्रह्मादयस्ते नविदुःस्वरूपंचिदात्मतत्त्वंबहिरर्थभावाः ॥ ततोऽबुधस्त्वामिदमेवरूपंभक्त्याभजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः ॥ ६१ ॥ अहंभवन्नामगृणन्कृतार्थोवसामिकाश्यामनिशंभवान्या ॥ मुमूर्षमाणस्यविमुक्तयेऽहंदिशामिमंत्रंतवरामनाम ॥ ६२ ॥ इमंस्तवंनित्यमनन्यभक्त्याशृण्वंति गायंतिलिखंतियेवै ॥ तेसर्वसौख्यंपरमंचलब्ध्वाभवत्पदंयांतुभवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥ इंद्रउवाच ॥ रक्षोऽधिपेनाखिलदेवसौख्यंहृतंचमे ब्रह्मवरेणदेव ॥ पुनश्चसर्वंभवतःप्रसादात्प्राप्तंहतोराक्षसदुष्टशत्रुः ॥ ६४ ॥

साथ काशीक्षेत्रमें निरन्तर रहताहूं। हे राम ! यह तो मेरा व्रतही है—जो प्राणी उस क्षेत्रमें मरणोन्मुख हुआ उसको मोक्ष प्राप्त होनेके लिये मैं तुम्हारे रामनामका उपदेश देताहूं ॥ ६२ ॥ हे राम ! मुझे यह वर दो कि, जो मनुष्य मेरा किया हुआ यह स्तोत्र नित्य एकाग्र भक्तिसे सुने, गावे या लिखें, उनपर आपकी कृपा हो, उनको परमावधिके परम सुख मिलें और अंतमें तुम्हारे पदको प्राप्त हों" ॥ ६३ ॥ इन्द्र बोला;—" हे देव ! उस राक्षसपति (रावण) को ब्रह्माजीसे वर मिलाथा और उस वरके अहंकारसे उसने मेरे देवताओंके राज्यका सब सुख हरणकर लियाथा। परन्तु अब आपने उस राक्षसरूपी दुष्ट शत्रुका वध किया; इसकारण अब आपकी कृपासे फिरभी वे सुख मुझको मिले " ॥

छंद शिखा। मृदु, पदु पदुम मदुम, महिझन मन अलि अलि रहि रमि २ है। चष चल चलनि, करति बर बस बस, सुबय बयन, अमि २ है। अतिमद मदन, मदन मरदन सर सर सत रस पातितन है। जय जय जपत, विबुध बुध छन छन, मम पति पति त्रिभुवन है ॥६४॥ देवता लोग बोले "हे विष्णो! हे मुरारे! जो दूसरे जन्ममें हिरण्यकशिपु था, वही खल राक्षस हमारेलिये ब्राह्मणोंके दिये हुए यज्ञभागोंको हरण करलेताथा अब आपने उसको मारडाला। अब आपके प्रसादसे बहुत पहलेके समान फिर वह यज्ञभाग हमारे होंगे।" कवित्त। आपको सुयश दश दिशानि अनूप छायो, श्वेत दिकपाल भये चीन्हे ते कोऊ न जात ॥ डंकनिके शवद सशंकि सुनि बंकशत्रु, दरके दिलन नेक वदन कढै न बात ॥ परमप्रताप पुंज झारहीसों झारे सारे खर खल वृन्द नाहिं एकऊ कहूं देखात ॥ होतो जोन विश्वनाथ भूपति गजानदान, जलकी सरित सिंधु वाड़वाग्निसों सुखात ॥ ६५ ॥

देवाऊचुः ॥ हृतायज्ञभागाधरादेवदत्तामुरारेखलेनादिदैत्येनविष्णो ॥ हतोऽद्यत्वयानोवितानेषुभागाःपुरावद्भविष्यंतियुष्मत्प्रसादात् ॥ ॥ ६५ ॥ पितरऊचुः ॥ हतोऽद्यत्वयादुष्टदैत्योमहात्मन्गयादौनरैर्दत्तपिंडादिकान्नः ॥ बलादत्तिहत्वागृहीत्वासमस्तानिदानींपुनर्लब्धसत्त्वाभवामः ॥ ६६ ॥ यक्षाऊचुः ॥ सदाविष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्तावहामोदशास्यंबलाद्दुःखयुक्ताः ॥ दुरात्माहतोरावणोराघवेशत्वयातेवयंदुःखजाताद्विमुक्ताः ॥ ६७ ॥

पितृगण बोले—"हे महात्मन्! मनुष्यलोग गयादि क्षेत्रोंमें पिण्डादि दान करते तो वह दुष्ट दैत्य हमको मारपीटकर उन सबको भोजनकर जाता अब आपने उसका वध कियाहै इस समय हम फिर हृष्ट पुष्ट होजाँयगे"॥ प्रबन्धः। जय २ रघुनंदन करुणां कुरु हे। ताड़कातनुभंजन खलदल गंजन हे पिनाकखंडन जनरंजन हे सीता बिवहन सुभाव गाहनहे। सौशील्यौदार्यादिकुलभाजन हे। यक्षगण बोले—॥ ६६ ॥ "हे राघव! ईश्वर! इस रावणने बलपूर्वक हम लोगोंको अवैतनिक[1] दासपनमें लगा रक्खाथा। दुःखितचित्तसे हमलोग उसको धारण करतेथे; आपने उसही दुरात्मा रावणका वध कियाहै हम इस समय दुःखजालसे छूटगये" ॥ जमकपद। अधन धनद धर धरम परम प्रभु, प्रभुज ईश हित हितके ॥ मोहन मोहन सन सन मुखकारि,

---

[1] रावण ने भी अपने यहां अवैतनिक (आधुनिक आनररी Honorary Magistrate) का महकमा कर रक्खाथा, परन्तु तिस कालमें लोग इस पदको धिक्कारतेथे। परन्तु आज कल तो यह पद प्राप्त करनेके लिये शहदपर मक्खीके समान लोग गिरतेहैं।

रंजन जन सो कितके ॥ अलक कलप तरु, तरुण तरणि सम शमन पाप तम आतिके ॥ भव भवपालन हर हर्षितकर विश्वनाथ मति मतिके ॥ ६७ ॥ गन्धर्वगण बोले । "हे राम ! संगीत कलामें निपुण हम पहले अमृतरूपी कीर्तिका गान करते आनंदामृतमें मग्न होकर कृतकृत्य रहते थे ॥ ६८ ॥ हे राम ! फिर इस दुष्ट रावणने हमको बलात्कारसे अपने अधीन कर लिया तब हम निरुपाय होगये—अनन्तर हम उसकाही गुण गाने लगे, और उसकीही सेवामें तत्पर रहे ॥ ६९ ॥ हे देव ! अब आपने उस दुष्ट राक्षसको मारकर हमको संकटसे छुटाया ॥ (रे रे [1] सनि रे रे सनिसा निन्निपप्पप्पम गरेसामम्ममम्म प्पप्प धप धध निध धपाथो दिग दिग दिगथी तक तक तक थुंत कथुं ठग नंग नंग नंग, नंग नंग नंग नंग तंग तथुन्न थैया । " फिर एक २ अप्सराने आनकर गाना प्रारंभ किया । प्रफुल्ल अप्सरा श्रीरामचंद्रजीके वंदन करके गाने लगी । ' याके शीश चुभतसी नैनन । सकुचति चलति मंजु मुख मोरति उर अति प्रेम खुलत कछु वैनन । कौनेहूँ पति अपकार गनत नाहिं पग परि परि आपुहि समुझावे । विश्वनाथ प्रभु समुझन लायक यह सुकियाको अनुपम भावे ' ॥ १ ॥ मेनका अप्सरा गाने लगी—' अब मैं क्योंकर खेलन जैहौं । काहूके कर यह न समै है, कैसे नैन मुंदै हौं । भयो कहा बाढ्यो तनु सौरभ छिपेहुँ सखिन बोलावै । विश्वनाथ अज्ञात यौवनाकी यह कला दिखावै' ॥ २ ॥ रंभा बडे हावभावसे गाने लगी—अब उर अंचल मूंदन लागी । करि शृंगार आरसी निहारति तजि ख्यालनयौवन रसपागी ॥ निरखत निज अंग अंगली नाई, आपुहिं रीझ जाति मुसक्याई ॥ विश्वनाथ यह नृत्य करति है ज्ञातयौवना चरित देखाई ॥ ३ ॥ मंजुघोषा बोली—यह तो झझकति तकि परछाहीं । समुझायहुँ समुझति नहिं केहूँ मुरि बैठति वारि नाहीं । चलुघर कहति रुदति नाहिं जैहौं कहि कहि पाणि डोलावै । विश्वनाथ यह प्रकट करति है ललित नवोढा भावै ॥ ४ ॥ तिलोत्तमाने कहा—वैरिनभई निगोडी लाज । उर अकुतई न लखन देति प्रिय वीर परै यहि ऊपर गाज ॥ यों कहि फेरति अंगुरिक पोलन घूंघटकारि चलि आवै आज ॥ मुरिचित बतियाको मध्यापन लखिये विश्वनाथ महाराज ॥ ५ ॥ घृताचीने गान आरंभ किया—शशि मुख लैलै कमल

गंधर्वाऊचुः॥वयंसंगीतनिपुणागायंतस्तेकथामृतम्॥आनंदामृतसंदोहयुक्ताः पूर्णाःस्थिताःपुरा ॥६८॥ पश्चाद्दुरात्मनारामरावणेनाभिविद्रुताः॥तमेवगायमानाश्चतद्राराधनतत्पराः॥६९॥स्थितास्त्वयापरित्राताहतोऽयंदुष्टराक्षसः॥एवंमहोरगाःसिद्धाःकिन्नरामरुतस्तथा॥७०॥

१ यहांसे आरम्भ करके आगे ३४ चौंतीस पद्यतक भाषाग्रंथ भाषाटीकासे बाहरका है.

लगावति । लीलहि प्यारेके श्रुवि मूंदति लालशिखाकी धुनिहि छिपावति । तनु सुंगध निजश्वास वायुते प्राप्त होयको यवन दबावति । विश्वनाथ जो सब निशि विहरे प्रौढ़ाकी यह कलनि लखावति ॥ ६ ॥ कलकंठिने यह रागिनी अलापी—आलस लखहुँ आपके गात ॥ मोहि दुख यहै सौंह भाईकी और नहीं कछु बात ॥ निज तनु श्रमहिं बचाय करिय जोइ सोइ मोहूंको भावै । विश्वनाथ करि नचति चातुरी प्रगटति वीरा भावै ॥ ७ ॥ आनंदलतिकाने झूम २ कर यह गाया—बोलि बोलाय कहींसो लायक ॥ जेहि गुन वसी वसी हियरे तुव, तितहि जाव तुम नायक ॥ अवगुण भरो होतताके ढिग बैठब उचित न होई ॥ नाचति भाव अधीराके विशुनाथ लीजिये ॥ ८ ॥ मदनमंजरी कहने लगी—गई यह आजु सौतिके साथ ॥ चोर मिहीचानि खेलि आंखि तेहि मूंदि लई पिय हाथ ॥ यक करसों याके कुच परस्यो, अपनी प्रीति जनाई ॥ नाचति ज्येष्ठ कनिष्ठा भावहि विश्वनाथ दरशाई ॥ ९ ॥ अनंगसुन्दरी बोली—लजत ताकि काय कोटि शतकाम ॥ मोको लाख कहै किन कोई है इनहींसो काम ॥ भार परो कुलकानि जाई अब लहिंहौं सुख उरलाय ॥ विश्वनाथ यह थरकि रही है ऊढ़ा भाव देखाय ॥ १० ॥ चंचलाक्षी गाने लगी—चलावति दूर ब्याहसों माई ॥ मुठि, सुन्दर झुलवन्त वैस सम; वसो परोस विहाई ॥ मेरे उर यह शोच बड़ो अलि कोउ न कहत समुझाई ॥ विश्वनाथ यह भाव अनूढ़ा प्रगटति नाचति भाई ॥ ११ ॥ चंद्रमुखी बोली—लेन जल पठयो बरसत माई ॥ पिछालि गिरी इन आन उठायो भले तहूं इत आई ॥ नातरु कहत औरकी औरे यह पुर लोग चवाई ॥ विश्वनाथ यह नाच रही है गुप्ताभाव बताई ॥ १२ ॥ शशिप्रभा कहने लगी—सून लखि छोरि वाछरु आई ॥ द्वारे बोल बतायो करसों निरखि नँनदिया धाई ॥ भीवर भौन निशंक लाल सँग करी आपनी भाई ॥ विश्वनाथ यह क्रिया विदग्धा भाव करति छबि छाई॥ १३ ॥ चंद्रकला बोली—तेरे मिलन हेतहीं आई ॥ अब तौ रैन अँधेरी छाई राखी बात लगाई ॥ पठै देहि निज पिय पहुँचावन मेरा हियो डराई ॥ विश्वनाथ यह वचन विदग्धा नचति भाव दरशाई ॥ १४ ॥ चंचला गाने लगीं—करन सुख कोउ नारि सखि जाने ॥ यह रस जान्यो मैकी बिजुरी जो बहु घन सँगठानै ॥ अब कहु काको त्रसहु सहर सब लिय निज वसहिं वसाई ॥ विश्वनाथ यह नाचति हर्षत कुलटा कलनि लखाई ॥ १५ ॥ शशिकला बोली—जननि कह पूजी भवानी आवै ॥ यहि अहीर संग अवहीं गमने वन डरमन नहिं ल्यावै ॥ सो सुनि अंग समाति न फूली चली थारकर लीन्हे ॥ विश्वनाथ यह नाचति मुदिता कोगुण प्रगटै कीन्हे ॥ १६ ॥ कलावति बोली—तनु सुवासि निज सूंघि सूंघति तै कहा आज सकुचाती ॥ होजानी

मोबात सखी मज्जनहूं नहिं जाती ॥ सुनि मुसक्याय नचाइ नेत्रदिय ताहू नैन नवाई ॥ विश्वनाथ यह नाचि लक्षिता भावरही दरशाई ॥ १७ ॥ विलासवती गाने लगी—कर परिदेश प्यारिहू लै संग कोउ परदेशी आयो ॥ सूनो अपन झराय आपनी रुचिर कपाट लगायो ॥ सो सुनि लेत उसांस बाल निज नैननि वारी बहावै ॥ विश्वनाथ अनुशयना भावहि नाचत प्रगट देखावै ॥ १८ ॥ चंद्रलेखा—छिगुनि छुवत बिछौनेपर छलछंद अनेक करै । कहँ मुसक्याति तनति कहुँ भौं हैं कहुँ तकि भयहि भरै । कहुँ रिसिकरति मिलन कहुँ चाहति बहुत सराहि हरै । विश्वनाथ लखिये नाचति यह गणिका भाव धरै ॥ १९ ॥ सुन्दरदन्तिका बोली—तो सम और हितूको होवै । सह्यो हमारे हित ज्येतो दुख जात वदन नहिं गोवै ॥ तनकंटक छंद स्वेदाहि बूड़ी अजहुँ श्वास अधिकाई । विश्वनाथ यह नचाति देखावति अन्य सुरति दुखिताई ॥ २० ॥ मुरलियाने रामचंद्रजीके चरण छूकर निवेदन किया;—ठढे बलैया ये लेत; पियते बोलै न सजनी । अबै न मेरा कह्यो करति है, रहैगी दोउ कर मींजि ॥ फिरतैं बीति गए रजनी ॥ ठाढ़े० ॥ जाके लखिबेको ललकतिती सौई हहा आगे खात; उठु लिलु टेढी समुझनी ॥ ठाढे० ॥ विश्वनाथ यह नाचति मानिनी भावन दरशाई बांकी भ्रुकुटि करि रिझनी ॥ ठाढे० ॥ २१ ॥ कनकसुन्दरी—पिय प्राण प्राण अपनो दोउ अलियेकै करि राखै । कहा करैंगी सवति सबै अब नहीं होत कछु माखै ॥ करत रहैं बैठी घरहीमें रिस जारै निजछाती ॥ विश्वनाथ यह प्रेम गर्विता नचत प्रेम रँगराती ॥ २२ ॥ अनुरागिनी—चलि मुसक्यात लखति परछाहीं ॥ अँगुरीसों तेहि हर्षि लखावति पिय गलकर निजवाहीं । सांच कहौं ऐसे कहूं दूजी नर सुरनारिन मांही ॥ विश्वनाथ यह नचति देखावति रूप गर्विता काहीं ॥ २३ ॥ रत्नकलाने गाया—सखिमें पति देवताको शासन कोनी भाँति नशाऊं । गुणभे अगुण नाकजिय आयो, निशदिन कल नहिं पाऊं ॥ विरच्यो विधिनहिं पियगुणभाजन केहि केहि काह पढाऊं । नाचति गुण गर्विताके भावन यह विशुनाथ अगाऊं ॥ २४ ॥ काममंजरी—तकत हरि अंगनमें पिय अरोपरि आई । चूरोगिरी मूंदरी चूरी कर पहिराई ॥ याकी श्वास लपट जनुजरि भे नभ घनकारे । विश्वनाथ यह नचति विरहिनी भावहि धारे ॥ २५ ॥ रूपमंजरी—कांपै परमप्रीति तुवलाल । हियते उमगि नैन मोइ लखियतु, छलक छींट कछु छाजतिभाल ॥ कज्जल मिसी कलंक कहँ धारयो मुखशशि समहिं बनायो । विश्वनाथ यह भाव खंडिता नाचत माहिं दिखायो ॥ २६ ॥ चित्रलेखा—मींजि २ कर क्यों पछिताई । जब प्यारो आपहिंते आयो हौं बहुविधि समुझाई ॥ तबतौ एक बात नहिं मानी करी आपनी भाई । विश्वनाथ यह नाचति कलहंतारिता भाव बताई

॥ २७ ॥ प्रभावती गाने लगी—करि शृंगार प्रीतम मिलिवेहित आजु सखी वन कुंजगई। मिल्यो न सो शशि उदय जानि रवि दुःखित भीत ह्वै भजत भई ॥ ज्यों त्यों करि पहुँची तुत्रढिगलौं होत वही जो लिखत दई। विश्वनाथ यह विप्रलब्धकी कलनि नचति अति मदन छई॥ २८ ॥ पद्मावती—यामिनी याम वितीत भईरी। प्रीतम नहीं आये घन आये ये करि हैं महि अंबु मईरी ॥ आवत विलम घरिक जो लागत तितही मिलनि गमनै मों प्रानै। विश्वनाथ यह नाचत भावत परगट उनका भावहि ठानै ॥ २९ ॥ कलहंसि—आजकहा साजि सकल शृँगारन रचति सेज निज हाथै। पुनि पुनि तकति पंथ हियरेमें नहिं समात सुख गाथै ॥ छनमें कढति छनहि गृह आवति लखियतु अति अकुताई। विश्वनाथ यह वासक शय्या नाचत भाव जनाई ॥ ॥ ३० ॥ चम्पकप्रभा-निशिदिन निरखत रुख ढिग भावै। सखियां काज करन नहीं पावैं आप करत सुख पावै ॥ प्रिय हियते न टटरत सेवकाई सौतिन मुख प्रियराई। विश्वनाथ स्वाधीन प्रियतमा नाचति अति छवि छाई ॥ ३१ ॥ लीलावती—प्रिय मिलिवे हित निरखि आरसी हर्षित सकल शृँगार सँवारी। करिकै मंद मसाल मयंकहि गमनी सुख मयंक उजियारी ॥ तेहि छन निज गयंद गति निन्दति पीय मिलनिकी अति अतुराई। विश्वनाथ

वसवोमुनयोगावोगुह्यकाश्चपतत्रिणः ॥ सप्रजापतयश्चैतेतथाचाप्सरसांगणाः ॥ ७१ ॥
सर्वेरामंसमासाद्यदृष्ट्वानेत्रमहोत्सवम् ॥ स्तुत्वापृथक्पृथक्सर्वेराघवेणाभिवंदिताः ॥ ७२ ॥

यह नाचति विलसत अभिसारिका भाव दरशाई ॥ ३२ ॥ अनंगसेना—चलति पिउ बाल जानि गद्गद उर थकित बानि कछु नहिं तहँ कहत बन्यो हिय शोकभीनी ॥ भीतर घर जाइ निजै जन्मकुंडली लखाई, अतिही विलखाय प्रिय आगे धरदीनी ॥ साहस करि कह्यौ रौन मोहिं बुझाइ करी गौन ज्योतिविंद लिखी जो न आय झूंठि साची। लखि ये विश्वनाथ नाथ रीझबूझ आय हाथ प्रेयसी प्रवासितपतिके भाव कलितनाची ॥ ३३ ॥ रसालमंजरी—छन आंगन छन चढति अटारी। छन कढिकै बाहर मग जोहति, रोकति नैननि शीतल वारी ॥ टूटत बन्द फटति अंगिया उर नहिं समात आनँद अति भारी। विश्वनाथ यह नचति नवेली आगत पतिका भावहि धारी ॥ ३४ ॥ इन सबको इनाम देकर श्रीरामचंद्रजीने बिदा किया;) इस प्रकारसे अप्सराओंका झुण्ड बडे २ सर्प, सिद्ध, किन्नर, मरुद्गण, ॥ ७० ॥ वसु; मुनि गाय, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति ॥ ७१॥ सब कोई रामचंद्रजीको भेंट नेत्रोंको परमानन्द देनेवाला उनका रूप देखते रहे। रामचंद्रजीने उनका बन्दन किया; फिर वे पृथक् २ प्रकारसे रामचंद्रजीकी स्तुति करके ॥ ७२ ॥

अपने २ लोकको गये। तैसेही ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि देवता आनंदसे श्रीरामचंद्रजीकी स्तुतिकर उनके चरित्र गाते गाते ॥ ७३ ॥ अपने लोकको गये, अभिषेक होनेसे श्रीरामचंद्रजीका शरीर भीग रहाथा उनके निकट सीता लक्ष्मणजीभी थे; वह राजाधिराज दीखते तो थे परन्तु वास्तवमें नित्य सबके हृदयमेंही रहते हैं वहाँपर आये हुए सर्व कोई रामचंद्रजीका मनमें ध्यान करते हुए लौटगये ॥ ७४ ॥ आकाशमें नगाडे बजने लगे; उनको सुनकर अंतःकरणमें प्रसन्न हुए स्तुति करते हुए देवसमूह करके और चारों ओरसे आकाशमें फूलोंकी वर्षा करनेवाले;मुनिजनोंके सेवा करने लायक

ययुःस्वंस्वंपदंसर्वेब्रह्मरुद्रादयस्तथा ॥ प्रशंसंतोमुदारामंगायंतस्तस्यचेष्टितम्॥७३॥ध्यायंतस्त्वभिषेकार्द्रंसीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ सिंहासनस्थंराजेंद्रंययुःसर्वेहृदिस्थितम् ॥ ७४ ॥ खेवाद्येषुध्वनत्सुप्रमुदितहृदयैर्देववृंदैःस्तुवद्भिर्वर्षद्भिःपुष्पवृष्टिंदिविमुनिनिकरैरीड्यमानंसमंतात् ॥ रामःश्यामःप्रसन्नस्मितरुचिरमुखःसूर्यकोटिप्रकाशःसीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहारिभिःसेव्यमानोविभाति॥७५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेपंचदशःसर्गः॥१५॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ रामेऽभिषिक्तेराजेंद्रेसर्वलोकसुखावहे ॥ वसुधासस्यसंपन्नाफलवंतोमहीरुहाः ॥ १ ॥ गंधहीनानिपुष्पाणिगंधवंतिचकाशिरे ॥ सहस्रशतमश्वानांधेनूनांचगवांतथा ॥ २ ॥ ददौशतवृषान्पूर्वंद्विजेभ्योरघुनंदनः ॥ त्रिंशत्कोटिसुवर्णस्यब्राह्मणेभ्योददौपुनः ॥ ३ ॥

सीता लक्ष्मण, हनुमान्, मुनि और वानरोंसे सेवित कोटि सूर्यके समान तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी शोभायमान हो रहे हैं ॥ ७५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे भाषाटीकायां पंचदशःसर्गः॥१५॥ रामचंद्रजीका सब सखाओंको बिदा करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि;—हे पार्वति! सब मनुष्योंको राजाधिराज रामचंद्रजी सुख देतेथे। जब उनका अभिषेक हुआ पृथ्वीपर बहुत धान्य होगया, फलोंसे वृक्ष भरगये ॥ १ ॥ गंधहीन पुष्पोंमें सुगंधि हुइ, वे शोभायमान हुए; सैंकडों हजारों घोडे, गाय और व्याई हुई गाय ॥ २ ॥ बैल प्रथम रामचंद्रजीने ब्राह्मणोंको दान दिये। फिर तीस करोड़

१ महादेवजीने अपने हृदयमें वह रूप देखकर वर्तमान कालके समान वर्णन किया अथवा श्रीरामचंद्रजीका यह रूप स्थायी है।

अशर्फियां ब्राह्मणोंको दीं ॥ ३ — वस्त्राभूषण, रत्न प्रसन्न होकर रामचंद्रजीने ब्राह्मणोंको दिये । सूर्यके समान कांतिवाले रत्नोंकरके जड़ित माला ॥ ४ ॥ प्रसन्न होकर व भक्तवत्सल श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको दी; अंगदजीको रघुनाथजीने एक दिव्य बाजूबंदका जोड़ा दिया ॥ ५ ॥ करोड चंद्रमाके समान प्रकाशमान मणि व रत्नोंसे विभूषित हार प्रसन्न होकर रघुकुलोत्तम श्रीरामचंद्रजीने सीताजीके गलेमें डाला ॥ ६ ॥ जानकीजीने वह हार अपने गलेसे निकालकर हाथमें लिया,—कुछ देर वह हारको देखती रहीं, फिर सारे वानरोंकी ओर देखा, और फिर अपने पतिके मुखकी ओर देखा—ऐसे दोतीनवार निहारा ॥ ७ ॥ रामचंद्रजी जानकीजीका अभिप्राय जानकर उनसे बोले,—" हे जानकी ! तुम्हारा मन यह हार देनेको किसे चाहता है ? हे सुन्दरी ! जिसपर तुम प्रसन्न हुई हो उसे यह हार हर्षसे देदो " ॥ ८ ॥ सीताने वह हार रामचंद्रजीके सन्मुख

वस्त्राभरणरत्नानिब्राह्मणेभ्योमुदातथा ॥ सूर्यकांतिसमप्रख्यांसर्वरत्नमयींस्रजम् ॥ ४ ॥ सुग्रीवायददौप्रीत्याराघवोभक्तवत्सलः ॥ अंगदायददौदिव्येह्यंगदेरघुनंदनः ॥ ५ ॥ चंद्रकोटिप्रतीकाशंमणिरत्नविभूषितम् ॥ सीतायैप्रददौहारंप्रीत्यारघुकुलोत्तमः ॥ ६ ॥ अवमुच्यात्मनःकंठाद्धारंजनकनंदिनी ॥अवैक्षतहरीन्सर्वान्भर्तारंचमुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ रामस्तामाहवैदेहीमिंगितज्ञोविलोकयन् ॥ वैदेहियस्यतुष्टासि देहितस्मैवरानने ॥ ८ ॥ हनूमतेददौहारंपश्यतोराघवस्यच ॥ तेनहारेणशुशुभेमारुतिर्गौरवेणच ॥ ९ ॥ रामोऽपिमारुतिंदृष्ट्वाकृतांजलिमुपास्थितम् ॥ भक्त्यापरमयातुष्टइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हनुमानजीको दिया; उस हारकी प्रभासे व सीताजीके सत्कार करनेसे हनुमानजीका मुख प्रसन्न होकर शोभायमान दिखाई देने लगा ॥ फिर हनुमानजी उस हारका एक २ मोती दांतोंसे फोड़कर पृथ्वीपर डालने लगे । यह देखकर सुग्रीवजी बोले कि,—हनुमान् ! इस हारको देखकर सबहीने वांछा कीथी, सो पायकर तुमनें उसकी मोती तोड़कर पृथ्वीपर डाल दिया । आखिर अपनी जात प्रगट कीना ! हनुमानजीने कहा इसमें रामनाम नहीं लिखा है; ' सुग्रीव बोले कि,—'तुम्हारा शरीर कब नामांकित है' यह सुनकर हनुमानजीने अपनी छातीकी खाल फाड़कर रामनाम दिखा दिया । पद—को कीरति कहसकै प्रेमके बामकी।खैंचिं त्वचा किय प्रगट निशानी नामकी ॥ तकि पवनजको कर्म ठगे कपि ईशहैं । विश्वनाथ मुनि साधु किये तर शीशहैं ॥ यह व्यापार देख आकाशसे " आश्चर्य है । आश्चर्य है " शब्दहोनेलगा॥ ९ ॥ हनुमानजीकी अत्यन्त भक्ति देख, रामचंद्रजी उनपर नित्य

संतुष्ट रहे । हनुमान्जीको आगे खड़ा हुआ देख रामचंद्रजीने उनसे कहा; ॥ १० ॥ "हे हनुमान् ! मैं तुमपर प्रसन्नहूं; जो अभिलाषा हो सो वर माँगो, जो तुम माँगोगे वह वस्तु त्रिलोकीमें चाहे देवताओंको भी मिलनी कठिन हो परन्तु मैं तुम्हें दूंगा" ॥ ११ ॥ हनुमान्जीके अंतःकरणमें बड़ा आनंद हुआ, उन्होंने रामजीका वंदन करकै कहा,—"हे राम ! मैं आपका नित्य नामस्मरण करताहुआभी तृप्ति नहीं पाताहूँ ॥ १२ ॥ इस कारण मेरी यह इच्छा है कि, आपके नामका नित्य स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर रहूं; लोकमें जबतक आपका नाम विद्यमान रहै; तिसकालतक यह मेरा शरीर रहै; हे राजाधिराज ! यह वर मुझको इष्ट लगता है" ॥ रामचंद्रजीने 'तथास्तु कहकर कहा कि, तुम मुक्तहो सुखपूर्वक पृथ्वीपर जायकर रहो ॥ १३ ॥ १४ ॥ कल्प समाप्त होनेके कालमें तुम मेरे रूपमें मिल जावोगे; इसमें कुछ संशय नहीं; जानकीजीने संतुष्ट होकर हनु

हनूमँस्तेप्रसन्नोऽस्मिवरंवरयकांक्षितम् ॥ दास्यामिदेवैरपियद्दुर्लभंभुवनत्रये ॥ ११ ॥ हनूमानपितंप्राहनत्वारामंप्रहृष्टधीः ॥ त्वन्नाम स्मरतोरामनतृप्यतिमनोमम ॥ १२ ॥ अतस्त्वन्नामसततंस्मरन्स्थास्यामिभूतले ॥ यावत्स्थास्यतितेनामलोकेतावत्कलेवरम् ॥१३॥ ममतिष्ठतुराजेंद्रवरोऽयंमेऽभिकांक्षितः ॥ रामस्तथेतितंप्राहमुक्तस्तिष्ठयथासुखम् ॥ १४ ॥ कल्पांतेममसायुज्यंप्राप्स्यसेनात्रसंशयः ॥ तमाहजानकीप्रीतायत्रकुत्रापिमारुते॥१५॥स्थितंत्वामनुयास्यंतिभोगाःसर्वेममाज्ञया ॥ इत्युक्तोमारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यांप्रहृष्टधीः ॥ ॥१६॥ आनंदाश्रुपरीताक्षोभूयोभूयःप्रणम्यतौ ॥ कृच्छ्राद्ययौतपस्तप्तुंहिमवंतंमहामतिः॥१७॥ततोगुहंसमासाद्यरामःप्रांजलिमब्रवीत् ॥ सखेगच्छपुरंरम्यंशृंगवेरमनुत्तमम् ॥१८॥ मामेवचिंतयन्नित्यंभुंक्ष्वभोगान्निजार्जितान् ॥ अंतेममैवसारूप्यंप्राप्स्यसेत्वंनसंशयः ॥१९॥

मान्जीको आशीर्वाद दिया । 'हे हनुमान् ! तुम जहां कहीं भी ॥ १५ ॥ रहोगे वहींपर मेरी आज्ञासे सब भोग तुमको प्राप्त होंगे' । दोनों ईश्वरोंके (रामसीताके) ऐसा कहनेपर हनुमान्जीके मनको हर्ष हुआ ॥ १६ ॥ उनके नेत्र आनंदके आँसुओंसे भर आये । उन्होंने दोनों जनोंको वारंवार प्रणाम किया । इसके उपरान्त वह महाबुद्धिमान् वानर तपस्या करनेके लिये हिमालय पर्वतपर गये । रामचंद्रजीको छोड़ जाते हुए उन्हें बड़ा कष्ट हुआ ॥ १७ ॥ फिर रामचंद्रजी हाथ जोड़कर खड़े हुए गुहसे बोले—"हे मित्र ! अब तुम अत्युत्तम रमणीक शृङ्गवेरपुरको जाओ ॥ १८ ॥ और अपने पुण्यों करके उपार्जन किये भोगोंको भोगते रहो । केवल मुझमें नित्य चित्त लगाये रहो इसलिये अंतमें तुम्हें मेरी सारूप्य मुक्ति मिलेगी

इसमें कुछ संशय नहीं है" ॥ १९ ॥ इतना कहकर प्रभु श्रीरामचंद्रजीने उनको दिव्य अलंकार दिये और विपुल राज्य देकर आत्मतत्त्व ज्ञानका उपदेश किया ॥ २० ॥ फिर रामचंद्रजीके आलिंगन देनेसे गुह आनंदित होकर अपने गृहको गया। दूसरे जो बड़े २ वानर अयोध्यामें आये थे उनकोंभी ॥ २१ ॥ श्रीरामचंद्रजीने अमोल वस्त्राभूषण देकर पूजाकी। सुग्रीवादि सर्व वानर और विभीषणकोंभी ॥ २२ ॥ प्रभु रामचन्द्रजीने प्रत्येककी योग्यतानुसार उत्तम सत्कार किया। तब वे सर्व आनंदित होकर अपने २ मार्गमें लौटे ॥ २३ ॥ सुग्रीवादि वानर आनंदसे किष्किन्धाको गये और विभीषणकोंभी निष्कंटक (शत्रुरहित) राज्य मिला ॥ २४ ॥ व रामचंद्रजीने उनका सत्कार किया; तब वह संतुष्ट हो

इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैदिव्यान्याभरणानिच ॥ राज्यंचविपुलंदत्त्वाविज्ञानंचददौविभुः ॥ २० ॥ रामेणालिंगितोहृष्टोययौस्वभवनंगुहः ॥ येचान्येवानराःश्रेष्ठाअयोध्यांसमुपागताः॥२१॥ अमूल्याभरणैर्वस्त्रैःपूजयामासराघवः॥ सुग्रीवप्रमुखाःसर्वेवानराःसविभीषणाः॥२२॥ यथार्हंपूजितास्तेनरामेणपरमात्मना॥प्रहृष्टमनसःसर्वेजग्मुरेवयथागतम् ॥२३॥ सुग्रीवप्रमुखाःसर्वेकिष्किंधांप्रययुर्मुदा॥ विभीषणस्तुसंप्राप्यराज्यंनिहतकंटकम् ॥ २४ ॥ रामेणपूजितःप्रीत्याययौलंकामनिंदितः ॥ राघवोराज्यमखिलंशशासाखिलवत्सलः ॥२५॥ अनिच्छन्नपिरामेणयौवराज्येऽभिषेचितः ॥ लक्ष्मणःपरयाभक्त्यारामसेवापरोऽभवत् ॥२६॥ रामस्तुपरमात्मापिकर्माध्यक्षोऽपिनिर्मलः ॥ कर्तृत्वादिविहीनोऽपिनिर्विकारोऽपिसर्वदा॥ २७ ॥स्वानंदेनापितुष्टःसँल्लोकानामुपदेशकृत्॥अश्वमेधादियज्ञैश्चसर्वैर्विपुलदक्षिणैः॥२८॥

कर लंकापुरीको गये। विभीषणजीकी कुलक्षय करानेके कारण किसीने निन्दा नहीं की; इधर रामचंद्रजी समस्त राज्यका पालन करने लगे; वह प्रत्येक प्राणीको प्रिय थे ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीकी इच्छा न रहते हुएभी रामचंद्रजीने उनको यौवराज्याभिषेक किया। वह (लक्ष्मण) परमभक्ति सहित श्रीरामचंद्रजीकी सेवामें तत्पर रहे ॥ २६ ॥ वास्तवमें कहा जाय तो श्रीरामचंद्रजी सर्वान्तर्यामी, परमात्मा सर्व कर्मोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले, निर्मल, कर्तृत्वादिधर्मरहित, नित्य निर्विकार व ॥ २७ ॥ अपने स्वरूपसे सदा संतुष्ट होतेथे, तथापि उन परमानंद प्रभुने पुरुषोंको उपदेश देनेके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया; व उनमें विपुल दक्षिणा दी, क्योंकि मनुष्यके समान शरीर स्वीकार करनेसे उनको ऐसा करना पड़ा ॥२८॥

रामचंद्रजीके राज्यमें ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई स्त्री विधवा होकर रोई हो; सर्पका डर नहीं हुआ ॥ २९ ॥ किसीको रोग पीडा नहीं हुई। लोगोंमें चोरका भय नहीं हुआ कोई अनर्थ उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ३० ॥ इसीप्रकार वंशमें वृद्ध मनुष्योंका जीवित रहते छोटे लड़कोंको मृत्युने नहीं डराया सब लोक रामचंद्रजीकी पूजामें तत्पर और रामचंद्रजीके ध्यानमें दक्ष रहवे ॥ ३१ ॥ मेघ योग्यकालमें लोगोंको मन माना जल देते (वर्षते) प्रजा अपने २ धर्माचरणमें लगी हुई और अपने वर्ण व आश्रमके योग्य गुणोंसे सम्पन्न थी ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार पिता अपने औरसे पुत्रका पालन करता है

अयजत्परमानंदोमानुषंवपुरा श्रितः ॥ नपर्यदेवन्विधवानचव्यालकृतंभयम् ॥ २९ ॥ नव्याधिजंभयंचासीद्रामेराज्यंप्रशासति ॥ लोकेदस्युभयंनासीदनर्थोनास्तिकश्चन ॥ ३० ॥ वृद्धेषुसत्सुवालानांनासीन्मृत्युभयंतथा ॥ रामपूजापराःसर्वेसर्वेराघवचिंतकाः ॥ ३१ ॥ ववर्षुर्जलदास्तोयंथाकालंयथारुचि ॥ प्रजाःस्वधर्मनिरतावर्णाश्रमगणान्विताः ॥ ३२ ॥ औरसानिवरामोऽपिजुगोपपितृवत्प्रजाः ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तःसर्वधर्मपरायणः ॥ ३३ ॥ दशवर्षसहस्राणिरामोराज्यमुपास्तसः ॥३४ ॥ इदंरहस्यंधनधान्यऋद्धिमद्दीर्घायुरारोग्यकरंसुपुण्यदम् ॥ पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितंपुरारामायणंभाषितमादिशंभुना ॥ ३५ ॥ शृणोतिभक्त्यामनुजःसमाहितोभक्त्यापठेद्वापरितुष्टमानसः ॥ सर्वाःसमाप्नोतिमनोगताशिषोविमुच्यतेपातककोटिभिःक्षणात् ॥ ३६ ॥

तैसेही श्रीरामचंद्रजी अपनी प्रजाकी रक्षा करते श्रीरामचंद्रजी सर्व गुण सम्पन्न, और सर्व धर्म परायणथे ॥ ३३ ॥ उन्होंने दश हज़ार वर्ष राज्य किया ॥ ३४ ॥ यह अध्यात्मकी पवित्र रामायण पहली पहल आदिदेव महादेवजीने प्रसिद्ध करी। उनके कहनेसे पहले यह गुप्तथी । इस अत्यन्त पुण्यकारक ग्रन्थका आदर करनेवाले मनुष्योंको, धन, धान्य, ऐश्वर्य, दीर्घायु, व आरोग्यता प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जो पुरुष एकान्तचित्तसे भक्तिपूर्वक इस आख्यानको सुनता या आनंदित मनसे बांचता है; उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जावे हैं और वह क्षणभरमें करोड़ पापोंसे छूट जाता है ॥ ३६ ॥

जिस पुरुषको द्रव्यकी इच्छाहो, वह पुरुष शुद्ध होकर रामचंद्रजीके अभिषेकका यह आख्यान सुने तो उसको विपुल संपत्ति प्राप्त होगी; जिसको पुत्रकी इच्छा हो वह प्रथमसे सर्व रामायणका पाठ करे तो उसके विद्वान् और लोकमान्य पुत्र होंगे ॥ ३७ ॥ राजा, अध्यात्मरामायण सुने तो उसको धन धान्य सम्पन्न पृथ्वीका राज्य मिलता है; वह शत्रुको जीत लेता शत्रु उसको डरा नहीं सक्के, उस राजाके सब दुःख दूर होते हैं और उसको सर्वत्र जय मिलती है ॥ ३८ ॥ जो स्त्रियां यह रामचंद्रजीका चरित्र श्रवण करैं तो उनके लडके (मर जाते हों तौभी) जियें, व उनको सवत्र मान मिले, भक्तियोगसे पूर्ण भरी हुई यह कथा जो कोई वंध्या स्त्री सुने तो उसके स्वरूपवान् पुत्र होता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य क्रोधको जीत, मत्सर

रामाभिषेकंप्रयतःशृणोतियोधनाभिलाषीलभतेमहद्धनम् ॥ पुत्राभिलाषीसुतमार्यसंमतंप्राप्नोतिरामायणमादितःपठन् ॥ ३७ ॥ शृणोतियोऽध्यात्मिकरामसंहितांप्राप्नोतिराजाभुवमृद्धसंपदम् ॥ शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितोव्यपेतदुःखोविजयीभवेन्नृपः ॥ ३८ ॥ स्त्रियोऽपिशृण्वंत्यधिरामसंहितांभवंतिताजीवसुताश्चपूजिताः ॥ वंध्यापिपुत्रंलभतेसुरूपिणंकथामिमांभक्तियुताशृणोतिया ॥ ३९ ॥ श्रद्धान्वितोयःशृणुयात्पठेन्नरोविजित्यकोपंचतथाविमत्सरः दुर्गाणिसर्वाणिविजित्यनिर्भयोभवेत्सुखीराघवभक्तिसंयुतः ॥ ४० ॥ सुराःसमस्ताअपियांतितुष्टतांविघ्नाःसमस्ताअपयांतिशृण्वताम् ॥ अध्यात्मरामायणमादितोनृणांभवंतिसर्वाअपिसंपदःपराः॥४१॥ रजस्वलावायदिरामतत्पराशृणोतिरामायणमेतदादितः॥पुत्रंप्रसूतेऋषभंचिरायुषंपातिव्रतालोकसुपूजिताभवेत्॥४२॥पूजयित्वातुयेभक्त्यानमस्कुर्वंतिनित्यशः॥ सर्वैःपापैर्विनिर्मुक्ताविष्णोर्यांतिपरंपदम् ॥ ४३ ॥

बुद्धि छोड़ विश्वासपूर्वक यह ग्रंथ सुने या बांचे, उसकी रामजीपर भक्ति होगी; वह सब संकटोंके पार होकर निर्भय और सुखी होजावेगा ॥ ४० ॥ प्रथमसे लेकर अंतपर्यंत अध्यात्मरामायणको श्रवण करनेवाले मनुष्योंपर सब देवता प्रसन्न होजाते हैं, उनके सब विघ्न दूर होते और उनको सर्व उत्तमऐश्वर्य मिलते हैं ॥ ४१ ॥ जो रजस्वला स्त्री यह रामायण आरंभसे सुने तो उसके उदरसे दीर्घायु श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो वह पातिव्रतसे कभी नहीं टलती, अर्थात लोग बडा मान करते हैं ॥ ४२ ॥ जो लोग भक्तिपूर्वक पूजा करके नित्य रामायणका वंदन करते हैं, वे सर्व पापोंसे छूटकर

विष्णुजीके श्रेष्ठ पदको पाते हैं ॥ ४३ ॥ जो पुरुष सारी अध्यात्मरामायणको भक्तिसे श्रवण करते या स्वयंही मुखसे पाठ करते हैं उनपर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचंद्रजी साक्षात् परब्रह्म हैं; उन सर्वान्तर्यामी ईश्वरके संतुष्ट होनेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें जिसकी इच्छा हो वही प्राप्त हो जाता है ॥ ४५ ॥ विना खंडित किये इस रामायणको प्रतिदिन नियमसे श्रवण करता जावै, इससे मनुष्यको आयुष्य व आरोग्य मिलताहै; और उसके किये हुए करोड़ों कल्पके पाप नाश होतेहैं; रामायणके श्रवण करनेसे मनुष्यपर सर्व देवता, ग्रह, समस्त ऋषि और तैसेही पितरभी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस अध्यात्मरामायण नामके अद्भुत प्राचीन ग्रन्थमें वैराग्य, व तत्त्वज्ञानकी कथा भरी हुई है

अध्यात्मरामचरितंकृत्स्नंशृण्वंतिभक्तितः ॥ पठंतिवास्वयंवक्त्रात्तेषांरामःप्रसीदति ॥ ४४ ॥ रामएवपरंब्रह्मतस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यदिच्छतितद्भवेत् ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यंनियमेनैतद्रामायणमखंडितम् ॥ आयुष्यमारोग्यकरंकल्पकोट्यघनाशनम् ॥ ४६ ॥ देवाश्चसर्वेतुष्यंतुग्रहाःसर्वेमहर्षयः ॥ रामायणस्यश्रवणेतुष्यंतिपितरस्तथा ॥ ४७ ॥ अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतंवैराग्यविज्ञानयुतंपुरातनम्॥पठंतिशृण्वंतिलिखंतियेनरास्तेषांभवेऽस्मिन्नपुनर्भवोभवेत्॥४८॥आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकंब्रह्मतद्रामोविष्णुरहस्यमूर्तिरितियोविज्ञायभूतेश्वरः ॥ उद्धृत्याखिलसारसंग्रहमिदंसंक्षेपतःप्रस्फुटंश्रीरामस्यनिगूढतत्त्वमखिलंप्राहप्रियायैभवः ४९

जो लोग इस जन्ममें, इस ग्रन्थको बांचते सुनते, या लिखते हैं फिर उनको जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ४८ ॥ (पार्वतीजीके साथ रामायण श्रवण करता हुआ महादेवजीका एक शिष्य बोला) सर्व प्राणियोंके ईश्वर महादेवजीने समग्र वेदराशिको वारंवार मथा (विचार करा) तब उनको निश्चयात्मक ज्ञान हुआ कि; रामही तारक ब्रह्मरूपी होनेसे विष्णुजीकी गूढ मूर्ति हैं यह जानकर उन्हों (महादेवजी) ने सर्व ज्ञानका एक निकाला हुआ सार संक्षेपसे पार्वतीजीको सुनाया यह वही ग्रन्थ है इसमें श्रीरामचंद्रजीके गूढ तत्त्वका स्पष्ट वर्णन है, उन महादेवजीको मेरा नमस्कार हो ॥ ४९ ॥

पद ॥ जगतमें केवल नाम अधार ॥ माया, क्रोध, मोह, मद, लालच, सगरे महा असार॥ १ ॥ सुत, दारा धन, मात पिताहूं विपतिपरे अलगाय, पै प्रफुल्ल इन्दीवरलोचन राम करत भवपार ॥ २ ॥ रघुकुल तपन जनन प्रतिपालक घालक दुष्टन वंश, लिये हाथ धनु बाण विराजैं नित मो हिये मझार ॥ ३ ॥ श्यामवरण दुखहरण निरखि छबि कोटिन मदन लजायँ, करि या छबिको ध्यान :मिश्रनित आनँद लहत अपार ॥ ४ ॥

इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेयुद्धकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ इतियुद्धकांडंसमाप्तम् ॥ ॥ कांडेयुद्धात्मकेसर्गानव सप्तनीलकंठोक्ताः ॥ सार्धैकादशशतश्लोकामनुसंख्यायुताः ॥ सर्गाः ॥ १६ ॥ श्लोकाः ॥ ११६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकांडे मिश्रकुलभूषणश्रीमच्छिवदयालुसिंहसूनुश्रीमत्सुखानंदमध्यमपुत्रधीमत्पं० बलदेवप्रसाद मिश्रविरचितभाषाटीकायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इदमध्यात्मरामायणयुद्धकाण्डं मुम्बय्यां खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम्

संवत् १९६१, शके १८२६, सन् १९०५.

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेभाषाटीकासमेते युद्धकाण्डः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासमेते उत्तरकाण्डप्रारंभः ॥
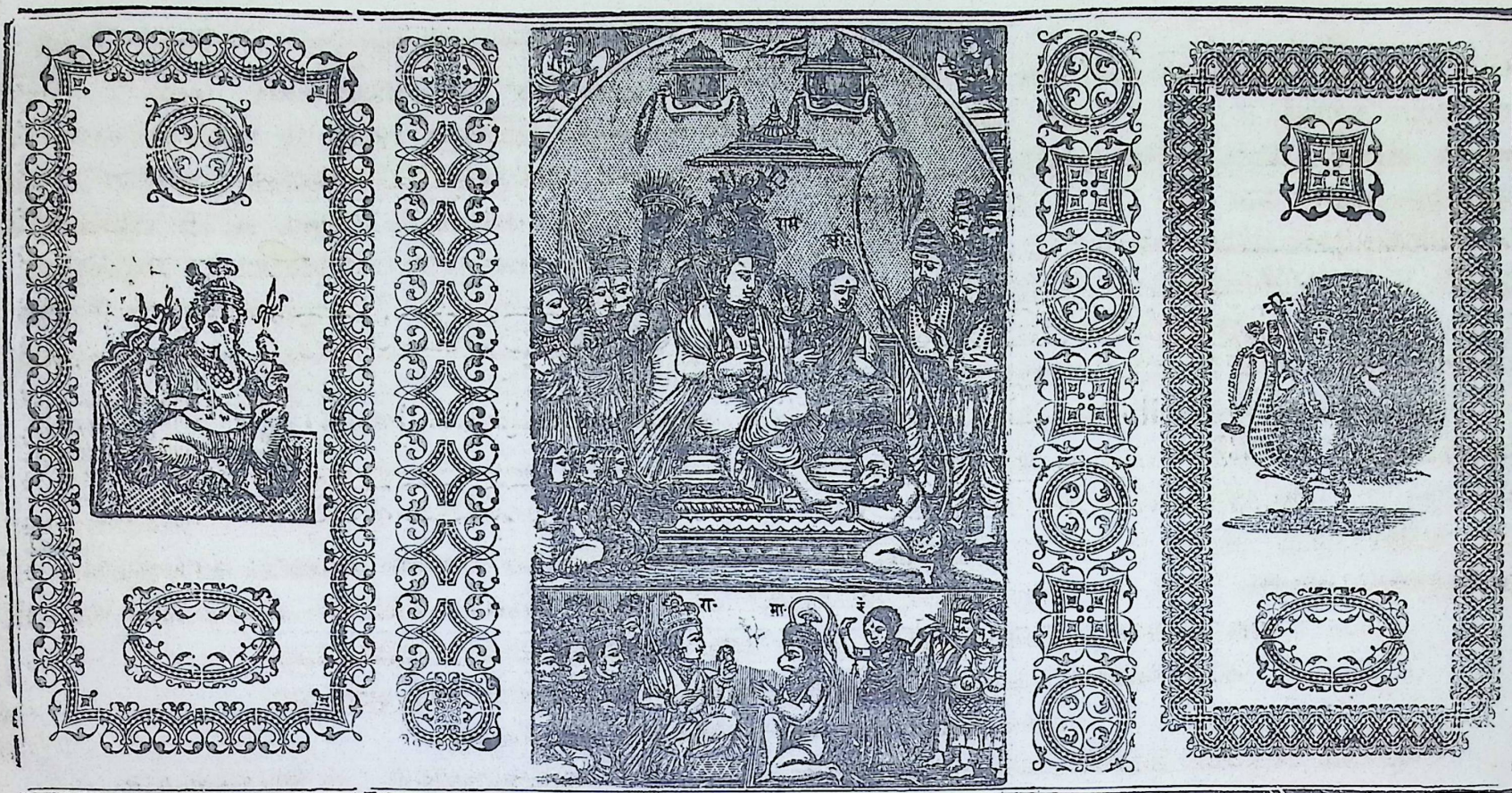
श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥ ॥ अथ श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ रामचंद्रजीके पास कुंभजादिमुनियोंका आना ।

दोहा—जयति तिलक रघुवंश प्रभु, कौसल्यासुखदान ॥ दशरथसुत खलवधनिरत, रामचन्द्र भगवान ॥ १ ॥

पार्वतीजी बोलीं;—"भीमपराक्रम मातुमन, हर्षकरन श्रीराम ॥ रावणहन संग्रामवित, करे कौनसे काम ॥ २ ॥

कौसल्याके आनंद बढानेहारे भीमपराक्रमी रामचन्द्रने संग्राममें रावणादि राक्षसोंको मार फिर क्या किया ॥ १ ॥ अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेके पीछे सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजी मायाकरके मनुष्यरूप धारणकर कितने वर्षतक पृथ्वीमें वसे ॥ २ ॥ वह प्रभु रघुवीर साक्षात् सनातन परमात्माहैं, उन्होंने उस मनुष्यशरीरको लीलाकरके फिर अंतमें किस प्रकारसे छोड़ा ॥ ३ ॥ यह आख्यान मुझसे कहो । हे प्रभो भगवंत !

जयतिरघुंशतिलकःकौसल्याहृदयनंदनोरामः ॥ दशवदननिधनकारीदाशरथिःपुंडरीकाक्षः ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ अथरामःकिमकरोत्कौसल्यानंदवर्धनः ॥ हत्वामृधेरावणादीन्राक्षसान्भीमविक्रमः॥१॥अभिषिक्तस्त्वयोध्यायांसीतयासहराघवः॥ मायामानुषतांप्राप्य कतिवर्षाणिभूतले ॥ २ ॥ स्थितवाँल्लीलयादेवःपरमात्मासनातनः ॥ अत्यजन्मानुषंलोकंकथमंतेरघूद्वहः ॥ ३ ॥ एतदाख्याहिभगवञ्छ्रद्दधत्याममप्रभो ॥ कथापीयूषमास्वाद्यतृष्णामेऽतीववर्धते॥रामचंद्रस्यभगवन्ब्रूहिविस्तरशःकथाम्॥४॥श्रीमहादेवउवाच ॥ राक्षसानांवधंकृत्वाराज्येरामउपस्थिते ॥ आययुर्मुनयःसर्वेश्रीराममभिवंदितुम् ॥५ ॥ विश्वामित्रोऽसितःकण्वोदुर्वासाभृगुरंगिराः ॥ कश्यपोवामदेवोऽत्रिस्तथासप्तर्षयोऽमलाः॥६॥ अगस्त्यःसहशिष्यैश्चमुनिभिःसहितोऽभ्ययात् ॥ द्वारमासाद्यरामस्यद्वारपालमथाब्रवीत् ॥७॥

आपके वचनोंपर मेरा पूर्ण विश्वासहै । यह कथामृत पीनेंको मिलनेसे मेरी तृष्णा (सुननेकी इच्छा) घटी नहीं, वरन् उत्तरोत्तर अधिक बढ़ती चली है ! इसकारण हे षड्गुणेश्वर ! रामचंद्रजीकी कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये " ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले;—हे पार्वति ! राक्षसोंका वध करके जब श्रीरामचंद्रजी राज्यपर बैठे, तो उन सर्वैश्वर्ययुक्त आनंददायक प्रभुका वंदनकरनेको मुनिलोग आये ॥ ५ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि इत्यादि सप्तर्षि आये ॥ ६ ॥ ऋषि अगस्त्यजी अपने शिष्य मुनियोंको साथ लेकर वहांपर प्राप्त हुए

१ प्रत्येक मन्वन्तरमें अलग २ सप्तर्षि होतेहैं—उसमन्वन्तरके सप्तऋषि लोग ।

व द्वारके निकटजाय रामचंद्रजीके द्वारपालसे बोले ॥ ७ ॥ 'हे द्वारपाल ! रामचंद्रजीसे कहो कि अगस्त्यादि सर्व मुनि आशीर्वाद देकर आपको वंदन करनेको आये हुए बाहर खड़े हैं' ॥ ८ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञानुसार वह द्वारपाल शीघ्रही रामचंद्रजीके पास गया और प्रभु रामचंद्रजीको नमस्कारकर विनयपूर्वक ॥ ९ ॥ हाथ जोड़ कहनेलगा; 'हे देव ! ऋषि अगस्त्यजी मुनिगणोंके साथ आपका दर्शन करनेके लिये आयकर बाहर खड़े हैं; ॥ १० ॥ रामचंद्रजीने उस द्वारपालको आज्ञादीः—'सुखपूर्वक (विनाकुछ प्रतिबंधके किये) उन्हें यहांपर लेआओ ' । द्वारपालने रामचंद्रजीकी आज्ञासे गौरवपूर्वक उनको मार्ग दिखाया,--तब उन मुनि लोगों ने अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान किये हुए उस मंदिरमें प्रवेश

ब्रूहिरामायमुनयःसमागत्यबहिःस्थिताः ॥ अगस्त्यप्रमुखाःसर्वेआशीर्भिरभिनंदितुम् ॥ ८ ॥ प्रतीहारस्ततोराममगस्त्यवचनाद्रुतम् ॥ नमस्कृत्याब्रवीद्वाक्यंविनयावनतःप्रभुम् ॥ ९ ॥ कृतांजलिरुवाचेदमगस्त्योमुनिभिःसह ॥ देवत्वद्दर्शनार्थायप्राप्तोबहिरुपस्थितः ॥१०॥ तमुवाचद्वारपालंप्रवेशययथासुखम् ॥ पूजिताविविशुर्वेश्मनानारत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वारामोमुनीञ्छीघ्रंप्रत्युत्थायकृतांजलिः ॥ पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्यगांनिवेद्ययथाविधि ॥ १२ ॥ नत्वातेभ्योददौदिव्यान्यासनानियथार्हतः ॥ उपविष्टाःप्रहृष्टाश्चमुनयोरामपूजिताः ॥ १३ ॥ संपृष्टकुशलाःसर्वेरामंकुशलमब्रुवन् ॥ कुशलंतेमहाबाहोसर्वत्ररघुनंदन ॥ १४ ॥ दिष्ट्येदानींप्रपश्यामोहतशत्रुमरिंदम ॥ नहिभारः सतेरामरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १५ ॥

किया ॥ ११ ॥ मुनियोंको देखतेही रामजी तत्काल उठकर खड़ेरहे उन्होंने हाथ जोड़ पाद्य अर्घ्य, इत्यादि उपचारोंसे उनकी, पूजाकी मधुपर्कके लिये शास्त्रोक्त विधिके अनुसार वृषभ दिया ॥ १२ ॥ व सबको अलग २ प्रणाम करकै जैसी जिसकी योग्यता थी वैसाही दिव्य आसन उसको अर्पण किया; मुनिजन उन आसनोंपर विराजमान हुए; प्रभुके हाथसे पूजा प्राप्त होनेपर उनको अत्यन्त हर्ष जान पड़ा ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उनसे कुशल प्रश्न किया; तिसका उत्तर देकर मुनिजनोंनेभी श्रीरामजीसे कुशल पूछी और कहा,--'विशाल हैं बांहैं जिनकी ऐसे हेरघुनंदन ! आपको सर्वत्र कुशल है ॥ १४ ॥ हे शत्रुसंहारक ! आपने शत्रुका वध किया और आज ऐसी स्थितिमें हमको आपका

दर्शन मिला, यह बड़े आनंदकी बात है। हेराम ! राक्षसोंका राजा रावण कुछ आपको बहुत भारी (मारनेमें कठिन) नहींथा ॥ १५ ॥ कारण कि आप हाथमें धनुष लेकर त्रिलोकी के जीतनेकोभी समर्थ हैं ॥ आपने रावणादि सर्व राक्षसोंको मारा, यह बड़ी उत्तम बात हुई ॥ १६ ॥ हे महावीर ! रावणका वध करना सहज था; परन्तु रावणके पुत्र इन्द्रजीतका नाश होना परम दुर्घट था, परन्तु वहभी कार्य पूरा होगया, इसकारण हमको बहुत आनंद होताहै ॥ १७ ॥ मृत्युके समान कुंभकर्णादि राक्षस थे, हे रघुवीर ! उनको आपने संग्राममें मृत्युके समान बाणोंसे मारडाला ॥ १८ ॥ आपने पहले हमको यह अभयदक्षिणा दीथी–'तिसीके अनुसार युद्धमें राक्षससमूहका नाश किया, व अब कृतार्थ होकर आप विराजमान हैं' ॥ १९ ॥

सधनुस्त्वंहिलोकांस्त्रीन्विजेतुंशक्तएवहि ॥ दिष्टयात्वयाहताःसर्वेराक्षसारावणादयः ॥ १६ ॥ सह्यमेतन्महाबाहोरावणस्यनिबर्हणम् ॥ असह्यमेतत्संप्राप्तंरावणेर्यन्निषूदनम् ॥ १७ ॥ अंतकप्रतिमाःसर्वेकुंभकर्णादयोमृधे ॥ अंतकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्तेरघुसत्तम ॥ १८ ॥ दत्ताचेयंत्वयाऽस्माकंपुराह्यभयदक्षिणा ॥ हत्वारक्षोगणान्संख्येकृतकृत्योऽद्यजीवसि ॥ १९ ॥ श्रुत्वातुभाषितंतेषांमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ विस्मयंपरमंगत्वारामःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणादीनतिक्रम्यकुंभकर्णादिराक्षसान् ॥ त्रिलोकजयिनोहित्वाकिंप्रशंसथरावणिम् ॥ २१ ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ कुंभयोनिर्महातेजारामंप्रीत्यावचोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥ शृणुरामयथावृत्तंरावणेरावणस्यच ॥ जन्मकर्मवरादानंसंक्षेपाद्वदतोमम ॥ २३ ॥ पुराकृतयुगेरामपुलस्त्योब्रह्मणःसुतः ॥ तपस्तप्तुंगतोविद्वान्मेरोःपार्श्वेमहामतिः ॥ २४ ॥ तृणबिंदोराश्रमेऽसौन्यवसन्मुनिपुंगवः ॥ तपस्तेपेमहातेजाःस्वाध्यायनिरतःसदा ॥ २५ ॥

शुद्ध अंतःकरणवाले उन मुनियोंके वचन सुनकर परम विस्मय पायेहुए श्रीरामचंद्रने हाथ जोड़कर प्रश्न किया ॥ २० ॥ " हे मुनियो ! रावण, कुंभकर्णादि राक्षसोंने त्रिलोकीको जीतलिया, उनको छोड़कर आपलोग मेघनादकी प्रशंसा क्यों करतेहैं ! " ॥ २१ ॥ महाप्रतापी रामचंद्रजीके वचन सुनकर महातेजस्वी मुनि अगस्त्यजीने प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ २२ ॥ " हे राम ! रावण और रावणके पुत्र मेघनादका वृत्तान्त कहताहूं तथा उसका जन्मचरित और वरदानपाना इत्यादि संक्षेपसे कहताहूं सो आप सुनें ॥ २३ ॥ हे राम ! पहले सत्ययुगमें ब्रह्माजीके पुत्र महाबुद्धिसंपन्न व विद्वान् पुलस्त्यजी तप करनेके लिये मेरु पर्वतके समीपमें गये ॥ २४ ॥ नित्य वेद पढ़नेवाले वह महातेजस्वी श्रेष्ठ मुनि तृणबिंदुके आश्रममें तप

करते हुए रहे ॥ २५ ॥ वह आश्रमस्थल अत्यन्त रमणीय था वहांपर देवता और गन्धर्वोंकी कन्या आकर गातीं नाचतीं, हँसतीं और बाजे बजातीथीं ॥ २६ ॥ उनके रूप इतने सुन्दर थे कि उन्होंने ऊपर कहे अनुसार नाच गायकर पुलस्त्यजीके तपमें विघ्न किया, तब उन महातेजस्वी मुनिने क्रोधित होकर उग्र शाप दिया कि ॥ २७ ॥ "जो कोई मेरी दृष्टिके सन्मुख पडेगी उसको तत्काल गर्भ रहजायगा !" सब लड़कियोंको शापका भय हुआ । तिससे कोई उस स्थानमें पाँव न रक्खे ॥ २८ ॥ तृणविन्दुराजर्षिकी कन्याने यह शापकी बात नहीं सुनीथी, वह निर्भय हो मुनिजीकी ओर देखतीहुई उनके आगे फिरती रही ॥ २९ ॥ तत्काल उसको गर्भ रहगया, व उसका चिह्न 'तिसका शरीर पीला' दीखनेलगा ।

तत्राश्रमेमहारम्येदेवगंधर्वकन्यकाः ॥ गायंत्योननृतुस्तत्रहसंत्योवादयंतिच ॥२६॥ पुलस्त्यस्यतपोविघ्नंचक्रुःसर्वाअनिंदिताः ॥ ततःक्रुद्धोमहातेजाव्याजहारवचोमहत् ॥ २७ ॥ यामेदृष्टिपथंगच्छेत्सागर्भंधारयिष्यति ॥ ताःसर्वाःशापसंविग्नानतंदेशंप्रचक्रमुः ॥ २८ ॥ तृणबिंदोस्तुराजर्षेःकन्यातन्नाशृणोद्वचः ॥ विचचारमुनेरग्रेनिर्भयातंप्रपश्यती ॥ २९ ॥ बभूवपांडुरतनुर्व्यंजितांतःशरीरजा ॥ दृष्ट्वासा देहवैवर्ण्यंभीतापितरमन्वगात् ॥ ३० ॥ तृणबिंदुश्चतांदृष्ट्वाराजर्षिरमितद्युतिः ॥ ध्यात्वामुनिकृतंसर्वमवेद्विज्ञानचक्षुषा ॥ ३१ ॥ तांकन्यांमुनिवर्यायपुलस्त्यायददौपिता ॥ तांप्रगृह्याब्रवीत्कन्यांवाढमित्येवसद्विजः ॥३२॥ शुश्रूषणपरांदृष्ट्वामुनिःप्रीतोऽब्रवीद्वचः ॥ दास्यामिपुत्रमेकंतेउभयोर्वंशवर्धनम् ॥३३॥ ततःप्रासूतसापुत्रंपुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ॥ विश्रवाइतिविख्यातःपौलस्त्योब्रह्मविन्मुनिः ॥ ३४ ॥

अपने शरीरको फीका पड़ाहुआ देखकर वह डरी और पिताके पास गई ॥ ३० ॥ तृणबिन्दु राजर्षिका तेज (प्रभाव) प्रमाणरहित था;—उन्होंने कन्याकी ओर देख कुछ विचार किया तत्काल ज्ञानदृष्टिसे उन्होंने पुलस्त्य मुनिके चरित्रको जान लिया ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त उसके पिताने वह कन्या उन श्रेष्ठ पुलस्त्यमुनिको दी । उस ब्राह्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उस कन्याको अंगीकार किया ॥ ३२ ॥ वह कन्या पतिकी सेवा करनेमें दक्ष रही; उसके आचरण देख पुलस्त्यमुनि संतुष्ट होकर बोले;—दोनों कुलका कल्याण करनेवाला एक पुत्र मैं तुझे देताहूं ॥ ३३ ॥ फिर उसने पुलस्त्यजीसे एक पुत्र उत्पन्न किया वह पुत्र लोकमें बहुत प्रसिद्ध हुआ । उसका नाम विश्रवा हुआ; पुलस्त्यका यह पुत्र ब्रह्मज्ञानी

और विचारसंपन्न हुआ ॥ ३४ ॥ मुनि भरद्वाजजीने उसके स्वभावादि गुण देखकर आनंदसे अपनी कन्या उसको भार्या बनानेके लिये देदी ॥ ३५ ॥ उसके गर्भमें विश्रवाजीसे एक लोकमान्य 'वैश्रवण' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह लड़का गुणोंमें अपने पिताके समान था उसको ब्रह्माजीसे वर मिला ॥३६॥ तिसके मनमें 'मैं निरन्तर द्रव्याधीश होजाऊं' ऐसी इच्छा थी । इस इच्छाके पूर्ण होनेको उसने तप किया । तप करनेसे ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उस वैश्रवणको शुभ इच्छित वर दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वर पानेसे वह धनपति (वैश्रवण कुबेर) ब्रह्माजीके दिये हुए तेजस्वी विमानमें बैठकर पिताजीके दर्शनको आये ॥ ३८ ॥ उन्होंने पिताजीको नमस्कार किया और तपस्याका फल निवेदन करके कहा;—हे पिता ! ब्रह्माजीने

तस्यशीलादिकंदृष्ट्वाभरद्वाजोमहामुनिः ॥ भार्यार्थेस्वांदुहितरंददौविश्रवसेमुदा ॥ ३५ ॥ तस्यांतुपुत्रःसंजज्ञेपौलस्त्याल्लोकसंमतः ॥ पितृतुल्योवैश्रणोब्रह्मणाचानुमोदितः ॥ ३६ ॥ ददौतत्तपसातुष्टोब्रह्मातस्मैवरंशुभम् ॥ मनोऽभिलाषितंतस्यधनेशत्वमखंडितम् ॥३७॥ ततोलब्धवरःसोऽपिपितरंद्रष्टुमागतः ॥ पुष्पकेणधनाध्यक्षोब्रह्मदत्तेनभास्वता ॥ ३८ ॥ नमस्कृत्वाथपितरंनिवेद्यतपसःफलम् ॥ प्राहमे भगवान्ब्रह्मादत्त्वावरमनिंदितम् ॥ ३९ ॥ निवासायनमेस्थानंदत्तवान्परमेश्वरः ॥ ब्रूहिमेनियतंस्थानंहिंसायत्रनकस्यचित् ॥ ४० ॥ विश्रवाअपितंप्राहलंकानामपुरीशुभा ॥ राक्षसानांनिवासायनिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ ४१ ॥ त्यक्त्वाविष्णुभयाद्दैत्याविविशुस्तेरसातलम् सापुरीदुष्प्रधर्षान्यैर्मध्येसागरमास्थिता ॥ ४२ ॥ तत्रवासायगच्छत्वंनान्यैःसाधिष्ठितापुरा ॥ पित्रादिष्टस्त्वसौगत्वातांपुरींधनदोऽविशत् ॥ ४३ ॥ सतत्रसुचिरंकालमुवासपितृसंमतः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसुमालीनामराक्षसः ॥ ४४ ॥

हमको शुभ वर दिया ॥३९॥ परन्तु ब्रह्माजीने रहनेके लिये स्थान नहीं दिया. अब आप मुझको एकऐसा निश्चित स्थल बताइये कि, जिसपर किसीकी मालकी न हो और जहाँ किसी प्रकारकी पीड़ा भोगनी नहीं पड़े ॥ ४० ॥ विश्रवाने पुत्रसे कहा;—"पुत्र ! लंकानामकी एक सुन्दर नगरी विश्वकर्माने राक्षसोंके रहनेको बनाई है ॥४१॥ परन्तु वे दैत्य विष्णुजीके डरसे पातालमें घुस रहेहैं; वह नगरी समुद्रके बीचमें बसी हुईहै; इसकारण कोई शत्रु उसको नहीं दबाय सकता ॥४२॥ तुम वहाँ जायकर रहो । राक्षसोंके निकल जानेपर आजतक उस नगरीमें कोई नहीं रहा" पिताजीकी ऐसी आज्ञा पाय धनद (कुवेर) ने जायकर उस पुरीमें प्रवेशकिया ॥४३॥ वहाँपर वह पिताजीकी आज्ञासे बहुत दिनतक रहे, इस बातके कुछ दिन पीछे एक दिन सुमालीनामका

एक मांस खानेवाला राक्षस ॥४४॥ पातालसे निकलकर पृथ्वीपर घूमताथा वह दैत्य अपने साथ साक्षात् देवी लक्ष्मीजीके समान रूपगुणसम्पन्न अपनी कन्याकोभी ले आयाथा ॥ ४५ ॥ धनपति कुबेरजीको पुष्पक विमानमें बैठकर घूमताहुआ देख उस दूरदर्शी राक्षसने राक्षसोंका हित करनेके लिये एक विचार किया और ॥ ४६ ॥ वहाँ साथ आई हुई कैकसीनामक कन्यासे बोला;—'वत्से ! तेरे विवाह करनेका यह समय ठीक है; क्योंकि तरुणाई निकली जाती है ॥ ४७ ॥ बेटी ! गुणसंपन्न होनेसेभी कोई वर तुझे नहीं मांगता, इसकारण कि कदाचित् तू नहीं करजाय इसका भय है । इसकारण मैं कहताहूं कि—तू अब ब्रह्मकुलमें जन्म लिये हुए इन मुनि (विश्रवा) को वर, तेरा कल्याण हो ॥ ४८ ॥ हे बाले ! ऐसा करनेसे

रसातलान्मर्त्यलोकंचचारपिशिताशनः ॥ गृहीत्वातनयांकन्यांसाक्षाद्देवीमिवश्रियम् ॥ ४५ ॥ अपश्यद्धनदंदेवंचरंतंपुष्पकेणसः ॥ हितायचिंतयामासराक्षसानांमहामनाः ॥ ४६ ॥ उवाचतनयांतत्रकैकसींनामनामतः ॥ वत्सेविवाहकालस्तेयौवनंचातिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रत्याख्यानाच्चभीतैस्त्वंनवरैर्गृह्यसेशुभे ॥ सात्वंवरयभद्रंतेमुनिंब्रह्मकुलोद्भवम्॥४८॥ स्वयमेवततःपुत्राभविष्यंतिमहाबलाः॥ईदृशाःसर्वशोभाढ्याधनदेनसमाःशुभे ॥४९॥ तथेतिसाश्रमंगत्वामुनेरग्रेव्यवस्थिता॥लिखंतीभुवमग्रेणपादेनाधोमुखीस्थिता ॥५०॥ तामपृच्छन्मुनिःकात्वंकन्यासिवरवर्णिनि ॥ साब्रवीत्प्रांजलिर्ब्रह्मन्ध्यानेनज्ञातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ततोध्यात्वामुनिःसर्वंज्ञात्वातांप्रत्यभाषत ॥ ज्ञातंतत्त्वाभिलषितंमत्तःपुत्रानभीप्स्यसि ॥ ५२ ॥ दारुणायांतुवेलायामागतासिसुमध्यमे॥ अतस्तेदारुणौपुत्रौराक्षसौसंभविष्यतः ॥ ५३ ॥

तेरे अनायास इस कुबेरके समान सर्वैश्वर्यसम्पन्न व महापराक्रमी पुत्र होगा' ॥ ४९ ॥ वह कन्या 'अच्छा' कहकर उस ऋषिके आश्रममें गई, व मर्यादशील स्त्रीके स्वभावके समान; पाँवके अँगूठेसे पृथ्वीपर लकीर खैंचती नीचेको मुख किये मुनिके आगे खड़ी रही ॥ ५० ॥ मुनि विश्रवाजीने उससे प्रश्न;—किया 'हे श्रेष्ठकान्तिवाली ! तू कौन है ? किसकी कन्या है ?" उसने हाथ जोड़कर उत्तर दियाः—हे ब्रह्मन् ! आप ध्यानके द्वारा सब जाननेको समर्थ हैं ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त मुनिजीने ध्यान करकै सर्व प्रकार जाना और उसको प्रत्युत्तर दिया । मैं तेरे अभिलाषको जानगया; तू मुझसे पुत्रकी कामना करती है ॥ ५२ ॥ मैं तेरी इच्छा पूरी करताहूं । परन्तु सुन्दरी ! तू इस भयंकर वेलामें आई है; इसलिये दो तेरे पुत्र क्रर

राक्षस होंगे ' ॥ ५३ ॥ कैकसी बोली,—' हे मुनिवर ! आपसेभी ऐसे (क्रूर) पुत्र होंगे?' विश्रवाजीने उससे कहा;—'इन दोनोंके अतिरिक्त जो तेरा पिछला पुत्र होगा, वह महाबुद्धिमान् ॥ ५४ ॥ परमभगवद्भक्त, ऐश्वर्यसंपन्न व रामचंद्रजीकी भक्ति करनेमें केवल निमग्न होगा ' ऐसा मुनिजीने कहा। इसके अनुसारही कैकसीके योग्य कालमें प्रथम पुत्र हुआ । उसके दशशिर और वीस हाथ थे; इस अतिभयंकर बालकका नाम ' रावण ' हुआ । उस राक्षसके जन्म लेतेही पृथ्वी थर २ कांपनेलगी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ व उत्पातकी सूचना करनेवाले सब प्रकारके अशुभ शकुन हुए फिर कुंभकर्ण जन्मा. जिसका प्रचंड शरीर पर्वतके समान था ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे रावणकी शूर्पणखा नामक बहनने जन्म लिया इसके उपरान्त विभी

साब्रवीन्मुनिशार्दूलत्वत्तोऽप्येवंविधौसुतौ ॥ तामाहपश्चिमोयस्तेभाविष्यातिमहामातिः ॥ ५४ ॥ महाभागवतःश्रीमान्रामभक्त्यैकतत्परः॥ इत्युक्त्वासातथाकालेसुषुवेदशकंधरम् ॥५५॥ रावणंविंशतिभुजंदशशीर्षसुदारुणम् ॥ तद्रक्षोजातमात्रेणचचालचवसुंधरा ॥ ५६ ॥ वभू वुर्नाशहेतूनिनिमित्तान्यखिलान्यपि ॥ कुंभकर्णस्ततोजातोमहापर्वतसन्निभः ॥ ५७ ॥ ततःशूर्पणखानामजातारावणसोदरी ॥ ततो विभीषणोजातःशांतात्मासौम्यदर्शनः॥५८॥ स्वाध्यायीनियताहारोनित्यकर्मपरायणः॥कुंभकर्णस्तुदुष्टात्माद्विजान्संतुष्टचेतसः ॥५९॥ भक्षयन्नृषिसंघांश्चविचचारातिदारुणः ॥ रावणोऽपिमहासत्त्वोलोकानांभयदायकः ॥ ववृधेलोकनाशायह्यामयोदेहिनामिव ॥ ६० ॥ रामत्वंसकलांतरस्थमभितोजानासिविज्ञानदृक्साक्षीसर्वहृदिस्थितोहिपरमोनित्योदितोनिर्मलः ॥ त्वंलीलामनुजाकृतिःस्वमहिमन्मा यागुणैर्नाज्यसेलीलार्थंप्रतिचोदितोऽद्यभवतोवक्ष्यामिरक्षोद्भवम् ॥ ६१ ॥

षणने अवतार लिया. उनका स्वरूप शान्त, जिनको देखतेही देखनेवालोंके मनमें सावधानी होजावे ॥ ५८ ॥ वे नित्य वेदाध्ययन करते, उनका अहार नियमित था, वह नित्य अपने कर्मोंके करनेमें तत्पर थे कुंभकर्णका अंतःकरण दुष्ट था; वह अतिक्रूर राक्षस जिसका अंतःकरण सदा असंतुष्ट रहताथा ब्राह्मण और ऋषियोंके समुदायको भक्षण करताहुआ घूमा करताथा जैसे प्राणियोंके देहमें उनका नाश करनेके लिये रोग बढ़ता है; तैसेही रावणभी लोकोंको भयदायक होताहुआ बढ चला. उसकी सामर्थ्य बडी थी; वह लोकोंको पीड़ा देता रहता ॥ ५९ ॥ ६० ॥ (अग स्त्यमुनि बोले) हे राम ! सर्व प्राणियोंके अंतरमें जो कुछ होताहै; उस सर्वको आप जानते हैं; विज्ञान आपकी दृष्टि है इसके द्वारा

आप सर्व क्रिया प्रत्यक्ष देखतेहैं; प्रत्येक प्राणीके अंतरमें आपका वास है । आप परमश्रेष्ठ, नित्य स्फुरण पानेवाले हो निर्मल हो, लीला करके यह मनुष्यशरीर धारण किया है, आपकी महिमा असाधारण (अत्युत्तम) है, आप मायाके गुणोंसे लिप्त नहीं होते; अपनी लीलाकरके ही यह प्रश्न किया; इस कारण मैं राक्षसोंका जन्मवृत्तान्त आपसे कहताहूं (वास्तवमें आपके आगे मुझमें बोलनेकी क्या शक्ति है)? ॥ ६१ ॥ जो तुमने मुझसे कहा कि तुम मेरे ऐसे स्वरूपको साक्षी जानने लगे, तौ मैं जो कि मूक हूं, केवल तुम्हारे अनुग्रहसे अचिन्त्यशक्तिवाला, चैतन्यमात्र, अक्षर, अजन्मा और जिसने आत्मतत्त्वको जाना है ऐसे अनंत अद्वितीय अर्थात् केवलरूप अर्थात् जिसका रूप सांसारिक लोगोंको अति गूढ है ऐसे तुम्हारे स्वरूपको जानकर इसके अनुसार मैं इस प्रवृत्तिमार्गरूप संसारके विषे आपके अनुग्रहसे विचरण करताहूं ॥ ६२ ॥ रघुपति रामचंद्रजीकी कीर्ति

जानामिकेवलमनंतमचिंत्यशक्तिंचिन्मात्रमक्षरमजंविदितात्मतत्त्वम् ॥ त्वांरामगूढनिजरूपमनुप्रवृत्तोमूढोऽप्यहंभवदनुग्रहतश्चरामि ॥ ॥ ६२ ॥ एवंवदंतमिनवंशपवित्रकीर्तिःकुंभोद्भवंरघुपतिःप्रहसन्वभाषे ॥ मायाश्रितंसकलमेतदनन्यकत्वान्मत्कीर्तनंजगतिपापहरंनिबोध ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीरामवचनंश्रुत्वापरमानंदनिर्भरः ॥ मुनिः प्रोवाचसदसिसर्वेषांतत्रशृण्वताम् ॥ १ ॥ अथवित्तेश्वरोदेवस्तत्रकालेनकेनचित् ॥ आययौपुष्पकारूढःपितरंद्रष्टुमंजसा ॥ २ ॥

संसारमें परमपवित्र है; अगस्त्य मुनिके ऐसा कहनेपर वह प्रभु हँसते २ बोले—हे मुने ! यह सर्व जगत मायाश्रित है कारण कि मुझसे अलग कुछ पदार्थ नहीं है परन्तु मेरे अवतारका मुख्य यही प्रयोजन है कि संसारी लोगोंको मेरी कथा सुननेको मिलनेसे उनके सब पापोंका संहार होजाता है इसकारण हे मुने ! वह कथा वर्णनकरो ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उत्तरकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ रावणका महाउत्पात करना । श्रीमहादेवजी बोले कि;—हे पार्वती ! श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर मुनि अगस्त्यजीको परमानंद प्राप्त हुआ । उन्होंने सभाके सब लोगोंको सुनते हुए वहाँपर इस प्रकारसे कहा ॥ १ ॥ हे राम ! फिर कुछ काल बीतनेपर धनपति देव कुबेर पुष्पकविमानमें बैठकर पिताजीके दर्शनको आये ॥ २ ॥

उनका तेज विलक्षण होनेसे समार्थ्य भी बड़ा था; इनको देखकर कैकसी अपने पुत्रोंके निकट जाय रावणसे बोली ॥ ३॥ हे बालक ! वह देख कुबेर अपने तेजसे कैसा उज्ज्वल दीखता है, तूभी ऐसा यत्न कर कि जिससे कुबेरकी योग्यतासे पहुँचे, तेरे अंगमें सामर्थ्य है इस कारण मुझे जान पड़ता है कि इस कार्यमें तुझे यश मिलैगा ॥ ४ ॥ माताके वचन कानमें पड़ते ही रावण ईर्षापर चढ़ा; उसने तत्कालही प्रतिज्ञा की कि" मैं थोडेही कालमें कुबेरके समान या उससे भी अधिक संपत्तिमान् हूंगा" मैया ! मुझे आशीर्वादकी दृष्टिसे देख; बस सब कार्य होगया. संतापको त्यागदे ॥ ५ ॥ दशानन (रावण) इतना कहकर इच्छितफल लेनेके लिये घोर तपकरनेके अथ दोनों भ्राताओंके साथ गोकर्णक्षेत्रमें गया ॥ ६ ॥ तीनों भ्राता

दृष्ट्वातंकैकसीतत्रभ्राजमानंमहौजसम् ॥ राक्षसीपुत्रसामीप्यंगत्वारावणमब्रवीत् ॥३॥ पुत्रपश्यधनाध्यक्षंज्वलंतंस्वेनतेजसा ॥ त्वमप्येवं यथाभूयास्तथायत्नंकुरुप्रभो ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वारावणोरोषात्प्रतिज्ञामकरोद्द्रुतम् ॥ धनदेनसमोवापिह्यधिकोवाचिरेणतु ॥ ५ ॥ भविष्याम्यंवमांपश्यसंतापंत्यजसुव्रते ॥ इत्युक्त्वादुष्करंकर्तुंतपःसद्दशकंधरः ॥६॥ आगमत्फलसिद्ध्यर्थंगोकर्णंतुसहानुजः ॥ स्वंस्वंनियममास्थायभ्रातरस्तेतपोमहत् ॥ ७ ॥ आस्थितादुष्करंघोरंसर्वलोकैकतापनम् ॥ दशवर्षसहस्राणिकुंभकर्णोऽकरोत्तपः ॥ ८ ॥ विभीषणोऽपिधर्मात्मासत्यधर्मपरायणः ॥ पंचवर्षसहस्राणिपादेनैकेनतस्थिवान् ॥ ९ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंतुनिराहारोदशाननः ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुशीर्षमग्नौजुहावसः ॥ एवंवर्षसहस्राणिनवतस्यातिचक्रमुः ॥ १० ॥ अथवर्षसहस्रेतुदशमेदशमंशिरः ॥ छेत्तुकामस्यधर्मात्माप्राप्तश्चाथप्रजापतिः ॥ वत्सवत्सदशग्रीवप्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ ११ ॥

अपने २ नियमोंका पालन करके बड़ा भारी तप करने लगे। उनके समान घोर तप दूसरेको करना कठिन है; उस तपसे सर्व लोकोंको विलक्षण ताप होने लगा ॥ ७ ॥ कुंभकर्णने दशहजार वर्षतक तप किया धर्मात्मा विभीषणजी सत्य (ब्रह्मचर्यअहिंसा इत्यादि) धर्माचरणमें तत्पर होते हुए ॥ ८ ॥ पांच सहस्र वर्षतक एक पांवसे खड़े रहे। रावणने देवताओंके हजार वर्षतक निराहार रहकर ॥ ९ ॥ सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर अपना एक मस्तकतो काटकर अग्निमें हवन कर दिया ! ऐसे क्रमसे उसको नौ हजार वर्ष बीतगये ॥ १० ॥ जब दशहजार वर्ष बीतगये तौ रावणने दशवें शिरको काटनेका निश्चय किया वह मस्तक काटनाही चाहताथा कि इतनेमें धर्मात्मा प्रजापति (ब्रह्मा) वहां प्राप्त हुए और

रावणसे बोले बालक दशानन ! मैं प्रसन्नहूं ॥ ११ ॥ तू इच्छित वर मांग; मै दंगा ! " यह सुनते ही रावणके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ, वह बोला— ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! जो आप मुझे वर देते हैं तौ मैं अमरता मांगताहूं । गरुड़ सर्प, यक्ष, देवता, तैसेही दैत्य इनमेंसे कोई भी ॥ १३ ॥ मेरा वध न कर सकें यह वर मुझे दो; मनुष्य तो तिनके के समान है उनका मुझे कुछ डर नहीं । ब्रह्माजीने "तथास्तु" कहकर फिर रावणसे कहा ॥ १४ ॥ हे दैत्यवर ! तैंने जिन मस्तकोंको अग्निमें होम दिया है वे फिर पहलेके समान हो जावेंगे । हे सत्पुरुषशिरोमणे ! गरुड़ नागादि जिन जातियोंका तैंने उच्चारण किया है—इन जातियोंसे इनका (तेरे मस्तकोंका नाश) नहीं होगा ॥ १५ ॥ हे रामचंद्र ! प्रजापति ब्रह्माजी भक्तोंपर सदा कृपा

वरंवरयदास्यामियत्तेमनसिकांक्षितम् ॥ दशग्रीवोऽपितच्छ्रुत्वाप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ १२ ॥ अमरत्वंवृणोमीशवरदोयदिमेभवान् ॥ सुपर्णनागयक्षाणांदेवतानांतथासुरैः ॥ अवध्यत्वंतुमेदेहितृणभूताहिमानुषाः ॥ १३ ॥ तथास्त्वितिप्रजाध्यक्षःपुनराहदशाननम् ॥ अग्नौहुतानिशीर्षाणियानितेऽसुरपुंगव ॥ १४ ॥ भविष्यंतियथापूर्वमक्षयाणिचसत्तम ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामदशग्रीवंप्रजापतिः ॥ विभीषणमुवाचेदंप्रणतंभक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ विभीषणत्वयावत्सकृतंधर्मार्थमुत्तमम् ॥ तपस्ततोवरंवत्सवृणीष्वाभिमतंहितम् ॥ १७ ॥ विभीषणोऽपितंनत्वाप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ देवमेसर्वदाबुद्धिर्धर्मेतिष्ठतुशाश्वती ॥ मारोचयत्वधर्मेमेबुद्धिःसर्वत्रसर्वदा ॥ १८ ॥ ततःप्रजापतिःप्रीतोविभीषणमथाब्रवीत् ॥ वत्सत्वंधर्मशीलोऽसितथैवचभविष्यसि ॥ १९ ॥ अयाचितोऽपितेदास्येह्यमरत्वंविभीषण ॥ कुंभकर्णमथोवाचवरंवरयसुव्रत ॥ २० ॥

करतेहैं, वह ऊपर कहे अनुसार रावणको वर दे नम्र हुए विभीषणके पास आये और बोले— ॥ १६ ॥ हे वत्स विभीषण ! तैंने केवल धर्माचरणके उद्देशसे उत्तम तप किया इसकारण मैं प्रसन्न हुआ; हे बालक ! तू इच्छित और हितकारी वर मांग ॥ १७ ॥ विभीषणजी ब्रह्माजीको हाथ जोड़ नमस्कार करके बोले—हे देव ! मेरी बुद्धि सर्वकाल धर्माचरण करनेमें अखंड रहै ! मेरी बुद्धिको किसी स्थानमें भी कैसाही अधर्म न रुचै ॥ १८ ॥ इसके उपरांत प्रजापति संतुष्ट होकर विभीषणसे बोले—हे वत्स ! तुम्हारा स्वभाव सहजसेही धार्मिकहै और तुम आगेको भी ऐसेही होगे ॥ १९ ॥ हे विभीषण ! यद्यपि तुम नहीं मांगते हो तौभी मैं तुम्हैं अमरत्व (मृत्यु न होनेका) वर देताहूं । फिर ब्रह्माजी कुंभकर्णसे बोले तू अपने निय

मको भलीभाँतिसे पालता है, अब वर मांग ! ' ॥ २० ॥ इधर देवताओंने देवी सरस्वतीजीकी प्रार्थना करी कि–इससमय तुम कुंभकर्णके मुखसे ऐसा वर मँगवाओ कि जिससे हमको पीडा न होवै तिस प्रकारही वाणीदेवीने कुंभकर्णको मोह दिलाया और वह ब्रह्माजीसे बोला,– "हेदेव ! मुझको छः महीने भलीभाँति नींद आवै व एक दिन इच्छानुसार भोजन मिले" ॥ २१ ॥ "ब्रह्माजी देवताओंसे तुम्हारा कार्य होगया" ऐसी सूचनाकर कुंभकर्णकी ओर दृष्टि करके बोले;–"अच्छा" (मांगा हुआ वर तुझको दिया) सरस्वती उसके मुखसे निकलकर स्वर्गको गई ॥ २२ ॥ कुंभकर्णका अंतःकरण दुष्ट था अब उसको बुरा लगा; वह अपने आपही विचार करने लगा,–भाग्यका चमत्कार तो देखो ! मनमें न आते हुये भी

वाण्याव्याप्तोऽथतंप्राहकुंभकर्णःपितामहम् ॥ स्वप्स्यामिदेवषण्मासान्दिनमेकंतुभोजनम् ॥ २१ ॥ एवमस्त्वितितंप्राहब्रह्माद्दृष्ट्वा दिवौकसः ॥ सरस्वतीचतद्वक्त्रान्निर्गताप्रययौदिवम् ॥ २२ ॥ कुंभकर्णस्तुदुष्टात्माचिंतयामासदुःखितः ॥ अनभिप्रेतमेवास्यात्किं निर्गतमहोविधिः ॥ २३ ॥ सुमालीवरलब्धांस्ताञ्ज्ञात्वापौत्रान्निशाचरान् ॥ पातालान्निर्भयःप्रायात्प्रहस्तादिभिरन्वितः ॥ २४ ॥ दशग्रीवंपरिष्वज्यवचनंचेदमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यातेपुत्रसंवृत्तोवांछितोमेमनोरथः ॥ २५ ॥ यद्भयाच्चवयंलंकांत्यक्त्वायातारसातलम् ॥ तद्गतंनोमहाबाहोमहद्विष्णुकृतंभयम् ॥ २६ ॥ अस्माभिःपूर्वमुषितालंकेयंधनदेनते ॥ भ्रात्राऽऽक्रांतामिदानींत्वंप्रत्यानेतुमिहार्हसि ॥ ॥ २७ ॥ साम्नावाथबलेनापिराज्ञांवंधुःकुतःसुहृत् ॥ इत्युक्तोरावणःप्राहनार्हस्येवंप्रभाषितुम् ॥ २८ ॥

कैसे वचन मेरे मुखसे निकलगये ! ! ॥ २३ ॥ तीनों नातियोंको वर मिलनेका समाचार सुमालीने सुना; तब निर्भय होता हुआ प्रहस्तादिकोंको साथ ले पातालसे निकला ॥२४॥ और रावणको हृदयसे लगायकर बोला;–"बालक ! बड़े आनंदकी बात हुई कि, मेरी इच्छाके अनुसार तुम्हाराभी मनोरथ पूरा हुआ ॥ २५ ॥ हे महावीरगण ! जिनके डरसे हम लंका छोडकर रसातलको गये, उन विष्णुजीका महाभय अब दूर होगया ॥ २६ ॥ हे रावण! जहांपर पहले हम रहतेथे वह लंकानगरी तुम्हारे भाई कुबेरने अपने अधिकारमें कर रक्खीहै । अब फिर तुम उसको पलट लेलो ॥ २७ ॥ यह काम तुम साम उपायसे करो, या शक्तिके द्वारा सिद्धकरो । अरे ! राज्यके विषय भ्राताका मन शुद्ध कहां?" सुमालीके ऐसा कहनेपर रावण बोला;–

नाना ! आपका मुझसे ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ कारण धनपति (कुबेर) हमारा बड़ा भ्राता अर्थात् गुरुके समान हमारा पूज्य है" यह बात सुनतेही प्रहस्त नम्र होकर दशमुख रावणसे बोले ॥ २९ ॥ हेरावण ! जो मैं कहताहूं वह ध्यान देकर सुन; तेरा ऐसा कहना योग्य नहीं है, तुम राजधर्मको व तैसेही नीतिशास्त्रको नहीं पढ़ेहो ॥ ३० ॥ शूरपुरुषोंमें भायपनकी प्रीति कभी नहीं रहती । हेप्रतापी राक्षस ! मैं कहताहूं वह सुन,—"देव और दैत्य सब कश्यपजीके पुत्रहैं परन्तु वे दोनों महापराक्रमीहैं ॥ ३१ ॥ इसलिये उन्होंने प्रीति छोड हथियारोंसे परस्पर युद्ध किया; हेराजन् ! कुछ आजसेही देवताओंने आपसे वैर नहीं आरंभ कियाहै उनका आपका वैर बहुत प्राचीन कालसे चला आताहै"

वित्तेशोगुरुरस्माकमेवंश्रुत्वातमब्रवीत् ॥ प्रहस्तःप्रश्रितंवाक्यंरावणंदशकंधरम् ॥ २९ ॥ शृणुरावणयत्नेननैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ नाधीताराजधर्मास्तेनीतिशास्त्रंतथैवच ॥ ३० ॥ शूराणांनहिसौभ्रात्रंशृणुमेवदतःप्रभो ॥ कश्यपस्यसुतादेवाराक्षसाश्चमहाबलाः ॥ ३१ ॥ परस्परमयुध्यंतत्यक्त्वासौहृदमायुधैः ॥ नैवेदानींतनंराजन्वैरंदेवैरनुष्ठितम् ॥ ३२ ॥ प्रहस्तस्यवचःश्रुत्वादशग्रीवोदुरात्मनः ॥ तथेतिक्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥३३॥ दूतंप्रहस्तंसंप्रेष्यनिष्कास्यधनदेश्वरम् ॥ लंकामाक्रम्यसचिवैराक्षसैःसुखमास्थितः ॥ ३४ ॥ धनदःपितृवाक्येनत्यक्त्वालंकांमहायशाः ॥ गत्वाकैलासशिखरंतपसातोषयच्छिवम् ॥ ३५ ॥ तेनसख्यमनुप्राप्यतेनैवपरिपालितः ॥ अलकांनगरींतत्रनिर्ममेविश्वकर्मणा ॥ ३६ ॥ दिक्पालत्वंचकारात्रशिवेनपरिपालितः ॥ रावणोराक्षसैःसार्धमभिषिक्तःसहानुजैः ॥३७॥

॥ ३२ ॥ दुष्ट प्रहस्तका रावणने यह वचन सुन 'बहुत ठीकहै' कहा, उसके नेत्र क्रोधके मारे लाल होगये, शीघ्रही वह त्रिकूट पर्वत पर गया ॥ ॥ ३३ ॥ फिर उसने प्रहस्तको अपना दूत बनाकर कुबेरके पास भेजा; व उस कुबेरको लंकासे निकलवा दिया ॥ इस प्रकारसे रावण लंकाको आधीनकर अपने मंत्री राक्षसोंके साथ उसमें सुखसे रहा ॥ ३४ ॥ महाकीर्तिमान् कुबेरजी लंकाको छोड़कर पिताजीकी आज्ञासे कैलासके शिखरपर गये, वहां उन्होंने तपकरके महादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ३५ ॥ उनसे मित्रताकरी, महादेवजी सब भांतिसे उसकी रक्षा करते हैं । फिर उन्होंने विश्वकर्माजीसे अलग नगरी निर्माणकराई ॥ ३६ ॥ अब वह महादेवजी के आश्रयसे अलकामें रहकर दिक्पालका अधिकार चलाते हे ।

रावणको उसके छोटे भ्राताके सहित राक्षसोंने लंकामें अभिषेक किया ॥३७॥ तब वह दुष्ट राक्षसोंका राज्य चलाने लगा, त्रिलोकीको पीड़ादेना उसका व्रत था. उसने अपनी विकराल कालस्वरूपी बहनको कालखंजाके वंशमें उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ एक विद्युज्जिह्व नामक राक्षसको दी। यह निशाचर महाकपटी था। इधर राक्षसोंके विश्वकर्मा व दितिके पुत्र मयने ॥ ३९ ॥ अपनी मन्दोदरीनामक कन्या रावणको दी। इस कन्याके समान सुन्दर कन्या सर्व लोकमें नहीं। मयअसुरने फिर संतुष्ट अंतःकरणसे रावणको अपनी बनाई हुई अमोघ (वृथा न जानेवाली) शक्तिदी ॥ ४० ॥ वैरोचनके कन्याकी वृत्रज्वाला नाम एक कन्या थी; वह उसके पिताने अपने आप कुंभकर्णको दी; रावणने मान्य करके उसका विवाह कुंभकर्णके

राज्यंचकारासुराणांत्रिलोकींबाधयन्खलः ॥ भगिनींकालखंजायददौविकटरूपिणीम्॥३८॥विद्युज्जिह्वायनाम्नासौमहामायीनिशाचरः॥ ततोमयोविश्वकर्माराक्षसानांदितेःसुतः ॥३९॥ सुतांमंदोदरींनाम्नाददौलोकैकसुंदरीम् ॥ रावणायपुनःशक्तिममोघांप्रीतमानसः ॥ ४० ॥ वैरोचनस्यदौहित्रींवृत्रज्वालेतिविश्रुताम् ॥ स्वयंदत्तामुदवहत्कुंभकर्णायरावणः ॥ ४१ ॥ गंधर्वराजस्यसुतांशैलूषस्यमहात्मनः ॥ विभीषणस्यभार्यार्थेधर्मज्ञांसमुदावहत् ॥ ४२ ॥ सरमांनामसुभगांसर्वलक्षणसंयुताम् ॥ ततोमंदोदरीपुत्रंमेघनादमजीजनत् ॥ ४३ ॥ जातमात्रस्तुयोनादंमेघवत्प्रमुमोचह ॥ ततःसर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमितिचासकृत् ॥ ४४ ॥ कुंभकर्णस्ततःप्राहनिद्रामांबाधतेप्रभो ॥ ततश्चकारयामासगुहांदीर्घांसुविस्तराम् ॥ ४५ ॥ तत्रसुष्वापमूढात्माकुंभकर्णोविघूर्णितः ॥ निद्रितेकुंभकर्णेतुरावणोलोकरावणः ॥ ४६ ॥

साथ किया ॥ ४१ ॥ वैसेही उसने शैलूष नामक महात्मा गंधर्वराजकी कन्या विभीषणकी पत्नी करदी; यह कन्या धर्ममार्गको जानतीथी ॥ ४२ ॥ इसका नाम सरमा था; यह बड़े भाग्यवाली होनेसे सब लक्षण सम्पन्न थी फिर 'मन्दोदरीके मेघनाद' नामक पुत्र हुआ ॥ ४३ ॥ उसने जन्मतेही मेघके समान गर्जना करी, इस कारण सर्व लोक उसको वारंवार मेघनाद कहनेलगे। फिर उसका यही नाम पड़ गया ॥ ४४ ॥ फिर कुंभकर्णने रावणसे कहा कि–हे प्रभो। मुझको नींदने बहुत त्रास दिया है (निश्चिन्ताईसे सोनेको कहीं स्थान नहीं था स्थान २ पर राक्षसोंका कलकलाहट होताथा) इस कारण रावणने उसके लिये एक लंबी चौड़ी विस्तीर्ण गुहा तैयार कराई ॥ ४५ ॥ मूढमति कुंभकर्ण

उस गुहामें आनन्दसे सोता हुवा, कुम्भकर्णके निद्रित होनेपर लोकोंके रुवानेवाले रावणने ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण, बड़े २ ऋषि, देव, दानव, किन्नर, मनुष्य, बडे २ सर्प इन सबोंको मारा; और देवताओंकी सम्पत्ति लूटलिया ॥ ४७ ॥ कुबेरजीने सुना कि रावण देवताओंके साथ अन्याय करता है; तब उन प्रभुने दूतके मुखसे " अधर्म नहीं करना चाहिये " ऐसे अनेक संदेशे जतायकर उसको निषेध किया ॥ ४८ ॥ तब रावण क्रोधित होकर कुबेरकी नगरीपर चलाआया उसने धनपतिको जीतकर उनका उत्तम पुष्पक विमान छीन लिया ॥ ४९ ॥ फिर वह दैत्य संग्राममें यम और वरुणको जीत इन्द्रके मारनेकी इच्छासे शीघ्रही स्वर्गको गया ॥ ५० ॥ वहांपर देवताओंके साथ इन्द्रसे उसका घोर युद्ध हुआ ।

ब्राह्मणान्नृषिमुख्यांश्चदेवदानवकिन्नरान् ॥ देवश्रियोमनुष्यांश्चनिजघ्नेसमहोरगान् ॥ ४७ ॥ धनदोऽपिततःश्रुत्वारावणस्याक्रमंप्रभुः ॥ अधर्मंमाकुरुष्वेतिदूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥ ४८ ॥ ततःक्रुद्धोदशग्रीवोजगामधनदालयम् ॥ विनिर्जित्यधनाध्यक्षंजहारोत्तमपुष्पकम् ॥ ॥ ४९ ॥ ततोयमंचवरुणंनिर्जित्यसमरेऽसुरः ॥ स्वर्गलोकमगात्तूर्णंदेवराजजिघांसया ॥ ५० ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धमिंद्रेणसहदैवतैः ॥ ततोरावणमभ्येत्यबबंधत्रिदशेश्वरः ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वासहसागत्यमेघनादःप्रतापवान् ॥ कृत्वाघोरंमहद्युद्धंजित्वात्रिदशपुंगवान् ॥५२॥ इंद्रंगृहीत्वाबद्ध्वासौमेघनादोमहाबलः ॥ मोचयित्वातुपितरंगृहीत्वेंद्रंययौपुरम् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मातुमोचयामासदेवेंद्रंमेघनादतः ॥ दत्त्वा वरान्बहूंस्तस्मैब्रह्मास्वभवनंययौ ॥ ५४ ॥ रावणोविजयीलोकान्सर्वाञ्जित्वाक्रमेणतु ॥ कैलासंतोलयामासबाहुभिःपरिघोपमैः॥५५॥ तत्रनंदीश्वरेणैवंशप्तोऽयंराक्षसेश्वरः ॥ वानरैर्मानुषैश्चैवनाशंगच्छेतिकोपिना ॥ ५६ ॥

फिर इन्द्रने रावणपर आयकर उसको बाँध लिया ॥ ५१ ॥ यह बात मेघनादने सुनी; तब वह प्रतापी वीर शीघ्रही इधरको निकल आया । उसने भयंकर महायुद्ध करके बडे २ देवताओंको पराजितकर ॥ ५२ ॥ इन्द्रको पकड बाँध लिया, फिर वह महासमर्थ मेघनाद पिताको छुड़ाय इन्द्रको ले अपनी नगरीको लौटकर आया ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने इन्द्रको मेघनादके हाथसे छुडाया—इन्द्रको छुड़ानेके बदलेमें उस (मेघनाद) को अनेक वर देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको गये ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त विजयशाली रावणने क्रम २ से सर्व लोक जीत फिर अपनी परिघतुल्य बाँहोंसे कैलास पर्वतको उखाड़ा ॥ ५५ ॥ महादेवजीका वासस्थान हालनेसे नंदिकेश्वरको क्रोध आया; तत्काल उन्होंने राक्षसराजको शाप दिया कि—

'तेरा नाश वानर और मनुष्योंके हाथसे होगा' ॥ ५६ ॥ ऐसा शाप मिलनेपर उस शापको कुछ न गिन रावण हैहय राजा (सहस्रार्जुन) के नगरमें गया। सहस्रार्जुनने रावणको बांध लिया वहांपर उसको पुलस्त्यजीने छुडाया ॥ ५७ ॥ अनंतर रावण पहलेसे भी अधिक बलका गर्व कर वानरराजके मारनेकी इच्छासे चलागया, परन्तु उस रावणको वालीने बगलमें दाब लिया ! ॥ ५८ ॥ फिर उस वानरने रावणको चारों समुद्रोंपर घुमाय फिरायकर छोड़ दिया। वालीका पराक्रम निहार रावणने परमसंतुष्ट हो उसके साथ मित्रता करली ॥ ५९ ॥ हे राम ! इस प्रकारका वह महापराक्रमी रावण सर्व लोकोंको वशमें कर आप ही उनके भोग भोगता हुआ ॥ ६० ॥ हे राजाधिराज ! रावणका प्रभाव ऐसा वि

शप्तोऽप्यगणयन्वाक्यंययौहैहयपत्तनम् ॥ तेनबद्धोदशग्रीवःपुलस्त्येनविमोचितः ॥ ५७ ॥ ततोऽपिनलमासाद्यजिघांसुर्हरिपुंगवम् ॥ धृतस्तेनैवकक्षेणवालिनादशकंधरः ॥ ५८ ॥ भ्रामयित्वातुचतुरःसमुद्रान्रावणंहरिः ॥ विसर्जयामासततस्तेनसख्यंचकारसः॥ ५९ ॥ रावणःपरमप्रीतएवंलोकान्महाबलः ॥ चकारस्ववशेरामबुभुजेस्वयमेवतान् ॥ ६० ॥ एवंप्रभावोराजेंद्रदशग्रीवःसहेंद्रजित् ॥ त्वयावि निहतःसंख्येरावणोलोकरावणः ॥ ६१ ॥ मेघनादश्चनिहतोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ कुंभकर्णश्चनिहतस्त्वयापर्वतसन्निभः ॥६२॥ भवान्नारायणःसाक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः ॥ त्वत्स्वरूपमिदंसर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥६३॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नोब्रह्मालोकपितामहः ॥ अग्निस्तेमुखतोजातोवाचासहरघूत्तम ॥६४॥ बाहुभ्यांलोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यांचंद्रभास्करौ ॥ दिशश्चविदिशश्चैवकर्णाभ्यांतेसमुत्थिताः ॥६५॥

लक्षण था। उसके पुत्रकी ' बापसे बेटा सवाया है ! ' कहावत हुई. कारण त्रिलोकीमें विख्यात शूर ऐसे पिता (रावण को) जिसने बांध लिया उस इन्द्रको इस पुत्रने जीता; परन्तु हे राम ! लोकमें गर्जते हुए रावणका आपने संग्राममें वध किया ॥ ६१ ॥ महापराक्रमी लक्ष्मणजीने मेघनादको मारा; तैसेही पर्वतके समान प्रचंड कुम्भकर्णने आपके हाथसे मृत्युपाई। बहुत अच्छा हुआ ॥ ६२ ॥ आप जगतके आदिकार्ते व्यापक साक्षात् नारायण हैं, यह स्थावरजंगमात्मक समस्त जगत् आपका स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोकोंके पितामह ब्रह्माजी आपके नाभि कमलसे जन्मे हैं; हे रघुवीर ! वाणीसहित अग्नि आपके मुखसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ लोकपालोंके समुदाय बाहोंसे, चंद्र सूर्य नेत्रोंसे और मुख्य दिशा

व अवान्तर दिशा आपके कानोंसे उत्पन्न हुईं ॥ ६५ ॥ तुम्हारी नासिकासे प्राण व श्रेष्ठ देवता अश्विनीकुमार जन्मे तुम्हारी जांघ, जानु, ऊरु जघन इन अंगोंसे भुवर्लोकादिकी उत्पत्ति हुई है ॥ ६६ ॥ हे भक्तसंकटनाशन ! तुम्हारे उदरसे चार समुद्र उत्पन्न हुए, स्तनोंसे इन्द्र व वरुण और वीर्यसे बालखिल्य हुए ॥ ६७ ॥ तुम्हारे उपस्थ 'लिंग' से यम; गुदासे मृत्यु व क्रोधसे त्रिनेत्र शंकर जन्मे; अस्थियोंसे पर्वत हुए व केशोंसे मेघमंडल उत्पन्न हुआ ॥ ६८ ॥ आपके रोमोंसे औषधि नखोंसे गर्दभादि योनि जन्मीं आप माया नामक शक्तिको स्वीकार करके सकल जगद्रूपी विराट् पुरुष बनते हैं ॥ ६९ ॥ व गुणोंके न्यूनाधिक भावसे मिलनेपर विविधरूपी दिखाई देते हो; आपके आधारसे देवता लोग यज्ञमें अमृतपान करते हैं

घ्राणात्प्राणःसमुत्पन्नश्चाश्विनौदेवसत्तमौ ॥ जंघाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥ ६६ ॥ कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारःसागराहरे ॥ स्तनाभ्यामिंद्रवरुणौवालखिल्याश्चरेतसः ॥ ६७ ॥ मेढ्राद्यमोगुदान्मृत्युर्मन्योरुद्रस्त्रिलोचनः ॥ अस्थिभ्यःपर्वताजाताःकेशेभ्योमेघसंहतिः ॥ ६८ ॥ ओषध्यस्तवरोमभ्योनखेभ्यश्चखरादयः ॥ त्वंविश्वरूपःपुरुषोमायाशक्तिसमन्वितः ॥ ६९ ॥ नानारूपइवाभासिगुणव्यतिकरेसति ॥ त्वामाश्रित्यैवविबुधाःपिबंत्यमृतमध्वरे ॥ ७० ॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वंविश्वंस्थावरजंगमम् ॥ त्वामाश्रित्यैवजीवंति सर्वेस्थावरजंगमाः ॥ ७१ ॥ त्वद्युक्तमखिलंवस्तुव्यवहारेऽपिराघव ॥ क्षीरमध्यगतंसर्पिर्यथाव्याप्याखिलंपयः ॥ ७२ ॥ त्वद्भासाभासतेऽर्कादिनत्वंतेनावभाससे ॥ सर्वगंनित्यमेकंत्वांज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥ ७३ ॥ नाज्ञानचक्षुस्त्वांपश्येदंधदृग्भास्करंयथा ॥ योगिनस्त्वांविचिन्वंतिस्वदेहेपरमेश्वरम् ॥ ७४ ॥

॥ ७० ॥ आपने ही यह स्थावर जंगमात्मक सारा संसार बनाया है । आपकेही आश्रयसे स्थावर जंगमात्मक सर्व प्राणी जीवन पाते हैं ॥ ७१ ॥ हे राघव ! परन्तु व्यवहारके विषे सब वस्तु आपसे युक्त हैं । क्योंकि उनमें आपकी सत्ता और भासना यह आपका धर्म मिला हुआ है । जिस प्रकार दूधमें रहा हुआ घी सब दूधसे व्याप्त रहाहै, तैसेही आप सर्व जगत्‌में व्याप रहेहैं ॥ ७२ ॥ सूर्य चंद्रादि सर्व आपके प्रकाशसे प्रकाश पाते हैं, कुछ आप उनसे प्रकाशित नहीं होते हैं; जिस पुरुषको ज्ञानदृष्टि प्राप्त होगई वह आपको सर्वव्यापी, नित्य, एकस्वरूप देखता है ॥ ७३ ॥ जैसे अंधको सूर्य नहीं दीखता; ऐसेही जिस मनुष्यको ज्ञानदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उसको आपका दर्शन नहीं मिलता । हे परमेश्वर ! योगी पुरुष रात दिन अपने

शरीरमें आपको खोजते हैं। खोजनेके साधन वेदोंके शिरोभाग (उपनिषद्) हैं ब्रह्मरूप हित होनेसे उसका वर्णन नहीं किया जाता; इसकारण वेदोंने 'अमुक ब्रह्म' नहीं है—इस प्रकारसे सारे संसारका निषेध कर इससे आपका बोध किया है ॥ ७४ ॥ खोजनेवाले योगियोंके मनमें तुम्हारे चरणोंके मध्य जो कुछभी भक्ति होती है; तो उनको आपके चैतन्यरूपका दर्शन मिलता है अन्यथा किसी प्रकार नहीं मिलता ॥ ७५ ॥ हे देवाधिदेव ! मैंने आपके आगे अपनी मतिके अनुसार जो कुछ कहा; है सो आप मुझको क्षमा करैं। कारण कि हे राम ! मैं आपके अनुग्रहका पात्रहूं ॥ ७६ ॥ मैं रामचंद्रजीका भजन करताहूं। उनको दिशा, देश, किंवा काल, नहीं लगता (वह अमुक दिशामें, अमुक देशमें अमुक वेलामें मिलता है; ऐसा निर्बन्ध नहीं है) उससे अलग कोई नहीं है; परन्तु वह एक ज्ञानरूप है; उसको विकार जन्म किंवा चलनादि क्रिया नहीं है, वह सर्वज्ञ,

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ॥ त्वत्पादभक्तिलेशेनगृहीतायदियोगिनः ॥ ७५ ॥ विचिन्वंतोहिपश्यंतिचिन्मात्रंत्वांनचान्यथा ॥ मयाप्रलपितंकिंचित्सर्वज्ञस्यतवाग्रतः ॥ क्षंतुमर्हसिदेवेशतवानुग्रहभागहम् ॥ ७६ ॥ दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकंचिन्मात्रमक्षरमजं चलनादिहीनम् ॥ सर्वज्ञमीश्वरमनंतगुणंव्युदस्तमायंभजेरघुपतिंभजतामभिन्नम् ॥ ७७ ॥ इतिश्रीम०रा०उत्तरकांडेद्वितीयःसर्गः ॥२॥ श्रीरामउवाच ॥ वालिसुग्रीवयोर्जन्मश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ रवींद्रौवानराकारौजज्ञातेइतिनःश्रुतम् ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृंगेमणिप्रभे ॥ तस्मिन्सभाऽऽस्तेविस्तीर्णाब्रह्मणःशतयोजना ॥२॥ तस्यांचतुर्मुखःसाक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः॥ नेत्राभ्यांपतितंदिव्यमानंदसलिलंवहु ॥ ३ ॥

सर्वशक्ति है; उसके गुणोंका अंत नहीं लगता; उसने माया दूर रक्खी है भक्तजनोंकी बुद्धिसे वह अभिन्न (अपनेसे अलग नहीं) ज्ञात होता है॥७७॥ इ० श्रीम० उमा० भाषा० द्वितीयः सर्गः ॥२॥ वालि सुग्रीवका जन्म ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले;—"हे मुने! वालि और सुग्रीवके जन्मको यथार्थ रीतिसे श्रवण करनेकी मैं इच्छा रखताहूं; कारण कि सूर्य और इंद्र दोनों, वानरोंके आकारमें हुए हैं, ऐसा मैंने सुना है" ॥ १ ॥ अगस्त्यमुनि बोले; हे राम ! वह इस प्रकारसे है—सुनो सुवर्णमय मेरु पर्वतके मस्तकपर मध्यभागमें रत्नोंकरके चमकीला दिखाई देनेवाला एक शिखर है। उसपर ब्रह्माजीकी एक शतयोजन विशाल सभा है ॥ २ ॥ एकसमय उस सभामें साक्षात चतुर्मुख (ब्रह्माजी) ध्यानमें बैठेथे, उससमय उनके

दोनों नेत्रोंसे बहुतसे दिव्य आनंदाश्रु गिरे ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने उनको हाथमें लेकर कुछ देरतक विचार किया और फिर उन्हें पृथ्वीपर डालदिया पृथ्वीपर गिरतेही इन आँसुओंसे एक बड़ा वानर उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने उससे कहा "बालक ! कुछ कालतक यहां मेरे निकट रह ! इस स्थानमें सर्व संपत्ति भरी हुई है। यहां रहनेसे तेरा कल्याण होगा" ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा पाय वह वानरश्रेष्ठ वहांपर रहा। इस बातको बहुत दिन बीत गये। फिर एक दिन वह महाबुद्धिमान् वानरनाथ फलमूल लेनेके लिये उद्योग करता हुआ ॥ ६ ॥ पर्वतपर फिरताथा, वहांपर रत्नशिलाओंसे बांधी हुई व दिव्यजलसे भरी हुई एक बावलीको उसने देखा ॥ ७ ॥ उसमें पानी पीनेको गया; तौ जलमें उसको एक छायामय

तद्गृहीत्वाकरेब्रह्माध्यात्वाकिंचित्तदत्यजत् ॥ भूमौपतितमात्रेणतस्माज्जातोमहाकपिः ॥ ४ ॥ तमाहद्रुहिणोवत्सकिंचित्कालंवसात्रमे ॥ समीपेसर्वशोभाढ्येततःश्रेयोभविष्यति ॥ ५ ॥ इत्युक्तोन्यवसत्तत्रब्रह्मणावानरोत्तमः ॥ एवंबहुतिथेकालेगतेऋक्षाधिपःसुधीः ॥ ६ ॥ कदाचित्पर्यटन्नद्रौफलमूलार्थमुद्यतः ॥ अपश्यद्दिव्यसलिलांवापींमणिशिलान्विताम् ॥७॥ पानीयंपातुमागच्छत्तत्रच्छायामयंकपिम्॥ दृष्ट्वाप्रतिकपिंमत्वानिपपातजलांतरे ॥ ८ ॥ तत्राहृष्ट्वाहरिंशीघ्रंपुनरुत्प्लुत्यवानरः ॥ अपश्यत्सुंदरींरामामात्मानंविस्मयंगतः ॥ ९ ॥ ततः सुरेशोदेवेशंपूजयित्वाचतुर्मुखम् ॥ गच्छन्मध्याह्नसमयेदृष्ट्वानारींमनोरमाम् ॥ १० ॥ कंदर्पशरविद्धांगस्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम् ॥ तामप्राप्यैवतद्बीजंवालदेशेपतद्भुवि ॥ ११ ॥ वालीसमभवत्तत्रशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ तस्यदत्त्वासुरेशानःस्वर्णमालांदिवंगतः ॥ १२ ॥ भानुरप्यागतस्तत्रतदानीमेवभामिनीम् ॥ दृष्ट्वाकामवशोभूत्वाग्रीवादेशेऽसृजन्महत् ॥ १३ ॥

वानर (इसकी परछांई) देखा, उसको दूसरा वानर समझकर यह पानीमें कूद पड़ा ॥ ८ ॥ वहाँ वानर मिला, तब यह शीघ्रही बाहर आयकर देखता है; तौ वानररूपके बदले अपनेको सुन्दर स्त्रीके रूपमें देख यह महा आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ फिर इन्द्रजी मध्याह्न समयमें देवादिदेव ब्रह्माजीकी पूजाकरके लौट रहेथे, इतनेहीमें यह मनोरम स्त्री उन्होंने देखी ॥ १० ॥ मदनके बाणोंसे इन्द्रका शरीर इस स्त्रीने जर्जर करदिया तब इनका वीर्य स्खलित हुआ। वह वीर्य उस स्त्रीके बाल (केश) प्रदेश पर लगकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ११ ॥ तौ उससे तिसी स्थानमें इन्द्रके समान पराक्रमी वाली उत्पन्न हुआ, इन्द्रजी उस बालकको सुवर्णकी माला देकर स्वर्गलोकको गये ॥ १२ ॥ तिसीसमय सूर्यभी वहांपर आये और

उस स्त्रीको देखकर कामवश होगये । उन्होंने अपना उग्र वीर्य उसकी ग्रीवा (गर्दन) पर छोड़ा ॥ १३ ॥ तिससे शीघ्रही एक बड़ा शरीरवाला वानर जन्मा । यह सुग्रीव था । हनुमान्‌जीको उसकी सहायताके अर्थ देकर सूर्य चले गये ॥ १४ ॥ वह स्त्री उन दोनों पुत्रोंको कहीं लेजायकर सोरही, सबेरे उठकर उसने अपने शरीरको पहलेके समान (.वानरके समान) हुआ देखा ॥ १५ ॥ फिर वह महाबुद्धिमान् ऋक्षाधिपति वानर फल मूलादि ले उन दोनों पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीकी सभामें आया और ब्रह्माजीको नमस्कार कर आगे खड़ा रहा ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने उस महावानरको बहुत भाँतिसे समझाया बुझाया और वहांपर एक देवतुल्य देवदूतको हाँक मारकर कहा ॥ १७ ॥ "हे दूत ! मेरी आज्ञासे

वीजंतस्यास्ततःसद्योमहाकायोऽभवद्धरिः ॥ तस्यदत्त्वाहनूमंतंसहायार्थंगतोरविः ॥ १४ ॥ पुत्रद्वयंसमादायगत्वासानिद्रिताक्वचित् ॥ प्रभातेऽपश्यदात्मानंपूर्ववद्वानराकृतिम् ॥१५॥ फलमूलादिभिःसार्धंपुत्राभ्यांसहितःकपिः ॥ नत्वाचतुर्मुखस्याग्रेऋक्षराजःस्थितःसुधीः ॥ १६ ॥ ततोब्रवीत्समाश्वास्यबहुशःकपिकुंजरम् ॥ तत्रैकंदेवतादूतमाहूयामरसान्निभम् ॥ १७ ॥ गच्छदूतमयादिष्टोगृहीत्वावानरोत्तमम् ॥ किष्किंधांदिव्यनगरींनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ १८ ॥ सर्वसौभाग्यवलितांदेवैरपिदुरासदाम् ॥ तस्यांसिंहासनेवीरंराजानमभिषेचय ॥ १९ ॥ सप्तद्वीपगतायेयेवानराःसंतिदुर्जयाः ॥ सर्वेतेऋक्षराजस्यभाविष्यंतिवशेऽनुगाः ॥ २० ॥ यदानारायणःसाक्षाद्रामोभूत्वा सनातनः ॥ भूभारासुरनाशायसंभविष्यतिभूतले ॥ २१ ॥ तदासर्वेसहायार्थेतस्यगच्छंतुवानराः ॥ इत्युक्तोब्रह्मणादूतोदेवानांसमहामतिः ॥ २२ ॥

किष्किन्धामें जा । विश्वकर्माने वह नगरी इसहीके लिये बनाइ है ॥ १८ ॥ तिसमें सब ऐश्वर्य भरे हुए हैं; वह देवताओंकोभी हाथ आनी कठिन है; इसवीर राजाको उस नगरीमें राज्यसिंहासनपर बैठाय राज्याभिषेक कर ॥ १९ ॥ सातद्वीपोंमें जो दुर्जय वानर हैं;—वे समस्त इन वानरराजके अंकित व सेवक होकर रहेंगे ॥ २० ॥ जब साक्षात् सनातन नारायण पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंका नाश करनेके लिये पृथ्वी पर अवतार लेंगे ॥ २१ ॥ तिस समय उनकी सहायता करनेको सारे वानर जायँगे" । ब्रह्माजीके यह कहनेपर वह महाबुद्धिमान् देवदूत वानरोंको

साथले वहांसे निकला ॥ २२ ॥ देवदूतने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार उस वानरराजकी व्यवस्था की (उसका किष्किन्धामें राज्याभिषेक किया) और फिर जायकर वह समाचार ब्रह्माजीको सुनाया। तबसे वह किष्किन्धा नगरी वानरोंकी राजधानी हुई । हे राम ! सर्वेश्वर तुम्हींहो; ब्रह्माजीने तुम्हारी प्रार्थना कीथी, इसलिये अब ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपनी लीलासे यह मनुष्यरूप धारण करकै पृथ्वीका भार सारा उतारा । जो सर्व प्राणियोंके अंतरमें रहताहै, जो नित्यमुक्त व ज्ञानस्वरूपीह और जिसका रूप अखंड आनंदसे भराहुआहै; उस ईश्वरका (तुम्हारा) इसमें क्या पराक्रम है ? (अर्थात् यह कार्य तुम्हारे लिये कुछ भारी नहींहै) ॥ २५ ॥ तथापि सत्पुरुष, सर्व लोकोंके पाप नष्ट होने और उनको

यथाज्ञप्तस्तथाचक्रेब्रह्मणातंहरीश्वरम् ॥ देवदूतस्ततोगत्वाब्रह्मणेतान्निवेदयत् ॥ २३ ॥ तदादिवानराणांसाकिष्किंधाऽभून्नृपाश्रयः ॥ सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानींब्रह्मणार्थितः ॥ २४ ॥ भूमेर्भारोहृतःकृत्स्नस्त्वयालीलानृदेहिना ॥ सर्वभूतांतरस्थस्यनित्यमुक्तचिदात्मनः ॥ ॥ २५ ॥ अखंडानंदरूपस्यकियानेषपराक्रमः ॥ तथापिवर्ण्यतेसाद्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥ २६ ॥ यशस्तेसर्वलोकानांपापहत्यैसुखाय च ॥ यइदंकीर्तयेन्मर्त्योवालिसुग्रीवयोर्महत् ॥ २७ ॥ जन्मत्वदाश्रयत्वात्ससुच्यतेसर्वपातकैः ॥ अथान्यांसंप्रवक्ष्यामिकथांरामत्वदाश्रयाम् ॥२८॥ सीताहृतायदर्थंसारावणेनदुरात्मना ॥ पुराकृतयुगेरामप्रजापतिसुतंविभुम्॥२९॥सनत्कुमारमेकांतेसमासीनंदशाननः॥ विनयावनतोभूत्वाह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ कोन्वस्मिन्प्रवरोलोकेदेवानांबलवत्तरः ॥ देवाश्चयंसमाश्रित्ययुद्धेशत्रुंजयंतिहि ॥३१॥

सुख प्राप्त होनेके लिये, आपकी लीलासे स्वीकार कियेहुए मनुष्यरूपकी कीर्तिका वर्णन किया जाताहै ॥ २६ ॥ वालि और सुग्रीव यह दोनों महाअवतार आपकी सहायता करनेको हुए, जो मनुष्य इनकी जन्मकथाके आख्यानको बांचेगा; वह सर्व पापसे छूटजावैगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राम ! अब आपके विषयकी एक दूसरी कथा कहताहूं, दुष्ट रावणके द्वारा सीताजीके चरानेका कारण इस प्रकार है॥ २९॥ हे राम ! पहले सतयुगमें एक समय ब्रह्माजीके मानस पुत्र सनत्कुमार एकांतमें बैठेथे; रावणने नम्रतापूर्वक नमस्कारकरकै उनसे प्रश्न किया कि ॥ ३० ॥ "हे मुने ! देवता लोग जिसके आधारसे संग्राममें शत्रुको जीतते हैं, वह महा बलवान् श्रेष्ठ देवता इस लोकमें कौन है ? ॥ ३१ ॥

प्रतिदिन ब्राह्मण किसकी आराधना करते हैं ? और योगी किसका ध्यान करते हैं ? ॥ हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ हैं अर्थात् आप सब प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर जानते हैं । इसकारण मेरे इस प्रश्नका उत्तर मुझसे कहिये" ॥ ३२ ॥ सनत्कुमारने अपनी योगदृष्टिसे रावणके मनकी बात जानकर उसको उत्तर दिया;— " बालक ! कहताहूं सुन ! ॥ ३३ ॥ जो नित्य जगकापालन पोषण करताहै उसका जन्म मृत्यु नहीं, देवता, दैत्य सदा जिसकी स्तुति करतेहैं उन निर्विकार ईश्वरकी हरि, नारायण संज्ञा है ॥ ३४ ॥ जिसने यह सारा स्थावर–जंगममय जगत् बनाया; वह सृष्टिकर्त्ताके पति ब्रह्माजी उन नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ देवता आश्रय करके युद्धमें शत्रुको जीतते हैं व योगी ध्यान योगसे उनकाही चिंतन करते हैं" ॥ ३६ ॥

कंयजंतिद्विजानित्यंकंध्यायंतिचयोगिनः ॥ एतन्मेशंसभगवन्प्रश्नंप्रश्नविदांवर ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वातस्यहृदिस्थंयत्तदशेषेणयोगदृक् ॥ दशाननमुवाचेदंशृणुवक्ष्यामिपुत्रक ॥ ३३ ॥ भर्तायोजगतांनित्यंयस्यजन्मादिकंनहि ॥ सुरासुरैर्नुतोनित्यंहरिर्नारायणोऽव्ययः ॥३४॥ यन्नाभिपंकजाज्जातोब्रह्माविश्वसृजांपतिः ॥ सृष्टंयेनैवसकलंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३५ ॥ तंसमाश्रित्यविबुधाजयंतिसमरेरिपून् ॥ योगिनोध्यानयोगेनतमेवानुजपंतिहि ॥ ३६ ॥महर्षेर्वचनंश्रुत्वाप्रत्युवाचदशाननः ॥ दैत्यदानवरक्षांसिविष्णुनानिहतानिच ॥ ३७ ॥ कांवागतिंप्रपद्यंतेप्रेत्यतेमुनिपुंगव ॥ तमुवाचमुनिश्रेष्ठोरावणंराक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ दैवतैर्निहतानित्यंगत्वास्वर्गमनुत्तमम् ॥ भोगक्षयेपुनस्तस्माद्भ्रष्टाभूमौभवंतिते ॥ ३९ ॥ पूर्वार्जितैःपुण्यपापैर्म्रियंतेचोद्भवंतिच ॥ विष्णुनायेहतास्तेतुप्राप्नुवंतिहरेर्गतिम् ॥ ४० ॥

महर्षिके वचन सुनकर फिर रावणने प्रश्न किया,—"हे मुनिवर ! दैत्य, दानव व राक्षस विष्णुजीके हाथसे मरकर ॥ ३७ ॥ परलोकमें किस गतिको प्राप्त होते हैं" । श्रेष्ठ मुनिने राक्षसनाथ रावणको उत्तर दिया ॥ ३८ ॥ " इतर (साधारण) देवताओंके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो दैत्यादिक उत्तम स्वर्गलोकको जातेही हैं, परन्तुवह नित्य स्वर्गमें नहीं रहते वहांके भोग भोगनेकी मर्यादा पूरी हुई, कि वे कीर्तिभ्रष्ट होकर फिर पृथ्वीपर जन्म लेते हैं ॥ ३९ ॥ वे पूर्व जन्ममें किये हुए पाप पुण्यके अनुरोधसे मरण पाते और जन्म लेते हैं और विष्णुजीके हाथसे जिनकी मृत्यु होती है; वेही

विष्णुपद (मुक्ति) को प्राप्त होते हैं " ॥ ४० ॥ मुनिके मुखसे यह वचन सुन रावण हर्षित हो यह विचार करने लगा कि, विष्णुजीके हाथसे युद्धकर मरूंगा,—परन्तु वह प्रसंग कैसे बने ॥ ४१ ॥ महामुनिने उसके मनकी बात जानकर कहा—, " हे बालक ! तेरी इच्छाके अनुसार होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ४२ ॥ कुछ दिनतक बाट देख, हे दशानन ! सुखी रह ! (विष्णुजीके हाथसे मरण पायकर सखसे रहैगा) " हे महावीर ! (रामचंद्र !) ऐसा कहकर सनत्कुमार मुनि फिर उससे बोले ॥ ४३ ॥ ' हे रावण ! वास्तवमें विष्णुजीका रूप नहीं; परन्तु वह मायाकरकै रूप धारण करते हैं; मैं उनका स्वरूप तुमसे कहताहूं वे सर्व स्थावर पदार्थोंमें नद व नदियोंमें भर रहे हैं ॥ ४४ ॥ ओंकार (सर्ववाणी) सत्यवचन, गायत्री

श्रुत्वामुनिमुखात्सर्वंरावणोहृष्टमानसः ॥ योत्स्येऽहंहरिणासार्धमितिचिंतापरोभवत् ॥४१॥ मनःस्थितंपरिज्ञात्वारावणस्यमहामुनिः ॥ उवाचवत्सतेऽभीष्टंभविष्यतिनसंशयः ॥४२॥ कंचित्कालंप्रतीक्षस्वसुखीभवदशानन ॥ एवमुक्त्वामहाबाहोमुनिःपुनरुवाचतम् ॥४३॥ तस्यस्वरूपंवक्ष्यामिह्यरूपस्यापिमायिनः ॥ स्थावरेषुचसर्वेषुनदेषुचनदीषुच ॥४४॥ ओंकारश्चैवसत्यंचसावित्रीपृथिवीचसः ॥ समस्त जगदाधारःशेषरूपधरोहिसः ॥ ४५॥ सर्वेदेवाःसमुद्राश्चकालःसूर्यश्चचंद्रमाः ॥ सूर्योदयोदिवारात्रीयमश्चैवतथाऽनिलः ॥४६॥ अग्निरिं द्रस्तथामृत्युःपर्जन्योवसवस्तथा ॥ ब्रह्मारुद्रादयश्चैवयेचान्येदेवदानवाः ॥ ४७ ॥ विद्योततिज्वलत्येषपातिचात्तीतिविश्वकृत् ॥ क्रीडां करोत्यव्ययात्मासोऽयंविष्णुःसनातनः ॥ ४८ ॥ तेनसर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामोविद्युद्वर्णांबरावृतः॥४९॥

पृथ्वी यह सब उनकाही रूप है। वह शेष सर्पके रूपसे सर्व जगत्के आधार हो रहेहैं ॥ ४५ ॥ सर्व देव, समुद्र, काल, सूर्य, चंद्र चंद्रोदय दिन रात, याम, तैसेही वायु ॥ ४६ ॥ अग्नि, मृत्यु, इंद्र, मेघ, वसु, ब्रह्मा, रुद्र, इत्यादि और जो दूसरे देवता व दैत्य हैं, वे सब उनके ही रूप हैं॥ ४७॥ वही सृष्टिकर्ता ईश्वर प्रकाश स्वरूप हैं; ज्वलन करता है, रक्षा करता है, व लय करता है (सूर्य अग्नि इत्यादि देवताओंमें प्रकाश प्रज्वलन इत्यादि शक्ति है; वह इनकी ही है) वह यह सर्व व्यवहार लीलाके समान सहजसेही करता है। वास्तवमें उन विष्णुजीका स्वरूप नित्य निर्विकार है ॥ ॥ ४८ ॥ उसने यह स्थावर जंगमात्मक सारे विश्वको व्याप लिया है । उनके अंगकी कांति नीले कमलदलके समान श्याम है; वह बिजलीके

समान चर्मकीले रंगके वस्त्र पहरते हैं ॥ ४९ ॥ उनके वाम भागमें तपाये हुए सुवर्णके समान तेजःपुंज व नित्य निश्चल रहनेवाली देवी लक्ष्मीजी बैठीहैं, रामचंद्रजीका आलिंगन किये हुए उनको देख रहेहैं ॥ ५० ॥ देव, दैत्य, सर्प कोईभी उनकी ओर नहीं देख सखता। वह जिसपर कृपा करतेहैं, उस पुरुषकोही उसको (ईश्वरका) दर्शन मिलताहै ॥ ५१ ॥ भगवंतके दर्शन यज्ञसे या तपकरनेसे नहीं मिलते, दानसे या अध्ययनादिकसे लाभ नहीं होता बहुत तो क्याकहैं; भक्तिके सिवाय किसी दूसरे उपायसे नहीं मिलसकते ॥ ५२ ॥ जो लोग ईश्वरकी भक्ति करते हैं; व अपने

शुद्धजांबूनदप्रख्यांश्रियंवामांकसंस्थिताम् ॥ सदानपायिनींदेवींपश्यन्नालिंग्यतिष्ठति ॥ ५० ॥ द्रष्टुंनशक्यतेकैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ॥ यस्यप्रसादंकुरुते सचैनंद्रष्टुमर्हति ॥ ५१ ॥ नचयज्ञतपोभिर्वानदानाध्ययनादिभिः॥शक्यतेभगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥ ५२ ॥ तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः ॥ शक्यतेभगवान्विष्णुर्वेदांतामलदृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ अथवाद्रष्टुमिच्छातेशृणुत्वंपरमेश्वरम् ॥ त्रेतायुगेसदेवेशोसवितानृपविग्रहः ॥ ५४ ॥ हितार्थंदेवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणांकुलेहरिः ॥ रामोदाशरथिर्भूत्वामहासत्त्वपराक्रमः॥५५ ॥ पितुर्नियोगात्सभ्रात्राभार्ययादंडकेवने ॥ विचरिष्यतिधर्मात्माजगन्मात्रास्वमायया ॥ ५६ ॥ एवंतेसर्वमाख्यातंमयारावणाविस्त रात् ॥ भजस्वभक्तिभावेनतदारामंश्रियायुतम् ॥ ५७ ॥

प्राण और चित्तवृत्ति सर्वथा उनमें लगाते हैं; उनके पापोंका नाश होकर वेदान्तरूप निर्मल दृष्टि प्राप्त होजातीहै; इस दृष्टिके प्राप्त होनेसे उनको भगवान्‌जीके दर्शन मिल जाते हैं ॥ ५३ ॥ अब जो विनाही किसी उपायके किये तुझको परमेश्वरके दर्शन करनेकी इच्छा हो तो सुन,–'वह भगवान् त्रेतायुगमें राजाका शरीर धारण करनेवाले हैं ॥ ५४ ॥ देवता और मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये हरि इक्ष्वाकुकुलमें महाबलवान् पराक्रमी दशरथके पुत्र राम होंगे ॥ ५५ ॥ फिर वह परमधार्मिक प्रभु पिताकी आज्ञासे भ्राता और स्त्री दोनोंको साथ ले दंडकारण्यमें फिरेंगे जगतकी माता जो ईश्वरकी माया है वह सीताके नामसे अवतार लेंगी' ॥ ५६ ॥ "हे रावण! यह सब मैंने तुझसे विस्तारसे निवेदन किया, अब अंतमें तेरे हितकी बात कहताहूं कि तू सीताजाजीके सहित रामचंद्रजीकी भक्तिभावसे सेवाकर" ॥ ५७ ॥

(अगस्त्य मुनि बोले हे रामचंद्र !) राक्षसेश्वरने यह वचन सुनकर मननपूर्वक किंचित् विचार किया। फिर तुम्हारे साथ वैर करनेको उसने निश्चय किया इस वेला उस प्रतापी रावणको बहुतसा आनंद हुआ ॥५८॥ फिर वह युद्ध करनेकी इच्छासे सारी त्रिलोकीमें फिरता रहा; हे राजाधिराज ! इस कारणसे केवल तुम्हारे हाथसे अपना वध करानेकी इच्छासे उस अत्यन्त बुद्धिमान् रावणने तुम्हारी जानकी रानीको चुरा लिया ॥ ५९ ॥ जो पुरुष यह कथा सुनेगा, बाँचेगा, किंवा श्रवण करनेकी इच्छावालेंको नित्य सुनावेगा उसको आयुष्य, आरोग्य, अनंत सुख, इच्छित वस्तुका लाभ, व अक्षय द्रव्य मिलता है ॥ ६० ॥ इति श्रीमध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ अपवाद सुनकर जानकीजीका त्यागना ॥ श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि,–एक दिन ब्रह्मलोकसे आते हुये नारदमुनिको देख लोकमें फिरता हुआ रावण उनको नमस्कारकरके

एवंश्रुत्वाऽसुराध्यक्षोध्यात्वाकिंचिद्विचार्यच ॥ त्वयासहविरोधेप्सुर्मुमुदेरावणोमहान् ॥ ५८ ॥ युद्धार्थीसर्वतोलोकान्पर्यटन्समवस्थितः ॥ एतदर्थंमहाराजरावणोऽतीवबुद्धिमान् ॥ हृतवाञ्जानकींदेवींत्वयात्मवधकांक्षया ॥ ५९ ॥ इमांकथांयःशृणुयात्पठेद्वासंश्रावयेद्वाश्रवणार्थिनांसदा ॥ आयुष्यमारोग्यमनंतसौख्यंप्राप्नोतिलाभंधनमक्षयंच ॥६०॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥ एकदाब्रह्मणोलोकादायांतंनारदंमुनिम् ॥ पर्यटन्रावणोलोकान्दृष्ट्वानत्वाब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ भगवन्ब्रूहिमेयोद्धुंकुत्रसंतिमहाबलाः ॥ योद्धुमिच्छामिबलिभिस्त्वंज्ञातासिजगत्त्रयम् ॥ २ ॥ मुनिर्ध्यात्वाहसुचिरंश्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ महाबलामहाकायास्तत्रयाहिमहामते ॥ ३ ॥ विष्णुपूजारतायेवैविष्णुनानिहताश्चये ॥ तएवतत्रसंजाताअजेयाश्चसुरासुरैः ॥ ४ ॥ श्रुत्वातद्रावणोवेगान्मंत्रिभिःपुष्पकेणतान् ॥ योद्धुकामःसमागत्यश्वेतद्वीपसमीपतः ॥ ५ ॥

बोला ॥ १ ॥ "हे भगवन् मुने ! आप त्रिलोकीका सर्व वृत्तान्त जानते हैं; मुझे यह बताओ कि युद्ध करनेमें समर्थ महाबलवान् पुरुष कहां हैं बलवानोंसे युद्ध करनेकी मेरी इच्छा है"॥२॥ मुनिने बहुत देरतक विचार करके रावणसे कहा; "हे बुद्धिमान् ! श्वेतद्वीपके रहनेवाले पुरुष बडे शरीरवाले और बलवान् हैं वहांपर जाओ ॥ ३ ॥ पहले जो लोग विष्णुजीकी आराधना करनेमें तत्पर हैं और जिनका वध विष्णुजीने अपने हाथसे किया है वह (सप्रेम भक्ति और विरोध भक्ति करनेवाले) वहाँ जन्मे हैं; देवता या दैत्य कोईभी उनको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं " ॥ ४ ॥ यह सुनकर रावण शीघ्रही मंत्रियोंके साथ पुष्पक विमानमें बैठा और उन विष्णुजीके भक्तोंसे युद्ध करनेकी इच्छा करके श्वेतद्वीपके निकट जाय पहुँचा ॥ ५ ॥

वहाँके लोगोंकी प्रभासे पुष्पक विमानका तेज नष्ट हो गया वह पुष्पक विमान आगे नहीं चला; अनन्तर रावण उस पुष्पक विमानको और मंत्रियोंको छोड़कर आगे चला ॥ ६ ॥ उसने श्वेत द्वीपमेंपाँव रक्खा कि, एक स्त्री (दासी) ने उसका हाथ पकडकर कहा– तू कौन है ! कहाँका है और तुझको किसने भेजा है ! सो बता ? ॥ ७ ॥ वहाँपर बहुतसी स्त्रियेंथीं वे लीलापूर्वक हँसते २ वारंवार कहने लगीं । उन स्त्रियोंके हाथसे अतिकष्ट करके रावण छूटा ॥ ८ ॥ मुझ समान वीरकी स्त्रियोंने दुर्दशा करदी यह देख रावणको बडा आश्चर्य प्राप्त हुआ वह दुष्ट मनसे विचार करने लगा कि, विष्णुजीके हाथसे मृत्यु होनेपर वैकुंठको जाऊँगा यह करनेका रावणने पूर्ण निश्चय कर लिया ॥ ९ ॥

तत्प्रभाहततेजस्कंपुष्पकंनाचलत्ततः॥त्यक्त्वाविमानंप्रययौमंत्रिणश्चदशाननः ॥ ६ ॥ प्रविशन्नेवतद्द्वीपंधृतोहस्तेनयोषिता ॥पृष्टश्च त्वंकुतःकोऽसिप्रेषितःकेनवावद ॥ ७ ॥ इत्युक्तोलीयास्त्रीभिर्हसंतीभिःपुनःपुनः ॥ कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासांस्त्रीणांदशाननः ॥ ८ ॥ आश्चर्यमतुलंलब्ध्वाचिंतयामासदुर्मतिः ॥ विष्णुनानिहतोयामिवैकुंठमितिनिश्चितः ॥९॥ मयिविष्णुर्यथाकुप्येत्तथाकार्यंकरोम्यहम् ॥ इतिनिश्चित्यवैदेहींजहाराविपिनेऽसुरः॥१०॥जानन्नेवपरात्मानंसजहारावनीसुताम् ॥ मातृवत्पालयामासत्वत्तःकांक्षन्वधंस्वकम् ॥११॥ रामत्वंपरमेश्वरोऽसिसकलंजानासिविज्ञानदृग्भूतंभव्यमिदंत्रिकालकलनासाक्षीविकल्पोज्झितः ॥ भक्तानामनुवर्तनायसकलांकुर्वन्क्रियासंहर्तित्वांशृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचोभासीशलोकार्चितः ॥ १२ ॥

फिर यह निश्चय करके कि, कोई ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे विष्णुजी मुझपर क्रोधित हों उस दैत्यने जानकीको वनमें चुरा लिया ॥ १० ॥ उसने आपको परमात्मा जानकर जानकीको हरण किया और माताके समान उनकी रक्षा करता रहा उसकी इच्छा इतनीहीथी कि आपके हाथसे अपना (रावणका) वध हो ॥ ११ ॥ हे रामचंद्र ! आप परमेश्वर हैं व सब बातें जानते हैं अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं आपकी दृष्टि है । पीछे ऐसा होगया व अब ऐसाहो रहा है यह तीनो कालकी सर्व व्यवस्था आप प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं । आपको कोईभी संशय नहीं है । भक्तोंसे अपना चारित्र कीर्तन करनेको मिले कि, जिससे उनके पापक्षय हो जावैं इसलिये आपने मनुष्यरूप धारण कर रावणवधादि समस्त कार्य किये

और हमारे समान मुनियोंके वचन सुनते हुए तुम मनुष्यके समान आकारवाले भासतेहो, परन्तु वास्तविक रीतिसे तुम मनुष्य नहीं हो; वरन् इन्द्रादि देवताओं करके सेव्य हो ॥ १२ ॥ मुनि अगस्त्यजीने इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा की । रामचंद्रजीनेभी उनकी पूजा करी तब वे मुनि आनंदित मनसे मुनियोंके साथ अपने आश्रमको चलेगये ॥ १३ ॥ लक्ष्मीके पति श्रीरामचंद्रजी सीता भ्राता और मंत्रियोंके सहित संसारी पुरुषके समान गृहमें रमण करतेहुए बसे ॥ १४ ॥ वह विषयोंपर आसक्त नहींथे—तौभी प्रियाके साथ उपभोग भोगतेथे, हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानर उनके निकट रहतेथे ॥ १५ ॥ एक समय पुष्पक विमानने पहलेके अनुसार फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट आकर कहा; हे देव ! मैं आपकी आ

स्तुत्वैवंराघवंतेनपूजितःकुंभसंभवः ॥ स्वाश्रमंमुनिभिःसार्धंप्रययौहृष्टमानसः ॥ १३ ॥ रामस्तुसीतयासार्धंभ्रातृभिःसहमंत्रिभिः ॥ संसारीवरमानाथोरममाणोऽवसद्गृहे ॥ १४ ॥ अनासक्तोऽपिविषयान्बुभुजेप्रिययासह ॥ हनूमत्प्रमुखैःसद्भिर्वानरैःपरिवेष्टितः ॥ १५ ॥ पुष्पकंचागमद्राममेकदापूर्ववत्प्रभुम् ॥ प्राहदेवकुबेरेणप्रेषितंत्वामहंततः ॥ १६ ॥ जितंत्वंरावणेनादौपश्चाद्रामेणनिर्जितम् ॥ अतस्त्वं राघवंनित्यंवहयावद्वसेद्भुवि ॥१७॥ यदागच्छेद्रघुश्रेष्ठोवैकुंठंयाहिमांतदा ॥ तच्छ्रुत्वाराघवःप्राहपुष्पकंसूर्यसन्निभम् ॥ १८ ॥ यदास्मरामिभद्रंतेतदागच्छममांतिकम् ॥ तिष्ठांतर्धायसर्वत्रगच्छेदानींममाज्ञया ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वारामचंद्रोऽपिपौरकार्याणिसर्वशः ॥ भ्रातृभिर्मंत्रिभिःसार्धंयथान्यायंचकारसः ॥ २० ॥ राघवेशासतिभुवंलोकनाथेरमापतौ ॥ वसुधासस्यसंपन्नाफलवंतश्चभूरुहाः ॥ २१ ॥

ज्ञाके अनुसार कुबेरजीके पास पहुँचा, उन्होंने मुझे लौटकर आपके पास भेजा है" ॥ १६ ॥ कुबेरजीने मुझसे यह कहा है कि,—"प्रथम तुझको रावणने जीता और फिर रामचंद्रजीने वशकर लिया; इस कारण जबतक रामजी पृथ्वीपर हैं तबतक तू उनको धारणकर ॥ १७ ॥ रघुवीरजीके वैकुंठ जानेपर फिर मेरे निकट आइयो "। यह सुनकर रामजी सूर्यके समान पुष्पक विमानसे बोले ॥ १८ ॥ " तेरा कल्याण होवे ! मैं याद करूं तब तू मेरे पास आइयो, अब जाओ, सर्वत्र गुप्त होकर रहो यह मैं आज्ञा देताहूं" ॥ १९ ॥ "यह कहकर श्रीरामचंद्रजी भ्राता व मंत्रियोंकी सहायतासे नीतिशास्त्रके अनुसार सर्व नागरिक जनोंके कार्य देखने लगे ॥ २० ॥ जब त्रिलोकीनाथ लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजी पृथ्वीका राज्य करतेथे,

तब पृथ्वी धन धान्यसे भरी हुई रहै; वृक्ष विपुल फलदें ॥ २१ ॥ सब लोग अपने अपने धर्मानुसार चलें, स्त्रियां पतिकी सेवा करनेमें दक्ष रहैं; रामचंद्रजीके राजा होतेहुये किसीने अपने पुत्रको मृतक न देखा ॥ २२ ॥ प्रभु श्रीरामचंद्रजी, सीता वानर और भ्राताओंको साथले उत्तम पुष्पक विमानमें बैठ पृथ्वीपर फिरते रहे ॥ २३ ॥ प्रभुने पृथ्वीपर ऐसे अनेक कार्य किये जो मनुष्योंसे न होसकें; एक ब्राह्मणका छोटा लड़का अकालमें मृत्युको प्राप्त हुआ; इस कारण श्रीरामचंद्रजीने उस ब्राह्मणको शोक करते हुए देखा। प्रभुकी बुद्धि महा विलक्षण थी। इस विपरीत होनेका कारण उन्होंने तत्काल जान लिया; वनमें एक शूद्र तप करता था। रामचंद्रजीने उसका वध कर ब्राह्मणके लड़केको ॥ २४ ॥ २५ ॥ जिलाया और शूद्रको

जनाधर्मपराःसर्वेपतिभक्तिपराःस्त्रियः ॥ नापश्यत्पुत्रमरणंकश्चिद्राजनिराघवे ॥ २२ ॥ समारुह्यविमानाग्र्यंराघवःसीतयासह ॥ वानरै भ्रातृभिःसार्धंसंचचारावनिंप्रभुः ॥ २३ ॥ अमानुषाणिकार्याणिचकारबहुशोभुवि ॥ ब्राह्मणस्यसुतंदृष्ट्वाबालंमृतमकालतः ॥ २४ ॥ शो चंतंब्राह्मणंचापिज्ञात्वारामोमहामतिः ॥ तपस्यंतंवनेशूद्रंहत्वाब्राह्मणबालकम् ॥ २५ ॥ जीवयामासशूद्रस्यददौस्वर्गमनुत्तमम् ॥ लो कानामुपदेशार्थंपरमात्मारघूत्तमः ॥ २६ ॥ कोटिशःस्थापयामासशिवलिंगानिसर्वशः ॥ सीतांचरमयामाससर्वभोगैरमानुषैः ॥ २७ ॥ शशासरामोधर्मेणराज्यंपरमधर्मवित् ॥ कथांसंस्थापयामाससर्वलोकमलापहाम् ॥ २८ ॥ दशवर्षसहस्राणिमायामानुषविग्रहः ॥ चका रराज्यंविधिवल्लोकवंद्यपदांबुजः ॥ २९ ॥ एकपत्नीव्रतोरामोराजर्षिःसर्वदाशुचिः ॥ गृहमेधीयमखिलमचराञ्छिक्षयञ्जनान् ॥ ३० ॥

अत्युत्तम स्वर्गलोक दिया। परमात्मा रामचंद्रजीने लोगोंके उपदेशार्थ ॥ २६ ॥ जिधर तिधर करोड़ों शिवलिङ्ग स्थापित किये; वह स्वर्ग दिव्य उपभोगोंके द्वारा सीताजीको रमण करते रहे ॥ २७ ॥ रामचंद्रजीको धर्मका उत्तम ज्ञानथा, उन्होंने धर्मानुसार राज्य चलाया और सर्व लोगोंका पाप दूर करनेवाली अपनी पवित्र कीर्ति जगमें चिरकालके लिये स्थापित की ॥ २८ ॥ जिनके चरणकमलका सर्व लोक वंदन करते हैं, उन परमेश्वरने मायाके द्वारा मनुष्य शरीर धारणकर नीतिशास्त्रके अनुसार दशहजार वर्षतक राज्य किया ॥ २९ ॥ रामजीने एकपत्नीव्रत पालन किया (प्राचीन कालमें राजा लोग अनेक स्त्रियां रखतेथे ऐसा होनेपरभी यह सर्वगुणसंपन्न राजा एकही स्त्रीमें रत और संतुष्ट रहे । वास्तवमें यह गुण उस कालके

मध्य असामान्य हुआ) वह राजर्षि (राजा होनेपरभी ऋषिके समान तप करनेवाले श्रीरामजी) सर्वकाल शुद्ध रहकर लोकशिक्षाके लिये गृहस्थाश्रमके सर्व धर्म आचरण करते रहे ॥ ३० ॥ सीताजीमें नम्रता, इन्द्रियनिग्रह; लाज, नीति, यह गुणथे। वह रामचंद्रजीके अभिप्रायको जानतीथीं इतने गुणों करके वह साध्वी पतिका मन हरण करके प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करतीं ॥ ३१ ॥ एक अवसरमें रघुवीर पुष्पवाटिकामें सर्व उपभोगोंसे भरेहुए दिव्य मंदिरमें एकान्त स्थलमें बैठेथे ॥ ३२ ॥ उनके शरीरकी कांति नीले रत्नके समानथी उनके अंगपर बड़े मोलके गहनेथे उनका मुख प्रसन्न व आकृति गंभीर दिखाई देती, वह बिजलीके राशिके समान तेजःपुंज वस्त्र पहर रहेथे ॥ ३३ ॥ कमलदलनयनवाली सीताजी

सीताप्रेम्णाऽनुवृत्त्याचप्रश्रयेणदमेनच ॥ भर्तुर्मनोहरासाध्वीभावज्ञासाह्रियाभिया ॥ ३१ ॥ एकदाऽऽक्रीडविपिनेसर्वभोगसमन्विते ॥ एकांतेदिव्यभवनेसुखासीनंरघूत्तमम् ॥ ३२ ॥ नीलमाणिक्यसंकाशंदिव्याभरणभूषितम् ॥ प्रसन्नवदनंशांतंविद्युत्पुंजनिभांबरम् ॥ ३३ ॥ सीताकमलपत्राक्षीसर्वाभरणभूषिता ॥ राममाहकराभ्यांसालालयंतीपदांबुजे ॥ ३४ ॥ देवदेवजगन्नाथपरमात्मन्सनातन ॥ चिदानंदादिमध्यांतरहिताशेषकारण ॥ ३५ ॥ देवदेवाःसमासाद्यमामेकांतेऽब्रुवन्वचः ॥ बहुशोऽर्थयमानास्तेवैकुंठागमनंप्रति ॥३६॥ त्वयासमेतश्चिच्छक्त्यारामास्तिष्ठतिभूतले ॥ विसृज्यास्मान्स्वकंधामवैकुंठंचसनातनम् ॥ ३७ ॥ आस्तेत्वयाजगद्धात्रिरामःकमललोचनः ॥ अग्रतोयाहिवैकुंठंत्वंतथाचेद्रघूत्तमः ॥ ३८ ॥ आगमिष्यतिवैकुंठंसनाथान्नःकरिष्यति ॥ इतिविज्ञापिताहंतैर्मयाविज्ञापितोभवान् ॥३९॥

शरीरपर सर्व गहने धारण कर रहीं थीं। वह अपने हाथोंसे रामचंद्रजीके चरण चापती हुई बोलीं ॥ ३४ ॥ " हे देवाधिदेव ! आप जगत्के स्वामी सनातन परमात्मा हैं, ज्ञान और आनंद आपका रूपहै; आपका आदि मध्य व अंत नहीं है । आप सर्व जगत्के कारण है ॥ ३५ ॥ हे राम ! आपके वैकुंठ जानेके विषयमें इन्द्रादि मुख्यदेव अनेक प्रकारसे विनती करते हैं । उन्होंने मुझसे अकेलेमें साक्षात्कर विनती कीहै ॥ ३६ ॥ कि, ' हे चिच्छक्तिरूप देवि ! रामचंद्रजी हमको छोड़ अपने सनातन वैकुंठको छोड़ तुम्हारे साथ पृथ्वीपर रहते हैं ॥ ३७ ॥ हे जगन्माते ! कमलनयन रामचंद्रजीको, यहां रहना भला लगता है, इसको कारण तुम्हीं हो । पहले तुम वैकुंठको चलो; तुम्हारे जातेही रामजी ॥ ३८ ॥ वैकुंठको जायकर

मको आश्रय देंगे। उन्होंने मेरी ऐसी प्रार्थना करी; और मैंने आपसे विज्ञापनपूर्वक निवेदन किया है ॥ ३९ ॥ हे प्रभो! अब आप जो योग्य समझें तैसा करें मैं आपको कुछ आज्ञा नहीं देतीहूं"। सीताजीके वचन सुन रामचंद्रजीने क्षणमात्र विचारकर उत्तर दिया ॥ ४० ॥ हे सीते! मैंने तुम्हारें कहनेका सर्व अभिप्राय जान लिया, इसका मैं तुमसे एक उपाय कहताहूं। हे देवि! लोकमें तेरे विषयमें कुछ अपवाद उठा है ऐसा मिष रचकर ॥ ४१ ॥ साधारण मनुष्यके समान लोकापवादके डरसे मैं तुम्हें वनमें छोडूंगा। तहां तुम्हारे वाल्मीकिजीके आश्रममें दो पुत्र होंगे ॥ ४२ ॥ अब तुम्हारे उदरमें गर्भ होनेके चिह्न प्रगट दीखते हैं। तदनन्तर तुम फिर हमारे निकट आओगी और लोकोंके विश्वासको अर्थात् निर्दोषहूं ऐसी

यद्युक्तंतत्कुरुष्वाद्यनाहमाज्ञापयेप्रभो ॥ सीतायास्तद्वचःश्रुत्वारामोध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम् ॥ ४० ॥ देविजानामिसकलंतत्रोपायंवदामिते ॥ कल्पयित्वामिषंदेविलोकवादंत्वदाश्रयम् ॥ ४१ ॥ त्यजामित्वांवनेलोकवादाद्भीतइवापरः ॥ भविष्यतःकुमारौद्वौवाल्मीकेराश्रमांतिके ॥ ४२ ॥ इदानींदृश्यतेगर्भःपुनरागत्यमेंऽतिकम् ॥ लोकानांप्रत्ययार्थंत्वंकृत्वाशपथमादरात् ॥ ४३ ॥ भूमेर्विवरमात्रेणवैकुंठंयास्यसिद्रुतम् ॥ पश्चादहंगमिष्यामिएषएवसुनिश्चयः ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वातांविसृज्याथरामोज्ञानैकलक्षणः ॥ मंत्रिभिर्मंत्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्चसंवृतः ॥ ४५ ॥ तत्रोपविष्टंश्रीरामंसुहृदःपर्युपासत ॥ हास्यप्रौढकथासुज्ञाहासयंतःस्थिताहरिम् ॥ ४६ ॥ कथाप्रसंगात्पप्रच्छरामोविजयनामकम् ॥ पौराजानपदामेकिंवदंतीहशुभाशुभम् ॥ ४७ ॥

प्रतीति करनेके लिये आदरसे शपथ लेकर अर्थात् सौगन्ध करके ॥ ४३ ॥ तुरंत पृथ्वीके छिद्रमें होकर तुम वैकुंठको जाओगी, और फिर मैंभी स्वर्गमें आऊँगा; ऐसा मेरा निश्चय है" ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर एक ज्ञानस्वरूप जिनका लक्षण है ऐसे श्रीरामजीने सीताजीको राजमंदिरमें भेज दिया। एक समय रामचंद्रजी अपने गूढ मंत्रका तत्त्व जाननेवाले प्रधान और सेनापतियोंके साथ इस सभामें बैठेथे ॥ ४५ ॥ रामचंद्रजीके वहांपर बैठे रहते हुए हँसानेके कार्यमें चतुर और अनेक कथा कहनेमें निपुण (खुशमश्करे) उनके मित्र उनको हँसाते (विनोद कथा कहते हुए) निकट बैठेथे ॥ ४६ ॥ कथाप्रसंगसे रामजीने अपने दूतसे कहा;—"अयोध्याके नागरिक किंवा देशोंके लोग मेरे विषयमें अच्छा बुरा क्या

कहते हैं ? ॥ ४७ ॥ सीताको, हमारी माता (कौसल्या) को भ्राताओंको अथवा कैकेयीको लोग क्या कहते हैं ? डरो मत, आनंदसे कह । तुझे हमारी शपथ है " ॥ ४८ ॥ रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर विजयने कहा; " हे राजन् ! तुम्हारे विषयमें सब लोग कहते हैं कि–रामजीको आत्मतत्त्वज्ञान है जो कार्य करने अत्यन्त कठिनथे, वह समस्त रामचंद्रजीने किये ॥ ४९ ॥ परन्तु रावणको मारनेपर सीताजीको साथले और विनाही कुछ क्रोध किये (सीताजीके पतिव्रतमें कुछभी शंका न करके) घर आये, उन्होंने सीताको हर्षसहित घरमें रखलिया ॥ ५० ॥ निर्जन वनमें दुष्टात्मा रावण जिसको हरण करके ले गयाथा; नहीं कह सक्ते कि, उस सीतासे संभोग करते रामके हृदयमें कैसा सुख होता है ? ॥ ५१ ॥ इसकारण

सीतांवामातरंवामेभ्रातॄन्वाकैकयीमथ ॥ नभेतव्यंत्वयाब्रूहिशापितोऽसिममोपरि ॥ ४८ ॥ इत्युक्तःप्राहविजयोदेवसर्वेवदंतिते ॥ कृतंसुदुष्करंसर्वेरामेणविदितात्मना ॥ ४९ ॥ किंतुहत्वादशग्रीवंसीतामाहृत्यराघवः ॥ अमर्षंपृष्ठतःकृत्वास्वंवेश्मप्रत्यपादयत् ॥ ५० ॥ कीदृशंहृदयेतस्यसीतासंभोगजंसुखम् ॥ याहृताविजनेऽरण्येरावणेनदुरात्मना ॥ ५१ ॥ अस्माकमपिदुष्कर्मयोषितांमर्षणंभवेत् ॥ यादृग्भवतिवैराजातादृश्योनियतंप्रजाः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वातद्वचनंरामःस्वजनान्पर्यपृच्छत ॥ तेऽपिनत्वाऽब्रुवन्राममेवमेतन्नसंशयः ॥ ५३ ॥ ततोविसृज्यसचिवान्विजयंसुहृदस्तथा ॥ आहूयलक्ष्मणंरामोवचनंचेदमब्रवीत् ॥५४ ॥ लोकापवादस्तुमहान्सीतामाश्रित्यमेऽभवत् ॥ सीतांप्रातःसमानीयवाल्मीकेराश्रमांतिके॥५५॥ त्यक्त्वाशीघ्रंरथेनत्वंपुनरायाहिलक्ष्मण॥वक्ष्यसेयदिवाकिंचित्तदामांहतवानसि॥५६॥

यदि हमारी स्त्रियाँभी दुष्कर्म करें तौ हमको वह सहन करने पडेंगे; क्योंकि जैसा राजा होता है, प्रजाभी निश्चय वैसी होती है" ॥ ५२ ॥ रामचंद्रजीने विजयकी वार्ता सुन अपने दूसरे आत्मीय लोगोंसे पूँछा; उन्होंनेभी रामजीको नमस्कार करके कहा कि ॥ "हाँ ऐसाही कहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं" ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त रामजीने मंत्रियोंको बिदा करके लक्ष्मणजीको बुलाय यह कहा ॥ ५४ ॥ " हे लक्ष्मण ! लोक सीताके संबन्धमें मुझको बड़ा अपवाद लगाते हैं । इस कारण तुम सीताको भोर होतेही अंतःपुरसे निकालकर वाल्मीकि मुनिजीके आश्रमके निकट छोड़ दो ॥ ५५ ॥ और रथमें बैठ फिर शीघ्र इधर आओ । इसपर जो एक शब्द (अदलबदल) भी मेरे निकट कहोगे तो तुमको मेरे वध करनेका

दोष लगेगा" ॥ ५६ ॥ रामजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी मारे भयके रामजीके आगे विनाही कुछ बोले चले गये। व सवेरेही उठे और सुमंतकी सहायतासे सीताजीको रथमें बैठाय एकसाथ बनको गये ॥ ५७ ॥ वहांपर उन्होंने वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट सीताजीको छोड़कर कहा;—'हे मातः! लोग दूषण देते हैं इस भयसे रामजीने तुम्हें वनमें छोड़दिया ॥ ५८ ॥ हे मैया! इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं, अब तुम मुनिके आश्रमको जाओ,। इतना कहकर लक्ष्मणजी शीघ्रही निकले व रामचंद्रजीके निकट आये ॥ ५९ ॥ इधर जानकीजीभी दुःखित होकर अज्ञानके समान विलाप करने लगीं, शिष्योंके मुखसे वाल्मीकि मुनिके कानमें यह वार्ता गई कि, कोई स्त्री आश्रमके निकट आनकर रोरही है! मुनिजीने दिव्यदृष्टिके द्वारा जानलिया कि, वह सीता है ॥ ६० ॥ आगे क्या होनेवाला है यह सब वाल्मीकिजी जानतेथे, इसकारण उन्होंने

इत्युक्तोलक्ष्मणोभीत्याप्रातरुत्थायजानकीम्॥ सुमंत्रेणरथेकृत्वाजगामसहसावनम्॥५७॥ वाल्मीकेराश्रमस्यांतेत्यक्त्वासीतामुवाचसः॥ लोकापवादभीत्यात्वांत्यक्तवान्राघवोवने ॥५८॥ दोषोनकश्चिन्मेमातर्गच्छाश्रमपदंमुनेः ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणःशीघ्रंगतवान्रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥ सीताऽपिदुःखसंतप्ताविललापातिमुग्धवत् ॥ शिष्यैःश्रुत्वाचवाल्मीकिःसीतांज्ञात्वासादिव्यदृक् ॥ ६० ॥ अर्घ्यादिभिःपूजयित्वासमाश्वास्यचजानकीम् ॥ ज्ञात्वाभविष्यंसकलमार्पयन्मुनियोषिताम् ॥ ६१ ॥ तास्तांसंपूजयंतिस्मसीतांभक्त्यादिनेदिने ॥ ज्ञात्वापरात्मनोलक्ष्मींमुनिवाक्येनयोषितः ॥ सेवांचक्रुःसदातस्याविनयादिभिरादरात् ॥ ६२ ॥ रामोऽपिसीतारहितःपरात्माविज्ञानदृक्केवलआदिदेवः ॥ संत्यज्यभोगानखिलान्विरक्तोमुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥ ६३ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अर्घ्यादिक उपचारोंसे जानकीजीकी पूजा करके उनको समझाया बुझाया और 'इनकी भलीभाँतिसे रक्षा करो' यह कह मुनिपत्नियोंके हाथमें जानकीको सौंप दिया ॥ ६१ ॥ मुनिजीकी आज्ञाके अनुसार वह स्त्रियें सीताजीको परमेश्वरकी लक्ष्मीजी समझ भक्तिपूर्वक प्रतिदिन उनकी पूजा करतीं और सदा बड़े आदरसे नम्रतादि गुणोंके द्वारा उनकी सेवा करती रहतीं ॥ ६२ ॥ सीताजीके त्याग करनेपर परमात्मा रामचंद्रजी सर्व उपभोगोंका भोगना छोड़ वैराग्य धारणकर मुनियोंके समान नियमका आचरण करते रहे। महादेवजी बोले हे पार्वति! यह रामचंद्रजी केवल आदिदेव थे, तत्त्वज्ञानमें उनकी दृष्टि रही, मुनिलोग नित्य उनके चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ ६३ ॥ इ० श्रीम० उमा० भा० चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

रामचंद्रजीका उपदेश करना ॥ श्रीमहादेवजी बोले; हे पार्वति ! संसारमें प्राणियोंके जो कुछ आनंद हैं; या होतेहैं; उनका आधार श्रीरामचंद्रजीकी ब्रह्मानंदमय मूर्ति है कारण वेदोंने कहा है कि, ब्रह्मादिके एक अंशपर इतर सर्व जीवन (आनंद) पाते हैं [अथवा रामचंद्रजीकी कल्याणमय मूर्तिसेही सर्व संसारका कल्याण होता है] उन्होंने ऐसी मंगलमूर्ति धारण करके जो कीर्ति संपादित करी उसके आधारपर अनेक रामायण ग्रन्थ बने । इस उत्तम कीर्तिके श्रवण करनेवाले लोगोंको मोक्ष प्राप्त होता है । रामचंद्रजीने लोकापवादसे जानकीजीका त्याग किया; यहांतक अपनी कथा आय पहुँची है—आगे यह रामचंद्रजीने अपने पूर्वजोंकी प्रजा पालन करने, साधु पुरुषोंकी कथा श्रवण करने इत्यादि कर्तव्योंका जिस प्रकारसे पालन किया; व दूसरे महान् २ राजर्षियोंके जिस मार्गको अंगीकार किया; उसके अनुरोधसे चलते हुए॥ १ ॥लक्ष्मणजीकी बुद्धि बड़ी उदारथी (शिष्यके जो महागुण—गुरुके और वेदान्तके वचनोंपर विश्वास इत्यादि—शास्त्रमें कहे हैं; वे समस्त लक्ष्मणजीकी बुद्धिमें दिखाई देते थे) वह रामचंद्रजीसे धर्मविषयक अनेक प्रश्न करें

श्रीमहादेवउवाच॥ततोजगन्मंगलमंगलात्मनाविधायरामायणकीर्तिमुत्तमाम्॥चचारपूर्वाचरितंरघूत्तमोराजर्षिवर्यैरभिसेवितंयथा ॥ १ ॥ सौमित्रिणापृष्टउदारबुद्धिनारामःकथाःप्राहपुरातनीःशुभाः ॥ राज्ञःप्रमत्तस्यनृगस्यशापतोद्विजस्यतिर्यक्त्वमथाहराघवः ॥२॥ कदाचिदेकांतउपस्थितंप्रभुंरामंरमालालितपादपंकजम् ॥ सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्यभक्त्याविनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

और उनको धर्म अधर्मका निर्णय करनेके लिये, तैसे विषयों करके भरी हुई प्राचीन कथायें कहा करें इस प्रसंगमें रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि;—" विना जाने भी जो अधर्म हो जाय तो मनुष्यको इसका फल भोगना पड़ता है । ब्रह्मस्वापहारीके समान पापसे भी बहुतही डरना चाहिये,-पहले नृग नामक एक बडा धार्मिक राजा होगया है; वह नित्य बहुतसी गायें ब्राह्मणोंको दान देता था; उस राजाकी गायोंके झुंडमें ब्राह्मणकी एक गाय भूलसे चली आईथी; राजाको यह नहीं ज्ञान था; इसकारण उसने और गायोंके साथ उस गायको भी दान करदिया; फिर उस गायके पहले स्वामी ब्राह्मणने इस बातको जाना, उसने क्रोधसे शाप दिया, तिस शापसे राजा नृगको तिर्यग्योनि (गिरगटके जन्म) में जाना पडा;-विना जाने होगये हुए ब्रह्मस्वापहारका परिणाम ऐसा होता है " ॥ २ ॥ इस प्रकारकी अनेक कथा सुनकर; तदनुरूप उत्तम आचरण धारणकर

लक्ष्मणजीने अपना अंतःकरण निर्मलकियाथा । एक समयमें, जिनके चरणकमल लक्ष्मीजीसे सेवितहैं वह सर्वशक्तिमान् रामचंद्रजी एकांत स्थलमें बैठेहैं । यह देखकर लक्ष्मणजी उनके निकट गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके नम्रतापूर्वक उनसे बोले ॥ ३ ॥ " हे रामचंद्र ! आप महाज्ञानीहो, वास्तविक आपका शरीर हमारासा नहीं है; शुद्धज्ञान ही आपका रूपहै । आप सर्व प्राणियोंके अन्तर्यामीहो; अर्थात् उनके नियामक आपही हो हे राम ! इसपर तुम कहोगे कि;–(१) जो मैं सबके अंतरमें रहताहूं तो सबको मेरा ज्ञान क्यों नहीं होता ? (२) जब मेरा रूपही नहीं तब योगियोंको मैं कैसे दिखाई देताहूं ? तब इन दोनों शंकाओंके उत्तर कहताहूं–(१) जिन पुरुषोंको ज्ञानसाधनभूत वेदान्त शास्त्रकी दृष्टि प्राप्त होगई; तिनकोही आप (२) अपने होकर अपने दर्शन (अनुभव) देतेहो जिसप्रकार कमलपर भ्रमरका प्रेमहोताहै; तैसेही

त्वंशुद्धबोधोऽसिहिसर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽसिनिराकृतिःस्वयम् ॥ प्रतीयसेज्ञानदृशांमहामतेपादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥ ४॥ अहंप्रपन्नोऽस्मिपदांबुजंप्रभोभवापवर्गंतवयोगिभावितम् ॥ यथांजसाज्ञानमपारवारिधिंसुखंतरिष्यामितथानुशाधिमाम् ॥ ५ ॥ श्रुत्वाऽथसौमित्रिवचोऽखिलंतदाप्राहप्रपन्नार्तिहरःप्रसन्नधीः ॥ विज्ञानमज्ञानतमोपशांतयेश्रुतिप्रपन्नंक्षितिपालभूषणः॥६ ॥ आदौस्ववर्णाश्रमवर्णिताःक्रियाःकृत्वासमासादितशुद्धमानसः ॥ समाप्यतत्पूर्वमुपात्तसाधनःसमाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

जिन पुरुषोंके अंतःकरणमें आपके चरणकमलकी भक्ति रहतीहै उनको यह ज्ञानदृष्टि प्राप्त होतीहै ॥ ४ ॥ हे महासमर्थ ! योगीजन मोक्षकी प्राप्तिके लिये आपके चरणकमलका ध्यान करतेहैं; वे संसारकी निवृत्ति करतेहैं इसलिये मैं उनको (आपके चरणकमलको) शरण आयाहूं । हे राम ! संसारका मूलकारण अज्ञान, तरजानेको परमकठिन अपार समुद्रहै; मैं इस अज्ञानसे विना क्लेशितहुए शीघ्र जिसके द्वारा पार होजाऊँ ऐसा कोई उपाय मुझे सिखाइये " ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले,–हे पार्वति ! राजशिरोमणि रामचंद्रजी शरणागतोंके दुःख तत्काल दूर करतेहैं लक्ष्मणजीके समस्त वचन सुन उनके मनको बहुत संतोष हुआ उन्होंने अज्ञानरूप अंधकारका नाशकरनेके अर्थ वेदमान्य आत्मतत्त्वज्ञान लक्ष्मणजीसे कहा;–वह इसप्रकारसे रामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ पुरुषको ज्ञानप्राप्तिके लिये पहले (१) बहिरंग व (२) अंतरंग साधन शुद्ध करने चाहिये प्रथम

(१) यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारोंके मध्य जिसवर्णमें अपना जन्म हुआहो, और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, किंवा संन्यासी इन चार आश्रयोंमें जिस आश्रमको स्वीकार कियाहो तिसमें आचरण करनेके नित्यनैमित्तिक कर्म शास्त्रोक्तविधिसे आचरणकरे । (२) और अंतःकरण शुद्धकरले; व कर्मानुष्ठान पूर्वक शान्ति, इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियोंका जीतना) इत्यादि साधनकरे । इसप्रकार इन दोनों साधनोंके सिद्ध होजानेपर फिर कर्मोंका करना छोड़दे (आत्मज्ञानके लिये) (आत्मज्ञानके देनेवाले तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके अर्थका विचार करनेकेलिये) वेदज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ गुरुका आश्रय करे ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण ! प्राणीने पहले जन्ममें आदरपूर्वक जो कर्म करेहैं; उन कर्मोंका फल तिसके इस विद्यमान शरीरको मिलता है । जो इस जन्ममेंभी वह विषयोंपर आसक्त हो रहा तो जिसके हाथसे वह (शास्त्रमें प्रसिद्ध हुए) धर्म व अधर्म होते हैं । किसीके मनको धर्म करना अच्छा लगता है, कोई अधर्मको भला समझता है; इस रीतिसे इसजन्ममें कर्म

क्रियाशरीरोद्भवहेतुरादृताप्रियाप्रियौतौभवतःसुरागिणः ॥ धर्मेतरौतत्रपुनःशरीरकंपुनःक्रियाचक्रवदीर्यतेभव ः ॥ ८ ॥
अज्ञानमेवास्यहिमूलकारणंतद्धानमेवात्रविधौविधीयते ॥ विद्यैवतन्नाशविधौपटीयसीनकर्मतज्जंसविरोधमीरितम् ॥ ९ ॥

संचय होनेपर जिससे प्राणीको फिरभी जन्म लेना पड़ता है, तिस जन्ममेंभी वह फिर कर्म करता है । और इस संसारचक्रमें फिरा करता है । जैसे पहिया फिरता है, तब उसके नीचेका भाग ऊपर दिखलाई देता है और ऊपरका भाग नीचे दिखलाई देताहै; तैसेही जन्म है और यह जन्यजनक भावसे परिवर्तन हुआ करतेहैं ॥ ८ ॥ इन संसारका मूलकारण अज्ञानही है संसारसे छुटनेको जो कुछ कर्तव्य सुनेजातेहैं या शास्त्रमें लिखे हैं, वे यही हैं कि अज्ञानको दूर झिझकार दे, उस मूलकारणरूप अज्ञानका नाश करनेके लिये समर्थ कहा जावे तो आत्मज्ञानही है ? कर्मसे अज्ञानका नाश नहीं होता; कारण कर्मकी मूल उत्पन्न हुई है अज्ञानसे, अर्थात् कर्मका व अज्ञानका विरोध किंवा द्वेष नहीं है । जिसका जिससे विरोध होता है, वही उसका नाश करता है,—ऐसा कहा जाता है इस लोकसिद्ध कहावतसे अज्ञानका नाश उसके विरोधी ज्ञानसेही होताहै, यह बात प्रगटहै ॥ ९ ॥

कर्मनुष्ठान करनेसे अज्ञानका नाशभी नहीं होता और विषय या शक्तिभी नहीं छूटती बरन् इससे उलटा नाशात्मक फलवाला सदोष नया कर्म उत्पन्न होता है; तिससे फिर संसार भोगना पड़ताहै; संसारका निवारण कुछभी नहीं होता, इसमें कोई शंका करे कि, जब वारंवार जन्म मरण होता है तो मुक्तिकी आशा अतिदुर्लभ हुई; इसका यही समाधान है कि संसृति वारंवार न होनेके लियेही विवेकी पुरुषको वेदांतवाक्योंका विचारकरना चाहिये ॥ १० ॥ कछ लोग ऐसा कहतेहैं कि, जब ज्ञान और कर्म दोनों एक जगह होतेहैं; तब मोक्ष मिलतीहै, इनमेंसे एक [ज्ञान किंवा कर्म] मोक्ष नहीं देसकता, इसप्रकार कहनेवालोंको समुच्चयवादी कहते हैं । प्रस्तुत विषयपर उनकी ऐसी शंका है कि;—"जैसे वेदमुखने ज्ञानको पुरुषार्थ का [मोक्षप्राप्तिका] साधन कहाहै, वैसेही कर्मको कहा है" प्रमाण देखो; एक वेद वचन ऐसा कहताहै कि, 'ब्रह्मज्ञानसे उत्तम पद मिलताहै' और

नाज्ञानहानिर्नचरागसंक्षयोभवेत्ततःकर्मसदोषमुद्भवेत् ॥ ततःपुनःसंसृतिरप्यवारितातस्माद्बुधोज्ञानविचारवान्भवेत् ॥ १० ॥ ननु क्रियावेदमुखेनचोदितायथैवविद्यापुरुषार्थसाधनम् ॥ कर्तव्यताप्राणभृतःप्रचोदिताविद्यासहायत्वमुपैतिसापुनः ॥ ११ ॥ कर्माकृतौदोषमपिश्रुतिर्जगौतस्मात्सदाकार्यमिदंमुमुक्षुणा ॥ ननुस्वतंत्राध्रुवकार्यकारिणीविद्यानकिंचिन्मनसाऽप्यपेक्षते ॥ १२ ॥

"उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्" इति । जैसे पक्षी दोनों पंखोंके द्वारा आकाशमें उड़ते हैं और एक पंखसे नहीं उड़ सकते तैसेही ज्ञान व कर्म दोनों साधनोंके सिद्ध होनेपर शाश्वत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होतीहै; यह दूसरे वचनका अभिप्रायहै । नित्य नैमित्तिक कर्म प्राणियोंको अवश्य करने चाहिये ऐसी विधिहै । और यह कर्म फिर ज्ञानकी सहायता करते हैं ॥ ११ ॥ और कर्म न करनेसे वेद दोष दरशाताहै, तिससे मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा कर्म करना चाहिये । तिसमें सिद्धान्ती शंका करता है कि मोक्षको संपादन करनेवाली विद्या स्वतंत्रहै; इसकारण सहायताके विना कार्य करनेमें स्वयं असमर्थ है जैसे तेज अंधकारको निवृत्त करनेमें समर्थ है और उसमें किसी दूसरी वस्तुकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती, तैसेही विद्या अर्थात् ज्ञानको मोक्ष फल देनेमें किसी दूसरी सहायताकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२ ॥

तिसमें समुच्चयवादी ऐसा परिहार करता है कि, तुम्हारे कहनेके अनुसार ऐसा नहीं है; क्योंकि सत्यकार्य अर्थात् चातुर्मास्यके यज्ञ करनेवालेको अक्षय सुख मिलता है; इत्यादि वेदमें कहाहुआ ऐसा यज्ञ भी जैसे, दूसरे उपकारक प्रयाज आदि अंग और देशकालादिकी अपेक्षा करता है, तैसेही विद्या अर्थात् ज्ञानसे भी जीवन रहते अग्निहोत्रका होम करना इत्यादि विधिवाक्यसे और उसके समूहद्वारा प्रकाशित कर्मके साथ ही मुक्तिके लिये विशेष गिना जाता है ॥ १३ ॥ इस सबका अनुवाद करके सिद्धांती दूषण दिखलाता है। कितने वितर्कवादी ज्ञान और कर्मके समुच्चयको मुक्तिका साधनरूप कहते हैं; परन्तु उनका यह कहना असत्य है। और केवल कर्म तथा ज्ञानमिश्रित कर्मको भी मोक्षका साधन कहना असत्य है क्योंकि सब लोगोंको प्रत्यक्ष, ज्ञान, कर्मका विरोधी दिखलाई देता है। कारण कि, उस कर्म कर्मका विरोध इसही कर्म देहके अभिमा

नसत्यकार्योऽपिहियद्वदध्वरःप्रकांक्षतेऽन्यानपिकारकादिकान् ॥ तथैवविद्याविधितःप्रकाशितैर्विशिष्यतेकर्मभिरेवमुक्तये॥ १३ ॥ केचिद्व दंतीतिवितर्कवादिनस्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ॥ देहाभिमानादभिवर्धतेक्रियाविद्यागताहंकृतितःप्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥ विशुद्धविज्ञान विरोचनांचिताविद्याऽत्मवृत्तिश्चरमेतिभण्यते ॥ उदेतिकर्माखिलकारकादिभिर्निहंतिविद्याऽखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

नसे उत्पन्न है, तिससे अनात्मदेहादिके विषे आत्मत्वके अभिमानसे कर्म की वृद्धि होती है। और विद्या अर्थात् ज्ञान निरहंकारी पुरुषको होताहै; इसकारण अहंकारमूलक कर्म और सत्तामूलक ज्ञान इनको दोनोंका समुच्चय अति विरुद्ध है इन दोनोंका वास एकत्र कैसे हो सकता है ॥ १४ ॥ परम निर्मल आत्मतत्त्वका ज्ञान करानेवाले वेदान्तवचनोंका बहुतायतसे विचार करनेपर पिछली जो अंतःकरणकीब्रह्माकार वृत्ति बनती है। उसको 'तत्त्वज्ञान' कहते हैं समस्त प्रयाज अनुयाज इत्यादि कारकाओंके [अंगोंके] योगसे कर्मका उदय होता है और तत्त्वज्ञान सब कारकोंका (कर्तृत्वादि बुद्धिका) लय करता है। अतएव कर्मका और ज्ञानका परस्पर वैर है उनका एकत्र वास कभी नहीं होसकता चित्तशुद्धिकर

१ "अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्याच यज्ञकृन्मोक्षेमनःकुर्यात्तु नान्यथा" अर्थात् (वेद पढकर गायत्र्यादि जप अनुष्ठान करके गृहस्थ हो, तौ पुत्रवान् अन्नदाता अग्नियोंवाला अर्थात् अग्निका अनुष्ठान करनेवाला। यथाशक्ति यज्ञादि करनेके द्वारा मोक्षमें मन लगावै अन्यथा नहीं) इत्यादि वाक्यसे यज्ञ मोक्षका उपकारक सिद्ध होता है ॥

नेसे कर्म केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका कारणहै । ज्ञानको अपने फल मोक्ष देनेके कार्यमें कर्मकी अपेक्षा बिलकुल नहीं है ॥ १५ ॥ अब उपसंहारमें मुमुक्षुकी वृत्तिका प्रकार दरशाताहूं । विद्याका कर्मके साथ विरोधहै; तिससे मेल होना संभव नहीं, इसकारण मुमुक्षुपुरुषको समस्त काम्यकर्मका त्याग करना चाहिये, केवल नित्यनैमित्तिक कर्म तबतक करे जबतक चित्तकी शुद्धि होवै, अर्थात् ब्रह्मके विषे चित्त स्थिर होनेतक करे; इसके पीछे सर्व इन्द्रियोंके विषयोंसे जो निवृत्तहुआहै, उस सच्चिदानंदस्वरूप आत्माका अनुसंधानही जिसे परम प्राप्त करने योग्यहै ऐसा होकर रहै ॥ १६ ॥ जबतक प्राणी अज्ञान करके शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म (जड़) वस्तुओं आत्मा (मैं कर्ताहूं) ऐसी बुद्धि रखता है; तबतक उसको वेदांतके कर्म बोधकविधिका दासपन करना पड़ता है (यज्ञ करना चाहिये । इत्यादि वेदोंकी आज्ञा पालन, करती है) यह अहंकार छूटा कि, पुरुष ' नेति नेति ' (यह सत्य नहीं है; वह सत्य नहीं है) इन वचनोंके आधारसे सारे संसारके मिथ्या होनेका निर्णय ठहराय परमात्माको

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतःसुधीर्विद्याविरोधान्नसमुच्चयोभवेत्॥आत्मानुसंधानपरायणःसदानिवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥ १६ ॥ यावच्छरीरादिषुमाययाऽऽत्मधीस्तावद्विधेयोविधिवादकर्मणाम् ॥ नेतीतिवाक्यैरखिलंनिषिद्ध्यतज्ज्ञात्वापरात्मानमथत्यजेत्क्रियाः ॥ १७ ॥ यदापरात्मात्मविभेदभेदकंविज्ञानमात्मन्यवभातिभास्वरम् ॥ तदैवमायाप्रविलीयतेऽञ्जसासकारकाकारणमात्मसंसृतेः ॥ १८ ॥

संसारसे पृथक् और सत्यरूपी जानता है; इस ज्ञानके होतेही वह कर्मोंको छोड़ देता है (उसके कर्म छूटही जाते हैं) ॥ १७ ॥ एकही आत्मरूपके ईश्वर और जीव यह भेद दोनोंको दो अलग २ उपाधियोंके प्राप्त होनेसे हुए हैं । ईश्वरकी उपाधि माया और जीवकी उपाधि अंतःकरण उपाधिके अर्थ आगेके दृष्टान्तमें कहे जाते हैं; देखो, एक बड़े तालाबका पानी मूलके द्वारा वृक्षोंकी जडके थांवलोंमें जायकर थमा है और थांबलेके आकारसा हो रहा है इस उदाहरणमें तालाबका पानी कहिये ईश्वर और वृक्षोंकी श्रेणीका पानी कहिये जीव । पानी दोनों जगह एकही है तैसेही आत्मरूपसे ईश्वर व जीव एकही है । तालाबका बांध यह ईश्वरकी मायारूप उपाधि है और वृक्षोंके थांबले, यह जीवकी अंतःकरणरूप उपाधि है । अतएव परमात्मा और जीवके इस भेदका नाश आत्मतत्वज्ञानके द्वारा होता है । यह प्रकाशरूप आत्मज्ञान अंतःकरणमें प्रगट होते

ही तत्काल अविद्या अपनी सामग्रीके साथ (दूसरे जन्ममें प्राप्तहुए कर्मोंके साथ) नष्ट हो जाती है; आत्माके संसारमें पड़नेका कारण यह अविद्याही है ॥ १८ ॥ (तत्त्वमसि वह ब्रह्मरूप तू है) इत्यादि महावाक्योंके आधारसे ज्ञान उत्पन्न होकर अविद्या नष्ट हो जानेसे वह किसीभी रीतिसे अपना कार्य (मोह संसार) करेगी ! अर्थात् कैसेभी नहीं कर सकती । डोरीपर सर्पका भ्रम होनेसे भय लगता है परन्तु अब " वह डोरी है, सर्प नहीं " ऐसा पूर्ण ज्ञान होगया,–फिर अपनेको वह साँपही है ऐसा भय फिर कैसे लगेगा ! अर्थात् नहीं लगेगा. तैसेही जिसके अर्थ जब शुद्ध व द्वैतरहित (एक) आत्मतत्त्वज्ञानके जिसका नाश किया तिसके अर्थ अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होगी पुरुषको ' मैं कर्म कर्ताहूं ' ऐसे अहंपन ज्ञात होनेका कारण अविद्या है अब उस अविद्याकाही नाश होगया और वह फिर उत्पन्न नहीं होती तब पुरुषको) मैं अमुक २ कर्मोंका करने वालाहूं) यह बुद्धि कैसे होगी ? ऐसी बुद्धि नहीं है, अर्थात् ज्ञानकालमें कर्म नहीं यह सिद्ध है इस कारण मैं कहताहूं कि, ज्ञानको पूर्ण

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिताचसाकथंभविष्यत्यपिकार्यकारिणी ॥ विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयतस्तस्मादविद्यानपुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥ यदिस्मनष्टानपुनःप्रसूयतेकर्ताऽहमस्येतिमतिःकथंभवेत् ॥ तस्मात्स्वतंत्रानकिमप्यपेक्षतेविद्याविमोक्षायविभातिकेवला॥२०॥ सातैत्तिरीयश्रुतिराहसादरंन्यासंप्रशस्ताखिलकर्मणांस्फुटम् ॥ एतावदित्याहचवाजिनांश्रुतिर्ज्ञानंविमोक्षायनकर्मसाधनम् ॥ २१ ॥ विद्यासमत्वेनतुदर्शितस्त्वयाक्रतुर्नदृष्टांतउदाहृतः समः ॥ फलैःपृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुःसंसाध्यतेज्ञानमतोविपर्ययम् ॥ २२ ॥

स्वतंत्रता है और किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं, व अकेलाही मोक्ष देनेके कार्यमें शोभायमान होता है ॥ १९ ॥ २० ॥ वेदके अर्थवाद वचनोंने कर्मोंका कितनाही बखान किया हो तौभी उन सब कर्मोंको छोड़ देना चाहिये, ऐसा उस तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुतिने आदरपूर्वक स्पष्टपनसे कहा है । उस श्रुतिका आशय ऐसा है कि, कर्म करके मोक्षप्राप्ति नहीं होती; या द्रव्य द्वारा अपनी नहीं करी जाती; परन्तु केवल सर्वसंगपरित्याग करनेसे प्राप्त होती है वाजसनेयी शाखाकी ' एतावत् ' श्रुतिने भी ऐसाही कहा है कि, मोक्षका साधन ज्ञान है, कर्म नहीं ॥ २१ ॥ सिद्धांती कहता है । हे समुच्चयवादी ! अग्निष्टोमादि क्रतुको तुमने ज्ञानके समान दिखाया, परन्तु यह तुम्हारा दृष्टान्त योग्य नहीं है जो तुम कहो कि, विद्या अर्थात् ज्ञान व कर्म यह दोनों बराबर हैं; कारण कि, परिणाममें एक फल है " जैसे घड़ेके वास्ते चक्र दंडादिक हैं, तैसे

इस अनुमानके अनुसार मोक्षरूप एक फलके लिये, ज्ञान व कर्म बराबर हैं, परन्तु यह नहीं हो सकता, क्योंकि अहंताममताका अभिमानरूप आन्तरिक और बाह्य देशकालादिके नियमोंसे यज्ञके फलोंकी बराबरी है और ज्ञान तो इससे अलग ही है इस कारण इन दोनोंकी समानता नहीं ॥ २२ ॥ कर्म न करनेसे पाप होगा, यह जडका धर्म है, तिसको तत्त्वज्ञान नहीं है उसमें यह लगता है तत्त्वज्ञानीको तैसा कभी नहीं ज्ञान होता;—कारण कि, उसको कर्तृत्वका अभिमान नहीं; वह पापादिक धर्म अनात्म्यबुद्धिवालेको होते हैं ऐसा निश्चयसे जानते हैं। कर्म अमुक प्रकारसे करे व अवश्य करे ऐसी वेदकी आज्ञा है परन्तु वह किससे है ? जिनके अंतःकरण कर्मोंके स्वर्गादिक फल प्राप्त करनेके लिये लग रहे हैं; उनको,—तत्त्वज्ञानीयोंको नहीं । इस लिये विवेकी पुरुषोंको आवश्यक कर्म भी हर्षसे छोड देने चाहिये ॥ २३ ॥ जिसको ज्ञानकी इच्छा हुई और जिसका गुरुवेदान्तवचनोंपर विश्वास हुआ, उसका अंतःकरण शुद्ध हो जाता है, परन्तु वह निष्काम करके चित्तको भलीभाँति शुद्ध करै, फिर गुरुकी कृपा पाय, उनके मुखसे सुने

सप्रत्यवायोऽह्यहमित्यनात्मधीरज्ञप्रसिद्धानतुतत्त्वदर्शिनः ॥ तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपिक्रियात्मभिर्विधानतःकर्मविधिप्रकाशितम् ॥ २३ ॥
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतोगुरोःप्रसादादपिशुद्धमानसः ॥ विज्ञायचैकात्म्यमथात्मजीवयोःसुखीभवेन्मेरुरिवाप्रकंपनः ॥ २४ ॥
आदौपदार्थावगतिर्हिकारणंवाक्यार्थविज्ञानविधौविधानतः ॥ तत्त्वंपदार्थौपरमात्मजीवकावसीतिचैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥ २५ ॥
प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहायसंगृह्यतयोश्चिदात्मताम् ॥ संशोधितांलक्षणयाचलक्षितांज्ञात्वास्वमात्मानमथाद्वयोभवेत्॥ २६ ॥

हुए 'तत्त्वमसि।' इस महावाक्यके आधारसे जीवात्माकी परमात्मासे ऐक्यता है, इसविषयमें मनन निदिध्यासन करके अनुभव प्राप्त करे । इस ज्ञानका साक्षात्कार होतेही सब दुःख दूर होकर सुख प्राप्त हो जाता है। फिर उस पुरुषकी स्थिति मेरु पर्वतके समान अत्यन्त स्थिर होती है। विषयादिकी इच्छा करके अंतःकरण कभी लुब्ध नहीं होता ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण अब मैं तुमसे 'तत्त्वमसि' महावाक्यका अर्थ कहताहूं। भ्रम या भूल न करके किसीभी वाक्यके अर्थ जाननेका कारण (साधन) प्रथम उस वाक्यके पदोंका अर्थ समझ लेना है। महावाक्यके 'तत्' और 'त्वम्' इन दोनों पदोंका अर्थ 'परमात्मा और जीव' है; व (असि) पद इन दोनोंका अभेद जताता है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! इसपर तुमको शंका होगी कि 'ईश्वर सर्वज्ञ है; जीव किंचिज्ज्ञ (थोडा ज्ञान रखनेवाला) है;' फिर इन दोनोंकी एकता कैसे हो सकती है ? तो

इसकाभी उत्तर कहताहूं जीवमें 'अहम्' मैं इस बुद्धिका जानना यह धर्म है; व ईश्वरमें—वह किसीको दीखता (जाना जाता है) नहीं यह धर्म है इन अलग २ धर्मोंसे जीवात्माका परमात्मासे विरोध हुआ है; यह विरोध छोडकर तिसके विषयमें उत्तम प्रकारसे विचार करे; 'तत्' और 'त्वम्' इन पदोंका आगेके श्लोकोंमें कहे अनुसार लक्षणसे निकलनेवाला अर्थ लेकर यह दोनोंही (ईश्वर और जीव) चैतन्य रूपसे एक 'तत्' औ 'त्वम्' इन पदोंके उद्दिष्ट अर्थ हैं—ऐसे जाने; फिर अपनी आत्मा वैसी (चतैन्यमय) है, ऐसा समझकर चिद्रूपीमें मिलगयेके समान होवे मूलमें वह दोनों एकही हैं, परन्तु जैसे एक स्त्रीकी नथ खोगईथी, यह नथ गलेमें अटक गईथी, परन्तु मूलसे वह स्त्री घबडाकर घरभरमें नथको ढूंढ फिरी. फिर दूसरी एक स्त्रीने उससे कहा कि 'बहन्! यह देखो तुम्हारी नथ तुम्हारे गलेमें है!' तब वह नथकी मालिक स्त्री 'मेरी नथ मिलगई!' ऐसा कहती हुई घूमती फिरी, वास्तविक देखनेसे उसकी नथ खोई नहीं गईथी। फिर यह कैसा कहा जासकता है कि, यह 'मिलगई'? परन्तु स्त्रीकी नथ ख जानेके बदले उसको पूर्ण ग्रह आयाथा;) इसकारण उसका एसा उद्धार निकला, तैसे ही जीव यद्यपि चैतन्यरूप व परमात्मासे अभिन्न है, तौभी मनु

एकात्मकत्वाज्जहतीनसंभवेत्तथाऽजहल्लक्षणताविरोधतः ॥ सोऽयंपदार्थाविवभागलक्षणायुज्येततत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

ष्यका ग्रह जो है वह परमेश्वरसे अलग है ऐसा होता है; इसकारण ज्ञान होनेपर ईश्वरके रूपमें मिल जानेके समान होवे ऐसा कहा ॥ २६ ॥ लक्षण तीन प्रकारके हैं;—(१) जहत्स्वार्थ लक्षण, (२) अजहत्स्वार्थ लक्षण और (३) जहदजहत्स्वार्थ लक्षण । (१) जहत्स्वार्थ लक्षण कहिये छोडा जाता है शब्दके मूलका अर्थ जिसमें वह मूलका अर्थ संभव न होनेसे छोड देकर उसके स्थानमें दूसरा संभवनेवाला अर्थ स्वीकार करना उदाहरणम्—गंगायां घोषः—(गंगामें घोसियोंका गृह है) इस वाक्यमें 'गंगायां' इस शब्दका मौलिक अर्थ 'गंगाके प्रवाहमें' है। परन्तु गंगाके प्रवाहमें अहीरोंका घर होजाना संभव नहीं इसलिये 'गंगायाम्' इस शब्दका मौलिक अर्थ 'गंगाके प्रवाहमें' छोड कर 'गंगाके तीरपर' किया जाता है व 'गंगायांघोषः' इस वाक्यका यथार्थ अर्थ 'गंगाके तीरपर अहीरोंका गृह' ऐसा धरकर व्यवहार चलता है। (२) अहजत्स्वार्थ लक्षण अर्थात् छोडा जाता नहीं है, मूलका अर्थ जिस्मेंसे शब्दके मूलका अर्थ छोडा नहीं जाता, परन्तु महावरेसे उसके समान लायकर कोई दूसराही

अर्थ भरदेना) उदाहरण—'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' [कौओंसे दहीकी रक्षा करो] इस वाक्यमें 'काकेभ्यः' इस पदका मौलिक अर्थ 'कौओंसे' यह नहीं छोड़ा जायगा, परन्तु इसके अतिरिक्त 'बिल्ली कुत्ते' जो कोई दहीको खाजाते हैं; तिससेभी ऐसा प्रगट अर्थ महावरेसे लगादिया जाता है, अतएव 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इस वाक्यका अर्थ 'कौए, कुत्ते, बिल्ली' जो दहीको खाने या बखेरने जायँ, उनको अलगकर दहीको रखाओ ऐसा लेकर व्यवहार चलता है (३) जहदजहत्स्वार्थलक्षणा वा भागलक्षणा अर्थात् कुछ छोड़ा जाता है कुछ नहीं छोड़ा जाता है मूलका अर्थ जिसमेंसे उदाहरण—जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' सः (अर्थात् दशवर्ष पहलेका देखाहुआ) वह । 'अयम्' (अर्थात् अब आगे खड़ाहुआ) यह देवदत्त है दशवर्ष पहले देवदत्त छोटाथा; उसके डाढी मूछें नहींथीं और अब तो इसका स्वरूप बिलकुल बदल गया है, परन्तु मनुष्य देवदत्तका दशवर्ष पहलेका छोटा आकार व अबका डाढी मूछोंका आकार छोड़ देकर; न बदलनेवाला सामान्य मांसपिंडके ऊपर लक्ष्य देता है । अतएव—सः (पहलेका) और 'अयम्' (अबका) इन दोनोंके मूलका कुछ अर्थ छोड़ देकर पहिचानका व्यवहार चलता है । महावाक्यमें 'तत्' माया उपाधि [पीछे अठारहवें श्लोकमें 'उपाधि' शब्दका व्याख्यान है सो देखो । इस शब्दकी उत्पत्ति आधीयते अनेन इति आधिः आधेः उप—उपाधिः-चिंताके निकटका] है, जिसकी वह चैतन्य—ईश्वर व 'त्वम्' (तुम अंतःकरण उपाधि हो जिसकी वह चैतन्य जीव) इन पदोंमें दोनोंके एक होनेकी शक्ति नहीं, इसकारण लक्षणा तो करनी चाहिये । पर वह कौनसी करनी चाहिये, जहत्स्वार्थ लक्षणा करना संभव नहीं; क्योंकि इस लक्षणामें पदके मूलका अर्थ सारा छोड दिया जाता है और हमारे दोनों पदोंका सारा अर्थ छोडनेके योग्य नहीं, कारण तिनमें चैतन्यरूप अर्थ एक है; वह हमको लेना चाहिये । अच्छा तैसे ही अजहत्स्वार्थ लक्षणाभी नहीं लगाई जाती, क्योंकि तिसमेंभी विरोध आताहै देखो इस लक्षणामें बाहरके अर्थ भरलेनेका, परन्तु पदके मूलका अर्थ सम्पूर्णतः नहीं छोडा जाता; हमको दोनों पदोंसे 'चैतन्य' इतनाही अर्थ रखकर बाकी छोडना है । अब रही—जहदजहत्स्वार्थ लक्षणा किंवा भाग लक्षणा केवल लगती है । इसमें कोई दोष नहीं आता । जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' इस कारणमेंसे हम 'उस समयका छोटा' व 'इस समयका डाढी मूँछवाला बडा' यह दोनों धर्म छोड देवदत्तकी साधारण पहँचान उसके मुखपर माताके दाग थे इत्यादि लिये, तैसेही 'तत्' व (त्वम्) पदोंके अनुक्रमसे (माया उपाधिहै जिसकी, व अंतःकरण उपाधिहै जिसकी) यह अर्थ छोडकर शेष 'चैतन्य' अर्थ ग्रहण

करे और पिछले, श्लोकोंमें कहे हुएके अनुसार 'असि' उस पदसे उनका ऐक्य समझो ॥ २७ ॥ जीवकी उपाधि किससे छूटतीहै सो कहताहूं सुनो । पूर्वजन्म करके संचितहुएकर्मोंसे उत्पन्न हुआ यह शरीर; यह जीवकी स्थूल (बडादीखने योग) उपाधि है । पृथ्वी, उदक, (जल), तेज, वायु, आकाश यह पांचों भूत एक दूसरेमें मिश्र होकर बनेहुए गोलेसे इनकी उत्पत्ति होती है । सुख दुःख इत्यादि प्राप्तकर देनेवाले कर्मके, भोग भोगनेका स्थान यही है, इसकी उत्पत्ति व नाश नहीं है; यह परंपरासे (मायासे महत्तत्त्व, महतत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे भूत, व भूतोंसे शरीर ऐसे क्रमसे) मायाके कार्य हैं ॥ २८ ॥ इस स्थूल शरीरसे भिन्न सूक्ष्म अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियों करके अप्रत्यक्ष, तथा संकल्पविकल्पात्मक मन निश्चयात्मक बुद्धि और नाक, जीभ, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय, वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ यह पांच कर्मेंद्रिय, प्राण अपान, व्यान, उदान, समान, आदिपांच पवनसे युक्त पंचीकृत नहीं किया गया, इस प्रकारका भूतोंसे उत्पन्न हुआ तथा सुखदुःखादिके अनुभव

रसादिपंचीकृतभूतसंभवंभोगालयंदुःखसुखादिकर्मणाम् ॥ शरीरमाद्यंतवदादिकर्मजंमायामयंस्थूलमुपाधिमात्मनः ॥ २८ ॥ सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेंद्रियैर्युतंप्राणैरपंचीकृतभूतसंभवम् ॥ भोक्तुः सुखादेरनुसाधनंभवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनोबुधाः ॥ २९ ॥ अनाद्यनिर्वाच्यमपीहकारणंमायाप्रधानंतुपरंशरीरकम् ॥ उपाधिभेदात्तुयतःपृथक्स्थितंस्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥ ३० ॥

का साधनरूप ऐसा सत्रह तत्त्वका समुदायरूप इस लिंगशरीरको तत्त्ववेत्ता लोग आत्माकी सूक्ष्मउपाधिरूप कहतेहैं । जब स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर युक्त होतेहैं तबतक भोगके साधन गिने जातेहैं और जब अलग होजाते हैं तब यह कहाजाताहै कि मरण होगया ॥ २९ ॥ इस प्रकार जीवकी स्थूल, सूक्ष्म दोनों उपाधि कहकर, अब ईश्वरकी उपाधिको कहताहूं—माया ईश्वरका उत्तम ('यह ईश्वरहै' जिसमें यह व्यवहार चलताहै सो) प्रधान शरीरहै । इस शरीरकी उत्पत्ति नहीं (यह पहलेसेहीहै, परन्तु इसका नाश होताहै, अर्थात् माया अनेक रूप करके परिमाण पाती और अंतको वह सर्वरूप नष्ट होतेहैं) इस शरीरका वर्णन नहीं किया जा सकता, परन्तु यही सब जगतकी उत्पत्तिका कारणहै । मूल आत्मा एक होनेसे इन भिन्न २ उपाधियोंकरके 'जीव और ईश्वर' ऐसा पृथक होरहाहै । इसकारण वह उपाधि छोड़, श्रवण, मनन, निदि

ध्यासके क्रमसे जीवात्माको परमात्मरूपी अभेद (ऐक्य) जानना उचितहै ॥ ३० ॥ अब वाक्यार्थ विचारकर फलको दर्शाताहूं । यह आत्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय आदिकोशके विषय जैसे स्फटिक मणि गुडहलके फूलके संगसे लाल मालूम होतीहै, तैसेही तिन २ कोशोंके संगसे उस २ कोशके समान आकारवाला मालूम होताहै, परन्तु इस महावाक्यका अर्थ भलीभाँति विचारनेसे यह आत्मा संग और रूपसे रहित; अजन्मा और अद्वितीय मालम होताहै, इसकारण मैं स्थूल कृश इत्यादिहूँ ऐसी प्रतीति स्फटिकके समान उस २ कोशके संगसे अज्ञानीको होतीहै, परन्तु तैसीप्रतीति तत्त्वज्ञानीको नहीं होती । इसकारण उपाधिसे हुई उस २ आकारवाली प्रतीतिको मिटानाही इस वाक्यार्थके विचारका फलहै ॥ ३१ ॥ इस (आत्मा) में स्वप्न—जाग्रत् (जागना) और सुषुप्ति (निद्रा) इन भेदोंकी तीन प्रकारकी अवस्था दिखाई देतीहैं; परन्तु यह बुद्धिकेही धर्म हैं;—आत्माके नहीं—बुद्धि रज; सत्त्व और तम इन तीन गुणोंकी हुईहै और यह तीनों अवस्थाका इन

कोशेष्वयंतेषुतुतत्तदाकृतिर्विभातिसंगात्स्फटिकोपलोयथा ॥ असंगरूपोऽयमजोयतोऽद्वयोविज्ञायतेऽस्मिन्परितोविचारिते ॥ ३१ ॥
बुद्धेस्त्रिधावृत्तिरपीहदृश्यतेस्वप्नादिभेदेनगुणत्रयात्मनः ॥ अन्योऽन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतोमृषानित्येपरेब्रह्मणिकेवलेशिवे ॥ ३२ ॥
देहेंद्रियप्राणमनश्चिदात्मनांसंघादजस्रंपरिवर्ततेधियः ॥ वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणायावद्भवेत्तावदसौभवोद्भवः ॥ ३३ ॥

तीन गुणोंकेही अनुक्रमसे कार्य होताहै (स्वप्न रजोगुणका कार्य, जाग्रत् सत्त्व गुणका और निद्रा तमोगुणका) यह अवस्था आत्मापर अनुभव नहीं होती क्योंकि इनका मूलही झूठाहै; इनमेंसे एकभी अवस्था नित्य नहींहै; देखो; स्वप्नमें निद्रा कहां आती है ? निद्रामें जागनापन क्यों दिखाई देताहै ? जागतेहुएमें क्यों निद्रा आतीहै ? ऐसा इन अवस्थाओंका परस्पर व्यभिचार (नाश) है;—इसकारण इनको नित्य नहीं कहा जासकता । अर्थात् इनका झूंठा होना सिद्धहै, आत्मा नित्य (उत्पत्तिनाशरहित तीनों गुणोंसे अलग, व्यापक, किसीसे सम्बन्ध न रखनेवाला व आनंदरूपहै, ऐसी आत्मापर अनित्य अवस्थाका अनुभव वास्तवमें कभी नहीं हो सकता; परन्तु तैसा भास होताहै; तिसका कारण केवल बुद्धिका अध्यास (अध्यासका अर्थ ३ श्लोकमें आगे कहाहै, सो देखो) ॥ ३२ ॥ देह, इन्द्रियें, प्राण, मन और जीव इनके एकपर एकके अध्यास (३७ श्लोक देखो)

होनेसे बुद्धिकी वृत्ति निरन्तर चलती रहती है; इस वृत्तिका मूल आधार तमोगुणका—व रजोगुणका—होता है, इस कारण उससे होने वाले व्यापारभी अज्ञानके बोधक होते हैं; उन व्यापारोंके देखतेही विद्वानोंको स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि, यह केवल अज्ञान है; उस बुद्धिकी वृत्ति जबतक चलती रहती है, तबतक यह संसार उत्पन्न होताही है; अत एव जिसमें रज व तमगुणका आधिक्य होता है; वह बुद्धि संसारका कारण है, इस कारण उसका सर्वथा त्याग करना ॥ ३३ ॥ अब महावाक्यके विचारके कर्तव्यको दर्शाताहूं । जिससे 'न इति' इस प्रकार करके अर्थात् मिथ्या करके, देह इन्द्रियाद दृश्य समूहरूप सब जगत्ने जाना है, तथापि जिसे सत्त्वप्रधान मनसे चैतन्यरूप अमृतका घूंट अर्थात् सर्व दुःखरहित ऐसे परम सुखरूप चैतन्य धनका भली भाँति स्वाद लिया है, ऐसा पुरुष सर्व, दृश्य, श्राव्य जगत्का त्याग करे अर्थात् उसमें हेय, उपादेय बुद्धि नहीं करे, परन्तु केवल उदासीन होकर रहे। जैसे प्यासा मनुष्य नारियल अथवा नारंगी आदि फलका रस पीनेके पीछे उस रसके मूलस्थानरूप

नेतिप्रमाणेननिराकृताखिलोहृदासमास्वादितचिद्घनामृतः ॥ त्यजेदशेषंजगदात्तसद्रसंपीत्वायथांऽभःप्रजहातितत्फलम् ॥ ३४ ॥
कदाचिदात्मानमृतोनजायतेनक्षीयतेनापिविवर्धतेऽनवः ॥ निरस्तसर्वातिशयःसुखात्मकःस्वयंप्रभःसर्वगतोऽयमद्वयः ॥ ३५ ॥
एवंविधेज्ञानमयेसुखात्मकेकथंभवोदुःखमयःप्रतीयते ॥ अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशतेज्ञानेविलीयेतविरोधतःक्षणात् ॥ ३६ ॥

फलका त्याग करता है, तैसेही सर्व दृश्य जगत्के मायारूप ब्रह्मको प्राप्त होनेके पीछे निःसार सर्व दृश्य जगतके विषे त्याज्य और ग्राह्यबुद्धि नहीं रक्खे; अर्थात् उसमें उदासीन होकर रहे ॥ ३४ ॥ आत्मा कभी (६) मरता नहीं (१) उत्पन्न नहीं होता (२) क्षीण नहीं होता (३) बढता नहीं और (२) नया होकर (४) व रूपान्तर पायकर रहता नहीं इस कारण उसको (१) जायते (२) अस्ति (३) वर्धते (४) विपरिणमते (५) अपक्षीयते (६) नश्यति; यह छः भाव विकार नहीं लगते इसने (जीवात्माने) देहेन्द्रियादि सर्वका महत्त्व दूर कर दिया है (तिससे अधिक महत्त्व किसीका नहीं है) यह सुखरूप, स्वप्रकाश, सर्वव्यापी व ब्रह्मसे अभिन्न है—इसके अतिरिक्त सर्व पदार्थ विकारी और अनित्य हैं,—इस कारण तिसमें वैराग्य धारण करे॥ ३५॥ इसपर सहजसेही यह शंका उत्पन्न होतीहै कि, जब आत्मा इस प्रकारका ज्ञानरूप व सुखमयहै,

तब उसपर यह दुःखका भराहुआ संसार कैसे दीखता है ? परन्तु उसका उत्तर यह है कि; अज्ञानसे लोग आत्मापर देहेन्द्रियोंका अध्यास (आगेका श्लोक देखो) कहते हैं इसकारण उनको संसारकी प्रतीति होती है; तत्त्वज्ञानके होतेही क्षणमात्रमें अज्ञान लय होजाताहै; क्योंकि ज्ञान और अज्ञानका पूर्ण द्वेष है (यह दोनों इकट्ठे नहीं रहवे) ज्ञान उत्पन्न होतेही अज्ञान करके उत्पन्न हुआ संसार अर्थसेही नाश होजाता है ॥ ३६ ॥ एक वस्तुके विषय दूसरी वस्तु भ्रमसे भासती है तिसको तत्त्वदर्शी लोग अध्यास कहते हैं, सर्प नहीं है ऐसी डोरीके विषे जैसी सर्पका आरोप उस रज्जुका अज्ञानमूलक है, तैसेही ईश्वरके विषय देहादि संसारात्मक सर्व जगत आत्मज्ञानके अभावसे भासता है; इसप्रकारसेही ईश्वरपर जगत्का अध्यास किया है ॥ ३७ ॥ अब आत्माके विषय जगतका भान होनेमें कैसा अध्यास है, वे कारण कहताहूं सर्व विकल्पका कारणरूप मायासे

यदन्यदन्यत्रविभाव्यतेभ्रमादध्यासमित्याहुरमुंविपश्चितः॥ असर्पभूतेहिविभावनंयथारज्वादिकेतद्वदपीश्वरेजगत् ॥३७॥ विकल्पमायारहितेचिदात्मकेऽहंकारएषप्रथमःप्रकाल्पितः ॥ अध्यासएवात्मनिसर्वकारणेनिरामयेब्रह्मणिकेवलेपरे ॥ ३८ ॥ इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाःसदाधियःसंसृतिहेतवः परे ॥ यस्मात्प्रसुप्तौतदभावतःपरःसुखस्वरूपेणविभाव्यतेहिनः ॥ ३९ ॥

रहित अर्थात् वास्तवमें मायाके संगसे रहित चित्स्वरूप सर्वका कारणरूप निरामय; सर्व दुःखोंसे असंभिन्न आनंदमय, केवल सर्वविकाररहित ब्रह्म अर्थात् व्यापक, सर्व दृश्यसे विलक्षण आत्माके विषे प्रथम अहंकार अर्थात् अहंबुद्ध्यात्मक (मैं) ऐसा अभिमान अध्यासही सर्व जन्ममरणादिकका कारणरूप कहा गयाहै ॥ ३८ ॥ इच्छा–उदासीनता, प्रीति, द्वेष, सुख, दुःख यह जोडे नित्यगुण धर्म है, उस परमेश्वरपर अध्यास जाननेवाले–संसारके कारण, बुद्धिपर रहनेवाले हैं, कारण जबतक बुद्धि है, तबतक यह है; बुद्धिकी वृत्ति नहीं तब यहभी नहीं । देखो–निद्रामें बुद्धि की वृत्ति नहीं होती, तिस समय सुख, दुःख, प्रीति, द्वेष कोइ भी धर्म नहीं होते–वह आत्माका धर्म है, परन्तु निद्राके बीचभी अनुभवमें आत्मा है उस समय आत्माभी रहताहै, कारण नींद लेकर उठनेपर ‘ मैं ’ सुखसे सोयाथा, ऐसा मनुष्य कहता है तिससे नींदकी वेला सुखका अनुभव लेनेवालाहै

यह स्वीकार करना पडताहै ॥ ३९ ॥ अनादि अविद्यासे उत्पन्नहुई बुद्धिमें चैतन्यप्रकाशका प्रतिबिम्ब पडताहै तिस प्रतिबिम्बको 'जीव कहतेहैं और 'परमात्मा' बुद्धिका चित्रदेखता हुआ अलग रहताहै; बुद्धिसे उसका परिच्छेद नहीं किया जाताहै, अर्थात् वह व्यापक है यह 'जीव' और 'ईश्वर' महावाक्यमेंके 'त्वम्' और 'तत्' पदोंके अर्थ है ॥ ४० ॥ जैसे जब लोहेका गोला अग्निमें डालकर व तपानेपर लाल किया जाय तब उसमें अग्निके गुण (दाहकता) भूननेकी शक्तिके खंडपर दिखाई देते हैं और लोहेके गुण (गोलआकार आदि) अग्निपर भासतेहैं (लोहेका टुकडा चौकोर होरहाहै) 'अग्निका लालगोला' ऐसा लोग कहतेहैं, इसकारण लोखंड और अग्निका एक जगह रहना है, वैसेही चैतन्यका प्रतिबिम्ब (जीव) इन्द्रियोंके सहित, मन व अंतःकरणके निकट सम्बन्धसे, चिदात्मा और मनका परस्पर अध्यास (पीछे श्लोक ३७

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितोजीवःप्रकाशोऽयमितीर्यतेचितः ॥ आत्माधियःसाक्षितयापृथक्स्थितोबुद्ध्यापरिच्छिन्नपरःसएवहि ॥४०॥
चिद्बिंबसाक्ष्यात्मधियांप्रसंगतस्त्वेकत्रवासादनलाक्तलोहवत् ॥ अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयतेजडाजडत्वंचचिदात्मचेतसोः ॥४१॥
गुरोःसकाशादपिवेदवाक्यतःसंजातविद्यानुभवोनिरीक्ष्यतम् ॥ स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितंत्यजेदशेषंजडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीवनिर्मलः ॥ विशुद्धविज्ञानघनोनिरामयःसंपूर्णआनंदमयोऽहमक्रियः ॥ ४३ ॥

देखो) होकर आत्माका धर्म चेतनपना इस मनपर और मनका धर्म जडपना आत्मापर दिखाई देताहै ॥ ४१ ॥ इसकारण पुरुषको वेदवचनोंकरके व गुरुसे महावाक्यका अर्थ श्रवण करना चाहिये; इसके उपरान्त सदा उनका चिंतन करके ज्ञानका अनुभव प्राणी करे और अपना आत्मा सर्व उपाधिसे रहित होनेपर हृदयमें रहता है; ऐसा साक्षात्कार होनेपर सर्व जड़ देहेन्द्रियादि उपकारणोंके विषे उदासीन होकर रहै ॥ ४२ ॥ अब नीचे कहे अनुसार निरुपाधिकस्वरूपको कहताहूं, स्वप्रकाशरूप अजन्मा, सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित, तथा जिसका दूसरा कोई प्रकाश नहीं है, ऐसा अतिनिर्मल; अर्थात् माया-कृत आवरणविक्षेपसे रहित, विशुद्ध, विज्ञानघन अर्थात् विशुद्ध एक चैतन्यस्वरूप, निरामय, कर्तापन इत्यादिके अभिमानसे रहित सम्पूर्ण अर्थात् देशकालके परिच्छेदसे रहित, ऐसा आनंदरूप और अपारिणामी

मैं हूं अजन्मा—"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं ॥ ४३ ॥ मैं नित्यमुक्त हूं मेरी शक्ति कल्पनाके परेहै; इन्द्रियोंको न होनेवाला ज्ञान मेरा परिणाम (रूपान्तर) नहीं होता; मेरा अंत व पार नहींहै (मैं सर्वकाल सर्वव्यापक हूं) वेदवेत्ता विज्ञान दिन रात हृदयमें जिसका चिंतवन करतेहैं सो मैंही हूं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सदा अखंडित अन्तःकरणसे जिसका चित्त विषयमें नहीं खींचाहुआ है, ऐसे अंतःकरणसे आत्मस्वरूपका विचार करनेवालेको विशुद्ध भावना या ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति उदय होती है । उसके उदय होतेही जैसे सेवन की हुई औषधि रोगका नाश करती है, इसीप्रकार वह ब्रह्माकारवृत्ति देहान्तरको प्राप्त करानेवाली कर्मसहित अविद्याका तत्काल नाश करती है ॥ ४५ ॥ अब ध्यान करनेकी रीतिको दर्शाताहूं, एकान्तमें यथोचित पद्म[1] स्वस्तिक आदि आसनपर[2] बैठाहुआ

सदैवमुक्तोऽहमचिंत्यशक्तिमानतींद्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ॥ अनंतपारोऽहमहर्निशंबुधैर्विभावितोऽहंहृदिवेदवादिभिः ॥ ४४ ॥ एवंसदात्मानमखंडितात्मनाविचारमाणस्यविशुद्धभावना ॥ हन्यादविद्यामचिरेणकारकैरसायनंयद्वदुपासितंरुजः ॥ ४५ ॥ विविक्तआसीनउपारतेंद्रियोविनिर्जितात्माविमलांतराशयः ॥ विभावयेदेकमनन्यसाधनोविज्ञानदृक्केवलआत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

शम, दमादि साधनोंके द्वारा संपन्न होनेसे जिसकी इन्द्रियें उपराम होगई हैं; तथा प्राणायामके द्वारा अंतःकरणको जीता है, तिस करके जिसके मनका कलुष नाशको प्राप्त होगया है; ऐसा विशुद्ध चित्तवाला और जिसकी भावना केवल एक विज्ञानस्वरूपमें रही है, अर्थात् द्रष्टा तथा दृश्यके भानसे रहित है, इससे निर्विकल्प समाधिवाला, समझना चाहिये । अनन्य साधन होकर अर्थात् तत्त्वज्ञानके अतिरिक्त और कोई मुक्तिका साधन नहीं है, ऐसा निश्चयवाला केवल असंग और आत्माके विषेही जिसकी स्थिति हुई अर्थात् जिसके चित्तमें किसी प्रथम दूसरे विषयोंका

---

१ शिवसंहिताके योगप्रकरणमें तीसरें पटलके मध्य पद्मासनकी व्याख्या लिखी है " उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः । ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥ १ ॥ नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं दंतमूलं च जिह्वया । उत्तोल्य चिबुकं वीक्ष्य उत्थाप्य पवनं शनैः ॥ २ ॥ तथा शक्त्या च पश्चात्तु रेचयेदविरोधतः । इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् " ॥ ३ ॥ २ " तत्र स्थिरसुखमासनम् " स्वस्तिकासन, पद्मासन, दंडासन इत्यादिकोंके लगनेसें शरीर स्थिर, निष्कंप होकर ध्यान शुद्ध होताहै ॥

संचार नहीं होता, ऐसा होकर स्वयं आत्मास्वरूपका ध्यान करे ॥ ४६ ॥ वही परमात्मा जिसका प्रकाशक हैं, ऐसे इस भूत, भविष्य और वर्तमान सर्व जगत्को सर्वके कारणरूप आत्मामें लय करे । उपादान (कार्यके साथ) होने वा मुख्य (कारण) उदाहरण, घटके 'उपादान' कारण मिट्टी, कुँभारका चाक फिरानेकी चकरेटी (लकड़ी) यह घटका कारण है; परन्तु यह कारण घड़ेके साथ नहीं रहते हैं, इसकारण उनको 'निमित्त कारण' कहते हैं; कारणसत्ताके विना कार्यसत्ताको नहीं देखे । उसका लक्षण नीचे कहे अनुसार होता है, आत्माके विषय सर्व जगत्का लय करनेसे स्वयं चिदानन्दमय, पूर्ण अर्थात् जिसको किसी दूसरी कामनाकी इच्छा नहीं, ऐसा होकर रहता है, तब उसके बाह्य या अंतरका कुछ दृश्य नहीं रहता, क्योंकि सर्व कहीं ब्रह्माकारवृत्तिसे उसको ब्रह्महीं भासता है ॥ ४७ ॥ सब विषयोंकी आसक्ति छूटकर ब्रह्माकार वृत्ति बनती है, इसको 'समाधि' कहते हैं समाधि सिद्ध होनेसे पहले पुरुषका कर्तव्य यह है कि;—सर्व स्थावर जंगम वस्तुओंके सहित 'जगत्' इतना अर्थ (ॐ)

विश्वंयदेतत्परमात्मदर्शनंविलापयेदात्मनिसर्वकारणे ॥ पूर्णश्चिदानंदमयोऽवतिष्ठतेनवेदवाह्यंनचाकिंचिदांतरम् ॥ ४७ ॥ पूर्वंसमाधेरखिलंविचिंतयेदोंकारमात्रंसचराचरंजगत् ॥ तदेववाच्यंप्रणवोहिवाचकोविभाव्यतेज्ञानवशान्नबोधतः ॥ ४८ ॥ अकारसंज्ञःपुरुषोहिविश्वको ह्युकारकस्तैजसईर्यतेक्रमात् ॥ प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वंनतुतत्त्वतोभवेत् ॥ ४९ ॥

शब्दमें समाया हुआ है ऐसा चिंतवन करे । जगत यह प्रणव (ॐकार) का वाच्य (तिससे) निकलनेवाला अर्थ और प्रणव यह जगका वाचक शब्द (ॐ) है, यह कल्पना शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है; यह वृत्तिभी अज्ञान है; यह जबतक रहेगी तबतक ज्ञान नहीं हुआ; ज्ञानके होतेही नहीं रहेगी; कारण कि, ज्ञानहीं सर्व वृत्तियोंका नाश करनेवाला है ॥ ४८ ॥ विषमपद०परमात्मा श्रीरामचंद्रजी (समाधिसे प्रथम चराचर जगत्को ॐकाररूप जाने) ॐकार वाचक है ब्रह्म वाच्य है ऐसे कहते हैं अब उनके आशयको ले ॐकारसे सर्व जगत्की उत्पत्तिमें बुद्धि अनुसार कहते हैं कि, (ओम) अ १ उ २ म् ३ इन तीनोंको ॐकार कहते हैं; अर्थात् सत्त्व रज तम इनके ऐक्यताको ॐ कहते हैं : सत्त्वप्रधान विष्णु १ रजःप्रधान ब्रह्मा २ तमप्रधान शिव ३ प्रगट भये; अथवा इनसे जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति है वह कहते हैं कि, सत्त्व रज तम इनकी साम्य अवस्थाको प्रकृति अर्था

माया कहते हैं, प्रकृतिसे महत् महत्से महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकारसे पंचतन्मात्रा उत्पन्न हुई अर्थात् शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ इन पंचतन्मात्राओंसे दशइन्द्रियाँ अर्थात् नेत्र १ कर्ण २ नासिका ३ रसना ४ त्वचा ५ वाणी १ हाथ २ पद ३ गुदा ४ लिंग ५ यह दशइन्द्रियाँ हुईं ॥ पंचतन्मात्रासे पंचभूत हुए जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्दका गुण आकाश, शब्द तन्मात्राके साथ, स्पर्श तन्मात्रासे वायु, शब्द स्पर्शतन्मात्राके साथ रूप तन्मात्रासे तेज, शब्द स्पर्शरूपका गुण हुआ, पीछे शब्दस्पर्शरूपतन्मात्राके सहित रस तन्मात्रासे जल, शब्दस्पर्शरूप रसका गुण हुआ, फिर शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रासहित गंधतन्मात्रासे पृथ्वी, शब्दस्पर्शरूपरसगंधका गुण हुआ, यह पांचभूत हुए और उभया त्मक मन और कार्यकारणका विलंबी आत्मा । यह सर्व सृष्टि सत्त्व रज तम अकार उकार मकार में अन्तर्गत है इन तीनोंको (ॐ) कहते हैं ॥ इसलिये समाधिमें ॐ कारका जप और उसका ज्ञान उपकारक है, जैसे योगशास्त्रमें लिखा है कि " तस्य वाचकः प्रणवः " तिस परमात्माका वाचक अर्थात् कहनेवाला प्रणव है, इस हेतुसे ओंकारके ज्ञानकी आवश्यकताहै यथा; " तज्जपस्तदर्थभावनम् " समाधिमें तिस ॐ कारका जप और अर्थज्ञान की भावना चाहिये ॥ और इसी आशयको लेकर छान्दोग्यउपनिषद्में लिखा है कि " ओंकारपूर्वं हि योगोपशासनं–यानि नित्यानि कर्माणि " इत्यादि श्रुति स्मृति विचारशास्त्र द्वारा ओंकारका जप अर्थ और सृष्टिका कारण कह अब ओंकारका परमोत्कृष्ट माहात्म्य श्रुति विहित लिखते हैं अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषत्पंचमप्रश्ने यथा– " अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स योह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । कतमं वा वसते न लोकं जयतीति ॥ १ ॥ तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकामः परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेन नैकतरमन्वेति ॥ २ ॥ स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥ अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥ यः पुनरेतात्रिमात्रेणैवोमित्यनेनैवाक्षरेण परपुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना–विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥ तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥ ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सा

मभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैव वायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परश्चेति ॥ ७ ॥ इति पंचमः प्रश्नः" ॥ ओम् प्लुत उच्चारण करना चाहिये ॥ 'ॐ' इस शब्दका अर्थ 'सारा संसार, ऐसा कैसे हुआ सो श्रवण करो;—'अ+उ+म्' इन तीन अक्षरोंकी सन्धि होकर 'ॐ' शब्द सिद्ध हुआ है। शरीरमें जाग्रदवस्थाका साक्षी (जागतेपनके व्यवहारोंका देखनेवाला) जो पुरुष—वेदान्तशास्त्रमें जिसको—'विश्व; कहते हैं—उसकी ही 'अ' संज्ञा है। अनुक्रमसे दूसरा वर्ण 'उ' है। यह नाम स्वप्नवृत्तिका साक्षी व वेदान्तशास्त्रमें जिसकी 'तैजस्' संज्ञा है; ऐसे कहा है कि यह संज्ञा हिरण्यगर्भकी है, तैसेही समस्त लोक सुषुप्तिके साक्षी पुरुषको—वेदान्त शास्त्रकी 'प्राज्ञ' को—'म' कहते हैं यह सब प्रकार समाधिके पहलेका है। तत्त्वज्ञान होनेपर फिर इसका विचारही नहीं है ॥ ४९ ॥ जगत्को आत्मरूपमें लय करे ऐसा (४७ वें श्लोकमें कहा है) अब वह

विश्वंत्वकारंपुरुषंविलापयेदुकारमध्येबहुधाव्यवस्थितम् ॥ ततोमकारेप्रविलाप्यतैजसंद्वितीयवर्णंप्रणवस्यचांतिमे ॥ ५० ॥ मकारमप्यात्मनिचिद्धनेपरेविलापयेत्प्राज्ञमपीहकारणम् ॥ सोहंपरंब्रह्मसदाविमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्तउपाधितोऽमलः ॥५१॥ एवंसदाजातपरात्मभावनःस्वानंदतुष्टःपरिविस्मृताखिलः ॥ आस्तेसनित्यात्मसुखप्रकाशकःसाक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिंधुवत् ॥ ५२ ॥

लय करनेका प्रकार कहता हूँ; विस्तीर्ण स्थूलदेहका अभिमान रखनेवाला विश्वसंज्ञक पुरुष उसका वाचक 'अ' यह दोनों उकारमें मिलगये ऐसी भावना करे; फिर स्वप्नका अभिमानी 'तैजस्', पुरुष और उसकी संज्ञा ओंकारका दूसरा वर्ण, उकार यह प्रणवके पिछले अक्षर 'म' कारमें लीन होगया ऐसी कल्पना करे ॥ ५० ॥ फिर 'म' कार और उसका वाच्य जो अपनेको कारणत्व माननेवाला पुरुष 'प्राज्ञ' उसको इस चैतन्यमय परमात्मामें मिलावे और पीछे सर्व जगत् जिसमें लय पाता है वह नित्य मुक्त परब्रह्म मैं हूं ऐसी भावना करे; ऐसी भावनाके होनेका साधन तत्त्वज्ञान है, इतनी योग्यताको पहुँचा हुआ पुरुष उपाधिमें छूटा अर्थात् राग द्वेषादि मलरहित हो जाता है; इस लिये उसकी ब्रह्मरूपी ऐक्यभावना होनेमें कभी कठिनता नहीं होती ॥ ५१ ॥ इस प्रकारसे नित्य जिसकी परमात्मरूपी एक भावना जमगई, वह पुरुष

१ समाधि "समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" चित्तकी जो वृत्ति राग द्वेष काम क्रोधादि इनसे अलग करके मनका एक भावनामें स्थित करना वह समाधि कहलाता है।

पुत्र देहादि सबको भूल जाताहै (पुत्र देह इत्यादि विषयोंसे होनेवाले आनंदका परिणाम दुःखरूपहै, इसकारण उनसे विरक्त होताहै) व अपने स्वरूपके आंनदसेही संतुष्ट रहताहै; साक्षात् नित्य (जिसके उपाधिके मूलसे उत्पन्न होनेवाले नाम व रूप नहीं है, ऐसा) आत्मा, तन्मय सुख व प्रकाशरूपीहै; उसको पाकर वह जीवन्मुक्त पुरुष जलसे भरेहुए निश्चल समुद्रके समान शान्त रहताहै ॥ ५२ ॥ इसप्रकारसे जो पुरुष नित्य समाधियोगका अभ्यास करताहै; इन्द्रियोंके सर्व विषय छोड़देताहै; व षड्गुण सम्पन्न (१) सर्वज्ञ होना (२) नित्यतृप्त रहना (३) ज्ञान स्वरूप होना (४) स्वतंत्र होना (५) सबकालमें अनन्तरूप रहना (६) यह छः गुण हैं आत्माको वश कर लेताहै उसको मेरा दर्शन नित्य मिलताहै ॥५३॥ इसप्रकारसे समस्त बंधनोंको छोडकर मुनि; दिन रात नित्य आत्मचिंतन करता रहै । प्रारब्धकर्म तीन प्रकारके हैं; (१) संचि

एवंसदाभ्यस्तसमाधियोगिनोनिवृत्तसर्वेंद्रियगोचरस्यहि ॥ विनिर्जिताशेषरिपोरहंसदादृश्योभवेयंजितषड्गुणात्मनः ॥ ५३ ॥ ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशंमुनिस्तिष्ठेत्सदामुक्तसमस्तबंधनः ॥ प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितोमय्येवसाक्षात्प्रविलीयतेततः ॥ ५४ ॥ आदौचमध्येचतथैवचांततोभवंविदित्वाभयशोककारणम् ॥ हित्वासमस्तंविधिवादचोदितंभजेत्स्वमात्मायमथाखिलात्मनाम् ॥ ५५ ॥

त (२) क्रियमाण और (३) तीसरा प्रारब्ध; संचित कहिये इकट्ठे करके एक ओर रक्खे हुए, क्रियमाण कहिये जो आज कल हम करतेहैं, प्रारब्ध कहिये जिनका फल आजकल हम भोगरहेहैं । तीनकर्मोंके तीन उदाहरण क्रमसे दिये जातेहैं । (१) किसी जिमींदारने बहुतसा नाज भरकर कुठियाको बंद कर दिया कि, आगेको काम आवे (२) खेतमेंसे धान काटे जारहे हैं (३) कोई पुरानी कुठिया खोलकर उसमेंसे धान खाये जारहेहैं तिनके वशसे प्राप्तहुए भोगोंको भोगो परन्तु अभिमान न रक्खे तो अंतमें उसको प्रत्यक्ष मेरे स्वरूपकी गति मिलेगी ॥ ५४ ॥ संसार आदि मध्य व तैसेही अंतमें भय और शोकको प्राप्त कर देनेवाला है ऐसा जानकर मुमुक्षु पुरुष वेदान्ती 'यजेत्' (यज्ञ करो) ऐसे विधिवचनों करके करनेको कहे हुए सर्व कर्म छोडदे; और सर्व प्राणियोंका आत्मा जो परमेश्वर (मैं) हूं तिसकी (मेरी) भक्ति करे, यही सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ,

धर्म है ॥ ५५ ॥ मैं सर्वभूतोंका आधार हूं, पुरुष मेरे स्वरूपमें जीव अभेदसे हैं (परमेश्वर व जीव एकही है) ऐसी भावना करता रहा कि मुझसे ऐक्यताको प्राप्त होजाताहै " एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्था दोषवर्जितः । एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः " ॥ अनेन प्रकारेणात्मन्यभेदः ॥ अर्थात् एकही परमात्मा सर्वभूतोंमें व्यापक है जलमें चंद्रमाकी नाईं जैसे घड़ोंमें बहुतसे चंद्रमा प्रतीत होते हैं वास्तवसे एकही हैं; उदाहरण देखो; नदियोंका पानी समुद्रमें मिलतेही समुद्ररूप बनता है दूध दूधमें पड़तेही एकमएक होजाता है; घड़ेका आकाश (खोखलापन) घड़ेके टूटतेही बड़े आकाशमें मिलजाता है; लुहारकी धोंकनीका पवन बाहरकी पवनमें मिलजाता है (ऐसाही परमात्माका जीवात्मासे एकत्व होताहै) ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे जीवन्मुक्तिदशामें प्रारब्धके योगसे लोकव्यवहारको करनेपरभी जगत् मिथ्या है, यह चिंतवन करताहुआ मुनि जब अपने एक स्वरूपको जानता है तब जगत्के

आत्मन्यभेदेनविभावयन्निदंभवत्यभेदेनमयाऽत्मनातदा ॥ यथाजलंवारिनिधौयथापयःक्षीरेवियद्व्योम्न्यनिलेयथाऽनिलः ॥ ५६ ॥ इत्थंयदीक्षेतहिलोकसंस्थितोजगन्मृषैवेतिविभावयन्मुनिः ॥ निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतोयथेंदुभेदोदिशिदिग्भ्रमादयः ॥५७॥ यावन्न पश्येदखिलंमदात्मकंतावन्मदाराधनतत्परोभवेत् ॥ श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणोयस्तस्यदृश्योऽहमहर्निशंहृदि ॥ ५८ ॥

सत्यपनका भ्रम मिटजाता है, कारण कि, " अतोन्यदार्तं" इत्यादि श्रुतियोंसे " जगन्मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरजतादिवत् " । ऐसे अनुमानसे सींपमें चाँदी भासतीहै; तैसेही जगत् दृश्य होनेसे मिथ्या है जैसे एक चंद्रमामें दो चंद्रमाका भ्रमकरना उस एक चंद्रमाके जानलेनेसे दूर होताहै, जैसे पूर्वादि दिशाका भ्रम उस दिशाके यथार्थ जानलेनेसे दूर होजाताहै, और फिरते हुए पुरुषको दिशाओंके घूमनेका भ्रम तथा निकटके वृक्षोंके घूमनेका भ्रम होताहै; वह भ्रम जिस प्रकार उनके स्थिरपनके ज्ञानसे दूर होताहै तैसेही आत्मस्वरूपकी एकता जाननेसे जगतके सत्य होनेका भ्रम मिटजाताहै ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसे ज्ञान होनेका उपाय मेरी आराधना करनाही है जबतक पुरुषको जैसे सर्प भासनेका आधार डोरी है तैसेही इस सर्व जगतका आधार मैं (परमेश्वर रामचंद्र) हूं, ऐसी दृष्टि प्राप्त नहीं हुई, तबतक उसको भगवान्की आराधना करनाही ज्ञानका उपायहै ऐसा विश्वास रखकर मेरी पूजा करनेमें तत्पर रहै; जिससे मेरी अत्यन्त बढ़ीहुई भक्तिके चिह्न दिखाईदेतेहैं. उसके हृदयमें अपना स्वरूप

नित्य प्रगट रखताहूं[१] ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम हमको बहुत प्यारे हो; इसलिये मैंने सर्ववेदोंका सारअंश जो एकत्र करके ठहरायाथा, वह मैंने तुमसे कहा । यह तत्त्वविचार बहुत गप्तहै; व तैसाही रखना चाहिये; सृष्टिमें जो बुद्धिमान् मनुष्य इसका उत्तम प्रकारसे विचार करताहै वह पापकी राशिसे तत्काल मुक्त हो जाताहै ॥ ५९ ॥ हे भइया ! जो यह जगत् दीखता है वह सब मायाही है, ऐसा समझकर मनको सबसे दूर रक्खे (उदासीन रहो) और अपनेको मुझसे ऐक्य होनेकी भवना करो, तब तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा और फिर तुम्हे दुःख भोगने न पड़ेंगे केवल सुख प्राप्त होगा, इतनाही नहीं बरन् आगेको तुम आनंदमय बन जाओगे, यह मेरा पूर्ण आशीर्वाद है ॥ ६० ॥ सत्त्व, रज और तम गुणसे रहित सच्चिदानंदरूप मायासे, तैसेही सर्वज्ञाता आदि और अलौकिक लावण्य आदि गुणवाली जिसकी मूर्ति है ऐसे मुझको जो कोई पुरुष

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहंमयाविनिश्चित्यतवोदितंप्रिय ॥ यस्त्वेतदालोचयतीहबुद्धिमान्समुच्यतेपातकराशिभिःक्षणात् ॥५९॥ भ्रातर्यदीदंपरिदृश्यतेजगन्मायैवसर्वंपरिहृत्यचेतसा ॥ मद्भावनाभावितशुद्धमानसःसुखीभवानंदमयोनिरामयः ॥ ६० ॥ यःसेवतेमामगुणंगुणात्परंहृदाकदावायदिवागुणात्मकम् ॥ सोऽहंस्वपादांचितरेणुभिःस्पृशन्पुनातिलोकत्रितयंयथारविः ॥ ६१ ॥

शुद्धः अंतःकरणसे सेवन करता है वे निर्गुण और सगुण मेरे रूपकी उपासना करनेवाले दोनों सेवक मेरे स्वरूपके समान हैं अर्थात् वह रूप मैं हीहूं । वे भक्त अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पावन करते हैं तथा जैसे सूर्य जगत्के अंधकारका नाश करके प्रकाश करता है, तैसेही मेरा

१ वि०आशय यह है कि, जिस पुरुषका चित्त पूर्व कर्मोंकरके न शुद्ध होवे और मेरा स्वरूप यथार्थतासे सर्व जगत न देखे; फिर चित्तशुद्धिके लिये निष्काम कर्मोंसे मेरी जो गुण मूर्ति है; उसका ध्यान पूजन करे । प्रमाण श्रु०य०वे०अ०४ मं०२॥ "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँसमाः। एवंत्वयि नान्येथतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"। अर्थ–कि सर्व जगत्में ब्रह्ममय भावना न होवे तो१०० वर्षतक निष्काम कर्मकरे इस प्रकार तुमको मोक्ष होगा और तरहसे नहीं । और निष्काम किये हुए दुष्कर्म तुमको नहीं प्राप्त होंगे । इसके द्वारा सगुण निर्गुण दोप्रकारकी उपासना कहदी श्रीरामचंद्रजी फिर सगुण उपासनाको अंतमें प्रगट करग इति ॥

प्रियभक्त लोगोंके अज्ञानरूप अंधकारका नाश करके सर्वको पवित्र करता है ॥ ६१ ॥ जगत्की उत्पत्ति इत्यादि जिसकी लीलाका ज्ञान उपनिषदोंके द्वारा श्रवण करके मिला है, सो मैंहीहूं । और मैंनेही सर्व वेदोंका तत्त्व यह अद्वितीय तत्त्वज्ञान निरूपण किया । जो मनुष्यपर गुरुपर भक्ति रखकर विश्वासपूर्वक उसका पाठ करे और उसकी भक्ति मेरे वचनोंपर होगी तो उसको मेरे स्वरूपकी गति मिलेगी ॥ ६२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे मिश्रसुखानंदसूनुपंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां रामगीतायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

दोहा—वेद पुराण निगम अगम, श्रुति रहस्यको सार । कह्यो राम निजमुखकमल जगउद्धारन हार ॥ १ ॥
याहि पढ़ाहिं जो प्रेमते, लहैं अमित विश्राम । छूटि जगत् जंजालसों, जायँ रामके धाम ॥ २ ॥
पढ़त रामगीता सुभग, बनत लोक परलोक । चलो काम सब त्यागके, पीवहु आनँद ओक ॥ ३ ॥
पूष कृष्ण आनंद पक्ष, श्रेष्ठवार गुरुवार । भाष्यकार भाषाकरी; निजमतिके अनुसार ॥ ४ ॥

विज्ञानमेतदखिलंश्रुतिसारमेकंवेदांतवेद्यचरणेनमयैवगीतम् ॥ यःश्रद्धयापरिपठेद्गुरुभक्तियुक्तोमद्रूपमेतियदिमद्वचनेषुभक्तिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेश्रीरामगीतायांपंचमःसर्गः ॥५॥ श्रीमहादेवउवाच ॥एकादामुनयःसर्वेयमुनातीरवासिनः ॥ आजग्मूराघवंद्रष्टुंभयाल्लवणरक्षसः॥१॥कृत्वाग्रेतुमुनिश्रेष्ठंभार्गवंच्यवनंद्विजाः॥ असंख्याताःसमायातारामादभयकांक्षिणः२

द्विज बलदेवप्रसाद मैं, विनावित हों कर जो । जोरि अशुद्धता होय कहुँ, दीजो मोहिं न खोरि ॥ ५ ॥
ज्ञानकथा समझत सुनत; ज्ञानवान चलजाहिं । हो भूलौं भटक्यो जो कहुँ, तो मोहिलानो ताहिं ॥ ६ ॥
मुरमर्दन केशीदलन, लिये भक्तजन साथ । साँवररूप अनूपसो, वसो हिये रघुनाथ ॥ ७ ॥

श्लोक—रामगीता महापुण्या यथेच्छफलदायिनी ॥ पठनीया सदा सद्भिर्ब्रह्मानंदस्वरूपिणी ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नजीका लवणासुरके वध करनेको जाना ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वति ! एक समय यमुनाके तीरपर रहनेवाले सर्व ऋषि लवण राक्षसके भयसे श्रीरामचंद्रजीसे भेंट करनेको अयोध्यामें आये ॥ १ ॥ असंख्य ब्राह्मण रामचंद्रजीसे अभय पानेकी इच्छासे च्यवन भार्गव नामक श्रेष्ठ मुनिको आगे

करके, राजमंदिरके निकट जाय पहुँचे ॥ २ ॥ रघुकुलोत्तम रामचंद्रजीने परमभक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके मुनिसमूहको आनंद देनेके लिये मधुर वचन कहे ॥ ३ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठगण ! मैं आपका कौनसा कार्य करूं ? आप लोग किस अभिप्रायसे यहांपर आये ? मेरे हाथसे आपका दुःख दूर हो जायगा, ऐसी बुद्धिसे प्रीतिपूर्वक जो आप लोग आये तिससे मैं कृतार्थ होगया ॥ ४ ॥ आपका कार्य कैसाभी कठिन हो तौभी मैं करूंगा, मैं आपका सेवक हूं, क्योंकि ब्राह्मण मेरे आराध्य देवता हैं; मुझ सेवकके लिये आप आज्ञा कीजिये" ॥ ५ ॥ यह सुन च्यवन मुनि हर्षित होकर शीघ्र बोले । "हे प्रभो ! पहले सतयुगमें मधुनामका एक महादैत्य ॥ ६ ॥ होगया है । वह अत्यन्त धार्मिक देवता और ब्राह्मणकी पूजा करनेमें तत्पर रहा; महादेवजीने प्रसन्न होकर उसको

तान्पूजयित्वापरयाभक्त्यारघुकुलोत्तमः ॥ उवाचमधुरंवाक्यंहर्षयन्मुनिमण्डलम् ॥ ३ ॥ करवाणिमुनिश्रेष्ठाःकिमागमनकारणम् ॥ धन्योऽस्मियदियूयंमांप्रीत्याद्रष्टुमिहागताः ॥४॥ दुष्करंचापियत्कार्यंभवतांतत्करोम्यहम् ॥ आज्ञापयंतुमांभृत्यंब्राह्मणादैवतंहिमे ॥५॥ तच्छ्रुत्वासहसाहृष्टश्च्यवनोवाक्यमब्रवीत् ॥ मधुनामामहादैत्यःपुराकृतयुगेप्रभो ॥६॥ आसीदतीवधर्मात्मादेवब्राह्मणपूजकः ॥ तस्यतुष्टो महादेवोददौशूलमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ प्राहचानेनयंहंसिसतुभस्मीभविष्यति ॥ रावणस्यानुजाभार्यातस्यकुंभीनसीश्रुता ॥ ८ ॥ तस्यांतुल वणोनामराक्षसोभीमविक्रमः ॥ आसीद्दुरात्मादुर्धर्षोदेवब्राह्मणहिंसकः ॥ ९ ॥ पीडितास्तेनराजेंद्रवयंत्वांशरणंगताः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवो ऽप्याहमाभैर्वोमुनिपुंगवाः ॥ १० ॥ लवणंनाशयिष्यामिगच्छंतुविगतज्वराः ॥ इत्युक्त्वाप्राहरामोऽपिभ्रातॄन्कोवाहनिष्यति ॥ ११ ॥

एक अत्युत्तम शूल दिया ॥ ७ ॥ और कहा कि, इस शूलसे जिसको प्रहार करैगा, वह भस्म हो जायगा । यह बात प्रसिद्ध है कि, रावणकी छोटी बहन कुम्भीनसी उसकी भार्या हुई ॥ ८ ॥ मधु दैत्यसे कुम्भीनसीके गर्भमें लवण नामक एक महापराक्रमी राक्षस पुत्र हुआ; यह अंतःकरणका परम निर्दयी, किसीको भला न लगनेवाला और देवता व ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाला हुआ ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र ! उससे सताये जाकर हम आपकी शरणमें आयेहैं" यह सुनकर रामजी बोले—" हेमुनिश्रेष्ठो ! अब तुम भय न करो ॥ १० ॥ मैं लवणका नाश करताहूं। आप कुछभी संताप न करकै लौटजाँय । ऋषियोंको इसप्रकारसे समझाय रामचंद्रजी भ्राताओंसे बोले, "तुममेंसे लवण राक्षसको कौन संहार करैगा ! ॥ ११ ॥

और ब्राह्मणोंको पूण अभय देनेका काय कौन करेगा ?" यह सुन भरत हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीसे बोले॥ १२ ॥ 'हेदेव ! हेप्रभो ! मैं उसका वध करूंगा मुझे आज्ञा दीजिये !' इसके उपरान्त शत्रुघ्नजी रामचंद्रजीको नमस्कार करकै बोले ॥ १३ ॥ " लक्ष्मणजीने युद्धमें बडाभारी कार्य कियाहै । इधर महाबुद्धिमान् भरतजीनेभी नंदिग्राममें अतिशय दुःख अनुभव किया ॥ १४ ॥ अब जो कुछ कार्य रहगया सो मेरा है इसकारण मैं लवणका वध करनेके लिये जाताहूं. हे रघुवीरश्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रसादसे युद्धके मध्यमें उस राक्षसका वध करूंगा " ॥ १५ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन शत्रुघ्नजीको अंकमें लेकर कहा "हेशत्रुघ्न ! मैं आजही तुम्हारा मथुराके राज्यपर अभिषेक करताहूं ॥ १६ ॥

लवणंराक्षसंदग्ध्वाद्ब्राह्मणेभ्योऽभयंमहत्॥तच्छ्रुत्वाप्रांजलिःप्राहभरतोराघवायवै ॥ १२ ॥ अहमेवहनिष्यामिदेवाज्ञापयमांप्रभो ॥ ततो रामंनमस्कृत्यशत्रुघ्नोवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ लक्ष्मणेनमहत्कार्यंकृतंराघवसंयुगे ॥ नंदिग्रामेमहाबुद्धिर्भरतोदुःखमन्वभूत् ॥ १४ ॥ अहमेवगमिष्यामिलवणस्यवधायच ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठहन्यांतंराक्षसंयुधि ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वास्वांकमारोप्यशत्रुघ्नंशत्रुसूदनः ॥ प्राहाद्यैवाभिषेक्ष्यामिमथुराराज्यकारणात् ॥ १६ ॥ आनाय्यचसुसंभाराँल्लक्ष्मणेनाभिषेचने ॥ अनिच्छंतमपिस्नेहादभिषेकमकारयत् ॥ १७ ॥ दत्त्वातस्मैशरंदिव्यंरामःशत्रुघ्नमब्रवीत् ॥ अनेनजहिवाणेनलवणंलोककंटकम् ॥ १८ ॥ सतुसंपूज्यतच्छूलंगेहेगच्छतिकाननम् ॥ भक्षणार्थंतुजंतूनांनानाप्राणिवधायच ॥ १९ ॥ सतुनायातिसदनंयावद्वनचरोभवेत् ॥ तावदेवपुरद्वारितिष्ठत्वंधृतकार्मुकः ॥ ॥ २० ॥ योत्स्यतेसत्वयाक्रुद्धस्तदावध्योभविष्यति ॥ तंहत्वालवणंक्रूरंतद्वनंमधुसंज्ञितम् ॥ २१ ॥

शीघ्रही रामजीने बडे प्रेमसे लक्ष्मणजीके द्वारा अभिषेककी सब सामग्री मँगवाई। और शत्रुघ्नजीकी इच्छा न रहतेहुएभी उनका अभिषेककरादिया ॥ १७ ॥ रामचंद्रजीने एक दिव्य बाण देकर शत्रुघ्नजीसे कहा । "हे वत्स ! इस बाणसे तुम उस त्रिलोकीके शत्रु लवणका संहार करो ॥ १८ ॥ वह राक्षस उस (महादेवजीके दिये) शूलको घरमें रखकर पूजा करता है और वनमें जीव जन्तुओंका भक्षण करनेके लिये व अनेक प्राणियोंका घात करनेको जाता है ॥ १९ ॥ वह जबतक घर न आवै और वनमें फिरता हो,—तिस वेलाको साधकर तुम नगरके द्वारपर धनुषको लिये हुए तैयार खड़े रहो ॥ २० ॥ वह क्रोध करके तुमसे युद्ध करेगा, इस समय उसके पास शूल न होगा । इससे तुम उसका वध करोगे । इस प्रकारसे उस क्रूर राक्षसका

नाश करनेपर तुम उस मधुवनको उजाड़ो ॥ २१ ॥ उस स्थानमें एक नगरी बसायकर मेरी आज्ञासे वहाँपर रहो पाँच हजार घोडे, तिससे आधे (ढाई हजार) रथ ॥ २२ ॥ छै सो हाथी, तीस हजार पैदल, इतनी सेना तुम्हारे पीछे आवेगी, तुम आगे जायकर राक्षसोंका समाचार लो" ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीने शत्रुघ्नजीको ऐसी आज्ञा देकर उसका मस्तक सूंघा; और अनेक आशीर्वादोंसे उत्तेजन कर उनको मुनियोंके साथ भेजदिया ॥ २४ ॥ शत्रुघ्नजीनेभी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार सर्व कार्य किया—मधुपुत्र (लवण) का वध करके मथुरानगरी बसाई ॥ २५ ॥ वहाँपर धनधान्यकी समृद्धि की और लोगोंको अनेक प्रकारके दान व मान देकर वहाँपर बसाया । इधर वाल्मीकिजीके आश्रममें सीता

निवेश्यनगरंतत्रतिष्ठत्वंमेऽनुशासनात् ॥ अश्वानांपंचसाहस्रंरथानांचतदर्धकम् ॥ २२ ॥ गजानांषट्शतानीहपत्तीनामयुतत्रयम् ॥
आगमिष्यतिपश्चात्त्वमग्रेसाधयराक्षसम्॥२३॥इत्युक्त्वामूर्ध्न्यवघ्रायप्रेषयामासराघवः ॥ शत्रुघ्नंमुनिभिःसार्धमाशीर्भिरभिनंद्यच ॥२४॥
[illegible]त्रुघ्नोऽपितथाचक्रेयथारामेणचोदितः ॥ हत्वामधुसुतंयुद्धेमथुरामकरोत्पुरीम् ॥२५॥ स्फीतांजनपदांचक्रेमथुरांदानमानतः ॥ सीता
[illegible]पिसुषुवेपुत्रौद्वौवाल्मीकेरथाश्रमे ॥ २६ ॥ मुनिस्तयोर्नामचक्रेकुशोज्येष्ठोनुजोलवः ॥ क्रमेणविद्यासंपन्नौसीतापुत्रौबभूवतुः ॥ २७ ॥
[illegible]पनीतौचमुनिनावेदाध्ययनतत्परौ ॥ कृत्स्नंरामायणंप्राहकाव्यंबालकयोर्मुनिः ॥ २८ ॥ शंकरेणपुराप्रोक्तंपार्वत्यैपुरहारिणा ॥ वेदोप
बृंहणार्थायतावग्राहयतप्रभुः ॥ २९ ॥ कुमारौस्वरसंपन्नौसुंदरावश्विनाविव ॥ तंत्रीतालसमायुक्तौगायन्तौचेरतुर्वने ॥३० ॥

जीने दो पुत्र प्रसव किये ॥ २६ ॥ मुनिजीने उनमें बड़े पुत्रका नाम कुश और छोटेका नाम लव रक्खा । धीरे २ सीताजीके पुत्र विद्यासम्पन्न होगये ॥ २७ ॥ प्रथम मुनिजीने उनका उपनयन संस्कार किया, फिर उनको वेद पढाया, और छोटेपनसेही उनको समस्त रामायण सिखाई ॥ २८ ॥ उस रामायण आख्यानको पहले त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले महादेवजीने पार्वतीजीको वेदोंका तात्पर्य जताने के अर्थ कह सुनाया वही काव्य महासमर्थ वाल्मीकि मुनिजीने इन दोनों बालकोंको पढाया ॥ २९ ॥ वे लड़के अश्विनीकुमारके समान सुन्दर थे । उनका स्वर (वाणी या आवाज) कानोंको बहुत मधुर लगता, उनको ताल स्वरका उत्तम ज्ञानथा, वे वनमें रामायणकी

कथाको गाते हुए इधर उधर फिरते रहते ॥ ३० ॥ उनका रूप देवताओंके समान मनोहर था; वे जगह २ मुनिजनोंके समाजोंमें रामकथा गाते एकतो लड़के मनोहर, तिसपर स्वर भला; और फिर काव्य अतिरसाल इतने गुण एकत्र होनेपर कुशलवका गाना जिस २ ने सुना, व उनकी मूर्ति जिसने देखी, वे सब मुनि आश्चर्यसे चकित होकर यह बोले ॥ ३१ ॥ 'अहो! हम आज इतने दिन संसारमें जीवितरहे, व सर्व दिशा देखी (अनेक देशोंमें बहुत दिनतक वास किया) परन्तु गन्धर्व लोगोंमें, पृथ्वीके लोगोंमें, किन्नरोंमें, देवताओंमें, स्वर्गलोकके रहनेवालोंमें, पाता लवासियोंमें, ब्रह्मलोकमें, अथवा समस्त त्रिलोकीमें ऐसे गाने और तालकी उत्तम कौशल हमने न कहीं देखी न सुनी' ॥ ३२ ॥ इसप्रकार

तत्रतत्रमुनीनांतौसमाजेसुररूपिणौ ॥ गायंतावभितोदृष्ट्वाविस्मितामुनयोऽब्रुवन् ॥३१॥ गंधर्वेष्विहकिन्नरेषुभुविवादेवेषुदेवालयेपाताले ऽथवाचतुर्मुखगृहेलोकेषुसर्वेषुच ॥ अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरंदृष्टादिशःसर्वतोनाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमानादर्शिनाश्राविच ॥ ॥ ३२ ॥ एवंस्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिःप्रतिवासरम् ॥ आसातेसुखमेकांतेवाल्मीकेराश्रमेचिरम् ॥ ३३ ॥ अथरामोऽश्वमेधादींश्चकारबहुद क्षिणान् ॥ यज्ञान्स्वर्णमयींसीतांविधायविपुलद्युतिः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्वितानेऋषयःसर्वेराजर्षयस्तथा ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसमाज ग्मुर्दिदृक्षवः ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिरपिसंगृह्यगायंतौतौकुशीलवौ॥जगामऋषिवाटस्यसमीपंमुनिपुंगवः॥३६॥ तत्रैकांतेस्थितंशांतंसमाधि विरमेमुनिम् ॥ कुशःपप्रच्छवाल्मीकिंज्ञानशास्त्रंकथांतरे ॥ ३७ ॥

मुनिलोग उनकी प्रतिदिन स्तुति करते । वे दोनों बालक वाल्मीकिजीके आश्रममें, एकान्तस्थलमें ऋषियोंके साथ बहुत दिनोंतक सुखसे रहे ॥ ३३ ॥ इधर महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने—;यज्ञकर्ममें पत्नी अवश्य चाहिये इसकारण सुवर्णकी जानकीजी बनवाय उनकी सहायतासे उन्होंने अनेक अश्वमेधादि यज्ञ किये, उनमें बहुतसी दक्षिणा दी ॥ ३४ ॥ तिस यज्ञमें, समारम्भ देखनेके लिये सर्व ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आ येथे ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ वाल्मीकिजी मुनि भी गानेकी कलामें प्रवीण हुए उन कुश लवको साथ लेकर वहाँ आये और रामजीने जो मंडप ऋषियोंके रहनेको नियत कियाथा उसमें उतरे ॥ ३६ ॥ एक दिन जब वाल्मीकिजी समाधि उतार शान्त हुए एकान्तमें बैठेथे तब कुशने कथा कहते कहते

उनसे ज्ञानशास्त्रका प्रश्न किया;—कुश बोला ॥ ३७ ॥ 'हे भगवन् ! आपके मुखसे सब बातें थोड़ेही में सुनलूं, ऐसी मेरी इच्छा है, प्राणीको यह दृढ़ संसारबंधन कैसे उत्पन्न होता है ? ॥ ३८ ॥ प्राणी इस संसार नामक दृढ़ बंधनसे कैसे छूटता है ? यह मुझसे कहकर अनुग्रह कीजिये । हे मुनी ! आप सर्वज्ञ हैं—अर्थात यह सब बातें आप जानते हैं,— मैं आपका शिष्यहूं; इस कारण मुझसे कहनेमें कोई प्रतिबंधक नहीं' ॥ ३९ ॥ वाल्मीकिजी बोले,—'हे वत्स ! सुन मैं तुझसे बंध और मोक्षका स्वरूप व संसारसे छूटनेके सब साधन कहताहूं । सुनलेनेपर फिर मेरे कहे अनुसार ॥ ४० ॥ आचारण कर, तब तेरा कल्याण होगा व तू जीवन्मुक्त हो जायगा । हे कुश ! चैतन्यरूपी आत्माको वास्तवमें देहका सम्बन्ध नहीं है । देहही उसका (आत्माका) बड़ा गृह है (जैसे घरके स्वामीका व घरका रूप एक नहीं, तैसेही आत्माका और देहका रूप एक नहीं है)

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिसंक्षेपाद्भवतोखिलम् ॥ देहिनःसंसृतिर्बंधःकथमुत्पद्यतेदृढः ॥ ३८ ॥ कथंविमुच्यतेदेहीदृढबंधाद्भवाभिधात् ॥ [illegible]कुमर्हसिसर्वज्ञमह्यंशिष्यायतेमुने ॥ ३९॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ शृणुवक्ष्यामितेसर्वंसंक्षेपाद्बंधमोक्षयोः ॥ स्वरूपंसाधनंचापिमत्तःश्रुत्वा [illegible]थोदितम् ॥ ४० ॥ तथैवाचरभद्रंतेजीवन्मुक्तोभविष्यसि ॥ देहएवमहागेहमदेहस्यचिदात्मनः ॥ ४१ ॥ तस्याहंकारएवास्मिन्मंत्रीते[illegible]वकल्पितः॥देहगेहाभिमानंस्वंसमारोप्यचिदात्मनि ॥४२॥ तेनतादात्म्यमापन्नःस्वचेष्टितमशेषतः ॥ विदधातिचिदानंदतद्भासितवपुः स्वयम् ॥ ४३ ॥ तेनसंकल्पितोदेहीसंकल्पनिगडावृतः ॥पुत्रदारगृहादीनिसंकल्पयतिचानिशम् ॥ ४४ ॥ संकल्पयन्स्त्रयंदेहीपरिशोचतिसर्वदा ॥ त्रयस्तस्याऽहमोदेहाअधमोत्तममध्यमाः ॥ ४५ ॥

॥ ४१ ॥ आत्माका इस देहमें उसकाही कल्पित कियाहुआ एक प्रधान है । यह प्रधान अपना देहविषयका और घरका अभिमान चिदात्मापर आरोपित करता ॥ ४२ ॥ और उससे एकताको पायकर अपने सारे चारित्र ज्ञानानंदरूपी आत्मापर दिखाता है । स्वयंही अहंकारका शरीर प्रकाशित होता है; इसमें कोई शंका करे कि, जड़ अहंकार अपना क्या चरित्र कर सकता है ? उसका यही समाधान है कि, वह अहंकार आत्माके समीप रहनेसे ऐसा सामर्थ्यवाला हुआ है ॥ ४३ ॥ इसलिये उस अहंकार करके इस प्रकारका किया हुआ संकल्पवाला जीव संकल्परूप बेड़ीसे बँधा हुआ है । तिससे पुत्र, स्त्री और गृहादिकी निरन्तर इच्छा करता है ॥ ४४ ॥ तथा ऐसी चिन्तासे निरन्तर जीव अपनेआप संकल्प और शोकादि

करता है । अहंकारके अधम, उत्तम और मध्यम तीन भेद हैं ॥४५॥ इन तीन शरीरोंके क्रमानुसार तम, सत्त्व और रज ये तीन नाम हैं, यही शरीर जगतकी स्थितिका कारण है । संकल्प करतेहुए वृत्तिमें तमोगुणकी प्रधानता आई कि हाथोंसे व्यापार भी तामस (निंदनीय) होवे हैं ॥ ४६ ॥ तिनके फलसे यह प्राणी पूर्ण तमोगुणी बनकर कृमिकीटयोनियोंमें जन्म लेता है । सत्त्वगुणमय संकल्पका फल यह है कि; मनुष्यकी प्रवृत्ति धर्म व ज्ञान संपादनमें लग जाती है ॥ ४७ ॥ फिर उससे मोक्षरूप साम्राज्य दूर नहीं रहता, बरन् ऐसा प्रसिद्ध है कि, वह सुखरूप होकर रहताहै, जिस के संकल्पमें रजोगुणका आधिक्य होताहै वह प्राणी लौकिक व्यवहारमें दक्ष रहताहै ॥ ४८ ॥ इस कारणसे स्त्रीइत्यादिकोंके साथ संसारमें विहार

तमःसत्त्वरजःसंज्ञाजगतःकारणंस्थितेः ॥ तमोरूपाद्धिसंकल्पान्नित्यंतामसचेष्टया ॥४६॥ अत्यंततामसोभूत्वाकृमिकीटत्वमाप्नुयात् ॥ सत्त्वरूपोहिसंकल्पोधर्मज्ञानपरायणः ॥४७॥अदूरमोक्षसाम्राज्यःसुखरूपोहितिष्ठति ॥ रजोरूपोहिसंकल्पोलोकेसव्यवहारवान् ॥४८॥ परितिष्ठतिसंसारेपुत्रदारानुरंजितः ॥ त्रिविधंतुपरित्यज्यरूपमेतन्महामते ॥ ४९ ॥ संकल्पःपरमाप्नोतिपदमात्मपरिक्षये ॥ दृष्टीःसर्वाः परित्यज्यनियम्यमनसामनः ॥ ५० ॥ सबाह्याभ्यंतरार्थस्यसंकल्पस्यक्षयंकुरु ॥ यदिवर्षसहस्राणितपश्चरसिदारुणम् ॥ ५१ ॥ पाताल स्थस्यभूस्थस्यस्वर्गस्यस्थापितेऽनघ ॥ नान्यःकश्चिदुपायोऽस्तिसंकल्पोपशमादृते ॥ ५२ ॥ अनाबाधेविकारेस्वेसुखेपरमपावने ॥ संकल्पोपशमेयत्नंपौरुषेणपरंकुरु ॥ ५३ ॥

करके रहना भला लगताहै । हे महाबुद्धिमान् ! (कुश !) जिस पुरुषका संकल्प ये तीनों रूप छोड़देताहै ॥ ४९ ॥ उसका वह संकल्पही अपना (संकल्पका) क्षय होनेपर परमपदकी प्राप्ति कराय देताहै; इसलिये तू सर्व इन्द्रियोंके विषयको छोड़दे, मनके द्वारा मनका निग्रहकर इन्द्रि योंको और मनको विषयोंपर न जानेदे ॥ ५० ॥ और बाह्यविषयोंके साथ आभ्यन्तर विषयोंके संकल्पको क्षयकरो । हे अनघ ! जो तुम हजा रवर्षतक तपकरते रहोगे ॥ ५१ ॥ पातालमें जाय रहोगे, पृथ्वीपर रहोगे, अथवा स्वर्ग लोकमें विराजमान रहोगे तोभी तुम्हें दुःखरहित विकार शून्य व परमशुद्ध आत्मसुखकी प्राप्तिका उपाय संकल्पका क्षय करनेके सिवाय दूसरा नहीं मिलैगा । इसकारण बड़े धैर्यसे तू संकल्पके क्षय

करनेका यत्न कर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे पुण्यपुरुष ! इस संकल्परूप तारके आधारपर सर्व विकार रहते हैं, ऐसा कहा है । इस संकल्परूपी तारके टूटते ही संसारको प्राप्त करानेवाले विकार न जाने कहां चले जाते हैं ? ॥ ५४ ॥ इसकारणसे तू संकल्प छोड़ दे. दैवइच्छासे जो व्यवहार आय पडें उनको करताहुआ रह । संकल्पजातके क्षय होनेपर जीवको ब्रह्मरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ यह विकल्पका बडा जाल आपसे आप नहीं छूटैगा, तू उसको बलात्कारसे तोड डाल. 'ब्रह्मरूपी हुए पुरुषके समान वृत्ति बनाकर निद्राकी वेला जैसी चित्तकी वृत्ति रहती है; तैसी निरंतर रख और प्रसिद्ध एक पदकी प्राप्ति कर ले; तब तुझको सदा सुख मिलैगा ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद० उत्तरकांडे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ जानकीजीका सभामें शपथ

संकल्पतंतौनिखिलाभावाःप्रोताःकिलानघ ॥ छिन्नेतंतौनजानीमःक्कयांतिविभवाःपराः ॥ ५४ ॥ निःसंकल्पोयथाप्राप्तव्यवहारपरोभव॥ क्षयेसंकल्पजालस्यजीवोब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ अधिगतपरमार्थतामुपेत्यप्रसभमपास्यविकल्पजालमुच्चैः ॥ अधिगमयपदंतदाद्वितीयंविततसुखायसुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥ ५६ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ वाल्मीकि[illegible]बोधितोऽसौकुशःसद्योगतभ्रमः ॥ अंतर्युक्तोबहिःसर्वमनुकुर्वंश्चचारसः ॥ १ ॥ वाल्मीकिरपितौप्राहसीतापुत्रौमहाधियौ ॥ तत्रतत्र[illegible]गायंतौपुरेवीथिषुसर्वतः ॥ २ ॥ रामस्याग्रेप्रगायेतांशुश्रूषुर्यदिराघवः ॥ नग्राह्यंवैयुवाभ्यांतद्यदिकिंचित्प्रदास्यति ॥ ३ ॥ इतितौचो[illegible]दितौतत्रगायमानौविचेरतुः ॥ यथोक्तमृषिणापूर्वंतत्रतत्राभ्यगायताम् ॥ ४ ॥ तांसशुश्रावकाकुत्स्थःपूर्वचर्याततस्ततः ॥ अपूर्वपाठजा[illegible]तिंचगेयेनसमाभिप्लुताम् ॥ ५ ॥

करके पृथ्वीमें समाना । श्रीमहादेवजी बोले कि–हे पार्वती ! इसप्रकारसे वाल्मीकिजीने जिसको बोध किया है उस कुशका तत्काल सर्वभ्रम मिटगया; और अपने आप अंतःकरणके विषय ज्ञानवान् होकर केवल आसक्तिके विना कर्मका अनुसरण करतारहा ॥ १ ॥ वाल्मीकिजीने सीताजीके पुत्र कुशसे कहा कि 'तुम नगरमें मार्गोंपर चारोंओर गातेहुए फिरो ॥ २ ॥ जो किसी अवसरमें रामचंद्रजीको गाना श्रवण करनेकी इच्छा हो–और वे तुमको बुलावें; तब तुम उनके सन्मुख गाना–परन्तु वह कुछ द्रव्य दें तो न लेना' ॥ ३ ॥ ऐसी प्रेरणा मिलने पर वे दोनों गातेहुए घूमने लगे ऋषिजीके पहले कहेके अनुसार वे जगह २ गाते हुए ॥ ४ ॥ अपना पूर्वचरित्र स्थान २ पर गाते हैं; कहनेकी पद्धति नवीन प्रकारकी सुन्दर होनेसे

गानेका स्वरभी बहुत मनोहर है, ऐसा रामचंद्रजीके कानोंमें गया ॥ ५ ॥ फिर उन्होंने गानेवालोंको खोज कराया तौ जाना कि वे दोनों छोटे बालक आवेहैं; तब रामचंद्रजीको बड़ा कौतुक हुआ अनन्तर यज्ञकर्मके मध्यमें (दुपहरीमें विश्रामके समय) राजा रामचंद्रजीने बडे २ मुनियोंको बुलाया ॥ ६ ॥ उन श्रेष्ठ पुरुषने राजा, पंडित, वैदिक, पौराणिक, वैयाकरण वृद्ध वृद्धादिजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ॥ ७ ॥ इन सबसे सभा भरकर, तहां तिन गानेवाले लडकोंको बुलाया । राजा व ब्राह्मणादिक लोग सबके ही मनको आनंद हुआ ॥ ८ ॥ वे रामकी ओर और

वालयोराघवःश्रुत्वाकौतूहलमुपेयिवान् ॥ अथकर्मांतरेराजासमाहूयमहामुनीन् ॥ ६ ॥ राज्ञश्चैवनरव्याघ्रःपंडितांश्चैवनैगमान् ॥ पौराणिकाञ्छब्दाविदोयेचवृद्धाद्विजातयः ॥ ७ ॥ एतान्सर्वान्समाहूयगायकौसंप्रवेशयत् ॥ तेसर्वेहृष्टमनसोराजानोब्राह्मणादयः ॥ ८ ॥ …मंतौदारकौदृष्ट्वाविस्मिताह्यनिमेषणाः ॥ अवोचन्सर्वएवैतेपरस्परमथागताः ॥ ९ ॥ इमौरामस्यसदृशौबिंबाद्बिंबमिवोदितौ ॥ …टिलौयदिनस्यातांनचवल्कलधारिणौ ॥ १० ॥ विशेषंनाधिगच्छामोराघवस्यानयोस्तदा ॥ एवंसंवदतांतेषांविस्मितानांपरस्परम् ॥ ११ ॥ उपचक्रमतुर्गातुंतावुभौमुनिदारकौ ॥ ततःप्रवृत्तंमधुरंगांधर्वमतिमानुषम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वातन्मधुरंगीतमपराह्णेरघूत्तमः ॥ उवाचभरतंचाभ्यांदीयतामयुतंवसु ॥ १३ ॥ दीयमानंसुवर्णंतुनतज्जगृहतुस्तदा ॥ किमनेनसुवर्णेनराजन्नौवन्यभोजनौ ॥ १४ ॥ इति संत्यज्यसंदत्तंजग्मतुर्मुनिसान्निधिम् ॥ एवंश्रुत्वातुचरितंरामःस्वस्यैवविस्मितः ॥ १५ ॥

लडकोंकी ओर आश्चर्ययुक्त होकर वारम्वार एकटक देखते रहे, अनन्तर तहांपर जमीहुई सारी समाजमें परस्पर काना फूंसी होने लगी ॥ ९ ॥ क्यों भई ! यह बालक तौ साक्षात् रामजीके समान दिखलाई देते हैं मानों जैसे बिंबके प्रतिबिंब पडे हैं. इनके मस्तकपर जटा न होती, व अंगपर वल्कल न होते तौ ॥ १० ॥ रामजीमें और इनमें विशेष क्या अन्तर है, सो हम नहीं जान सकते इसप्रकार विस्मित होकर परस्पर लोग बातें करने लगे । इतनेहीमें ॥११॥ इन दोनों मुनिकुमारोंने गाना आरम्भ किया । मनुष्योंमें कभी दीखनेवाला नहीं ऐसा मधुर गाना होने लगा॥ १२॥ तीसरे पहरके समय गाना सुनलेनेपर रामचंद्रजीने भरतजीसे कहा कि इन बालकोंको दशहजार अशरफी देदो ॥ १३ ॥ द्रव्य देनेपर बालकोंने नहीं लिया और कहा; 'हे राजन् ! हम धन लेकर क्या करेंगे ? हम बनमें फल फूल खायकर रहनेवाले हैं ! ॥ १४ ॥ इतना कह व दिया हुआ द्रव्य

वहींपर छोड़कर कुश लव वाल्मीकिजीके निकट गये, वहांपर अपनाही सब चरित्र सुनकर रामचंद्रजी विस्मित हुए ॥ १५ ॥ रामचंद्रजीने उनको सीताका पुत्र जानकर, शत्रुघ्न, हनुमान, सुषेण, विभीषण, व अंगदको आज्ञा दी ॥ १६ ॥ 'सर्वज्ञ परमोदार श्रेष्ठतम देवतुल्य वाल्मीकिजी मुनिको सीताके साथ यहां ले आओ ॥ १७ ॥ जानकीजी इस सभामें सब जनोंको विश्वास करानेके लिये शपथ करेंगी कि जिससे सबही सीवाको पापरहित जान लें' ॥ १८ ॥ यह वचन सुनकर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रामजीके सेवकोंने मुनि वाल्मीकिजीके पास जायकर जो कुछ रामजीने कहाथा सो कहा ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीके मनका समस्त अभिप्राय जानकर मुनि वाल्मीकिजीने दूतोंसे कहा,—"कल्ह सीता सब लोगोंके सन्मुख

ज्ञात्वासीताकुमारौतौशत्रुघ्नंचेदमब्रवीत् ॥ हनूमंतंसुषेणंचविभीषणमथांगदम् ॥ १६ ॥ भगवंतंमहात्मानंवाल्मीकिंमुनिसत्तमम् ॥ आनयध्वं मुनिवरंससीतंदेवसंमितम् ॥ १७ ॥ अस्यास्तुपर्षदोमध्येप्रत्ययंजनकात्मजा ॥ करोतुशपथंसर्वैजानंतुगतकल्मषाम् ॥ १८ ॥ सीतां [illegible]द्वचनंश्रुत्वागताःसर्वेऽतिविस्मिताः ॥ ऊचुर्यथोक्तंरामेणवाल्मीकिंरामपार्षदाः ॥ १९ ॥ रामस्यहृद्गतंसर्वंज्ञात्वावाल्मीकिरब्रवीत् ॥ [illegible]करिष्यतिवैसीताशपथंजनसंसदि ॥ २० ॥ योषितांपरमंदैवंपतिरेवनसंशयः ॥ तच्छ्रुत्वासहसागत्वासर्वेप्रोचुर्मुनेर्वचः ॥ २१ ॥ [illegible]घवस्यापिरामोऽपिश्रुत्वामुनिवचस्तथा ॥ राजानोमुनयःसर्वेशृणुध्वमितिचाब्रवीत् ॥ २२ ॥ सीतायाःशपथंलोकाविजानंतुशुभाशु[illegible]मम् ॥ इत्युक्ताराघवेणाथलोकाःसर्वेदिदृक्षवः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चैवमहर्षयः ॥ वानराश्चसमाजग्मुःकौतूहलसमन्विताः ॥ २४ ॥ ततोमुनिवरस्तूर्णंससीतःसमुपागमत् ॥ अग्रतस्तमृषिंकृत्वायांतीकिंचिदवाङ्मुखी ॥ २५ ॥

सभामें शपथ करेगी ॥ २० ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि स्त्रियोंका देवता पतिही है" यह सुनकर सर्व दूत शीघ्र लौटगये। व उन्होंने ऋषिका उत्तर रामजीसे कहा ॥ २१ ॥ रामचंद्रजीभी मुनिजीका संदेशा सुनकर लोगोंसे बोले;—समस्त राजा लोग और मुनिगणों! सुनो ॥ २२ ॥ 'कल्ह सीता शपथ करैंगी; आप सबजने उस शपथको सुनकर धर्म अधर्मका निर्णय करना'। रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर दूसरे दिन सब लोग शपथ देखनेकी इच्छासे ॥ २३ ॥ तहाँ आये—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र महान् महान् ऋषि वानर ऐसे विविध जन कौतुकयुक्त होकर तहाँ आये ॥ २४ ॥ अनन्तर मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिजीभी सीताजीके साथ तहाँ पधारे सीताजी मुनि वाल्मीकिजीको आगे किये (मुनिजीके पीछे २) व मुख किंचित

नीचे (झुकाये मर्यादा व शीलपनसे) आई ॥ २५ ॥ वे हाथ जोडे हुए थीं उनका कंठ भरआयाथा; इस प्रकारसे उन्होंने यज्ञमंडपमें प्रवेश किया; जैसे लक्ष्मीजी ब्रह्माजीके पीछे २ चलती हैं, ऐसीही सीताजीको मुनिजीके पीछे २ जातीहुई देख मनुष्योंकी भीड़मेंसे महान् साधुवाद (धन्य है ! धन्य हैं !) होनेलगा ॥ २६ ॥ तिस समय श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजीने सीताजीके सहित जनसमाजमें प्रवेश करके रामचंद्रजीसे कहा ॥ २७ ॥ ' हे दशरथकुमार ! यह जानकीजी कभी पतिव्रतसे टलनेवाली नहीं, यह धर्मानुसार चलनेवाली ॥ २८ ॥ अर्थात् पापरहित है । हे राम ! तुमने लोकाप वादसे डरकर भयंकर वनमें मेरे आश्रमके निकट बहुत दिन पहले इनको छोड़ दिया ॥ २९ ॥ सीताजी परीक्षा देंगी; इस विषयमें आप अनुमति

कृतांजलिर्बाष्पकंठासीतायज्ञंविवेशतम् ॥ दृष्ट्वालक्ष्मीमिवायांतींब्रह्माणमनुयायिनीम् ॥ २६ ॥ वाल्मीकेःपृष्ठतःसीतांसाधुवादोमहान् [illegible]भूत् ॥ तदामध्येजनौघस्यप्रविश्यमुनिपुंगवः ॥ २७ ॥ सीतासहायोवाल्मीकिरितिप्राहचराघवम् ॥ इयंदाशरथेसीतासुव्रताधर्मचारिणी [illegible] २८ ॥ अपापातेपुरात्यक्तामामाश्रमसमीपतः ॥ लोकापवादभीतेनत्वयाराममहावने ॥ २९ ॥ प्रत्ययंदास्यतेसीतातदनुज्ञातुमर्हसि ॥ [illegible]तुसीतातनयाविमौयमलजातकौ ॥ ३० ॥ सुतौतुतवदुर्धर्षौतथ्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ प्रचेतसोऽहंदशमःपुत्रोरघुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥ अनृतं [illegible]स्मराम्युक्तंयथेमौतवपुत्रकौ ॥ बहून्वर्षगणान्सम्यक्तपश्चर्यामयाकृता ॥ ३२ ॥ नोपाश्नीयांफलंतस्यादुष्टेयंयदिमैथिली ॥ वाल्मीकि नैवमुक्तस्तुराघवःप्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ एवमेतन्महाप्राज्ञयथावदसिसुव्रत ॥ प्रत्ययोजनितोमह्यंतववाक्यैरकिल्बिषैः ॥३४॥ लंकायाम पिदत्तोमेवैदेह्याप्रत्ययोमहान् ॥ देवानांपुरतस्तेनमंदिरेसंप्रवेशिता ॥ ३५ ॥

दें वह दोनों (कुश लव) सीताके एक साथ जन्मेहुए बालक हैं ॥ ३० ॥ तुम्हारे इन पुत्रोंको कोई शूर पराजित नहीं कर सकता । हे रघुकुलभूषण ! मैं प्रचेता प्रजापतिका दशवाँ पुत्रहूं ॥ ३१ ॥ जन्मसे लेकर कभी असत्य भाषण किया हो ऐसा मुझे याद नहीं—और वही सत्यवक्ता मैं तुमसे कह ताहूं कि यह बालक तुम्हारे पुत्र हैं । मैंने बहुत हजार वर्षोंतक उत्तम तपस्या की है ॥ ३२ ॥ उस सबका पण लगाकर कहताहूं कि जो सीतासे दुराचरण हो तो मेरी उस तपस्याका फल कुछभी न हो ' वाल्मीकिजीसे ऐसा सुनकर रामजीने उनको प्रतिवचन दिया ॥ ३३ ॥ ' हे मुने ! आप महाज्ञानी व सदाचरणी हैं; आपके पवित्र वचनोंने मेरे मनमें विश्वास उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ जानकीजीने लंकामें देवताओंके सामनेभी मुझको

महान् विश्वास दिलायाथा; इसकारण मैंने उनको गृहमें लिया ॥ ३५ ॥ हे द्विजवर ! उन जानकीजीकोही जो कि, अब यहां हैं, लोकापवादके भयसे कुछ वर्ष पहले मैंने इनका त्याग किया, इसके लिये आप मुझको क्षमा करैं ॥ ३६ ॥ मैं जानताहूं कि–यह दोनों पुत्र कुश लव मुझसे जन्मे हैं । ऐसा सारी पृथ्वी जान जाय कि, जानकी पवित्र हैं तो मेरी इनपर प्रीति होवै ॥ ३७ ॥ समस्त देवता, रामचंद्रजीके उद्देशको जानगयेथे इस कारण वह हजारों देवता उत्सुकतासे ब्रह्माजीको आगे करके वहाँ आये ॥ ३८ ॥ प्रजाजन आनंदित होकर तिस स्थानमें प्राप्त हुए, रेशमी वस्त्र धारण किये हुए जानकिजी उत्तरकी ओर मुख करके खडी रहीं और पृथ्वीकी ओर दृष्टि किये हुए हाथ जोडकर बोलीं ॥ ३९ ॥ "जो मैंने

सेयंलोकभयाद्ब्रह्मन्नपापाप्यसतीपुरा ॥ सीतामयापरित्यक्ताभवांस्तत्क्षंतुमर्हति ॥ ३६ ॥ ममैवजातौजानामिपुत्रावेतौकुशीलवौ ॥ शुद्धायांजगतीमध्येसीतायांप्रीतिरस्तुमे ॥ ३७ ॥ देवाःसर्वेपरिज्ञायरामाभिप्रायमुत्सुकाः ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वासमाजग्मुःसहस्रशः ॥३८॥ [illegible]जाःसमागमन्हृष्टाःसीताकौशेयवासिनी ॥ उदङ्मुखीह्यधोदृष्टिःप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ रामादन्यंयथाहंवैमनसापिनाचिंतये ॥ [illegible]थामेधरणीदेवीविवरंदातुमर्हति ॥ ४० ॥ तथाशपंत्याःसीतायाःप्रादुरासीन्महाद्भुतम् ॥ भूतलाद्दिव्यमत्यर्थंसिंहासनमनुत्तमम् ॥४१॥ [illegible]गेंद्रैर्ध्रियमाणंचदिव्यदेहैरविप्रभम् ॥ भूदेवीजानकींदोर्भ्यांगृहीत्वास्नेहसंयुता ॥ ४२ ॥ स्वागतंतामुवाचैनामासनेसंन्यवेशयत् ॥ सिंहासनस्थांवैदेहींप्रविशंतींरसातलम् ॥ ४३ ॥ निरंतरापुष्पवृष्टिर्दिव्यासीतामवाकिरत् ॥ साधुवादश्चसुमहान्देवानांपरमाद्भुतः ॥ ४४ ॥

सिवाय रामचंद्रजीके अन्य किसीका मनसेभी चिंतन नहीं किया है तो मुझको पृथ्वी देवी अपने उदरमें स्थान दे " ॥ ४० ॥ सीताजीके द्वारा प्रतिज्ञाका ऐसा शब्द उच्चारित होतेही पृथ्वीतलमेंसे पृथ्वीको भेदकर, एक महाविलक्षण अतिशय चमकदमकका अत्युत्तम सिंहासन प्रगट हुवा ॥ ४१ ॥ बड़े २ दिव्य शरीरवाले नाग उस सूर्यके समान तेज सिंहासनको अपने मस्तकपर धारण कर रहेथे, पृथ्वीदेवीने प्रेमपूर्वक जानकीजीको बाँहोंसे पकड़ हृदयमें लगाय ॥ ४२ ॥ " बोले ! आवो । बहुत अच्छा हुआ ! " ऐसा कहा, और उनको उस सिंहासनपर बैठाया जानकीजी सिंहासनपर बैठकर पृथ्वीके गर्भमें प्रवेश करने लगीं, तब ॥ ४३ ॥ आकाशमेंसे उनपर बराबर फूलोंकी वर्षा होने लगी, देवता

ओंके मुखसे 'धन्य है! उत्तम है! ऐसा महान् विलक्षण शब्द निकला ॥ ४४ ॥ आकाशमें आयेहुए देवता अंतरमें वह भूमिपर आयेहुए स्थावर जंगम प्राणी बड़े २ शरीरवाले वानर इन सबने सीताजीके शपथ करनेको देखा । तब यह पृथक् २ ऐसा कहने लगे; कोई बोला,— "सीताजीसे ऐसा नहीं कराना उचितथा" कोई बोला "लंकामें तो एकवार शपथ करीहीथी, अब इस शपथका कराना कैसे उचितथा"। इसप्रकारसे प्रत्येकके अलग २ विचार होने लगे। कोई 'अब सीता कहां जायगी?' ऐसी चिन्ता करके बैठे रहे। कोई पृथ्वीमें शिरनवाये सीताजी का ध्यान करने लगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कुछ जन रामचंद्रजीकी और देखते रहे; कितनेक सीताजीका विचार करने लगे, । अधिक क्या कहा जाय उस

ऊचुश्चबहुधावाचोअंतरिक्षगताःसुराः ॥ अंतरिक्षेचभूमौचसर्वेस्थावरजंगमाः ॥ ४५ ॥ वानराश्चमहाकायाःसीताशपथकारिणः॥ केचि[illegible]तापरास्तस्याःकेचिद्ध्यानपरायणाः ॥४६॥ केचिद्रामंनिरीक्षंतःकेचित्सीतामचेतसः ॥ मुहूर्तमात्रंतत्सर्वंतूष्णींभूतमचेतनम् ॥४७॥ [illegible]ताप्रवेशनंदृष्ट्वासर्वंसंमोहितंजगत् ॥ रामस्तुसर्वंज्ञात्वैवभविष्यत्कार्यगौरवम् ॥ ४८ ॥ अजानन्निवदुःखेनशुशोचजनकात्मजाम् ॥ ब्रह्मणाऋषिभिःसार्धंबोधितोरघुनंदनः ॥ ४९ ॥ प्रतिबुद्धइवस्वप्नाच्चकारानंतराःक्रियाः ॥ विससर्जऋषीन्सर्वानृत्विजोयेसमागताः ॥ ॥ ५० ॥ तान्सर्वान्धनरत्नाद्यैस्तोषयामासभूरिशः ॥ उपादायकुमारौतावयोध्यामगमत्प्रभुः ॥ ५१ ॥ तदादिनिःस्पृहोरामःस्वर्गभोगेषुसर्वदा ॥ आत्मचिंतापरोनित्यमेकांतेसमुपस्थितः ॥ ५२ ॥

समय किसीका भी चित्त सावधान नहींथा; कुछ देरतक वह सर्व स्थल सम्पूर्णतः स्तब्ध व अचेतन रहा (कोई शब्द वहांपर नहीं होताथा) ॥४७॥ सीताजीको पृथ्वीके उदरमें प्रवेश कियाहुआ देखकर समस्त संसारको मोह होगया रामजी सब जानतेथे; परन्तु आगे महत्त्वके कर्तव्यपर लक्ष्य देकर वह ॥ ४८ ॥ अज्ञानी मनुष्यके समान दुःखी होकर जानकीके लिये शोक करने लगे। ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीने रामचंद्रजीको समझाया ॥ ॥४९॥ तब उन्होंने स्वप्नसे जागेहुएके समान उठकर यज्ञके शेष रहे कर्मोंको समाप्तकिया व तहांपर आयेहुए सर्व ऋषि और ऋत्विजोंको बिदादी॥५०॥ बिदा देते समय उन सबको विपुल द्रव्य और विपुल रत्न देकर संतुष्ट किया और बालकोंको लेकर अयोध्यामें आये॥५१॥ तबसे रामचंद्रजी नित्य सब

उपभोगोंसे चित्तको हटाय एकान्तमें बैठते, व आत्मचिंतनमें सदा निमग्न रहते ॥ ५२ ॥ एक दिन श्रीरामचंद्रजी नित्य ध्यान करनेके अनुसार एकान्तमें बैठे हुए ध्यानकर रहेथे। कौशल्याजी जानती थीं कि, यह साक्षात् नारायण हैं। कौशल्याजी नित्य मधुर वचन बोलतीथीं ॥ ५३ ॥ उन्होंने निकट जाय प्रसन्न श्रीरामचंद्रजीको भक्तिपूर्वक वंदन करके संतुष्ट मनसे प्रश्न किया। " हे राम! तुम सब जगत्के आदिकारण हो, तुम्हारा आदि, मध्य, व अंत नहीं है ॥ ५४ ॥ तुमने परमात्मा परमानंदरूपी, पूर्ण अन्तर्यामी व सर्व शक्तिमान् होनेपरभी मेरे उदरमें जन्म लिया, यह मेरा परम पुण्य है ॥ ५५ ॥ हे रघुकुलवर! मुझे अपनी वृद्धावस्थामें और तुम्हारे अवतार प्राप्त होनेके समय तुमसे प्रश्न करनेका अवसर मिला. अब

एकांतेध्याननिरतेएकदाराघवेसति ॥ ज्ञात्वानारायणंसाक्षात्कौसल्याप्रियवादिनी ॥५३॥ भक्त्यागत्यप्रसन्नंतंप्रणताप्राहहृष्टधीः ॥ राम त्वंजगतामादिरादिमध्यांतवर्जितः ॥ ५४ ॥ परमात्मापरानंदःपूर्णःपुरुषईश्वरः ॥ जातोऽसिमेगर्भगृहेममपुण्यातिरेकतः ॥ ५५ ॥ अव[illegible]सानेममाप्यद्यसमयोऽभूद्रघूत्तम ॥ नाद्याप्यवोधजःकृत्स्नोभवबंधोनिवर्तते ॥ ५६ ॥ इदानीमपिमेज्ञानंभवबंधनिवर्तकम् ॥ यथासंक्षेपतो [illegible]भूयात्तथाबोधयमांविभो ॥ ५७ ॥ निर्वेदवादिनीमेवंमातरंमातृवत्सलः ॥ दयालुःप्राहधर्मात्माजराजर्जरितांशुभाम् ॥ ५८ ॥ श्रीरामच[illegible]द्रउवाच ॥ ॥ मार्गास्त्रयोमयाप्रोक्ताःपुरामोक्षाप्तिसाधकाः ॥ कर्मयोगोज्ञानयोगोभक्तियोगश्चशाश्वतः ॥ ५९ ॥ भक्तिर्विभिद्यते [illegible]तस्त्रिविधागुणभेदतः ॥ स्वभावोयस्ययस्तेनतस्यभक्तिर्विभिद्यते ॥ ६० ॥ यस्तुहिंसांसमुद्दिश्यदंभंमात्सर्यमेववा ॥ भेददृष्टिश्चसंरंभी भक्तोमेतामसःस्मृतः ॥ ६१ ॥

तक मेरा अज्ञानसे उत्पन्न हुआ संसाररूपी बन्धन निःशेष निवृत्त नहीं होता ॥ ५६ ॥ हे सर्वव्यापक ! मुझको वर्तमानअवस्थामेंही जिससे संसारके बंधनका नाश करनेवाला ज्ञान होजाय, ऐसा संक्षेपसे बोध करो ॥ ५७ ॥ जब माताने विषयोपभोगसे विरक्त होकर ऐसा प्रश्न किया तब मातृवत्सल दयालु व परमधार्मिक प्रभु रामचंद्रजी वृद्धपनसे जर्जर हुई अपनी साध्वी मातासे बोले ॥ ५८ ॥ हे माते! मैंनें मोक्षप्राप्तिके साधनरूप तीन मार्ग पहले कह रक्खे हैं. (१) कर्मयोग (२) ज्ञानयोग (३) अखंडभक्तियोग॥५९॥मैया! भक्तिकेभी तीन पृथक् २ गुण होनेसे तीन प्रकार हुए हैं, जिसका जैसा स्वभाव होता है, तैसीही उसकी भक्ति भिन्न होती है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य अमुक मेरा मित्र व अमुक मेरा शत्रु है, ऐसी भेद

दृष्टि करता है व मित्रत्व; अथवा शत्रुत्वका उत्तम ग्रह धरके हिंसा कपट किंवा मत्सर साधनेके अभिप्रायसे मेरी भक्ति करता है, उसको तामस कहते हैं ॥६१॥ जो मनुष्य मैं पूजा करनेवाला अलग व ईश्वर अलग है, ऐसी भेदबुद्धि रखकर स्वर्गादि फलकी प्राप्ति करनेकी इच्छासे भोगप्राप्तिके लिये व द्रव्य या कीर्ति मिलनेके लिये मूर्ति इत्यादि स्थलमें मेरी पूजा करता है, वह राजस है ॥ ६२ ॥ जो पुरुष भेदबुद्धिसे रहित होकर परन्तु पापनाश करनेके लिये कर्मका आचरण करके मुझे अर्पण करता है (ईश्वरकी प्रेरणासे मैंने कर्म किया सो ईश्वरको अर्पित होवै; ऐसा संकल्प करता है) अथवा शास्त्रके कहे अनुसार कि कर्म अवश्य करना चाहिये इस कारण;—(निरिच्छापनसे) करता है वह भक्त सात्विक है । इस भक्तको फिर ज्ञान हो जाता है कि—निर्गुण भक्ति करना चाहिये ॥ ६३ ॥ मैं अंनतगुणोंका आधार हूं जैसे जल समुद्रमें प्रवेश करनेपर समुद्र

[illegible]ऽऽभिसंधिभोंगार्थीधनकामोयशस्तथा ॥ अर्चादौभेदबुद्धयामांपूजयेत्सतुराजसः ॥ ६२ ॥ परस्मिन्नर्पितंयस्तुकर्मनिर्हरणायवा ॥
[illegible]र्तव्यमितिवाकुर्याद्भेदबुद्धयाससात्त्विकः ॥६३॥ मद्गुणाश्रयणादेवमय्यनंतगुणालये ॥ अविच्छिन्नामनोवृत्तिर्यथागंगांबुनोंबुधौ॥६४॥
[illegible]देवभक्तियोगस्यलक्षणंनिर्गुणस्यहि ॥ अहैतुक्यव्यवहितायाभक्तिर्मयिजायते ॥ ६५ ॥ सामेसालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेववा ॥
[illegible]ददात्यपिनगृह्णंतिभक्तामत्सेवनंविना ॥६६॥ सएवात्यंतिकोयोगोभक्तिमार्गस्यभामिनि ॥ मद्भावंप्राप्नुयात्तेनअतिक्रम्यगुणत्रयम्॥६७॥
महताकामहीनेनस्वधर्माचरणेनच ॥ कर्मयोगेनशस्तेनवर्जितेनाविहिंसनम् ॥ ६८ ॥

रूप बन जाता है, दिखाई नहीं देता, तैसेही केवल मेरे गुणोंका आश्रय करके मेरे स्वरूपमें अखंड वृत्तिकल्पनाही निर्गुणभक्तियोगका लक्षण है मुझसे निष्काम व अखंड भक्ति उत्पन्न होकर उस भक्तको मेरी सलोकता (मैं जहाँ रहताहूं तिस लोकमें रहना) समीपता (मेरे निकट रहना) सरूपता (मेरे समान चतुर्भुज पीताम्बरधारी रूप धारण करना) किंवा सायुज्य (मेरे रूपमें मिलजाना) इसभाँति चार प्रकारकी मुक्ति देती है; परन्तु भक्तजन मेरी सेवाके सिवाय दूसरी किसी वस्तुका अंगीकार नहीं करते ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हे माते ! सालोक्यादि मुक्तिका त्याग देनाही अत्युत्तम भक्तियोग है तिसके द्वारा पुरुष तीनों गुणका उल्लंघन करके मेरे रूपको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ अब कर्मयोग कैसे करना चाहिये सो कहताहूं, किसी फलकी इच्छा न करकै पूर्णपनसे धर्माचरण करे जिसमें हिंसा नहीं है वह श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म

करे, ऐसे कर्मोंके करनेसे मेरी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ अब भक्तियोग्य साध्य होनेका उपाय कहताहूं—मेरा दर्शन करे, स्तुति करे महा पूजा बांधे; स्मरण व वंदन करे सर्व प्राणियोंमें मैं (परमेश्वर) विराजमान हूं ऐसी भावना रक्खै, किसीपर आसक्त न होवे; असत्य छोडे ॥ ६९ ॥ ॥ सज्जनोंको अधिक मान दे; दुःखित प्राणियोंपर कृपा करे; अपने समान योग्यताके मनुष्यसे मित्रता करे; यमनियमादिका पालन करे ॥ ७० ॥ वेदांतके वचन सुन, मेरा नामकीर्तन करै साधुसमागम करे; सीधा होकर चलै, अहंकार छोडै ॥ ७१ ॥ ईश्वरकी प्रीति जिसके द्वारा होवै, वह धर्माचरण भले जाने; इसरीतिसे व्यवहार करनेपर मनुष्यका अंतःकरण सर्वतः शुद्ध हो जाताहै; जिसप्रकार गति वायु गंधके अनुरोधसे अपने

मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिःस्मृतिवंदनैः ॥ भूतेषुमद्भावनयासंगेनासत्यवर्जनैः ॥६९॥ बहुमानेनमहतांदुःखिनामनुकंपया ॥ स्वसमानेषु मैत्र्याचयमादीनांनिषेवया ॥ ७० ॥ वेदांतवाक्यश्रवणान्ममनामानुकीर्तनात् ॥ सत्संगेनार्जवेणैवह्यहमःपरिवर्जनात् ॥ ७१ ॥ कांक्ष[illegible]ममधर्मस्यपरिशुद्धांतरोजनः ॥ मद्गुणश्रवणादेवायातिमामंजसाजनः ॥ ७२ ॥ यथावायुवशाद्गंधःस्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् ॥ योगा[illegible]सरतंचित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥७३॥ सर्वेषुप्राणिजातेषुह्यहमात्माव्यवस्थितः ॥ तमज्ञात्वाविमूढात्माकुरुतेकेवलंबहिः ॥ ७४ ॥ [illegible]योत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मेनांवतोषणम् ॥ भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहंनपूजितः ॥ ७५ ॥ तावन्मामर्चयेद्देवंप्रतिमादौस्वकर्मभिः ॥ या[illegible]त्सर्वेषुभूतेषुस्थितंचात्मनिनस्मरेत् ॥ ७६ ॥

आश्रयभूत पुष्पादि पदार्थोंसे निकलकर नासिकामें प्रवेश करता है; तैसेही वह पुरुष मेरे गुणोंको सुननेरूपी साधनसे शीघ्रही मेरे स्वरूपमें मिल जाता है चित्त योगाभ्यासमें रत होनेपर इस प्रकारसे आत्मरूपमें लग जाता है, ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ मैं सर्व प्राणिसमूहमें आत्मरूपसे रहता हूं. हे माते ! वह मेरा स्वरूप न पहँचानकर मूर्ख पुरुष केवल बाहिरकी क्रियाके द्वारा अनेक यत्न करके विविध गंध पुष्पादि सामग्रीके द्वारा मेरी पूजा करते हैं, परन्तु उस पूजासे मुझे संतोष नहीं होता. प्राणियोंका अपमान करनेवाले मनुष्यने प्रतिमामें मेरी कितनाही पूजा करी हो, परन्तु वह न करनेके समान है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ जबतक मनुष्यके मनपर 'मैं' (ईश्वर) सर्व प्राणियोंमें रहताहूं, ऐसा स्थिर नहीं होता, तबतक उसको मूर्ति इत्यादिकोंके

आधारपर अपने कर्मोंके द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये, सर्व भूतोंमें ईश्वर है; मनमें ऐसा निश्चय होतेही पूज्यपूजकभाव नहीं रहता, अर्थात् मूर्ति पूजा छूट जाती है ॥ ७६ ॥ जो स्वात्मा और परमात्माको भिन्न मानता है, उस भेददृष्टि रखनेवाले पुरुषको मृत्युका भय लगेगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ७७ ॥ हे माते ! यह जो अलग २ भूत दिखाई देते हैं तिन सबमें एक मैंही वास करताहूं; इसकारण मनुष्यको भेदबुद्धि छोड़कर (सर्वत्र ज्ञानरूपी परमात्मा एक है, ऐसा समझकर) ज्ञान, मान मित्रतादि पहले कहेहुए साधनोंसे मेरी आराधना करनी चाहिये ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको मैं ज्ञानमय शुद्ध आत्मा जीवरूपसे सर्व प्राणियोंमें रहता हूं, ऐसा जानकर सर्व प्राणियोंको निरन्तर चित्तसे प्रणाम करे ॥ ७९ ॥

[illegible]तुभेदंप्रकुरुतेस्वात्मनश्चपरस्यच ॥ भिन्नदृष्टेर्भयंमृत्युस्तस्यकुर्यान्नसंशयः ॥ ७७ ॥ मामतःसर्वभूतेषुपरिच्छिन्नेषुसंस्थितम् ॥ एकंज्ञा[illegible]मानेनमैत्र्याचार्चेदभिन्नधीः ॥ ७८ ॥ चेतसैवानिशंसर्वभूतानिप्रणमेत्सुधीः ॥ ज्ञात्वामांचेतनंशुद्धंजीवरूपेणसंस्थितम् ॥ ७९ ॥ [illegible]स्मात्कदाचिन्नेक्षेतभेदमीश्वरजीवयोः ॥ भक्तियोगोज्ञानयोगोमयामातरुदीरितः ॥८०॥ आलंब्यैकतरंवापिपुरुषःशममृच्छति ॥ ततो [illegible]मांभक्तियोगेनमातःसर्वहृदिस्थितम् ॥८१॥ पुत्ररूपेणवानित्यंस्मृत्वाशांतिमवाप्स्यसि ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंकौसल्यानंदसंयुता ॥८२॥ समंसदाहृदिध्यात्वाछित्त्वासंसारबंधनम् ॥ अतिक्रम्यगतीस्तिस्रोऽप्यवापपरमांगतिम् ॥ ८३ ॥

सारांश यह है कि ईश्वर और जीवात्माका भिन्न होना मनमें कभी न लावै । हे मैया ! मैंने तुमसे भक्तियोग और ज्ञानयोग कहा ॥ ८० ॥ इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय लेनेसे मनुष्यको शान्ति प्राप्त होती है । इसकारण हे अम्ब ! तुम हमारा 'मैं' सर्वभूतोंके अंतरमें रहताहूं इस कारण परमपूज्य ईश्वर हूं, "ऐसी भक्तियोगके द्वारा ॥ ८१ ॥ अथवा 'मैं तुम्हारा पुत्र हूं' ऐसे भावसे नित्य स्मरण करती रहो, जब तुम्हें शान्ति और सुख प्राप्त होगा" । रामजीके वचन सुनकर कौशल्याजीको आनंद हुआ ॥ ८२ ॥ फिर वे अपने हृदयमें सदा श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करती रहीं, व अंतसमय

संसार बन्धन तोड और—सात्विक राजस तामस तीनों गतियोंको उल्लंघन कर अत्युत्तम पदको प्राप्त करती हुई ॥ ८३ ॥ कैकेयीको रामचंद्र जीने पहले ही (जब चित्रकूट पर्वतपर मिलनेपर आई थीं तब) योगका उपदेश कियाथा, उसकी रामजीके वचनोंपर पूर्ण विश्वासयुक्त भक्ति थी वह शान्तपनसे हृदयमें रामचंद्रजीका चिन्तन करते रहनेके कारण मरण पानेके पीछे स्वर्गलोकमें जाय दशरथजीके साथ आनंदसे रही । तैसे ही लक्ष्मणजीकी माता सुमित्राजीकी बुद्धि निर्मल हुईथी । वहभी परलोकमें पतिसे जाय मिली ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ रामचंद्रजीके द्वारा लक्ष्मणजीका त्यागा जाना ॥ महादेवजी बोले—कि, हे पार्वती ! रामजीके राज्य करनेके

कैकेयीचापियोगंरघुपतिगदितंपूर्वमेवाधिगम्यश्रद्धाभक्तिप्रशांताहृदिरघुतिलकंभावयंतीगतासुः ॥ गत्वास्वर्गेस्फुरंतीदशरथसहितामो [illegible]दमानावतस्थेमाताश्रीलक्ष्मणस्याऽप्यतिविमलमतिःप्रापभर्तुःसमीपम् ॥ ८४ ॥ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादे [illegible]त्तरकांडेश्रीरामचन्द्रमातॄणांस्वर्गप्रस्थानंनामसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ अथकालेगतेकस्मिन्भरतोभीमविक्रमः ॥ [illegible]धाजितामातुलेनह्याहूतोऽगात्ससैनिकः ॥ १ ॥ रामाज्ञयागतस्तत्रहत्वागंधर्वनायकान् ॥ तिस्रःकोटीःपुरेद्वेतुनिवेश्यरघुनंदनः॥ २ ॥ [illegible]करंपुष्करावत्यांतक्षंतक्षशिलाह्वये ॥ अभिषिच्यसुतौतत्रधनधान्यसुहृद्वृतौ ॥ ३ ॥ पुनरागत्यभरतोरामसेवापरोऽभवत् ॥ ततःप्रीतो [illegible]घुश्रेष्ठोलक्ष्मणंप्राहसादरम् ॥ ४ ॥

समय महापराक्रमी भरतजीको युधाजित मामाके द्वारा—अपने देशके निकट वसेहुए गंधर्वदेशके कुछ गंधर्वोंका वध करनेके लिये—बुलावा आया, इस कारण भरतजी सेनाके साथ तहां जानेको चले ॥ १ ॥ उन रघुकुमारने रामचंद्रजीकी आज्ञा ली, तहाँ जाय तीन करोड गन्धर्वोंके नायकोंका वध किया व तहां दो नगर बसाये ॥ २ ॥ भरतजीके पुष्कर और तक्ष नामक दो पुत्र थे, उन्होंने नये बसायेहुए नगरोंके नाम अपने पुत्रोंके नामपर रक्खे,— पुष्करावती नगरीमें पुष्करका और तक्षशिलानामक नगरीमें तक्षका आभिषेक किया और वहां उनको द्रव्य, धान्य और मित्रमंडली प्राप्त करा दी ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त फिर भरतजी लौट आयकर रामजीकी सेवामें तत्पर रहे, तब रामचंद्रजीने संतुष्ट होकर आदरपूर्वक लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ४ ॥

हे भैया लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको लेकर पश्चिम दिशामें जाओ। वहांपर सबको त्रास देनेवाले दुष्ट भील बहुत होगये हैं, उनको पराजित करो ॥ ५ ॥ अंगद व चित्रकेतु (लक्ष्मणजीके पुत्र) दोनोंही महाबुद्धिमान् महापराक्रमी हैं, उनको दो नगर बसादो। तिनमें हाथी घोडे, द्रव्य व रत्नोंका संग्रह कराओ ॥ ६ ॥ और वहांपर पुत्रोंको राज्याभिषेक करके शीघ्रही हमारे पास लौट आओ'। लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा मानकर, हाथी, घोड़े, सेना और वाहनोंके साथ ॥ ७ ॥ तहां गये। उन्होंने समस्त शत्रुओंका वध करके तहांपर दोनों पुत्रोंको स्थापित किया। अनन्तर वह फिर लौट आयकर श्रीरामचंद्रजीकी सेवामें तत्पर रहे ॥ ८ ॥ इस बातको बहुत दिन बीतगये—प्रभु रामचंद्रजी सदा

[illegible]भौकुमारौसौमित्रेगृहीत्वापश्चिमांदिशम् ॥ तत्रभिल्लान्विनिर्जित्यदुष्टान्सर्वापकारिणः ॥ ५ ॥ अंगदश्चित्रकेतुश्चमहासत्त्वपराक्रमौ ॥ [illegible]तेयोर्द्वेनगरेकृत्वागजाश्वधनरत्नकैः ॥ ६ ॥ अभिषिच्यसुतौतत्रशीघ्रमागच्छमांपुनः ॥ रामस्याज्ञांपुरस्कृत्यगजाश्वबलवाहनः ॥ ७ ॥ [illegible]देस्वाहत्वारिपून्सर्वान्स्थापयित्वाकुमारकौ ॥ सौमित्रिःपुनरागत्यरामसेवापरोऽभवत् ॥ ८ ॥ ततस्तुकालेमहतिप्रयातेरामंसदाधर्मपथे [illegible]स्थितंहरिम् ॥ द्रष्टुंसमागाद्दषिवेषधारीकालस्ततोलक्ष्मणमित्युवाच ॥ ९ ॥ निवेदयस्वातिबलस्यदूतंमांद्रष्टुकामंपुरुषोत्तमाय ॥ रामाय [illegible]विज्ञापनमस्तितस्यमहर्षिमुख्यस्यचिरायधीमन् ॥ १० ॥ तस्यतद्वचंश्रुत्वासौमित्रिस्त्वरयान्वितः ॥ आचचक्षेऽथरामायससंप्राप्तंतपोधनम् ॥ ११ ॥ एवंब्रुवंतंप्रोवाचलक्ष्मणंराघवोवचः ॥ शीघ्रंप्रवेश्यतांतातमुनिःसत्कारपूर्वकम् ॥ १२ ॥ लक्ष्मणस्तुतथेत्युक्त्वाप्रावेशयततापसम्॥स्वतेजसाज्वलंतंतंघृतासिक्तंयथानलम् ॥ १३ ॥

धर्ममार्गके अनुसार चलते रहे। फिर एक समय काल ऋषिका भेष करकै रामजीके भेटनेको आया, और लक्ष्मणजीसे बोला ॥ ९ ॥ 'हे बुद्धिमान् ! (लक्ष्मण !) मैं अतिबल नामक ऋषिका दूत, पुरुषोत्तम (परमेश्वर) से भेंटनेकी इच्छा करताहूं। यह वार्ता अब जायकर रामजीसे कहो उन श्रेष्ठ ऋषिकी रामजीके निकट बहुत दिनकी कुछ विज्ञापना है' ॥ १० ॥ ऐसे उस दूतके वचन सुनकर लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीके पास जायकर तपोधनका समाचार कहा ॥ ११ ॥ तिसको सुनकर रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि 'हे तात ! उन मुनिको सत्कार करकै जल्दी यहांपर ले आओ !' ॥ १२ ॥ 'जो आज्ञा' कहकर उन ऋषिको रामजीके पास पहुँचाया। उन ऋषिका स्वाभाविक तेज घृतकी आहुती देनेसे प्रज्वलित हुई

अग्निके समान दिखाई देताथा ॥ १३ ॥ अपने अतुल तेजसे प्रकाशमान उन मुनिने रामजीके निकट जायकर मधुर वाणीसे उनको 'तुम्हारा उत्कर्ष होवै (तुमको पृथ्वीके राज्यकी अपेक्षा अधिक योग्यताका राज्य मिलै) ' ऐसा आशीर्वाद दिया ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीने साव धान अंतःकरणसे उनकी यथाविधि पूजा की । मुनिने रामचंद्रजीसे कुशलप्रश्न किया, रामचंद्रजीनेभी उनसे कुशल पूंछी ॥ १५ ॥ फिर दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए श्रीरामचंद्रजीने उन तपोनिधिसे विनती की, हे महाराज ! आप जिसलिये यहाँ आयेहैं—वह अपने गुरुका संदेश मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ रामचंद्रजीने ऐसे वचन कहके प्रेरणाकी,—तब मुनि बोले;—'हेराम ! पहले तौ आप ऐसी व्यवस्था कीजिये कि—यहां हम दोनोंही

सोभिगम्यरघुश्रेष्ठंदीप्यमानःस्वतेजसा ॥ मुनिर्मधुरवाक्येनवर्धस्वेत्याहराघवम् ॥१४॥ तस्मैसमुनयेरामःपूजांकृत्वायथाविधि ॥ पृष्ट्वा नामयमव्यग्रोरामःपृष्टोऽथतेनसः ॥ १५ ॥ दिव्यासनेसमासीनोरामःप्रोवाचतापसम् ॥ यदर्थमागतोऽसित्वमिहतत्प्रापयस्वमे ॥१६ ॥ [illegible]वयेनचोदितस्तेनरामेणाहमुनिर्वचः ॥ द्वंद्वमेवप्रयोक्तव्यमनालक्ष्यंतुतद्वचः ॥१७॥ नान्येनचैतच्छ्रोतव्यंनाख्यातव्यंचकस्यचित् ॥ [illegible]णुयाद्वानिरीक्षेद्वायःसवध्यस्त्वयाप्रभो ॥ १८ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ तिष्ठत्वंद्वारिसौमित्रेनायात्वत्रजनोरहः ॥ १९ ॥ यद्यागच्छतिकोवापिसवध्योमेनसंशयः ॥ ततःप्राहमुनिंरामोयेनवात्वंविसर्जितः ॥ २० ॥ यत्तेमनीषितंवाक्यंतद्वदस्वममाग्र तः ॥ ततःप्राहमुनिर्वाक्यंशृणुरामयथातथम् ॥ २१ ॥

रहैं ! वह सन्देह किसी (तीसरे) के जानने योग्य नहीं है ॥ १७ ॥ मेरी कही हुई यह बात दूसरा कोई न सुनै और न किसीसे यह कहने योग्य है, हे प्रभो ! हमारी बात करनेको कोई देखे या सुनै तौ उसका वध करैं ॥ १८ ॥ रामजीने 'बहुत अच्छा' कह प्रतिज्ञा करकै लक्ष्मणजीसे कहा, 'हे लक्ष्मण ! द्वारपर खडे रहो, इस एकान्तस्थानमें कोई मनुष्य नहीं आवै ॥ १९ ॥ जो आवैगा तौ फिर कोई भी हो; मैं उसका वध करूंगा इसमें अन्तर नहीं होगा, इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी मुनिसे बोले, 'हे मुने ! आपको जिसने भेजा है अथवा ॥ २० ॥ स्वयं आपके मनमें जो कुछ कहनेकी इच्छा हो वह सब मेरे सन्मुख निवेदन कीजिये' तब मुनि बोले;—'हे राम ! मैं तुमसे सत्य कहताहूं सुनिये ॥ २१ ॥

हे प्रभो ईश्वर ! मुझे ब्रह्माजीने आपके पास किसी कार्यके लिये भेजाहै । हे शत्रुनाशन देव ! मैं तुम्हारा पुत्र हूं ॥२२॥ हे वीर ! आपने मायासे समागम किया (तिसकी ओर देखा) तब मेरा जन्म हुआ, मरा नाम काल है, मैं समस्त जगत्का संहार करताहूं; सर्व देव और ऋषि जिसकी पूजा करते हैं; उस भगवान् ब्रह्माजीकी आपसे यह विज्ञापना है कि ॥ २३ ॥ हे महाज्ञानवंत ! अब तुम्हारी स्वर्गलोकमें लौटजायकर रक्षा करनेकी वेला आई है, पूर्व कल्पके समाप्तकालमें आप सर्व लोकका संहारकरकै अकेले ही रहे ॥ २४ ॥ फिर आपने मायाका अंगीकार करकै प्रथम एक पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र मैं हूं । तैसेही आपने एक प्रचंड शरीरका नाग उत्पन्न किया, वह जलमें रहताहुआ उनका नाम अनंत (शेष) हुआ ॥ २५ ॥ आपने मायाके

[illegible]णाप्रेषितोऽस्मीशकार्यार्थंतेंऽतिकंप्रभो ॥ अहंहिपूर्वजोदेवतवपुत्रःपरंतप ॥२२ ॥ मायासंगमजोवीरकालःसर्वहरःस्मृतः ॥ ब्रह्मात्वा [illegible]भगवान्सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ २३ ॥ रक्षितुंस्वर्गलोकस्यसमयस्तेमहामते ॥ पुरात्वमेकएवासीर्लोकान्संहृत्यमायया ॥ २४ ॥ भार्यं [illegible]हितस्त्वंमामादौपुत्रमजीजनः ॥ तथाभोगवतंनागमनंतमुदकेशयम् ॥ २५ ॥ माययाजनयित्वात्वंद्वौससत्त्वौमहाबलौ ॥ मधुकै[illegible]कौदैत्यौहत्वामेदोऽस्थिसंचयम् ॥ २६ ॥ इमांपर्वतसंबद्धांमेदिनींपुरुषर्षभ ॥ पद्मेदिव्यार्कसंकाशेनाभ्यामुत्पाद्यमामपि ॥ २७ ॥ [illegible]विधायप्रजाध्यक्षंमयिसर्वंन्यवेदयत् ॥ सोहंसंयुक्तसंभारस्त्वामवोचंजगत्पते ॥ २८ ॥ रक्षांविधत्स्वभूतेभ्योयेमेवीर्यापहारिणः ॥ ततस्त्वंकश्यपाज्जातोविष्णुर्वामनरूपधृक् ॥२९॥ हतवानसिभूभारंवधाद्रक्षोगणस्यच ॥ सर्वासूत्सार्यमाणासुप्रजासुधरणीधर ॥ ३०॥

द्वारा महापराक्रमी व महाशक्तिवान् मधुकैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न करकै मारे और उनके मेद (चरबी) व हड्डियोंकी राशि की ॥ २६ ॥ यह पर्वतयुक्त मेदिनी (पृथ्वी) बनाई । फिर आपने अपनी नाभिमें दिव्य सूर्यके समान कमल निर्माण करकै उससे मेरी उत्पत्ति की ॥ २७ ॥ मुझको प्रजापालनका अधिकार दिया और मुझपर सर्व भार रक्खा । हेजगत्पालक ! आपने सृष्टि इत्यादि सर्व कार्य मुझे सौंप दिये—इस कारणसे मैंने आपसे प्रार्थना करी कि ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जो कोई मेरे वीर्यका अपहार करतेहैं (मेरी प्रजाको दुःख देतेहैं) उनसे प्राणियोंकी रक्षा करो । इस कारण हे विष्णुरूप ! फिर आपने कश्यपजीसे वामनरूपी अवतार लिया है ॥ २९ ॥ हे पृथ्वीपालक ! सर्वप्रजाका संहार होनेकी वेला आईथी

परन्तु आपने राक्षसोंका वध करकै पृथ्वीका भार उतारा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे जब सर्व प्रजाको रावणने पीडित किया, तब उसका वध करने केलिये आप मनुष्य लोकके विषे प्राप्त हुए, फिर पहले देवताओंके सामने जो मृत्युलोकमें रहनेके विषे आपने प्रतिज्ञा की थी; उस प्रतिज्ञाका समय पूर्ण होनेको आगया है; क्योंकि यहाँ आये आपको ग्यारह हजार वर्ष होगये ॥ ३१ ॥ वह आपका इष्ट कार्यभी पूरा होगया । हे रामचंद्र ! मृत्युलोकमें आपके रहनेकी मर्यादा पूरी होगई ॥ ३२॥ मैं काल ऋषिका वेष धारण करकै आपके पास आया हूं; अब जो ऐसी तुह्मारी इच्छा होकि "अब फिर पृथ्वीका राज्यभोग करैं" ॥ ३३ ॥ तौ तैसाही कीजिये (राज्य करो) ऐसा ब्रह्माजीने कहाहै । हे राम ! सर्व इन्द्रियवृत्ति आ-

रावणस्यवधाकांक्षीमर्त्यलोकमुपागतः ॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ ३१ ॥ कृत्वावासस्यसमयंत्रिदशेष्वात्मनःपुरा ॥ सते [illegible]नोरथःपूर्णःपूर्णेचायुषितेनृषु ॥ ३२ ॥ कालस्तापसरूपेणत्वत्समीपमुपागमम् ॥ ततोभूयश्चतेबुद्धिर्यदिराज्यमुपासितुम् ॥ ३३ ॥ [illegible]तथाभवभद्रंतेएवमाहपितामहः ॥ यदितेगमनेबुद्धिर्देवलोकंजितेंद्रिय ॥ ३४ ॥ सनाथाविष्णुनादेवाभवंतुविगतज्वराः ॥ चतुर्मुखस्य [illegible]क्यंश्रुत्वाकालेनभाषितम् ॥ ३५ ॥ हसन्रामस्तदावाक्यंकृत्स्नस्यांतकमब्रवीत् ॥ श्रुतंतववचोमेऽद्यममापीष्टतरंतुतत् ॥ ३६ ॥ [illegible]षःपरमोज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ॥ त्रयाणामपिलोकानांकार्यार्थंममसंभवः ॥ ३७ ॥ भद्रंतेऽस्त्वागमिष्यामियतएवाहमागतः ॥ [illegible]नोरथस्तुसंप्राप्तोनमेत्राऽस्तिविचारणा ॥३८॥ मत्सेवकानांदेवानांसर्वकार्येषुवैमया ॥ स्थातव्यंमाययापुत्रयथाचाहप्रजापतिः ॥३९॥

पके स्वाधीन है, जो आपने देवलोक जानेका निश्चय किया है तौ ॥ ३४ ॥ देवताओंको विष्णुजीका आधार मिलैगा उनका संताप दूर होगा' । काल का कहाहुआ ब्रह्माजीका वह संदेश सुनकर ॥ ३५ ॥ तिस समय रामजी हँसते २ उस सर्व संहारकारी पुरुष (काल) से बोले,—मैंने तुम्हारे वचन सुने; इस समय मेराभी यही इष्ट है ॥ ३६ ॥ तुम्हारे आनेसे मुझको बहुत संतोष हुआ, मेरा अवतार त्रिलोकीके कार्यको होताहै ॥ ३७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो मैं जिस स्थानसे यहां आयाहूं तहांको लौट जाऊंगा; मेरा मनोरथ सिद्ध होगया; इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र ! ब्रह्माजी ने जैसे कहाहै तिसके अनुसार मैं अपने सेवक जो देवता हैं, तिनके सर्वकार्यरक्षा करनेके लिये मायाके द्वारा सदा तैयार रहूंगा, यही योग्य है ॥ ३९ ॥

इनका ऐसा संवाद हो रहाथा कि, इतनेमें दुर्वासा मुनि किसी आवश्यकीय कार्यको शीघ्र रामचंद्रजीका दर्शन पानेकी इच्छासे राजद्वारपर प्राप्तहुए ॥ ४० ॥ दुर्वासा मुनि लक्ष्मणजीके निकट जायकर बोले, शीघ्र हमको रामचंद्रजीकी भेंट करादो ॥ हमारा अतिशय आवश्यकीय कार्य है ' ॥ ४१ ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी उन अग्निके समान तेजस्वी ऋषिसे बोले;–'महाराज ! इस समय रामचंद्रजीसे आपका कौनसा कार्य है ? आप अपनी इच्छा मुझसे कहिये,–उसको मैं पूर्ण करताहूं ॥ ४२ ॥ राजा रामचंद्रजी इस समय एक दूसरा कार्य कर रहेहैं;–जो उनसेही भेंट करना हो तौ कृपाकरकै एक घडीभर थँभ जाइये, यह वचन सुनतेही मुनि क्रोधसे लाल होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४३ ॥ 'हे लक्ष्मण ! इसी

[illegible]वंतयोःकथयतोर्दुर्वासामुनिरभ्यगात् ॥ राजद्वारंराघवस्यदर्शनापेक्षयाद्रुतम् ॥ ४० ॥ मुनिर्लक्ष्मणमासाद्यदुर्वासावाक्यमब्रवीत् ॥ शी[illegible]र्शयराममेकार्यमेऽत्यंतमाहितम् ॥४१॥ तच्छ्रुत्वाप्राहसौमित्रिर्मुनिंज्वलनतेजसम् ॥ रामेणकार्यंकिंतेऽद्यकिंतेऽभीष्टंकरोम्यहम्॥४२॥ [illegible]आकार्यांतरेव्यग्रोमुहूर्तंसंप्रतीक्ष्यताम् ॥ तच्छ्रुत्वाक्रोधसंतप्तोमुनिःसौमित्रिमब्रवीत् ॥४३॥ अस्मिन्क्षणेतुसौमित्रेनदर्शयासिचेद्विभुम् ॥ [illegible]मंसविषयंवंशंभस्मीकुर्यांनसंशयः॥४४॥श्रुत्वातद्वचनंघोरमृषेर्दुर्वाससोभृशम् ॥ स्वरूपंतस्यवाक्यस्यचिंतयित्वासलक्ष्मणः ॥४५ ॥ [illegible]र्वनाशाद्वरंमेऽद्यनाशोह्येकस्यकारणात् ॥ निश्चित्यैवंततोगत्वारामायप्राहलक्ष्मणः ॥ ४६ ॥ सौमित्रेर्वचनंश्रुत्वारामःकालंव्यसर्जयत्॥ शीघ्रंनिर्गम्यरामोऽपिददर्शात्रेःसुतंमुनिम् ॥४७॥ रामोऽभिवाद्यसंप्रीतोमुनिंपप्रच्छसादरम्॥किंकार्यंतेकरोमीतिमुनिमाहरघूत्तमः ॥४८॥

क्षण जो तुम हमें रामचंद्रजीकी भेंट न कराओगे तौ मैं दशरथके वंशको इष्टमित्रोंसहित भस्म कर डालूंगा ! इसमें अन्यथा नहीं होगा । ' ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणजीने दुर्वासा ऋषिके वे अत्यन्त भयंकर वचन सुने, व उन वाक्योंके स्वरूपका विचार किया तौ उनको जान पडा कि ॥ ४५ ॥ इस (दुर्वासा रूप) कारणसे सारे कुलके लय होनेकी अपेक्षा आज केवल मेरा नाश हो जाना अच्छाहै । ऐसा निश्चय करकै लक्ष्मणजी एकान्तमें काल मुनिके साथ बैठे हुए रामजीके पास गये और उनसे दुर्वासाके आनेका समाचार कहा॥ ४६ ॥लक्ष्मणजीके वचन सुनतेही रामचंद्रजीने कालको बिदा दी वह शीघ्र बाहर आय अत्रिपुत्र (दुर्वासा) से भेंट की ॥ ४७ ॥ रामजीने संतुष्ट हो मुनिका वंदनकर आदरपूर्वक पूंछा " हे महाराज ! मैं आपका

कौनसा कार्य करूं ?" इस प्रकार रामजीने कहा ॥ ४८ ॥ रामजीके यह वचन सुनकर दुर्वासा मुनि बोले,–' हे राम ! आज मुझे अनेक सहस्र वर्षोंसे किये हुए उपवासकी समाप्ति करनी है ॥ ४९ ॥ इस कारण हे रघुवीर ! जो पाक तुम्हारे यहां तैयार हो उसको भोजन करनेकी मैं इच्छा करता हूं ' रामजीने मुनिके वचन सुन संतुष्ट हो ॥ ५० ॥ मुनिको इच्छानुसार तैयार अन्न अर्पण किया, मुनिजीभी अमृततुल्य अन्न भोजनकर संतुष्ट होतेहुए लौट गये ॥ ५१ ॥ जब वह अपने स्थानको गये, तब रामचंद्रजीको कालका कहना याद आया व अत्यन्त बुरा लगा, उनका मन उद्विग्न हुआ, वह अत्यन्त विह्वल हुए ॥ ५२ ॥ उन्होंने मुख नीचेको झुका लिया, अंतःकरण इतना दीन होगया कि, उनके मुखसे बाततक नहीं नि

तच्छ्रुत्वारामवचनंदुर्वासाराममब्रवीत् ॥ अद्यवर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥४९॥ अतोभोजनमिच्छामिसिद्धंयत्तेरघूत्तम ॥ रामोमु
[illegible]निवचःश्रुत्वासंतोषेणसमन्वितः॥५०॥ ससिद्धमन्नंमुनयेयथावत्समुपाहरत् ॥ मुनिर्भुक्त्वान्नममृतंसंतुष्टःपुनरभ्यगात्॥५१॥स्वमाश्रमंग
[illegible]तस्मिन्रामःसस्मारभाषितम् ॥ कालेनशोकदुःखार्तोविमनाश्चातिविह्वलः ॥५२॥ अवाङ्मुखोदीनमनानशशाकाभिभाषितुम् ॥ मन
[illegible]लक्ष्मणंज्ञात्वाहतप्रायंरघूद्वहः ॥५३॥ अवाङ्मुखोबभूवाथतूष्णीमेवाखिलेश्वरः॥ ततोरामंविलोक्याहसौमित्रिर्दुःखसंप्लुतम् ॥ ५४ ॥
[illegible]र्णीभूतंचिंतयंतंगर्हंतंस्नेहबंधनम् ॥ मत्कृतेत्यजसंतापंजहिमांरघुनंदन ॥ ५५ ॥ गतिःकालस्यकलितापूर्वमेवेदृशीप्रभो ॥ त्वयिहीन
[illegible]ज्ञेतुनरकोमेध्रुवंभवेत् ॥ ५६ ॥ मयिप्रीतिर्यदिभवेद्यद्यनुग्राह्यतातव ॥ त्यक्त्वाशंकांजहिप्राज्ञमामाधर्मंत्यजप्रभो ॥ ५७ ॥ सौमित्रि
[illegible]क्तंतच्छ्रुत्वारामश्चलितमानसः ॥ आहूयमंत्रिणःसर्वान्वसिष्ठंचेदमब्रवीत् ॥ ५८ ॥

कली । रामचंद्रजीने मनमें जानलिया कि लक्ष्मण मृतकतुल्य हो रहे हैं ॥ ५३ ॥ तब वह सर्वेश्वर नीचेको मुखकर सावधान हो बैठे; फिर रामजी दुःखसे व्याप्त हुए हैं, कुछ बोलते नहीं, चिन्तामें पड़े हुए, प्रीतिपाशकी निन्दा करते हैं, ऐसा देखकर लक्ष्मणजी उनसे बोलेः–'हे रघुकुमार ! मेरे अर्थ संताप करना छोड़ मेरा वध कीजिये ॥५४॥५५॥ हे प्रभो ! कालकी गति ऐसीही है, यह पहलेही विचार रक्खी है, जो आपने प्रतिज्ञा भंग की तो मुझको निःसन्देह नरकमें पड़ना पड़ेगा ॥ ५६ ॥ जो आप मुझपर प्रीति करतें हैं आपके मनमें मुझपर अनुग्रह करना ठीक बोध होता है, तो शंका छोडकर मेरावध कीजिये । हे समर्थ ! आप सब बातें जानते हैं; धर्मका त्याग न कीजिये' ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर

रामजीका मन फिरा—उन्होंने अपने सर्व मंत्री और वसिष्ठ मुनिको बुलायकर अपना सर्व वृत्तान्त कहा ॥ ५८ ॥ प्रभु रामचंद्रजीने मुनिका आना उनका भाषण करना, व अपनी प्रतिज्ञा यह सर्व वृत्तान्त मंडलीको सुनाया ॥ ५९ ॥ रामजीके वचन सुनकर उपाध्यायके सहित सब मंत्रिजन हाथ जोड़कर उनसे बोले ॥ ६० ॥ 'हे ईश्वर ! आपने पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अवतार लिया है, यह बात पहलेहीसे निवेदन की हुई है कि आपका लक्ष्मणजीसे वियोग हो, आप भी ज्ञानदृष्टिके द्वारा इसको जानते हैं ॥ ६१ ॥ हे राम ! शीघ्र लक्ष्मणको त्याग करो, परन्तु प्रभो ! प्रतिज्ञा भंग न करो, प्रतिज्ञात कर्मका त्याग करनेसे धर्म निष्फल होता है ॥ ६२ ॥ हे राम ! सर्व धर्म नाश होनेपर निःसन्देह त्रिलोकी प्रलयको

[illegible]पनेरागमनंयत्तुकालस्यापिहिभाषितम् ॥ प्रतिज्ञामात्मनश्चैवसर्वमावेदयत्प्रभुः ॥५९॥ श्रुत्वारामस्यवचनंमंत्रिणःसपुरोहिताः ॥ ऊचुः [illegible]तंजलयःसर्वेराममक्लिष्टकारिणम् ॥ ६० ॥ पूर्वमेवहिनिर्दिष्टंतवभूभारहारिणः॥ लक्ष्मणेनवियोगस्तेज्ञातोविज्ञानचक्षुषा ॥६१॥ त्यजा[illegible]लक्ष्मणंराममाप्रतिज्ञांत्यजप्रभो ॥ प्रतिज्ञातेपरित्यक्तेधर्मोभवातिनिष्फलः ॥ ६२ ॥ धर्मेनष्टेऽखिलेरामत्रैलोक्यंनश्यतिध्रुवम् ॥ त्वं [illegible]सर्वस्यलोकस्यपालकोऽसिरघूत्तम ॥६३॥ त्यक्त्वालक्ष्मणमेवैकंत्रैलोक्यंत्रातुमर्हसि ॥ रामोधर्मार्थसहितंवाक्यंतेषामभिनंदितम्॥६४॥ [illegible]सभामध्येसमाश्रुत्यप्राहसौमित्रिमंजसा ॥ यथेष्टंगच्छसौमित्रेमाभूद्धर्मस्यसंशयः ॥ ६५ ॥ परित्यागोवधोवापिसतामेवोभयंसमम् ॥ [illegible]एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेदुःखव्याकुलितेक्षणः ॥ ६६ ॥ रामंप्रणम्यसौमित्रिःशीघ्रंगृहमगात्स्वकम् ॥ ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्यसकृतांजलिः ॥ [illegible]॥ ६७ ॥ नवद्वाराणिसंयम्यमूर्ध्निप्राणमधारयत् ॥ यदक्षरंपरंब्रह्मवासुदेवाख्यमव्ययम् ॥ ६८ ॥

प्राप्त होजाती है । हे रघुवीर ! आप सब लोकोंके रक्षा करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ इसकारण अकेले लक्ष्मणका त्याग करके त्रिलोकीकी रक्षा करो । यह हमको उचित दीखता है' रामचंद्रजीने उनके धर्म अर्थसे भरे हुए पवित्र और आनंदित वाक्य ॥ ६४ ॥ सभामें सुनकर शीघ्रही लक्ष्मणजीसे कहा,—'हे लक्ष्मण ! तुम जहां इच्छा हो; तहां चले जाओ । धर्मका लोप नहीं होना चाहिये' ॥ ६५ ॥ सत्पुरुषोंका त्याग करना या वध करना यह दोनों बातें बराबरही हैं; रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजीके नेत्र दुःखके आंसुओंसे व्याकुल होगये (भर आये) ॥ ६६ ॥ वह रामजीको प्रणाम करके शीघ्रही अपने मंदिरमें जायकर वहांसे सरयूपर गये । तहां उन्होंने हाथ जोडे ॥ ६७ ॥ नवोंद्वार (इन्द्रियोंके छेद—दो ना

सिकाके स्वर, दो नेत्र, दो कान मुख, लिंग, और गुदा) बंद किये। प्राण मस्तकपर चढा लिये, व नाशरहित सर्वाश्रय और विकाररहित वासुदेव संज्ञक परब्रह्मपदका मनमें चिंतन किया ॥ ६८ ॥ जब लक्ष्मणजीने प्राणवायुको रोकलिया तब अग्निके सहित सर्व देवता महर्षियोंने फूलों की वर्षा करके उन्हें ढकदिया और स्तुति की ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त इन्द्र लक्ष्मणजीको शरीरके सहित स्वर्गमें लेगया; कुछ देरतक तो लक्ष्मणजीका शरीर किसी देवताको नहीं दिखाई दिया ॥ ७० ॥ फिर उन विष्णुजीका चतुर्व्यूह मूर्तिमें एक चौथा भाग है ऐसा बडे २ देवता और सर्व ऋषियोंने देखा तब उन्होंने लक्ष्मणजीकी पूजा की ॥ ७१ ॥ विष्णुजीके अंश लक्ष्मण स्वर्गमें गये, तब सिद्ध लोकमें रहे हुए योगीलोग ब्रह्मा

पदंतत्परमंधामचेतसासोऽभ्यचिंतयत् ॥ वायुरोधेनसंयुक्तंसर्वेदेवाःसहर्षयः॥ ६९ ॥ साग्नयोलक्ष्मणंपुष्पैस्तुष्टुवुश्चसमाकिरन् ॥ अदृश्यं त्रिबुधैःकैश्चित्सशरीरंसवासवः ॥ ७० ॥ गृहीत्वालक्ष्मणंशक्रःस्वर्गलोकमथागमत् ॥ ततोविष्णोश्चतुर्भागंतंदेवंसुरसत्तमाः ॥ सर्वेदेवर्षयो दृष्ट्वालक्ष्मणंसमपूजयन् ॥ ७१ ॥ लक्ष्मेणहिदिवमागतेहर्षात्सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ॥ ब्रह्मणासहसमागमन्मुदाद्रष्टुमाहितमहाहि ...कम् ॥ ७२ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरा० उमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडे अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ लक्ष्मणंतुपरि ...ज्यरामोदुःखसमन्वितः ॥ मंत्रिणोनैगमांश्चैववसिष्ठंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अभिषेक्ष्यामिभरतमधिराज्येमहामतिम् ॥ अद्यचाहंगमिष्या ... लक्ष्मणस्यपदानुगः ॥ २ ॥ एवमुक्तेरघुश्रेष्ठेपौरजानपदास्तदा ॥ द्रुमाइवच्छिन्नमूलादुःखार्ताःपतिताभुवि ॥ ३ ॥ मूर्च्छितोभरतो ...पिश्रुत्वारामाभिभाषितम् ॥ गर्हयामासराज्यंसप्राहेदंरामसन्निधौ ॥ ४ ॥

जीको साथ लेकर हर्षसे पास आये हुए महा शेषरूप लक्ष्मणजीका दर्शन करनेके लिये आये ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वर संवादे उत्तरकांडे भाषाटीकायामष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीका अपने धाममें जाना ॥ महादेवजी बोले कि, हे पार्वति ! लक्ष्मणजीके त्याग करनेपर रामजीको परमदुःख हुआ.–उन्होंने अपने मंत्री, नगरके व्यापारी, वसिष्ठ मुनि, ऐसे सबको बुलायकर कहा ॥ १ ॥ 'हे श्रेष्ठमति ! यह भरत महाबुद्धिमान् है; अब इनको राज्याभिषेक करके स्वयं लक्ष्मणके पीछे जानेकी मेरी इच्छा है' ॥ २ ॥ 'रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर नगरवासी और देशवासी सब जन दुःखसे विह्वल हो जड़से कटेहुए वृक्षके समान पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उच्चारण किये हुए

शब्द भरतजीके कानमें पड़े; तब उनको मूर्च्छा आगई, वह राज्यकी निन्दा करतेहुए रामजीसे बोले ॥ ४ ॥ ' हे प्रभो रघुवीर ! मैं आपको सत्य स्मरण कर व आपके चरणोंकी सौगंध करके कहताहूं कि आपके विना मुझे पृथ्वीके राज्यकी तो बातही क्या है; स्वर्गके राज्यकीभी इच्छा नहीं है ॥ ५ ॥ हे राजा रामचंद्र ! इन कुश लवका अभिषेक कीजिये कुश महाप्रतापी है उसको दक्षिण कोशल देशका राज्य दो और लवको उत्तर कोशल देशका राज्य दे दीजिये ॥ ६ ॥ शत्रुघ्नको बुलानेके लिये शीघ्र दूत भेजिये; उनको यह वार्ता ज्ञातहोजानी चाहिये कि हम स्वर्गमें रहनेको जाते हैं' ॥ ७ ॥ भरतजीके इन वचनोंको सुनकर सब लोगोंको अत्यन्त भय लगा वे लोग इनके मुखकी ओर देखतेहुए पृथ्वीपर देहको

[illegible]येनचशपेनाहंत्वांविनादिविवाभुवि ॥ कांक्षेराज्यंरघुश्रेष्ठशपेत्वंत्पादयोःप्रभो ॥ ५ ॥ इमौकुशलवौराजन्नभिषिंचस्वराघव ॥ कोशले[illegible]रांवीरमुत्तरेषुलवंतथा ॥ ६ ॥ गच्छंतुदूतास्त्वरितंशत्रुघ्नानयनायहि ॥ अस्माकमेतद्गमनंस्ववर्वासायशृणोतुसः ॥ ७ ॥ भरतेनो[illegible]श्रुत्वापतितास्ताःसमीक्ष्यतम् ॥ प्रजाश्चभयसंविग्नारामविश्लेषकातराः ॥ ८ ॥ वसिष्ठोभगवान्राममुवाचसदयंवचः ॥ पश्यतातादरा[illegible]ःपतिताभूतलेप्रजाः ॥ ९ ॥ तासांभावानुगंरामप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वावसिष्ठवचनंताःसमुत्थाप्यपूज्यच ॥ १० ॥ सस्नेहोरघु[illegible]थस्ताःकिंकरोमीतिचाब्रवीत् ॥ ततःप्रांजलयःप्रोचुःप्रजाभक्त्यारघूद्वहम् ॥ ११ ॥ गंतुमिच्छसियत्रत्वमनुगच्छामहेवयम्॥ अस्माक[illegible]षापरमाप्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः ॥ १२ ॥

गिरा देते हुए रामजीका भावी वियोग जानकर उनके अंतरमें बहुत खलबली मचगई ॥ ८ ॥ भगवान् वसिष्ठजीको वह दृश्य (दिखाव) देखकर करुणा आई वे रामजीसे बोले;—' हे राजन् देखो प्रजा आपको कितना चाहती है; सब जने पृथ्वीपर पड़ेहुए हैं ॥ ९ ॥ हे राम ! इनके अभिप्रायके अनुसार आप अनुग्रह करें यह मुझको उचित दीखता है ' । गुरु वसिष्ठजीके वचन सुनकर रामचंद्रजीने सब प्रजाओंको उठाया और प्रेम भरे शब्द कहकर उनको शान्त किया ॥ १० ॥ रामचंद्रजीके मनमेंभी प्रजाका प्रेम भराहुआथा । वह उनसे बोले ' मैं तुम्हारी कौनसी इच्छा पूरी करूं सो कहो ' । तब प्रजाजन हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक रामजीसे बोले ॥ ११ ॥ ' हे राम आपके मनमें जहां जानेकी इच्छा है तहां

हमको भी साथ ही ले चलो; इसमें हमारा परमसंतोष है; व यही अक्षय धर्म है ॥ १२ ॥ 'हे राम ! तुम्हारे साथ जानेका हमारे मनमें दृढ निश्चय है। हम पुत्र, स्त्री, सबको साथ लेकर अभी तुम्हारे साथही साथ चलेंगे; इसमें अंतर नहीं होगा ॥ १३ ॥ हे रघुकुमार ! फिर आप तपोवनमें जाइये या स्वर्गको चलिये'। रामजीने उनके अंतःकरणका पूर्ण निश्चय और कालके वचन इन दोनों बातोंको मनमें विचार ॥ १४ ॥ उन अपने नागरिक भक्तजनोंसे 'बहुत अच्छा' ठीक है; इसप्रकार कहा। प्रभुरामजीने शीघ्र उस दिनकोही निश्चय कर ॥ १५ ॥ कुश लवको अपने २ भागके राज्यपर भेज दिया, आठ हजार रथ, एक सहस्र हाथी ॥ १६ ॥ और साठ हजार घोडे, इतनी २ सेना एक २ को दी। प्रत्येक पुत्रको बहुतसे

...नुगमनेरामहृद्गतानोदृढामतिः ॥ पुत्रदारादिभिःसार्धमनुयामोऽद्यसर्वथा ॥ १३ ॥ तपोवनंवास्वर्गंवापुरंवारघुनन्दन ॥ ज्ञात्वातेषां ...शोदार्ढ्यंकालस्यवचनंयथा ॥ १४ ॥ भक्तंपौरजनंचैवबाढमित्याहराघवः ॥ कृत्वैवनिश्चयंरामस्तस्मिन्नेवाहनिप्रभुः ॥ १५ ॥ प्रस्था ...मासचतौरामभद्रःकुशीलवौ ॥ अष्टौरथसहस्राणिसहस्रंचैवदंतिनाम् ॥ १६ ॥ षष्टिंचाश्वसहस्राणामेकैकस्मैददौबलम् ॥ बहुरत्नौ ...धनौहृष्टपुष्टजनावृतौ ॥ १७ ॥ अभिवाद्यगतौरामंकृच्छ्रेणतुकुशीलवौ ॥ शत्रुघ्नानयनेदूतान्प्रेषयामासराघवः ॥ तेदूतास्त्वरितंग ...शत्रुघ्नायन्यवेदयन् ॥ १८ ॥ कालस्यागमनंपश्चादत्रिपुत्रस्यचेष्टितम् ॥ लक्ष्मणस्यचनिर्याणंप्रतिज्ञांराघवस्यच ॥ १९ ॥ पुत्राभिषेच ...वसर्वरामचिकीर्षितम् ॥ श्रुत्वातद्दूतवचनंशत्रुघ्नःकुलनाशनम् ॥ २० ॥ व्यथितोऽपिधृतिंलब्ध्वापुत्रावाहूयसत्वरः ॥ अभिषिच्यसु ...वैमथुरायांमहाबलः ॥ २१ ॥

...न, बहुतसा द्रव्य और आनंदी व पराक्रमी सेवकजन दिये ॥ १७ ॥ तब वे कुश लव रामचंद्रजीका वंदन करके अपने २ प्रदेशपर गये; रामचंद्रजीका वियोग होनेसे बड़े कष्टपूर्वक गये, इधर रामचंद्रजीने शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूतोंको पठाया। उन दूतोंने शीघ्र जायकर शत्रुघ्नजीसे कहा कि ॥ १८ ॥ अयोध्यामें काल मुनि आये थे फिर दुर्वासा ऋषिकी चेष्टा, लक्ष्मणजीका चला जाना, रामचंद्रजीने प्रजाके साथ स्वर्गमें जानेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १९ ॥ पुत्रोंको अभिषेकभी कर दिया,—इस प्रकारसे रामचंद्रजीका अभिप्राय दूतने शत्रुघ्नजीको सुनाया। अपने कुलके नाश होनेका वृत्तान्त दूतोंके मुखसे सुनकर शत्रुघ्नको ॥ २० ॥ बहुत बुरा लगा; परन्तु उन महाप्रतापी पुरुषने धीरज धारण करके पुत्रोंको निकट बुलाया और

शीघ्रही सुबाहु नाम पुत्रका मथुरामें राज्याभिषेक किया ॥ २१ ॥ यूपकेतुको विदिशानगरीका राज्य दिया, इसके उपरान्त वह शत्रुदमन वीर रामचंद्रजीका दर्शन करनेके लिये अपने आप शीघ्रही अयोध्याको आये ॥ २२ ॥ वहांपर उन रामचंद्रजीको इन उदारपुरुषने देखा; राम चंद्रजीका तेज अग्निके समान था; वह दो रेशमीन वस्त्र अंगपर धारण कर रहेथे; वसिष्ठादि अनेक दीर्घायु ऋषि उनके निकट बैठे थे ॥ २३ ॥ महाबुद्धिमान् शत्रुघ्नजीने लक्ष्मीपति रघुनाथजीको प्रणाम किया व हाथ जोडकर धर्मयुक्त वचन बोले ॥ २४ ॥ हे कमलनयन राजन् ! मैंने तहांके [राज्]यपर पुत्रोंको स्थापित किया है—तुम्हारे साथ चलनेका मैंने पूर्ण निश्चय कर लिया है, ऐसा आप जानों ॥ २५ ॥ हे रघुवीर ! मुझे विशेष

[यूप]केतुंचाविदिशानगरेशत्रुसूदनः ॥ अयोध्यांत्वरितंप्रागात्स्वयंरामादिदृक्षया ॥ २२ ॥ ददर्शचमहात्मानंतेजसाज्वलनप्रभम् ॥ दुकूल [...]संवीतमृषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥ २३ ॥ अभिवाद्यरमानाथंशत्रुघ्नोरघुपुंगवम् ॥ प्रांजलिर्धर्मसहितंवाक्यंप्राहमहामतिः ॥ २४ ॥ अभि[...]ज्यसुतौतत्रराज्येराजीवलोचन ॥ तवानुगमनेराजन्विद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥ २५ ॥ त्यक्तुंनार्हसिमांवीरभक्तंतवविशेषतः ॥ शत्रुघ्नस्य [...]बुद्धिंविज्ञायरघुनन्दनः ॥ २६ ॥ सज्जीभवतुमध्याह्नेभवानित्यब्रवीद्वचः ॥ अथक्षणात्समुत्पेतुर्वानराःकामरूपिणः ॥ २७ ॥ ऋक्षा [...]राक्षसाश्चैवगोपुच्छाश्चसहस्रशः ॥ ऋषीणांदेवतानांचपुत्रारामस्यनिर्गमम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वाप्रोचूरघुश्रेष्ठंसर्वेवानरराक्षसाः ॥ तवानुगम[...]विद्धिनिश्चितार्थान्हिनःप्रभो ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामंसुग्रीवोऽपिमहाबलः ॥ यथावदभिवाद्याहराघवंभक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥

[...]रके इस अपने भक्तको छोड़ न जाइये (मुझको साथ लीजिये) शत्रुघ्नजीका दृढ निश्चय रामचंद्रजीने जाना ॥ २६ ॥ व उन्होंने उनसे कहा कि, तुम मध्याह्न कालमें तैयार रहो—इतनेहीमें एक क्षणभरके बीचमें वहां इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कूदते हुए कामरूप वानर आय पहुँचे । ॥ २७ ॥ हजारों ऋक्ष, राक्षस गोपुच्छ (एक जातिके वानर,) तहां आये; यह सर्व मंडली ऋषि और देवताओंके अंशसेथीं ' रामजी जायँगे ' ॥ २८ ॥ यह वार्ता सुन समस्त वानर और राक्षस रामजीसे बोले;—'प्रभो ! तुम्हारे पीछेही पीछे जानेका हमारा निश्चय है यह तुमसे विदित हो, ॥ २९ ॥ इतनेही अवकाशमें महापराक्रमी सुग्रीव तिस स्थानमें आये, व भक्तवत्सल रामचंद्रजीको साष्टांग दंडवत् करके बोले ॥ ३० ॥

'हे राम ! मैं महाप्रतापी अंगदका राज्याभिषेक कर आया । तुम्हारे साथ चलनेका मेरा पूर्ण निश्चय है ' ॥३१॥ उन ऋक्ष, वानर और राक्षसमंडलीके दृढ निश्चयके वचन सुनकर रामचंद्रजीने मृदु शब्दसे गौरवपूर्वक विभीषणसे कहा ॥ ३२ ॥ हे विभीषण ! मैं तुमको अपनी शपथ दिलायकर आज्ञा देताहूं कि जबतक पृथ्वीपर राक्षसोंकी प्रजा रहै तबतक तुम राक्षसोंका राज्य करो ॥ ३३ ॥ मैंही ऐसी व्यवस्था करताहूं, इसकारण तुम इसपर कोई उत्तर नदो, रामजी विभीषणसे ऐसा कह हनुमानूजीसे बोले ॥ ३४ ॥ हे पवनकुमार ! तुम सदा जीवित रहो । मेरी आज्ञा वृथा न करो । फिर [illegible] जाम्बवानूसे कहा । 'अब तो तुम भी पृथ्वीपर जीवित रहो । फिर एक समय द्वापरयुगके मध्यमें ॥ ३५ ॥ तेरे साथ किसीकारणसे

[illegible]षिच्यांगदंराज्येआगतोऽस्मिमहाबलम् ॥ तवानुगमनेरामविद्धिमांकृतनिश्चयम् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वातेषांदृढंवाक्यमृक्षवानररक्षसाम् ॥
[illegible]णमुवाचेदंवचनंमृदुसादरम् ॥ ३२ ॥ धरिष्यतिधरायावत्प्रजास्तावत्प्रशाधिमे ॥ वचनाद्राक्षसंराज्यंशापितोऽसिममोपरि॥३३॥
[illegible]चिदुत्तरंवाच्यंत्वयामत्कृतकारणात् ॥ एवंविभीषणंतूक्त्वाहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ मारुतेत्वंचिरंजीवममाज्ञामामृषाकृथाः ॥
[illegible]तमथप्राहतिष्ठत्वंद्वापरांतरे ॥ ३५ ॥ मयासार्धंभवेद्युद्धंयत्किंचित्कारणांतरे ॥ ततस्तान्राघवःप्राहऋक्षराक्षसवानरान् ॥ सर्वांने
[illegible]र्घप्रयातेतिदयान्वितः ॥ ३६ ॥ ततःप्रभातेरघुवंशनाथोविशालवक्षाःसितकंजनेत्रः ॥ पुरोधसंप्राहवसिष्ठमार्ययात्वग्निहोत्राणि
[illegible]रोमे ॥ ३७ ॥ ततोवासिष्ठोऽपिचकारसर्वंप्रास्थानिकंकर्ममहद्विधानात् ॥ क्षौमांबरोदर्भपवित्रपाणिर्महाप्रयाणायगृहीतबुद्धिः॥३८॥

मेरा युद्ध होगा ' । इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीने कृपायुक्त होकर बाकी सब ऋक्ष, राक्षस, व वानरोंसे कहा 'कि तुम हमारे साथ चलो ' ॥ ३६ ॥ रामचंद्रजीका वक्षस्थल विशाल और नेत्र श्वेत कमलके समानथे, दूसरे दिन सबेरेही रघुकुलनायकने अपने उपाध्याय श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिसे कहा कि,— गुरुमहाराज ! आप मेरे अग्निहोत्र मेरे आगे २ ले चलैं ॥ ३७ ॥ वसिष्ठ मुनिने भी महाप्रस्थानके समय जो उचित है वह सर्व कर्म यथाविधिसे आचरण किये । रामजीने रेशमी वस्त्र पहरा और हाथमें दर्भकी पवित्री ले महान् प्रस्थान विषयिणी बुद्धिका निश्चय करके ॥ ३८ ॥

नगरसे बाहर निकले । उनकी कान्ति कोटिचंद्रमाके समानथी, शुभ्र मेघमंडलसे चंद्रमाके बाहर निकलनेके समान रामजी नगरसे निकले, रामजीकी बाँईं ओर लक्ष्मी (सीताजी लक्ष्मीजीका रूप धरकर तहाँ आई) जो श्वेतकमल हाथमें लिये चलतीथीं उनके नेत्र कमलके समान विशाल थे ॥ ३९ ॥ दायीं ओर पृथ्वी तेजस्वी श्यामवर्णकी- मूर्ति धारण कर चलती थी, इसके हाथमें लाल कमलका फूल था, शास्त्र, शस्त्र, व धनुषबाण प्रत्यक्ष मूर्ति धारण करके रामजीके आगे चले ॥ ४० ॥ सर्व वेद प्रत्यक्ष शरीर धारण करके रामजीके साथ चले । समस्त मुनि चले, वेदोंकी पवित्र माता (गायत्री) प्रणव और व्याहृतिको साथ लेकर ईश्वरके साथ चलने लगी ॥ ४१ ॥ तिससमय लोगोंको ज्ञात हुआ कि अब मोक्षका द्वार

...म्यरामोनगरात्सिताभ्राच्छशीवयातःशशिकोटिकांतिः ॥ रामस्यसव्येसितपद्महस्तापद्मागतापद्मविशालनेत्रा ॥ ३९ ॥ ...यदक्षेरुणकंजहस्ताश्यामायथौभूरपिदीप्यमाना ॥ शास्त्राणिशस्त्राणिधनुश्चबाणाजग्मुःपुरस्ताद्धृतविग्रहास्ते ॥ ४० ॥ वेदाश्चस ...विग्रहाश्चययुश्चसर्वेमुनयश्चदिव्याः ॥ माताश्रुतीनांप्रणवेनसाध्वीययौहरिंव्याहृतिभिःसमेता ॥ ४१ ॥ गच्छंतमेवानुगताजनास्ते ...त्रदाराःसहबंधुवर्गैः॥अनावृतद्वारमिवापवर्गरामंव्रजंतंययुरातकामाः॥ ४२॥सांतःपुरःसानुचरःसभार्यःशत्रुघ्नयुक्तोभरतोऽनुयायात् ॥ ...तमालोक्यरमासमेतंश्रीराघवंपौरजनाःसमस्ताः ॥ ४३ ॥ सबालवृद्धाश्चययुर्द्विजाग्र्याःसामात्यवर्गाश्चसमांत्रेणोययुः ॥ सर्वेगताः ...मुखाःप्रहृष्टावैश्याश्चशूद्राश्चतथापरेच ॥ ४४ ॥सुग्रीवमुख्याहरिपुंगवाश्चस्नाताविशुद्धाःशुभशब्दयुक्ताः ॥ नकश्चिदासीद्भवदुःखयुक्तो ...नोऽथवाबाह्यसुखेषुसक्तः ॥ ४५ ॥

खुला हुआ है, इसकारण राम जिधरको चले हैं उधर चलें; उन लोगोंकी ऐहिक सर्व उपभोगकी इच्छा पूर्ण होगईथी, इसलिये वे पुत्र, स्त्रियें और भाई बंधु सब जनोंको साथ लेकर रामचंद्रजीके पीछे २ बाहर चले ॥ ४२ ॥ रामजी अपने अंतःपुरके सेवक जन, भार्या और शत्रुघ्न, इन सबको साथ लेकर चले । श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मीजीके साथ जाता हुआ देखकर समस्त नागरिक जन ॥ ४३ ॥ व लड़के, वृद्ध, प्रधानमंडल और ऐसे सबके साथ बड़े, ब्राह्मण बाहर निकले । क्षत्रिय प्रभृति वर्ण-वैश्य-तैसेही शूद्र व दूसरे लोग, आनंदित होते हुए चलने लगे ॥ ४४ ॥ सुग्रीवादि बड़े वानर स्नान करके शुद्ध होते हुए मंगलशब्द उच्चारण करके निकले, तिसकाल वहाँ संसारदुःखसे पीडित हुआ, दीन अथवा बाह्य सुखमें

आसक्त हुआ कोईभी प्राणी नहींथा ॥ ४५ ॥ सर्व जन विरक्त होते हुए अपने पशु और सेवकोंके समुदाय साथ ले आनंदरूपी रामचंद्रजी के पीछे २ चले । तहाँके अदृश्य जीव व स्थावर जंगमात्मक प्राणी ऐसे सर्व जन ॥ ४६ ॥ विरक्त होकर साक्षात् सर्वशक्ति परमात्माके पीछे चले । तिस समय अयोध्यामें ऐसा कोईभी प्राणी नहींथा, कि जो रामचंद्रजीमें मन लगाय उनके पीछे बाहर न निकलाहो ॥ ४७ ॥ राजा रामचंद्र जीके चले जानेपर सर्वनगर जनशून्य होगया । नगरसे बाहर बहुत दूर चले जानेपर, सरयू नदी रामचंद्रजीको दिखाई दी, उस नदीकी उत्पत्ति ईश्वरके नेत्रोंसे हुईहै ॥ ४८ ॥ वह प्रवाह देखकर रामचंद्रजीको आनंद हुआ । फिर उन्होंने अपने पवित्र विराट्रूपका ध्यान किया और ऐसी

...नंदरूपानुगताविरक्ताययुश्चरामंपशुभृत्यवर्गैः ॥ भूतान्यदृश्यानिचयानितत्रयेप्राणिनःस्थावरजंगमाश्च ॥ ४६ ॥ साक्षात्परात्मानमनं ...शक्तिजग्मुर्विरक्ताःपरमेकमीशम् ॥ नासीदयोध्यानगरेतुजंतुःकश्चित्तदाराममनानयातः ॥ ४७ ॥ शून्यंबभूवाखिलमेवतत्रपुरंगतेरा ...रामचंद्रे ॥ ततोऽतिदूरंनगरात्सगत्वादृष्ट्वानदींतांहरिनेत्रजाताम् ॥ ४८ ॥ ननंदरामःस्मृतपावनोऽतोददर्शचाशेषमिदंहृदि ... ॥ अथागतस्तत्रपितामहोमहान्देवाश्चसर्वेऋषयश्चसिद्धाः ॥ ४९ ॥ विमानकोटीभिरपारपारंसमावृतंखंसुरसेविताभिः ॥ रवि ...शाभिरभिस्फुरत्स्वंज्योतिर्मयंतत्रनभोबभूव ॥ ५० ॥ स्वयंप्रकाशैर्महतांमहद्भिःसमावृतंपुण्यकृतांवरिष्ठैः ॥ ववुश्चवाताश्चसुगं ...ववर्षवृष्टिःकुसुमावलीनाम् ॥ ५१ ॥ उपस्थितेदेवमृदंगनादेगायत्सुविद्याधरकिंन्नरेषु ॥ रामस्तुपश्चात्सरयूजलंसकृत्स्पृष्ट्वापरि ...दनंतशक्तिः ॥ ५२ ॥

...की कि यह सर्व जगत अपने दृश्यमें है (मैं विराटस्वरूपहूं ऐसा ध्यान किया) तिस समय उस स्थानपर सर्वके पितामह श्रेष्ठ ब्रह्माजी सर्व देवता ऋषि और सिद्धजन प्राप्त हुए ॥४९॥ आकाश अपरंपार होनेपरभी तिस समय करोड़ों विमानोंसे भरगया उन विमानोंमें देवता बैठेथे विमानोंका तेज सूर्यके समान जिधर तिधर फैले रहनेसे आकाश प्रकाशमय होगया ॥ ५० ॥ बड़े २ पुण्यवान् व स्वयंप्रकाश श्रेष्ठ लोगोंके आकाशमें ठट्ट इकट्ठे होगये; सुगंधित पवन चलने लगा; फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ५१ ॥ देवताओंके मृदंगकी ध्वनि होने लगी; विद्याधर और किन्नरगण गाने लगे; स्वर्गमें ऐसा उत्सव होताथा; इधर सर्व शक्तिमान् रामचंद्रजी एक आचमन करके सरयूके जलपर चलने लगे ॥ ५२ ॥

तिससमय ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रार्थना की—' हे परमात्मन्! आप जगत्की सृष्टि; स्थिति, व लय करतेहो । आप नित्य आनंदमय पूर्ण विष्णु हैं । आप अपने अद्वितीय ब्रह्मरूपको जानते हैं ॥ ५३ ॥ हे सर्वेश्वर ! ज्ञानरूप ! ऐसा होनेपरभी आपने रामावतार ले मेरी प्रार्थना पूर्णकी और भक्तवात्सल्य लोगोंको विश्वास दिला दिया, अब आप अपने भ्राताओंके साथ एक व आद्य विष्णुरूपमें प्रवेश करके देवताओंकी रक्षा करो ॥ ५४ ॥ अथवा जो कोई तुम्हैं दूसरा शरीर अंगीकार करना हो तो उसको अंगीकार करके हमारा पालन करो; आप देवाधिदेव विष्णुजी [illegible] व्यतिरिक्त कोई पुरुष आपके यथार्थ रूपको नहीं जानता ॥ ५५ ॥ हे देवाधिदेव ! आपको सहस्रवार नमस्कार है ' जब ब्रह्माजीने ऐसी प्रार्थ

[illegible]के प्राहकृतांजलिस्तंरामंपरात्मन्परमेश्वरस्त्वम् ॥ विष्णुःसदानंदमयोऽसिपूर्णोजानासितत्त्वंनिजमैशमेकम् ॥ ५३ ॥ तथापिदा[illegible]र्मामाखिलेशकृतंवचोभक्तपरोऽसिविद्वन् ॥ त्वंभ्रातृभिर्वैष्णवमेकमाद्यंप्रविश्यदेहंपरिपाहिदेवान् ॥ ५४ ॥ यद्वापरोवायदिरोच[illegible]इयदेहंपरिपाहिनस्त्वम् ॥ त्वमेवदेवाधिपतिश्चविष्णुर्जानंतिनत्वांपुरुषाविनामाम् ॥ ५५ ॥ सहस्रकृत्वस्तुनमोनमस्तेप्रसीददे[illegible]र्नमस्ते ॥ पितामहप्रार्थनयासरामःपश्यत्सुदेवेषुमहाप्रकाशः ॥ ५६ ॥ मुष्णंश्चचक्षूंषिदिवौकसांतदाबभूवचक्रादियुतश्चतुर्भुजः ॥ [illegible]र्वेश्वरतल्पभूतःसौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ॥ ५७ ॥ बभूवतुश्चक्रदरौचादिव्यौकैकेयिसूनुर्लवणांतकश्च ॥ सीताचलक्ष्मीरभव[illegible]रामोहिविष्णुः पुरुषःपुराणः ॥ ५८ ॥ सहानुजःपूर्वशरीरकेणबभूवतेजोमयदिव्यमूर्तिः ॥ विष्णुंसमासाद्यसुरेंद्रमुख्यादेवाश्चसिद्धा[illegible]यश्चयक्षाः ॥ ५९ ॥ पितामहाद्याःपरितःपरेशंस्तवैर्गृणंतःपरिपूजयंतः॥ आनंदसंप्लावितपूर्णचित्ताबभूविरेप्राप्तमनोरथास्ते ॥ ६० ॥

नाकी तब रामजीने तत्काल सर्व देवताओंके सन्मुख ॥ ५६ ॥ चतुर्भुज रूप धारण किया; उनके हाथमें शंख चक्रादि आयुध थे । उनका तेज देखकर देवताओंके नेत्र छिप गये; लक्ष्मणजी विष्णुजीकी शय्या शेष हुए; उनका शरीर प्रचंड था ॥ ५७ ॥ कैकेयीके पुत्र (भरत) और लवणासुरके नाशकर्ता (शत्रुघ्न) यह दोनों विष्णुजीके हाथके चक्र और शंख यह दोनों आयुध हुए । सीताजी पहलेही लक्ष्मीजी होगई । इस प्रकारसे रामचंद्रजीका पुराणपुरुषरूप सिद्धहै ॥ ५८ ॥ छोटे भ्राताओंके सहित रामचंद्रजी अपने पूर्वका शरीर (विष्णुरूप) धारणकरके प्रकाशमान दिव्यदेही बने । विष्णुजीका दर्शन पायकर इन्द्रादि देव सिद्ध, मुनि, यक्ष ॥ ५९ ॥ व ब्रह्मादि सर्व महात्मा ईश्वरके निकट खड़े

रहकर विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति व पूजा करने लगे। उनके मन आनंदसे पूर्ण होगये व मनोरथ परिपूर्ण हुए ॥ ६० ॥ श्रीविष्णुजीका अंतः करण भक्तोंके विषयमें परमोदार है; उन्होंने उस समय ब्रह्माजीसे कहा 'यह मेरे भक्त मुझपर पूर्ण अनुरागी हैं' मैं स्वर्गको जानेके लिये तैयार हुआ तो यह सब मेरे पीछे चले; इस कृत्यसे इनको परम पुण्य हुआ; इसकारण यद्यपि यह क्षुद्रयोनिमें जन्मे हैं तथापि ॥ ६१ ॥ इनको वैकुंठकी योग्यताका लोक प्राप्त होना चाहिये। इसकारण मेरी आज्ञासे इनको तैसेही लोकमें पहुँचाओ'। ईश्वरकी आज्ञा सुनकर ब्रह्मा [illegible]ले;—वेसांतानिक लोकमें जायँ (मैं उनको सांतानिक लोकमें पहुँचाताहूं) वहां अनेक प्रकारके उपभोग तैयार हैं। वे (सांतानिक) ते

[illegible]हविष्णुर्द्रुहिणंमहात्माएतेहिभक्तामयिचानुरक्ताः ॥ यांतंदिवंमामनुयांति सर्वेतिर्यक्छरीराअपिपुण्ययुक्ताः ॥ ६१ ॥ ॥ वैकुंठसाम्यं [illegible]यांतुसमाविशस्वाशुममाज्ञयात्वम् ॥ श्रुत्वाहरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कःसांतानिकान्यांतुविचित्रभोगान् ॥ ६२ ॥ लोकान्मदी[illegible]दीप्यमानांस्त्वद्भावयुक्ताःकृतपुण्यपुंजाः ॥ येचापितेरामपवित्रनामगृणंतिमर्त्यालयकालएव ॥ ६३ ॥ अज्ञानतोवापिभजंतु [illegible]तानेवयोगैरपिचाधिगम्यान् ॥ ततोतिहृष्टाहरिराक्षसाद्याःस्पृष्ट्वाजलंत्यक्तकलेवरास्ते ॥६४॥ प्रपेदिरेप्राक्तनमेवरूपंयदंशजा[illegible]प्रास्ते ॥ प्रभाकरंप्रापहरिप्रवीरःसुग्रीवआदित्यजवीर्यवत्त्वात् ॥ ६५ ॥

[illegible]ोक मेरे सत्य लोकसेभी श्रेष्ठ (तिससेभी अधिक योग्यतासे) हैं, ईश्वररूप तुममें इन प्राणियोंने दृढ भक्ति करी इसकारणसे इनको पुण्य राशि प्राप्त हुई॥६२॥हे राम! जो पुरुष मरणकालके समय आपके नामका जप करते हैं. उनको यह सांतानिक लोक प्राप्त होताहै। यह स्थान अनेक जन्मोंमें पुष्कल योगसाधन करनेसे प्रात होते हैं (राम नाम स्मरणकी योग्यता अनेक जन्मोंको योग साधना करनेके समान है) ॥ ६३ ॥ उस समय वानर, राक्षस इत्यादि रामभक्तोंको बहुत आनंद हुआ, वे सर्व ऋक्षाधिपति व वानरवीर जल स्पर्श (आचमन) करके जिसके (देवता) के अंशमें जन्मेथे तिस पूर्वरूपमेंही आप जाय मिले ॥ ६४ ॥ वानरराज सुग्रीवने सूर्यके वीर्यसे जन्म लियाथा इसलिये वह सूर्यरूपमें मिलगये।

फिर मनुष्योंनेभी आयके जलमें गोता लगाकर मनुष्यशरीरको छोडा ॥ ६५ ॥ तत्काल उनको दिव्य अलंकारोंसे युक्त शरीर और बैठनेके लिये विमान मिले तब वे उन विमानोंमें बैठकर सांतानिक नागके लोकोंमें गये । तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए प्राणी रामचंद्रजीकी दृष्टिके प्रभावसे जल में डुबकी मारतेही शरीरको छोड गये ॥ ६६ ॥ देशदेशके लोग रामजीके दर्शनको आयेथे; रामचंद्रजीका दर्शन करतेही उनके पाप नाशको प्राप्त होगये, उन्होंने सर्वसंगपरित्याग करकै लोकोंके गुरु व सकलदुःखहारी परमेश्वरका स्मरण किया और सरयूके जलमें प्रवेश करते हुए—तत्काल [illegible] स्वर्ग मिला ॥ ६७ ॥ महादेवजीने पार्वतीजीको श्रीरामचंद्रजीके अवशिष्टादि चरित्रका उत्तर भाग इतना कहा । जो मनुष्य इस ग्रंथका एक

[illegible]के ग्राः सरयूजलेषुनराःपरित्यज्यमनुष्यदेहम् ॥ आरुह्यदिव्याभरणाविमानंप्रापुश्चतेसांतनिकाख्यलोकान् ॥ ६६ ॥ तिर्यक्प्रजा [illegible]रामदृष्टाजलंप्रविष्टादिवमेवयाताः ॥ दिदृक्षवोजानपदाश्चलोकारामंसमालोक्यविमुक्तसंगाः ॥ ६७ ॥ स्मृत्वाहरिंलोकगुरुंपरेशं [illegible]जलंस्वर्गमवापुरंजः ॥ एतावदेवोत्तरमाहशंभुःश्रीरामचन्द्रस्यकथावशेषम् ॥ ६८ ॥ यःपादमप्यत्रपठेत्सपापाद्विमुच्यतेजन्मस[illegible]तात् ॥ दिनेदिनेपापचयंप्रकुर्वन्पठेन्नरःश्लोकमपीहभक्त्या ॥ ६९ ॥ विमुक्तसर्वाघचयःप्रयातिरामेतिसालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥ [illegible]ख्यानमेतद्रघुनायकस्यकृतंपुराराघवचोदितेन ॥ ७० ॥ महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थंश्रुत्वातुरामःपरितोषमेति ॥ रामायणंकाव्यमनं[illegible]श्रीशंकरेणाभिहितंभवान्यै ॥ ७१ ॥

[illegible]भी बांचेगा यह सहस्र जन्मोंके कियेहुए पापोंसे छूट जायगा ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन पापराशि करता रहा हो परन्तु जो इस ग्रंथमेंका एक श्लोकभी भक्तिके साथ पढता है, तो उसके पापोंकी राशि सब दूर हो जाती है; वह प्रत्यक्ष रामजीके लोकमें जाता है; यह स्थान साधारण साधनोंसे नहीं मिलता ॥ ६९ ॥ पहले अन्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीने शंकरजीकी प्रेरणा करी, तब महादेवजीने जिसमें भविष्य अर्थ समझाये हुए हैं ऐसा यह रघुकुलनाथ श्रीरामचंद्रजीकी कथाका आख्यान रचा है कि जिसके श्रवण करनेसे रामचंद्रजी प्रसन्न हो जाते हैं अर्थात् श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसासे सर्व अर्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ७० ॥ यह रामायणनामका अत्यन्त पुण्यकारक काव्य श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे कहा

दोहा—जेहिश्रुति गावत रैनि दिन, वेद न पावत पार। सोइ रघुनाथ सिया सहित, बंदों वारंवार ॥ १ ॥

श्यामरूप चितवन रुचिर, बने प्रफुल्ल शरीर। कमलनयन मोहनमयन, हर मेरी भवभीर ॥ २ ॥

कियो तुम्हारी कृपासों, भाषामें यह ग्रंथ। याहि पढत समुझत सुनत, खुलत मोक्षको पंथ ॥ ३ ॥

अध्यातम रघुवरचरित, श्रुति पुराणको सार। नेक पढेहू देत है, सुभग पदारथ चार ॥ ४ ॥

उन्निससे ऊपर अधिक, बावन वर्ष विचार। पौषमाससितसप्तमी, पूर्ण कियो गुरुवार ॥ ५ ॥

श्लोकौ।

नमस्कृत्य जगन्नाथं कौसल्यानंदवर्धनम् ॥ धनुर्बाणधरं वीरं जानकीवल्लभं हरिम् ॥ १ ॥

भाषया व्याख्यया युक्तो ब्रह्मज्ञानसमन्वितः ॥ ग्रंथोऽयं पूर्तिमानीतो बलदेवेन धीमता ॥ २ ॥

शुभमस्तु.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस—मुम्बई.

जो मनुष्य इस ग्रन्थको बाँचैगा, या सुनैगा, वह सैंकडों जन्मके पापोंसे छूटजायगा ॥ ७१ ॥ जो कोई पुरुष अध्यात्मरामायणको भक्ति पूर्वक नित्य पढ़े, सुनै, या लिखै, तौ सीताजीके साथ रामचंद्रजी अत्यन्त प्रसन्न होकर नित्य उसके निकट रहते हैं और इसके ऐश्वर्यको बढाते हैं ॥ ७२ ॥ यह रामायणनामक पुरातनकाव्य सबजनोंके मनको रमणीय लगनेवाला है, ब्रह्मादि बड़े २ देवता इसकी प्रशंसा करते हैं । जो मनुष्य रामायणही मेरा उद्धार करैगी, ऐसा विश्वास रखकर यह ग्रंथ नित्य बाँचैगा या सुनैगा उसका शरीर पवित्र हो जायगा ॥ ७३ ॥

...ध्यापठेद्यः शृणुयात्सपापैर्विमुच्यतेजन्मशतोद्भवैश्च ॥ अध्यात्मरामंपठतश्चनित्यंश्रोतुश्चभक्त्यालिखितुश्चरामः ॥ ७२ ॥ अति ...श्चसदासमीपेसीतासमेतःश्रियमातनोति ॥ ७३ ॥ रामायणंजनमनोहरमादिकाव्यंब्रह्मादिभिःसुरवरैरपिसंस्तुतंच ॥ श्रद्धान्वितः ...यः शृणुयात्तुनित्यंविष्णोःप्रयातिसदनंसविशुद्धदेहः ॥७४॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वरसंवादेउत्तरकांडेनवमःसर्गः॥९॥ ...त्मोत्तरकांडेसर्गाग्रहसंख्ययापरिक्षिताः ॥ ऋतुशतसंख्याःश्लोकाःपुराणसंख्याश्चपुरहरेणोक्ताः ॥ १ ॥ पार्वत्यैपरमेश्वरेणगदिते ...त्मरामायणेकांडैःसप्तभिरन्वितेऽतिशुभदेसर्गाश्चतुःषष्टिकाः ॥ श्लोकानांतुशतद्वयेनसहितान्युक्तानिचत्वारिवैसाहस्राणिसमाप्ति ...श्रुत्यर्थशतेषूक्तानितत्त्वार्थतः ॥ ॥ १ ॥ समाप्तमिदमुत्तरकांडम् ॥

...र्मदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकांडे श्रीमन्मिश्रसुखानंदसूनुगंगागर्भजमिश्रबलदेवप्रसादकृतौ भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

...अध्यात्मरामायणका यह आख्यान श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे कहा इसमें सप्तकांड, चौसठ सर्ग वा चार सहस्र दोशत (४२००) श्लोक हैं इसमें वर्णन कियेहुए तत्त्वसिद्धान्तमें सैंकडों श्रुति कही हैं ॥ १ ॥

इति उत्तरकाण्डं समाप्तम् ।